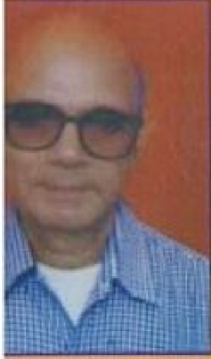


डॉ. रामचन्द्र पुरी ने वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी से शांकरवेदान्ताचार्य तथा गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार से एम.ए. एवं पी-एच.डी. की उपाधियाँ प्राप्त की हैं। वेदान्त तथा अन्य विषयों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने के उपलक्ष्य में डॉ. पुरी को संस्कृत विश्वविद्यालय से तीन स्वर्णपदक प्राप्त हुए। डॉ. पुरी ने संस्कृत की प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री, आचार्य तथा एम.ए. की परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी प्राप्त की तथा एम.ए. (हिन्दी) परीक्षा में भी स्थान प्राप्त किया। डॉ. पुरी ने लगभग ३५ वर्षों तक लाजपतराय पी.जी. कालेज, ाद तथा बी.एस.एम. पी.जी. कालेज, रुड़की में अध्यापन किया और इसी दौरान भारत सरकार की 'भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद्' की ओर से वर्ष १९८७ में के पारामारीबो स्थित भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र में अध्यापनार्थ भेजा गया। यहाँ जून १९९१ तक हिन्दी के साथ संस्कृत, भारतीय दर्शन, संस्कृति तथा प्राच्यविद्या षयों का अध्यापन किया।

ॉ. पुरी की 'शंकराचार्य : तान्त्रिक शाक्त-साधना एवं सिद्धान्त' 'श्री सप्तशती' एवं 'कुण्डलिनी महायोग' नामक तीन कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं। नी महायोग के प्रथम खण्ड में महान् योगी गुरुओं की अहैतुकी कृपा से उन्हें प्राप्त -पथ की दिव्य यात्रा के कुछ अनतिगोप्य संस्मरणों तथा द्वितीय खण्ड में योगशास्त्र के क एवं अनुभूतिपरक विभिन्न विषयों का लेखा-जोखा है। डॉ. पुरी की प्रस्तुत कृति ार्य : तान्त्रिक साधना' में आचार्य शंकराचार्य द्वारा निरूपित तान्त्रिक साधनाओं का -विश्लेषण है।

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

दिल्ली

2

रामचन्द्र पु

शङ्कराचार्य : तान्त्रिक साधना



गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति।
गर्भं ते अश्विनौ देवा वा धत्तां पुष्करस्रजा।।
हिरण्मयी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना।
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे।। (ऋग्वेद १०/१८४/१-३)

इसके बाद आचमन करके अग्निदेवता की पूजा करके गुरु को दक्षिणादि प्रदान कर अग्नि का विसर्जन तथा ब्राह्मणों को भोजन-दक्षिणादि कर्म सम्पन्न किये जाने चाहिये।

दम्पति को यह यज्ञ तीन वर्ष तक प्रत्येक चतुर्दशी तथा पंचदशी तिथि को सम्पन्न करना चाहिये। इसमें नियम यह है कि एक वर्ष तक प्रत्येक पर्व में हवनादि विधि में एक-एक वृद्धि करनी चाहिये तथा दूसरे वर्ष में क्रमशः एक-एक कम करना चाहिये। इसी प्रकार तीसरे वर्ष में एक-एक की वृद्धि पुनः करनी चाहिये। तीन वर्षों में पूर्ण होने वाली इस यज्ञविधि की समाप्ति से पूर्व ही दैवशक्ति, पितरों और देवताओं की कृपा से यज्ञकर्ता को पुत्र की प्राप्ति होती है।

....
संयोज्य तद् युगलमभिजप्य विष्णु-
र्योन्यादिकेन मनुना च कपर्दिसंख्यम्।।
पुरुषः पुरुषात्मकं प्रकृत्यात्मकमन्याथ समाहितोपयुज्य।
अवदानयुगं क्रमान्मनस्वी पुनराचम्य समर्चयेद्धुताशम्।।
गुरवेऽप्यथ दक्षिणां प्रदत्याऽनलमुद्वास्य च भोजयेद्द्विजातीन्।
प्रतिपर्वकमेवमेकवृद्ध्या मतिमान् वत्सरकं प्रपूरयीत।।
एकह्रासादन्यमब्दं द्विजातीन् सम्भोज्याऽन्नं पूरयेदेकवृद्ध्या।
सम्पूर्यमाणादेवमेव त्रिकाब्दादर्वादक् पुत्रो जायते दैवशक्त्या।।
(वही, ३६/१५-१८)

इस प्रकार सन्तान उत्पत्तिकारक उक्त याग के प्रभाव से सन्तानवान् होकर गृहस्थ साधक श्रुति-स्मृति प्रतिपादित देवऋण, पितृऋण तथा ऋषिऋण से उऋण होकर लोकप्रिय, बुद्धिमान्, आयुष्यमान्, लक्ष्मीवान्, तेजस्वी तथा धर्मवान् बनता है।

समुनिसुरपितृभ्यो ब्रह्मचर्येण यज्ञैस्त्रिविधमृणमपत्यैश्चैव सम्मोचयेद्यः।
श्रुतिवचनकृदस्मिन्वाऽपि लोके परस्मिन्निति स तु गृहमेधी पूज्यते साधुलोकैः।।
(वही, ३६/२०)



अं कं केशवाय नमः स्वाहा,
आं नं नारायणाय नमः स्वाहा,
इं मं माधवाय नमः स्वाहा...

आदि मन्त्रों से एक-एक आहुति देकर केशवादि प्रत्येक को घृत की चार-चार आहुतियां देनी चाहिये।

तत्पश्चात् अष्टाक्षर मन्त्र **'ओं ह्रीं हौं नमः शिवाय'** के प्रत्येक वर्ण से एक-एक आहुति पक्वान्न की तथा चार-चार आहुतियां घृत की देनी चाहिये। इसी प्रकार पंचाक्षर मन्त्र 'नमः शिवाय' के प्रत्येक वर्ण से पक्वान्न की एक-एक आहुति तथा घृत की चार-चार आहुतियां देकर पूरे मन्त्र से पक्वान्न की एक तथा घृत की चार आहुतियां देनी चाहिये।

कलायुतैः षोडशमूर्तिमन्त्रैर्व्यस्तैरथाऽष्टाक्षरजैश्च वर्णैः ।
अष्टौ समस्तेन च तेन पंचाक्षरेण चाऽष्टाक्षरवज्जुहोतु।।
पक्वाहुतीनामिति वर्णसंख्यं चतुर्गुणं चापि घृताहुतीनाम्।
हुत्वाऽवदानद्वितयंच पुंस्त्रीभेदप्रभिन्नं हविषा करोतु।।

(वही, ३६/१३-१४)

आवरण-पूजा

हवन-विधि समाप्त कर लेने के बाद पूजन के लिये निर्मित यन्त्र के प्रथम आवरण में अंगमन्त्र, द्वितीय आवरण में ईशानादि अर्थात् ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात, तृतीय में अष्टाक्षर मन्त्र-मूर्तियां (भगवान् शंकर की भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महादेव, भीम तथा ईशान), चतुर्थ आवरण में उक्त केशवादि सोलह मूर्तियां तथा पंचम आवरण में आयुधसहित इन्द्रादि लोकपालों की पूजा करनी चाहिये।

"अंगैः प्रथमावृत्ति, ईशानादिभिर्द्वितीया, अष्टाक्षरमूर्तिभि स्तृतीया,
केशवादिषोडशमूर्तिभिश्चतुर्थी इन्द्रादिभिरन्त्येत्यावरणक्रमः।.."

(वही, ३६/६ पर विवरण)

आवरण-पूजा समाप्त कर लेने के बाद हवन से शेष घृत सहित हवि को इकट्ठा कर निम्नांकित ऋचाओं को ११ बार पढ़ने के बाद यज्ञकर्ता युगल (पति-पत्नी) द्वारा खा लिया जाना चाहिये—

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु।
आ सिंचतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते।।

शंकर ने संकोचक मन्त्र का पुनः उल्लेख करते हुए बताया है कि 'ओं अ क च ट त प य श हलोम्' संकोचक मन्त्र है।

वर्गादिको हलोमन्तः संकोचाख्यो ध्रुवादिकः। (वही, ३६/२१)

सन्तानोत्पत्ति याग

सन्तानप्राप्ति याग करने के लिये अग्नि प्रज्ज्वलित करके लगभग १ पाव दुग्ध और चावल को पका कर चरु अर्थात् हव्य तैयार करके उसे दो भागों में विभक्त करके एक भाग हवनकुण्ड के उत्तर में देवताओं के लिये तथा दूसरे भाग को दक्षिण की ओर पितरों के लिये हवन हेतु रखना चाहिये। यज्ञकुण्ड में पहले पितरों के लिये और इसके पश्चात् देवताओं के लिये हवन करना चाहिये। हवन के समय भावना करनी चाहिये कि उसके पितर देवोपासना के लिये निर्मित पीठ या वेदी के नीचे बैठे हुए हैं।

पितरों को आहुति देने हेतु उक्त पितृ-हवि के आंवले के आकार के दो-दो पिण्ड बनाकर एक पिण्ड में से पहले अपने माता-पिता, पितामह-पितामही, प्रपितामह-प्रपितामही के लिये ओंकार सहित व्याहृतियों का उच्चारण करते हुए 'ओं भूर्भुवः स्वः अमुकगोत्राय अमुकनाम्ने अस्मत्पित्रे स्वाहा... ओं भूर्भुवः स्वः अमुकगोत्राय अमुकनाम्ने अस्मत् पितामहाय स्वाहा..' इत्यादि मन्त्रों से घृतयुक्त उक्त पक्वान्न की एक-एक आहुति देकर मातृवर्ग वाले दूसरे पिण्ड से मातृवर्ग के मातृपिता, मातृपितामह एवं मातृप्रपितामह को भी उक्त रीति से एक-एक आहुति देनी चाहिये।

तत्राऽग्निमाधाय चरुं च कृत्वा संकल्प्य तद्दक्षिणमुत्तरं च।
भागक्रमात् पैतृकदैविकं तत् प्रीत्यै तु पूर्वं जुहुयात् क्रमेण।।
स्मृत्वा निजं पितरमप्यधरान्निषण्णं सान्नाय्यपिण्डयुगलं घृतसंप्लुतं तत्।
हुत्वा ध्रुवेण घृतसम्पुटितं तथैव मन्त्री पितामहमथ प्रपितामहंच।।
व्याहृतीभिरथ पक्वहोमतः सर्वशः प्रतिजुहोतु सर्पिषा।
मातृवर्गगुरुतत्पितृद्वयं पूर्ववत्समवदाय साधकः।। (वही, ३६/१०-१२)

पितरों के लिये हवन सम्पन्न होने के बाद वेदी के उत्तर भाग में रखे गये पक्वान्न से देवहोम सम्पन्न करना चाहिये। देवहोम में षोडश स्वरों में से प्रत्येक नाम के आगे ओंकार और अनुस्वार सहित एक-एक स्वर लगाकर केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध नामक षोडशमूर्तियों के लिये

हमारा प्राचीन वैदिक विश्वास रहा है कि पुत्रहीन व्यक्ति की गति नहीं होती—अपुत्रस्य गतिर्नास्ति। मनु के अनुसार पुत्र और पुत्री में कोई भेद नहीं—'पुत्रेण दुहिता समा।' तात्पर्य यह कि सद्गति के लिये आवश्यक है कि व्यक्ति उ [illegible] सन्तान-परम्परा को बनाये रखे। लेकिन पारम्परिक विश्वास के अनुसार है [illegible] षि तथा पितरों के प्रति अपने कर्तव्य को न निभाने वाले, गुरु, माता-पिता तथा पितरों के लिये श्राद्धकर्म से विरत, धनादि के रहते भी याचकों को न देने वाले, अतिथियों को भोजन कराये बिना ही स्वयं भोजन कर लेने वाले, विष्णु तथा शंकर की उपासना न करने वाले, अपनी पत्नी की निन्दा करने वाले, लोकमर्यादा का उल्लंघन करने वाले तथा दूषित दान लेने वाले व्यक्ति सन्तान के सुख से वंचित रहते हैं। किन्तु, साधना एवं यागादि क्रिया से इन दोषों को दूर किया जा सकता है। इसलिये अपनी और अपने पितरों की मुक्ति के लिये व्यक्ति को सन्तान-प्राप्ति के लिये किसी न किसी उपाय का सहारा अवश्य लेना चाहिये।

(प्रपंचसारतन्त्र, ३६/२-७)

आचार्य शंकर के अनुसार गुरु से यथाविधि दीक्षा प्राप्त करके कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि की रात्रि को पत्नी के साथ समागम करके अमावस्या को प्रातः समस्त नित्य-नैमित्तिक क्रियाओं को सम्पन्न करके पंचगव्य (गोमूत्र, गोबर का पानी, दूध, दही तथा घी) लाकर उसे संकोचक मन्त्र 'ओं अं कं चं टं तं पं यं शं हलों' के उच्चारण के साथ मथने के बाद उस मन्थ में अमृत बीज 'वं वं' लिखकर इस अमृतबीज के १०८ बार जप से मन्थ को अभिमन्त्रित करके उसे दो भागों में विभक्त करने के बाद पति-पत्नी द्वारा भूतमन्त्रों 'ओं लं पृथिव्यात्मने नमः, ओं वं जलात्मने नमः, ओं रं अग्न्यात्मने नमः, ओं यं वायव्वात्मने नमः, ओं हं आकाशात्मने नमः' का उच्चारण करते हुए पी लिया जाना चाहिये।

संयोज्य किंचन यथाविधि पंचगव्यं
संकोचकेन मनुना प्रतिमथ्य वार्णम्।
संमन्त्र्य चाऽष्टशतकं समवद्य भूत-
मन्त्रैः पिबेत् स्वयमसावपि गर्भधात्री।। (वही, ३६/९)

रही है। प्राणशक्ति का इस प्रकार से ध्यान-चिन्तन करने वाले साधक पर प्रसन्न होकर यह शक्ति साधक के लिये साध्य को इस जन्म में ही नहीं, सौ-सौ जन्मों तक मोहित तथा आकर्षित करती रहती है।

पाशाद्यत्रिकयुक्तमूलहृदयभ्रूमध्यसूत्रायिता
साग्निः साध्यललाटरन्ध्रपथतोऽप्यामूलमाजग्मुषी।
योन्यामात्महृदब्जमेवमनिशं भ्राम्यत्यसौ चिन्तिता।
शक्तिर्जन्मशतान्यपीह वशयेत् साध्यं तथाकर्षयेत्।। (वही, ३५/२१)

यन्त्रनिर्माण-विधि

वशीकरणदि के लिये पूजन यन्त्र के निर्माण की विधि का पद्मपाद ने उल्लेख किया है। उनके अनुसार अष्टदलों के मध्य कर्णिका में शक्ति बीज 'ह्रीं' लिखकर उसे पाश बीज 'आं' और अंकुश बीज 'क्रों' से वेष्टित कर शक्ति के भीतर साध्य, साधक तथा कर्म लिख, आठों दलों में क्रमशः बिन्दुसहित यं रं लं वं शं षं सं तथा हों ये आठ बीज लिखकर मन्त्र के शेष 'ओं क्षं सं हं सः ह्रीं ओं हंसः' बीजों से उक्त आठ दलों को वेष्टित करके दो भूपुरों का आलेखन कर उनके बाहर 'आं' तथा 'क्रों' बीज लिखने चाहिये।

"अष्टदलमध्यगतशक्तौ साध्यादिकं लिखित्वा पाशांकुशाभ्यां तां संवेष्ट्य याद्यष्टकमष्टदलेषु लिखित्वाऽवशिष्टेन बहिः संवेष्ट्य भूपुर-द्वये पाशांकुशौ लिखेत्, इति यन्त्रविधिः"। (वही, विवरण)

इस रीति से वशीकरण यन्त्र का निर्माण कर विधिवत् पूजनादि के पश्चात् इसे धारण करने वाला साधक किसी को भी वश में कर लेने की क्षमता प्राप्त कर लेता है।

प्राण-प्रतिष्ठा की क्रिया में कुशल साधक इसके माध्यम से पर्वतादि को भी विचलित कर सकता है, प्राणवान् जीवों की तो बात ही क्या—

प्राणप्रतिष्ठाविधिरेवमुक्तः सांग सयोगो विनियोगयुक्तः।
अस्मिन् प्रवीणो गिरिकाननादीन् प्रचालयेत् किं पुनरात्मयुक्तान्।।
(प्रपंचसारतन्त्र, ३५/२२)



प्रवहित हो रहे अपनी नासिका के मार्ग से भृंगीरूप अपने प्राणों को बाहर निकाल ऋजु नाड़ी से साध्य के हृदय में प्रवेश करे। फिर पाशबीज 'आं' का उच्चारण करते हुए साध्य के गले को पाश से बांध, शक्तिबीज 'ह्रीं' के तेजस् से उसे अपने वश में करके, अंकुश बीज क्रों से उसे अपने सामने खींच, यं रं लं वं शं षं सं तथा हं बीजों का उच्चारण करते हुए एक-एक बीज से उसके त्वगादिकों को व्याप्त कर, 'सं' रूप महाभृंग से साध्य को कवलीकृत अर्थात् पूर्णतया वश में करके, हंसः बीज से उसे अपने साथ एकत्व रूप से चिन्तन करते हुए, कालदण्ड के प्रहार से साध्य की प्रतिकृति के भीतर रखे हुए कीट पर प्रहार करके उसे उद्‌बोधित करे अर्थात् जगाए।

फिर 'क्षं' बीज से साध्य के प्राणादिकों को समूल उन्मूलित कर, 'सं' बीज से उन सबको स्वशक्तिरूप महाभ्रमर को मिलाकर 'हंसः' बीज से उन्हें स्वमृताप्राणों के साथ संयोजित कर 'रं' बीज का उच्चारण करते हुए साध्य की मृता के तन्तु को विच्छेदित कर उक्त कीटसहित साध्य की मृता के प्राणों को उसकी प्रतिकृति और अपने प्राणों के साथ मिलाकर 'ग्लौं' बीज से उन्हें उक्त प्रतिकृति और अपने प्राणों में स्थापित और स्तम्भित कर 'ह्रीं' बीज से उन्हें संजीवित करने के लिये प्लावन करे। फिर 'आं ह्रीं..' आदि का उच्चारण करते हुए 'यं मृते...' आदि मन्त्रों से अपनी मृता को सम्बोधित कर 'अमुष्य मृतात्मका प्राणा ..' आदि का उच्चारण करते हुए अपने प्राणादिकों को 'ग्लौं' रूप महाकीट से साध्य के हृदय में स्थापित करने के बाद जिस नाड़ी से साध्य के हृदय में प्रवेश किया था, उसी से साध्य के हृदय में मंडरा रहे उक्त भ्रमरों को साथ लेकर अपनी प्रवहित नाड़ी के मार्ग से अपने हृदय में प्रविष्ट करे।

(द्रष्टव्य—वही, विवरण)

साध्य को जन्मान्तर तक आकर्षित और वश में रखने का प्रयोग

प्राणशक्ति समस्त प्राणियों के हृदयकमल में दिन-रात विचरण करती रहती है। इसका चिन्तन इस रूप में किया जाय कि वह साधक के अपने मूलाधार से 'आं ह्रीं क्रों' इन तीन बीजों के साथ उठकर उसके हृदय और भ्रूमध्य को एक सूत्र में पिरो रही है। इसके साथ ही यह भावना की जाय कि साध्य की प्राणशक्ति भी उसके ब्रह्मरन्ध्र से चिदग्निमय 'रं' बीज के साथ सुषुम्ना मार्ग से उसके मूलाधार तक पहुंच कर साधक के मूलाधार में स्थित प्राणशक्ति से एकाकार हो

पुत्तल्यादि में प्राण-प्रतिष्ठा की क्रिया द्वारा होम तथा विभिन्न प्रयोगादि में वशीकरण के लिये उक्त यादि बीजों को रक्त वर्ण का, अभिचार कर्म में मेघवर्णी, विद्वेषण में धूम्रवर्णी तथा स्तम्भन क्रिया में पीतवर्णी चिन्तन करना चाहिये।

बीजानि रक्तानि तु वश्यकर्मण्यम्भोधराभाण्यभिचारकाले।
धूम्राणि विद्वेषविधौ सहोमे पीतानि संस्तम्भविधौ स्मरेच्च।।

(वही, ३५/१७)

मारण कर्म में प्रयोग-विधि

मारणादि क्रूर कर्म की साधना में जिस पर प्रयोग किया जा रहा है, उस साध्य के प्राणों को मण्डूक अर्थात् मेढक के आकार का और अपने प्राणों को सर्पाकार के रूप में चिन्तन करना चाहिये।

अथवा साध्यप्राणान् मण्डूकाकारधारिणो ध्यायेत्।
स्वीयान् भुजगाकारानभिचारादौ नृशंसकर्मविधौ।। (वही, ३५/१८)

प्राण-प्रतिष्ठा की उक्त विधि कम से कम ११ बार करनी चाहिये और साध्य के आकर्षित प्राणादिकों को 'ग्लौं' बीज द्वारा अपने चित्त या पुत्तली में स्तम्भित करना चाहिये। लेकिन, ध्यान रखना चाहिये कि साध्य के प्राणों को आकर्षित कर वशीकरण और आकर्षण के प्रयोग में ही अपने चित्त में स्तम्भित करना चाहिये, अन्य मारण-विद्वेषणादि अभिचार कर्मों में पुत्तली के हृदय में ही साध्य के प्राणादिकों को स्थापित और स्तम्भित करना चाहिये।

प्राणप्रतिष्ठाकर्मैवं विधायैकादशावरम्।
पुत्तल्यादौ स्वचित्ते वा तांस्तु स्तम्भयेद्भुवा।।
आकृष्टानां साध्यदेशादसूनां पुत्तल्यादावप्ययं स्यात्प्रकारः।
किन्तु स्वीये हृत्सरोजे प्रवेशो वश्याकृष्ट्योरेव नात्राभिचारे।।

(वही, ३५/१९-२०)

इस विधि को और भी स्पष्ट करते हुए पद्मपाद ने बताया है कि साधक को चाहिये कि वह यं रं लं आदि बीजों सहित मृतादि ६ दूतियों को साध्य के हृदय-कमल पर मंडराते हुए भृंगों के रूप में भावना करे और अपने हृदयकमल में इन्हें मंडराती हुई भृंगियों के रूप में भावित करे। तदनन्तर अपने हृदय में यादि बीजरूप मंडराती हुई भृंगीरूप यादि बीजों के बिन्दुओं से निर्गत हो रहे तन्तुओं से साध्य के भृंगों को सम्बद्ध रूप से चिन्तन करते हुए उस समय

साध्य और उसके परिजनादि सो जायं, तब भावना से साध्य के हृदय में प्रवेश कर उसे अपने वश में करे। फिर कालदण्ड से उस कीट के सिर पर प्रहार करे और भावना करे कि इस क्रिया से समस्त प्राणेन्द्रियादि सहित साध्य व्याकुल हो रहा है।

सुप्तेऽशेषजने निशीथसमये साध्ये स्वपित्यादरा-
दारुह्य स्ववशं निधाय हृदये साध्याकृतेः कीटकम्।
बद्ध्वा तंच निपीडमेव सहसा कालस्य यष्ट्या शिर-
स्याताड्य क्षुभिताखिलेन्द्रियगणं साध्यं स्मरेत् साधकः।।

(वही, ३५/१४)

तदनन्तर भावना करे कि वायव्य, आग्नेय, पूर्व, पश्चिम, ईशान, नैर्ऋत्य, उत्तर तथा दक्षिण इन आठ दिशाओं से साधक के अपने हृदय के सूत्र से बंधे हुए हंसः सहित क्रमशः यादि बीज साध्य के हृदय को भृंगों के रूप में घेरे हुए हैं। इसके साथ ही साधक यह भी भावना करे कि उसके स्वयं के हृदय को उक्त दिशाओं से घेरे हुए यादि भृंगी के रूप में उसके श्वासमार्ग से निकल साध्य के हृदय में प्रविष्ट हो साध्य के हृदय के भृंगों को साथ लेकर श्वास मार्ग से निकल साधक के अपने हृदय में प्रवेश कर रहे हैं।

वायव्याग्नेयैन्द्रवारीण्महेश-क्रव्यात्सोमप्रेतराण्मध्यगेषु।
स्थानेष्वेतेष्वष्ट यादीन् सहंसान् भृंगान् ध्यायेत् स्वीयबिन्दुप्रबद्धान्।।
स्वीयेऽप्येवं संस्मरेद्धृत्सरोजे भृंगीरूपान्निर्गतान् श्वासमार्गैः।
साध्याब्जस्थान् चंचरीकान्गृहीत्वा स्वीयं स्थानं पूर्ववत्सम्प्रविष्टः।।

(वही, ३५/१५-१६)

इसी विधि से साध्य के जीवादिकों को भी साध्य के हृदय से निकाल अपने और प्रतिकृति के प्राणों में स्थापित करना चाहिये। हंस बीज सहित यादि ६ बीजों को क्रमशः मृता, वैवस्वता आदि ६ दूतियों के रूप में साध्य के हृदयकमल की पंखुड़ियों और कर्णिका में भृंगों के तथा अपने हृदय में भृंगियों के रूप में मंडराते हुए कल्पना करनी चाहिये। इस क्रिया में यह ध्यान रखना चाहिये कि साध्य के हृदय से निकल कर अपने हृदय में प्रवेश कर पुत्तली के हृदय में प्रवेश करने के बाद वहां से निकल कर पुनः साध्य के हृदय में प्रवेश नहीं करना चाहिये।

"साध्यहृदयाद् यथागतं चेन्निर्गच्छति तर्हि पुत्तल्या निर्गतस्य पुनः न साध्यहृदयप्रवेशः कर्त्तव्यः किन्तु स्वहृदयमेव प्रवेष्टव्यम्"।(वही, विवरण)

चाहिये। इस प्रकार की विधि से साधना सम्पन्न करने से प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्र सिद्ध हो जाता है। प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्र की सिद्धि हो जाने के बाद ही उक्त मन्त्र से वशीकरणादि विभिन्न प्रकार के प्रयोग सम्पन्न किये जाने चाहिये।

ध्यात्वा देवीमेवं प्रजपेल्लक्षं मनुं समाहितधीः।
आज्येनाऽन्ते जुहुयाच्चरुणा वा तद् दशांशतो मन्त्री।।
शाक्ते पीठे देवीं षट्कोणस्थैः प्रजेशहरिरुद्रैः।
वाणीलक्ष्मीगिरिजासहितैरंगैश्च मातृलोकेशैः।।
प्रयजेच्चतुर्भिरेवं परिवारैर्नित्यमेव मन्त्रितमः।
एवं संसिद्धमनुर्वश्यान्यारभेत कर्माणि।। (वही, ३५/८-१०)

प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्र का प्रयोग करते समय मन्त्र में पठित बीजों के अन्त तथा 'अमुष्य' शब्द अर्थात् अमुष्य शब्द के स्थान पर प्रयुक्त साध्यनाम के आदि में संकल्पित कर्मानुरूप मन्त्रशक्ति की मृता, वैवस्वता, जीवहा, प्राणहा, आकृष्या, ग्रथना, प्रमादा, विस्फुलिंगिनी तथा क्षेत्रज्ञप्रतिहारी नामक ६ प्राणदूतियों में से किसी एक के नाम का उल्लेख करना चाहिये। पद्मपाद ने प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्र के उक्त विधि से प्रयोग के बारे में निम्न उदाहरण प्रस्तुत किया है—

"आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हों ओं क्षं सं हं सः ह्रीं ओं यं मृते अमुष्य मृतात्मकान् प्राणान् इहाहर। अमुष्य मृतात्मकाः प्राणाः इह प्राणा इति वा। इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ओं क्षं सं हं सः ह्रीं ओं इत्यभिधाय आं ह्रोमित्यादि ओमन्तमुक्त्वा यं मृते अमुष्य मृतात्मकं जीवमिहाहर। अमुष्य मृतात्मकः जीवः इह स्थित इति वा। इहैवेत्यादिकमभिधाय आं हीमित्याद्योमान्तमुक्त्वा यं मृते अमुष्य मृतात्मकानि सर्वेन्द्रियाणि वांमनश्चक्षुः श्रोत्रघ्राणप्राणा इति वा। इहैवागत्यसुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा। ओं क्षं सं हं सः ह्रीं ओमिति वदेत्। एष मृतामन्त्रः। एवं वैवस्वतादिमन्त्राः ऊहनीयाः"।

स्वहृदय, साध्य हृदय तथा पुत्तली हृदय में मृतादि दूतियों की स्थापना-विधि

प्राण-प्रतिष्ठा-विधि में सबसे पहले साध्य अर्थात् जिस पर प्रयोग किया जाना है, उसकी १२ अंगुल की एक पुतली बनाकर उसके हृदय में प्राण-प्रतिष्ठा यन्त्र रख उसमें एक जीवित कीट रख देना चाहिये। इसके बाद रात्रि में जब

व्यापक न्यास

ओं आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं हों ओं क्षं सं
हं सः ह्रीं ओं हंसः मूर्धादिपादपर्यन्तं सर्वांगे।

प्रत्येकं कादिवर्गैः प्रतिगतलिपिभिर्बिन्दुयुक्तैर्धराद्यैः
शब्दाद्यैः श्रोत्रमुख्यैर्वदनकरमुखैस्तत्क्रियाभिः क्रमेण।
बुद्ध्याद्यैश्चात्मनेऽन्तैरुपरि च विलसज्जातिभिः षड्भिरेवं
कुर्यादंगानि सम्यग् विशदमतिरथो विश्वरूपत्वसिद्ध्यै।।
नाभेर्देशादापदं पाशबीजं हृद्देशादानाभिदेशंच शक्तिम्।
आहृद्देशं मस्तकादंकुशाख्यं न्यस्त्वा यादीन् धातुषु न्यस्य सप्त।
प्राणे जीवे चैव हंसद्वयार्णं न्यस्येन्मूलं व्यापके मस्तकादि।।
एवं न्यस्य प्राणशक्तिस्वरूपां विद्यां ध्यायेदात्मरूपां च देवीम्।।
(वही, ३५/४-६)

ध्यान

उक्त न्यासोपरान्त रक्त सागर में स्थित नौका में खिले हुए रक्तकमल पर आसीन, अपनी छह भुजाओं में से वामांग के तीन हाथों में क्रमशः पाश, इक्षु-निर्मित धनुष तथा त्रिशूल, तीन दक्षिण हाथों में अंकुश, रक्तकपाल तथा पांच बाणों को धारण किये, तीन नेत्रों एवं पृथुल उरोजों से सुशोभित, प्रातःकालीन सूर्य के समान आभा वाली आत्मस्वरूपा भगवती प्राणशक्ति का ध्यान करना चाहिये।

रक्ताम्भोधिस्थपोतोल्लसदरुणसरोजाधिरूढा कराब्जैः
पाशं कोदण्डमिक्षूद्भवमथ गुणमप्यंकुशं पंच बाणान्।
बिभ्राणाऽसृक्कपालं त्रिनयनलसिता पीनवक्षोरुहाढ्या
देवी बालार्कवर्णा भवतु सुखकरी प्राणशक्तिः परा वः।। (वही, ३५/७)

जप एवं आवरण-पूजा

आत्मशक्तिरूपिणी भगवती प्राणशक्ति के ध्यान के पश्चात् उक्त मन्त्र का एक लाख जप एवं १० हजार हवन करना चाहिये। तदनन्तर आठ दलों वाले कमल चक्र के भीतर निर्मित षट्कोणात्मक शाक्तपीठ के पूर्व, नैर्ऋत्य एवं वायव्य कोणों में क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा आग्नेय, पश्चिम तथा ईशान कोणों में वाणी, लक्ष्मी तथा गिरिजा, अष्टदलों में ब्रह्माणी आदि अष्टमातरों तथा दलों के बाहर अष्टलोकपालों की सुगन्धित पुष्पादि से चतुरावरण पूजा सम्पन्न करनी

अंगन्यास

शंकर ने केवल कवर्गादि और पद्मपादाचार्य ने कवर्गादि के साथ स्वरों का पुट देकर पृथिव्यादि का विपरीत क्रम में ही निम्नांकित रूप से षडंगन्यास का संकेत किया है—

अं ङं घं गं खं कं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मने
आं क्रों हृदयाय नमः
आं ञं झं जं छं चं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने
आं क्रों शिरसे स्वाहा
इं णं ढं डं ठं टं श्रोतत्वगक्षिर्जिह्वाघ्राणात्मने
आं क्रों शिखायै वषट्
ईं नं धं दं थं तं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने
आं क्रों कवचाय हुं
उं मं भं बं फं पं वचनादानाहरणविसर्गानन्दात्मने
आं क्रों नेत्राभ्यां वौषट्
ऊं शं वं लं रं यं बुद्धिमनोहंकराचित्तज्ञानात्मने
आं क्रों अस्त्राय फट्

बीजत्रयन्यास

आं नमः नाभेर्देशात्पदपर्यन्तम्,
ह्रीं नमः हृद्देशात् नाभिपर्यन्तम्,
क्रों नमः मस्तकात् हृद्देशपर्यन्तम्

धातुन्यास

यं त्वगात्मने नमः, रं असृगात्मने नमः,
लं मांसात्मने नमः, वं मेदात्मने नमः,
शं अस्थ्यात्मने नमः, षं मज्जात्मने नमः,
सं शुक्रात्मने नमः

हंसन्यास

हं प्राणात्मने नमः (हृदये)
सं जीवात्मने नमः (हृदये)

किया है। शंकर ने उपर्युक्त श्लोक में 'ग्रहसंख्यया वा' का उल्लेख कर 'हं' और 'ओं' दोनों को अलग रखकर ६ की संख्या का भी निर्देश किया है। पद्मपाद मानते हैं कि प्रयोग काल में इस मन्त्र में यादि आठ अक्षरों के बाद 'ओं क्षं सं हंसः ह्रीं ओं' ये सात अक्षर और भी जोड़े जाने चाहिये।

"ग्रहसंख्यया वेति। प्राणप्रतिष्ठामन्त्रसंग्रह उक्तः। ग्रहशब्देन नव-संख्या लक्षिता। नवमन्त्रैर्वा प्राणप्रतिष्ठेत्यर्थः। यं रं लं वं शं षं सं हों हंसः इत्येभिरित्यर्थः। गुणशब्देन ॐ तेन होमिति। पाशादि त्र्यक्षर-योगस्तु पदद्वयेऽपि समानः। अन्यथापूर्तेः। (वही, विवरण)

"याद्यष्टकानन्तरं प्रणवं क्षं सं हं सः ह्रीं ओं इति च संयोज्यमित्यर्थः" (वही, विवरण)

इस प्रकार 'ओं आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं हों ओं क्षं सं हं सः ह्रीं ओं हंसः' यह प्राण प्रतिष्ठा का मूल मन्त्र है। इस मूलमन्त्र के अनन्तर 'अमुष्य प्राणाः ...' आदि का संयोजन करना चाहिये। ज्ञातव्य है कि प्रयोग के समय 'अमुष्य' पद के स्थान पर साध्य का षष्ठ्यन्त नाम प्रयुक्त किया जाना चाहिये।

प्राण प्रतिष्ठा मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश, छन्दस् ऋग्, यजुस् तथा साम अथवा अतिछन्दस्, क्रियामय तनु प्राणाख्य पराशक्ति देवता, आं बीज तथा क्रों शक्ति है।

मन्त्रस्याऽस्य विधिर्हरिश्च हर इत्येते मुनित्वे स्थिता-
श्छन्दश्चर्ग्यजुषं ससामकमथोऽतिछन्दसं वा भवेत्।
स्रष्टौ या जगतामनादिनिधना सर्वस्य चेष्टाकरी
प्राणाख्या प्रकृतिः क्रियामयवपुर्देवी परा देवता।। (वही, ३५/३)

शंकर के अनुसार ऋष्यादिन्यास निम्नवत् होगा—

ऋष्यादिन्यास

विधिहरिहरऋषिभ्यो नमः शिरसि,
ऋग्यजुस्सामछन्दोभ्यो नमः मुखे,
प्राणात्मा परा देवतायै नमः हृदि,
आं बीजाय नमः गुह्ये,
क्रों शक्तये नमः पादयोः।

प्राण-प्रतिष्ठा-विधान

मन्त्रों की साधना में उनमें प्राणों की प्रतिष्ठा करना, उन्हें जीवित करना अनिवार्य है। प्राण प्रतिष्ठा के बिना मन्त्रप्रयोग व्यर्थ हो जाते हैं। प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्र समस्त मन्त्रों का जीवन है। शंकर के अनुसार—

"ओं आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हों हंसः अमुष्य प्राणाः इह प्राणकाः जीवः इह स्थितः सर्वेन्द्रियाणि वामनसी दृशं श्रुतिं सप्राणकं घ्राणं इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठतु स्वाहा"—प्राण-प्रतिष्ठा का मन्त्र है।

प्रोक्तापूर्वममुष्यशब्दमथ च प्राणा इह प्राणका-
स्तद्वज्जीव इह स्थितेति च तथा सर्वेन्द्रियाणीति च।
तद्वद्वाङ्मनसी दृशं श्रुतिमथो घ्राणंच सप्राणकं
सैवेहागमथो त्ययुक् सुखचिरे तिष्ठन्तु ठद्वन्द्वयुक्।।

(प्रपंचतन्त्रसार, ३५/२)

शंकर के इस श्लोक के 'प्रोक्तापूर्व' को स्पष्ट करते हुए पद्मपाद कहते हैं—

"प्रोक्ता आपूर्वमिति पदच्छेदः। ओं आं ह्रीं क्रों इति प्रोक्तेत्यर्थः।
मूलमन्त्रस्यैवं रूपत्वात्"। (वही, विवरण)

शंकर का कहना है कि पाश और अंकुश बीज अर्थात् 'आं क्रों' के मध्य शक्ति बीज 'ह्रीं', इसके बाद य आदि वसु (आठ) वर्ण अर्थात् 'यं रं लं वं शं षं सं तथा हं', तदनन्तर गुणबीज अर्थात् ओं, फिर हं सं बीज और तब मन्त्र के 'अमुष्य प्राणाः ..' आदि का उच्चारण करना चाहिये।

पाशांकुशान्तरितशक्तिमनोः परस्ता-
दुच्चार्य यादिवसुवर्णगुणं सहंसम्।
पश्चादमुष्य पदमुच्चरतु प्रयोग-
मन्त्रोऽयमित्थमुदितो ग्रहसंख्यया वा।। (वही, ३५/११)

पद्मपाद ने आचार्य शंकर के 'यादिवसुवर्णगुणं' में पठित गुणबीज 'ओं' को आठवें बीज 'हं' के साथ जोड़कर 'हों' बनाकर आठ वर्ण करने का उल्लेख

देवताओं की स्थिति मानकर करने का निर्देश किया है। पद्मपाद ने मन्त्र में प्रयुक्त अं मं ठं को आधार मानकर इस न्यास को 'अमठ' न्यास कहा है।

वाणी स्यात्तारस्रूपा शिरसि गिरिसुता शक्तिरूपा ललाटे
रव्यग्न्यक्ष्णोस्तथात्मा विधुरपि वदनावेष्टने टान्तरूपः।
श्रीर्जिह्वायां स्वरूपाऽप्यभिमतकरिरूपौ स्वहौ दीर्घयुक्ता-
वेवं न्यासो मुखे श्रीविभवसुखयशःकान्तिमेधाकरः स्यात्।।

(वही, ३४/७७)

उपर्युक्त निर्देशानुसार अमठ न्यास का स्वरूप निम्नांकित होगा—

ओं सरस्वत्यै नमः (शिरसि), ह्रीं पार्वत्यै नमः (ललाटे),
अं सूर्याय नमः (वामनेत्रे), मं अग्नये नमः (दक्षिणनेत्रे),
ठं चन्द्रमसे नमः (ओष्ठयोः), श्रीं श्रियै नमः (वाचि),
स्वां करिण्यै नमः (वामकपोले), हां करिण्यै नमः (दक्ष कपोले)



सर्ववश्य यन्त्र

पद्मपाद ने अश्वारूपा के एक सर्ववश्य यन्त्र का उल्लेख किया है। इसके अनुसार पहले पांच ऊर्ध्वमुखी और उनके ऊपर पांच पार्श्वमुखी (सीधी-आड़ी) रेखाएं खींचकर सोलह कोष्ठ बनाने के बाद मध्य वाले चार कोष्ठों की रेखाएं मिटा कर एक कोष्ठ बना कर उसमें ओंकार और साध्य का नाम लिखना चाहिये। तदनन्तर शेष १२ कोष्ठों में अश्वारूढा मन्त्र के १२ अक्षरों को क्रमशः लिखना चाहिये। इस यन्त्र को भगवती अश्वारूढा के मन्त्र से अभिमन्त्रित कर इसे धारण करने से साधक में सभी को वश में कर लेने की शक्ति आ जाती है।

"षोडशकोष्ठानि लिखित्वा मध्यचतुष्के प्रणवं ससाध्यं लिखेत्।
अवशिष्टेष्ववशिष्टान् वर्णान् विलिखेत्। सर्ववश्यकरमिदं यन्त्रम्"।

(वही, विवरण)

सर्ववश्यकर अश्वारूढा यन्त्र

स्वा	हा	आं	ह्रीं
रि	ॐ साध्य नाम		क्रों
श्व			ए
मे	र	प	हि

(सन्दर्भ - प्रपञ्चसारतन्त्र ३४/६७ पर विवरणानुसार)

अमठ न्यास

शंकर ने श्री, वैभव, सुख, यश, कान्ति तथा मेधा प्रदायक मन्त्र 'ओं ह्रीं अं मं ठं श्रीं स्वाहा' का उल्लेख किया है। पद्मपाद के अनुसार इस मन्त्र के ऋषि लक्ष्मीनारायण, छन्दस् वृहती, देवता श्री, बीज श्रीं तथा शक्ति क्लीं है। शंकर ने मन्त्राक्षरों का न्यास मुख-मण्डल के क्रमशः सिर, ललाट, वामनेत्र, दक्षिण नेत्र, ओंठ, जिह्वा, वाम कपोल तथा दक्षिण कपोल पर क्रमशः सरस्वती, पार्वती आदि

न्यास किया जाता है। अश्वारूढा की अर्चना शाक्तपीठ पर त्र्यक्षर (आं क्रों ह्रीं) मन्त्र के विधान से की जाती है।

द्वाभ्यां हृदयम्, शक्त्या शिरः, अंकुशेन शिखा, पुन द्वाभ्यां कवचम्। पंचभि र्नेत्रम्, द्वाभ्यामस्त्रम्।

ओं बीजम् , ह्रीं शक्तिः। स्वाहा वा शक्तिः। शाक्ते पीठे पूजा। पाशांकुशशक्तित्र्यक्षरविधानेन पूजा। (वही, विवरण)

ध्यान, जप, हवन-पूजन

सुख, ऐश्वर्य आदि की प्राप्ति के लिये अश्व पर आसीन, वाम हस्त में स्वर्णमयी वेत्रयष्टि और दाएं हाथ में पाश से बंधी हुई साधक की प्रिया को खींचकर लाती हुई, चन्द्रमा के समान प्रसन्नमुखी, त्रिनेत्रा, विद्युत् के समान लौकती हुई देहयष्टि वाली भगवती गिरिसुता अश्वारूढा का ध्यान करते हुए उक्त मन्त्र का दस हजार जप करना चाहिये तथा जप पूर्ण होने पर घृत से १ हजार हवन करना चाहिये।

अश्वारूढा विद्या का जप, हवन तथा पूजनादि का यह अनुष्ठान साधकों को स्वर्णादि ऐश्वर्य प्रदान करने के साथ ही वश्यकृत् होने के कारण साधक की प्रिया को कामपीड़ित करके उसे शीघ्र ही साधक के पास ला देता है। त्रिमधुर युक्त पटु (चन्दन या लवण) का हवन वशीकरण के लिये विशेष उपयुक्त है। साध्य को आकर्षित कर साधक के पास लाने के लिये अश्वारूढा मन्त्र के समान अन्य कोई मन्त्र नहीं है।

अयुतं जपेन्मनुमिमं सहस्रवारं हुनेत्तथाज्येन।
ध्याताऽपि गिरिसुतेयं जगतीं विश्वां वशीकरोत्यनिशम्।।
अश्वारूढा कराग्रे नवकनकमयीं वेत्रयष्टिं दधाना
दक्षेऽन्येनानयन्ती स्फुरिततनुलता पाशबद्धां स्वसाध्याम्।
देवीं नित्यं प्रसन्ना नवशशधरबिम्बा त्रिनेत्राभिरामा
दद्यादाद्याऽनवद्यां प्रवरफलसुखप्राप्तिहृद्यां श्रियं वः।।
विद्ययाऽनुदिनहृद्ययाऽनया होमकर्म वरहेमदायि तत्।
कामितां सपदि वामलोचनामानयेदपि च मारपीडिताम्।।
हवनक्रिया सपदि वश्यकरी मधुरावसेकपटुना पटुना।
सदृशो न कंचन जगत्यपरो मनुनाऽमुनाऽऽनयनकर्मविधौ।।

(वही, ३४/७३-७६)

फट् स्वाहा' अक्षरों से वह भस्म हो चुका है। संकोचक मन्त्र के इस प्रयोग के प्रभाव से व्याकुल शत्रु शीघ्र ही मर जाता है।

उत्तुंगाद्रिः प्रचेता अपि दहनसमीरौ धराव्योमसंज्ञे
प्राक्प्रत्यग्दक्षसौम्यास्वध उपरि च दिक्षु प्रबद्धप्रभाः स्युः।
तन्मध्यस्थानुविपक्षादिकहरिरुदन्तीन्द्रनागान् सचोरान्
हन्त्येतैर्मन्त्रिमुख्यो मनुविहितबलव्याकुलान् सद्य एव।।
निजरिपुमचलाद्यैस्तैः ससम्बाधवीतं,
मनुविदथ हलोष्म्यां रुद्धनिश्वासवेगम्।
तदुपरिगतबीजैः साधुसंस्यूतवक्त्रं
दहतु सकवचास्त्रैर्द्वीन्दुभिः स्वेच्छयैव।। (वही, ३४/७०-७१)

अश्वारूढा मन्त्र

भगवती अश्वारूढ़ा अपने साधकों को प्रचुर ऐश्वर्य प्रदान करने के साथ ही केवल साध्य ही नहीं, अपितु विश्व को भी वश में करने की शक्ति प्रदान करती हैं। अश्वारूढा के मन्त्र का उद्घाटन करने के प्रसंग में शंकर ने बताया है कि आरम्भ में तार (ओं), तदनन्तर योनि (ए), नेत्र (इ) सहित वियत् (ह), 'हि' के पश्चात् 'परमे' वर्ण, अस्थि (श्)गत मेद (व) 'श्व', रक्त (र्)-गत दृक् (इ) 'रि' तथा अन्त में द्विठ (स्वाहा) स्वाहा **'ओं एहि परमेश्वरि स्वाहा'** यह दस अक्षरों वाला मन्त्र अश्वारूढ़ा का है। पद्मपाद के अनुसार अश्वारूढा मन्त्र में प्रणव के बाद पाश, शक्ति और अंकुश बीजों (आं ह्रीं क्रों) का संयोजन करना चाहिये। इस प्रकार अश्वारूढा मन्त्र १३ अक्षरों का हो जाता है।

योनिर्वियत् सनेत्रं परमेवर्णास्तथाऽस्थिगं मेदः।
रक्तस्थदृक् द्विठान्तस्ताराद्योऽयं मनुर्दशार्णयुतः।। (वही, ३४/७२)

अश्वारूढाया प्रणवानन्तरं पाशशक्त्यंकुशाक्षरं योज्यम्।
तथा च त्रयोदशार्णा भवन्ति। (वही, विवरण)

अश्वारूढा मन्त्र के ऋष्यादि का उल्लेख शंकर ने नहीं किया है, लेकिन सम्प्रदाय के आचार्यों के अनुसार इसके ऋषि दीर्घतपा, छन्दस् गायत्री, देवता गिरिसुता अश्वारूढा, बीज आं, शक्ति ह्रीं अथवा बीज ओं एवं शक्ति ह्रीं है। पद्मपाद के अनुसार त्रयोदश अक्षरात्मक अश्वरूढा मन्त्र के ओं आं से हृदय, ह्रीं से शिरः, क्रों से शिखा, एहि से कवच, परमेश्वरि से नेत्र तथा स्वाहा से अस्त्र-

वहीं ३६वें पटल में शंकर ने बताया है कि 'ओं' से आरम्भ अकारादि वर्गों के प्रथम वर्ण हलों अन्त वाला संकोचक मन्त्र कहा जाता है।

वर्गादिको हलोमन्तः संकोचाख्यो ध्रुवादिकः।
मन्त्रः स्याद्.... (वही, ३६/२१)

उक्त दोनों श्लोकों को मिलाने से यह स्पष्ट होता है कि संकोचक मन्त्र का स्वरूप 'ओं अं कं चं टं तं पं यं हलों हीं दुं सः हुं फट् स्वाहा' है। षोडश अक्षरों वाले इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्दस् अनुष्टुब्, देवता पर्वत, बीज दुं तथा शक्ति हीं हैं। ओंकार सहित अं कं चं टं तं तथा पं के पश्चात् ओं सहित 'ह' बीज में दीर्घ स्वर मिलाकर अंगन्यास करना चाहिये। जैसे—

ओं अं ओं हां हृदयाय नमः, ओं कं ओं हीं शिरसे स्वाहा,
ओं चं ओं हूं शिखायै वषट्, ओं टं ओं हैं कवचाय हुं,
ओं तं ओं हौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ओं पं ओं हः अस्त्राय फट्।

संकोचक मन्त्र की सिद्धि के लिये इसका १६ हजार जप पूर्ण करके तिल, सर्षप, शाली चावल से निर्मित हवि तथा घृत में से प्रत्येक से अलग-अलग ३२०-३२० संख्या में कुल १६०० हवन विधिवत् स्थापित प्रज्ज्वलित अग्नि में करना चाहिये।

अयुतं प्रजपेच्च षट्सहस्राधिकमन्ते जुहुयाद्दशांशमानैः।
तिलसर्षपतण्डुलैः सशालीहविराज्यैः सुसमेधिते कृशानौ।।

(वही, ३४/६६)

संकोचन मन्त्र का प्रयोग

षोडषाक्षर संकोचक मन्त्र के शत्रुमारण प्रयोग में साधक को चिन्तन करना चाहिये कि संकोचक मन्त्र के 'अ' ने महापर्वत, 'क' ने महासलिल, 'च' ने प्रलयाग्नि, 'ट' ने महावायु, 'त' ने महाधरा और 'प' ने महाकाश का रूप धारण कर लिया है और साधक के विपक्षी शत्रु या सिंह, व्याघ्र, हस्ती तथा सर्पादि हिंसक पशु एवं चोर आदि मन्त्राक्षररूप इन पर्वतादिकों से घिर गये हैं। फिर भावना करनी चाहिये कि उसने संकोचक मन्त्र के 'ह' और 'लों' इन दो अक्षरों से अपने शत्रुओं के शरीर के मुखादि नौ छिद्रों के साथ ही उनके श्वास-प्रवाह को भी रोक दिया है, मन्त्र के तीन अक्षरों 'हीं दुं सः' से उनके मुख सिल दिये गये हैं तथा मन्त्र के महाप्रलयाग्नि रूप शेष चार 'हुं

स्पष्ट हुआ कि इस कूट में रकार का अर्थ अग्नि है और अग्नि से उत्पन्न तत्त्व जल है। जलवाचक वर्ण 'व्' है। 'इर' वायु को कहते हैं और वायुवाचक वर्ण 'य्' है। 'अहिप' शेषनाग हैं और शेष का वाचक वर्ण 'आ' है। दण्ड बिन्दु अर्थात् अनुस्वार को कहते हैं। अतः 'दण्डी' का अर्थ 'अनुस्वार युक्त' है । अब 'राजेरस्थोहिपः' का कूट 'व्यां' स्पष्ट हो गया। इसके पश्चात् 'वेद' शब्द , वेद के अन्त में 'वि' फिर दाहक' । दाहक का अर्थ है संसार को जला देने में समर्थ शेष। शेषवाची वर्ण है 'आ'। फिर वि और आ की सन्धि से बना 'व्या'। तदनन्तर 'साय' वर्ण और अन्त में नति अर्थात् 'नमः'। इस प्रकार 'व्यां वेदव्यासाय नमः' आठ वर्णों का यह व्यासमन्त्र निष्पन्न हुआ।

व्यासमन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्दस् अनुष्टुब्, देवता व्यास, बीज व्यं तथा शक्ति नमः है। इस मन्त्र के बीज से अंगन्यास करना चाहिये।

व्यासमन्त्रस्य ब्रह्मानुष्टुब् वेदव्यासाः ऋष्यादयः।
व्यं बीजं। नमः शक्तिः। बीजेनांगानि। (वही, विवरण)

जप-हवनादि

कवित्व-शक्ति, प्रज्ञा तथा ऐश्वर्यादि प्राप्ति के लिये मुनियों से घिरे हुए, कृष्णपयोद (काले बादल) की आभा वाले, बायें हाथ को घुटने पर तथा दाएं हाथ को व्याख्यान मुद्रा में प्रदर्शित कर रहे निर्मल प्रज्ञा वाले भगवान् वेदव्यास का ध्यान करते हुए उक्त व्यासमन्त्र का आठ हजार जप पूर्ण करके घृतान्न से आठ सौ हवन करना चाहिये।

मुनिव्रातावीतं विमलधियमम्भोदरुचिर-
द्युतिं व्याख्यामुद्राकलनविलसद्दक्षिणकरम्।
परं जानौ कृत्वा दृढकलितकक्षैकविवरं
समासीनं व्यासं स्मरत निरतं पुण्यचरितम्।।
प्रकृतिसहस्रजपोऽयं दशांशकृतपायसाज्यहवनविधिः।
निरुपमकविताप्रज्ञाव्याख्याश्रीसम्पदावहो मन्त्रः।। (वही, ३४/६६-६७)

संकोचमन्त्र

संकोचक मन्त्र के स्वरूप का निर्वचन करते हुए शंकर ने बताया है कि

करचरणपार्श्वमूलद्युलोंहरेबिन्दुदुंसरसनार्णाः।
अलिकाद्यो वर्मास्त्रद्विठान्तिको मनुरयं ध्रुवादिकः स्यात्।। (वही, ३४/६८)

शक्ति स्वाहा है। ओं बीज से अथवा मन्त्र के वस्त्रं, मे, देहि, शुक्राय तथा स्वाहा पदों से अंगन्यास किया जाता है। मन्त्र की सिद्धि के लिये मन्त्र का दस हजार जप तथा घृतान्न से 1 हजार हवन करना चाहिये। आवरण-पूजा में क्रमशः अंगमन्त्र, इन्द्रादि दिक्पाल तथा उनके आयुधोंसहित शुक्र का पूजन करना चाहिये।

ऐश्वर्यादि की प्राप्ति के लिये श्वेत वर्ण के वस्त्राभूषणों एवं आलेपन से सुशोभित, आपण भवन के अलिन्द अर्थात् वेदिका पर विराजमान, दायां हाथ वरद मुद्रा वाला एवं बाएं हाथ से साधकों को वस्त्राभूषण, रत्नादि तथा स्वर्णादि वितरित करते हुए भगवान् शुक्र का ध्यान करते हुए शुक्रवार के दिन एक साथ तीन-तीन अथवा सात-सात श्वेत पुष्पों से इक्कीस बार हवन करना चाहिये।

वययोरन्तरास्त्रंमेदेहिशुक्राक्षरा द्विठः।
मन्त्रोऽप्युतजपः सर्पिःसहस्रहवनक्रियः।।
शुक्रास्ये शुक्लपुष्पैर्हुतभुजि गुणशः सप्तशोऽप्येकविंश-
द्वारं होतव्यमेषोऽप्यतिसितकुसुमालेपनो वामदोष्णा।
वासोरत्नानि कार्त्तस्वरमपि सततं साधकाय प्रयच्छन्
ध्यातो व्याख्यानमुद्राकलितवरकरस्त्वापणालिन्दसंस्थः।।

(वही, ३४/६३-६४)

वेदव्यास मन्त्र

वेदव्यास मन्त्र के उद्‌घाटन के लिये भगवत्पाद शंकर ने फिर कठिन कूट का आश्रय लिया है। उनके अनुसार राज एवं एरस्थ युक्त दण्डी अहिप, फिर वेद शब्द, पुन इसके अन्त में वि और दाहक, फिर 'साय' वर्ण और तब नति मिल कर आठ अक्षरों वाला व्यासमन्त्र बनता है।

राजेरस्थोऽहिपो दण्डी वेदान्तेऽसौ विदाहकः।
सायान्ते नतिरप्यष्टवर्णो वैयासिको मनुः।। (वही, ३४/६५)

इस कूट के उद्‌घाटन के लिये इसकी व्युत्पत्ति करके देखें—

'रकारात् अग्नेः जातः जलम्, 'व'
इरः वायुः वायुबीजस्थः 'य'
अहिपः शेषः, शेषवर्ण 'आ'।
अतः राजेरस्थोहिपः 'व्या' इति।
दण्डः बिन्दुः। राजेरस्थोहिपो दण्डी 'व्यां' इति।

हेमाभो रत्नदीप्तो दरकमलनिधिद्योतितो रत्नपीठे
ध्येयो न्यग्रोधमूले हुतभुजि विदुषा वैश्वदेवावसाने।।
मन्त्रैरेतैर्घृतयुतपायसहोमोऽपि मन्त्रिणां विहितः।
लक्ष्म्यै सघृतैश्च तिलैर्बिल्वसमिद्धोम स्तथैव फलम्।।

(वही, ३४/५८-५६)

देवगुरु बृहस्पति का मन्त्र

भया (ब), भार (ऋ) और इन्दु अनुस्वार से युक्त वर्ण 'बृं', बिन्दुरहित वही वर्ण 'बृ' , 'हस्पत' वर्ण, बालि (य) पर स्थित योनि (ए) 'ये' तथा नति (नमः) 'बृं बृहस्पतये नमः' आठ वर्णों वाले बृहस्पति मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्दस् अनुष्टुप्, देवता बृहस्पति, बीज बृं तथा शक्ति नमः है। बृं बीज से इसके अंगन्यास किये जाते हैं तथा क्रमशः अंगमन्त्र, इन्द्रादि दिक्पालों तथा आयुधों वाले आवरण यन्त्र में पूजा सम्पन्न की जाती है। स्वर्ण तथा रत्नादि की प्राप्ति के लिये 'पीतवर्ण के कौशेय वस्त्रों से सुशोभित आपण-स्थान (क्रय-विक्रय स्थान) में रत्नादि राशि अपने पार्श्व में रखकर दाएं हाथ से अपने उपासकों को प्रदान कर रहे देवगुरु बृहस्पति का चिन्तन करते हुए इस मन्त्र से भीता लता (लज्जालुका अर्थात् छुई मुई) के घृतसिक्त १२० पुष्पों का हवन करना चाहिये।

भया भारेन्दुयुक् सैव विबिन्दुर्हस्पताक्षरैः।
बालिस्थयोनिनत्यन्तो वसुवर्णो मनुर्मतः।।
वसुसाहस्रजापश्च तावच्छतहुतो मतः।
होमः सर्पिष्मतान्नेन बीजेनांगक्रिया मता।।
रत्नस्वर्णांशुकादीन्निजकरकमलाद्दक्षिणादाकिरन्तम्
वासोराशौ निधायाऽपरममरगुरुं पीतवस्त्रादिभूषम्।
ध्यायन्नासीनमप्यापणभुवि शतसंख्यं सविंशत्कमेवं
भीतापुष्पैर्घृताक्तैस्त्रिदिनमथ हुनेत् स्वर्णवस्त्रादिसिद्ध्यै।।

(वही, ३४/६०-६२)

असुर गुरु शुक्रमन्त्र

'व' और 'य' के मध्य 'स्त्रं मे देहि शुक्र' अक्षर और 'द्विठ' अर्थात् 'स्वाहा' वर्णों से निर्मित 'वस्त्रं मे देहि शुक्राय स्वाहा' यह असुर गुरु शुक्र का मन्त्र है। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्दस् विराट्, देवता शुक्र, बीज ओं तथा

वित्तेश तथा कुबेर इन छह नामों के अन्त में 'स्वाहा' का प्रयोग करने से कुबेर का मन्त्र बनता है। पद्मपाद ने उक्त नामों में 'ओं' और 'शक्ति' जोड़ने का निर्देश किया है। कुछ साधकों ने उक्त छह नामों, तीन व्याहृतियों को अलग-अलग तथा तीनों व्याहृतियों के संयुक्त रूप से कुल १० वैश्रवण मन्त्रों का उल्लेख किया है।

वैश्रवणः पक्वाशः पिंगलविविधौ तथैव वित्तेशः।
सकुबेरः स्वाहान्ताः सव्याहृतयः समीरिता मन्त्राः।। (वही, ३४/५७)

वैश्रवणमन्त्राणां प्रणवशक्त्यादित्वमुक्तम्। (वही, विवरण)

शंकरानुसार स्वाहान्त तथा व्याहृतियुक्त वैश्रवण मन्त्र निम्न हैं—

भूर्भुवः स्वः वैश्रवणाय स्वाहा
भूर्भुवः स्वः पक्वाशाय स्वाहा
भूर्भुवः स्वः पिंगलाय स्वाहा
भूर्भुवः स्वः विविधाय स्वाहा
भूर्भुवः स्वः वित्तेशाय स्वाहा
भूर्भुवः स्वः कुबेराय स्वाहा

पद्मपादानुसार मन्त्रों के रूप 'ओं भूर्भुवः स्वः वैश्रवणाय स्वाहा...' आदि छह मन्त्र हैं। अन्य मत से उक्त छह मन्त्रों के अतिरिक्त 'ओं वैश्रवणाय स्वाहा ...' आदि छह मन्त्रों के साथ ओं भूः स्वाहा, ओं भुवः स्वाहा, ओं स्वः स्वाहा और ओ भूर्भुवः स्वः स्वाहा' ये ४ मन्त्र मिलाकर कुल १० वैश्रवण मन्त्र होते हैं।

ध्यान, जप, हवन तथा आवरण-पूजा

हाथों में स्वर्ण से भरे घट, तुन्दिल अर्थात् तोद वाले, स्वर्ण की आभा वाला शरीर, विविध रत्नों से दीप्तिमान, नौ निधियों से प्रकाशित रत्नों से निर्मित कमलासन पर वट-वृक्ष के नीचे विराजमान धनपति कुबेर का ध्यान करते हुए बलिवैश्वदेव यज्ञ के पश्चात् उनके उक्त मन्त्रों का जप, हवन तथा पूजन करना चाहिये। सुख, समृद्धि तथा लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये हवन में घृतयुक्त खीर का उपयोग किया जाना चाहिये। घृतयुक्त तिल अथवा घृतसिक्त बिल्व समिधाओं के हवन से भी वही फल मिलता है, जो घृतयुक्त खीर के हवन से प्राप्त होता है।

वित्तेशस्याऽन्तराले दशवटसमिधः सर्पिषाक्ता विविक्ताः
होतव्या द्रव्यसिद्ध्यै कनकघटकरण्डात्तदोस्तुन्दिलोऽसौ।

वैष्णवे पीठे पूजा। अंगपृथिव्यादिवलाक्यादीन्द्रवज्रादिभिरावरणपूजा।

(वही, विवरण)

अन्नपूर्णा मन्त्र

'नमः भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा'

षोडश अक्षरात्मक इस अन्नपूर्णा मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्दस् अनुष्टुब्, देवता माहेश्वरी, बीज ह्रीं तथा शक्ति स्वाहा है। माया बीज 'ह्रीं' से षडंगन्यास किया जाता है।

आवरण-पूजा एवं जप-हवन

अन्नपूर्णा की अर्चना शक्तिपीठ पर की जाती है। इसके प्रथम आवरण में अंगमन्त्र, द्वितीय में ब्रह्माणी आदि अष्ट माताओं, तृतीय में इन्द्रादि दिक्पालों और चतुर्थ आवरण में उनके आयुधों की पूजा सम्पन्न की जाती है। सूर्योदय के समय इस मन्त्र के १६ हजार जप और घृतान्न का १६ सौ हवन करने से यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। मन्त्र के जप तथा हवनादि के समय विविध वर्णों वाले परिधानों से सुशोभिता, रुद्र के मुख की ओर निहारती हुईं उनके ताण्डव नृत्य को देख रहीं, याचकों को अन्न का दान करती हुईं, भगवान् भव की प्रिया भगवती अन्नपूर्णा का चिन्तन करते रहना चाहिये।

नत्यादिभगवत्यन्ते माहेश्वरिपदं वदेत्।
अन्नपूर्णेऽग्निजायान्तो मन्त्रोऽन्नप्रदसंज्ञकः।।
मायाविहितषडंगो दिनमुखे जप्यश्च षोडशसहस्रम्।
प्रोक्तो जपावसाने सघृतैरन्नैर्दशांशको होमः।।
रुद्रताण्डवविलोकनलोलां भद्रवक्त्रनयनां भवकान्ताम्।
अन्नदाननिरतां जननीं तां संस्मरन् जपतु चित्रदुकूलाम्।।

(वही, ३४/५४-५६)

अन्नपूर्णाया ह्रीं बीजम्। स्वाहा शक्तिः। ब्रह्मा ऋषिः।
अनुष्टुब् छन्दः। माहेश्वरी देवता। शाक्ते पीठे पूजा।
अंगब्रह्माणीन्द्रवज्रादिभिरावरणपूजा (वही, विवरण)

कुबेर मन्त्र

आचार्य शंकर के अनुसार व्याहृतिसहित वैश्रवण, पक्वाश, पिंगल, विविध,

षडंगन्यास

अन्नं महि(मयि)हृदयाय नमः, अन्नं मे देहि शिरसे स्वाहा,
अन्नाधिपतये शिखायै वषट्, ममान्नं प्रदापय कवचाय हुं,
स्वाहा अस्त्राय फट्।

पद्मपाद के अनुसार अन्नप्रदायक मन्त्र में अंगन्यास पृथिवी तथा श्री देवता के मूल बीजाक्षर ग्ल और श्र में दीर्घ स्वर लगा कर 'ग्लां ग्लीं ग्लूं ग्लैं ग्लौं' एवं 'श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं' से किये जाते हैं।

अन्नमन्त्रस्य वैश्रवण ऋषिः। अनुष्टुपुछन्दः। भूश्रियौ देवते। ग्लौं बीजम्। श्रीं शक्तिः। ग्लांश्रामादियुतैरक्षरैरंगानि। (वही, विवरण)

ध्यान, जप, हवन

अन्नप्रदायक मन्त्र की उपासना में दुग्धसागर में रजत की शिलाओं और देवों से परिपूर्ण स्वर्णमय द्वीप पर कल्पद्रुम के नीचे, मणियों से सजे सिंहासन पर कुबेर के आगे विराजमान, साधक को वांछित रत्नादि सम्पत्ति प्रदान कर रहीं भगवती पृथिवी और श्री का ध्यान करते हुए इस मन्त्र की सिद्धि के लिये इसका २० हजार जप और घृत और अन्न से दो हजार हवन करना चाहिये।

द्व्युतजपावधिरेष द्विसहस्रहुतश्च सर्पिरन्नाभ्याम्।।
दुग्धाब्धौ रूप्यवप्रावृतकनकमयद्वीपवर्ये सुराढ्ये
कल्पद्रूद्यानकाऽधो मणिमयलसिते वित्तपस्याऽग्रभागे।
आसीने भूश्रियौ वांछितवसुनिचयं मन्त्रिणे संसृजन्त्यौ
मन्त्री संचिन्तयानो जपतु दिनमुखे सम्पदेऽन्नस्य मन्त्रम्।।

(वही, ३४/५२-५३)

आवरण-पूजा

आवरण-पूजा के लिये वैश्रवण पीठ का उपयोग किया जाता है, जिसके प्रथम आवरण में पृथिवी आदि पंचभूतों, द्वितीय आवरण में अंगमन्त्रों, तृतीय आवरण में द्वादश पटलोक्त वलाकी, विमला, कमला, वनमालिका, विभीषिका, मालिका, शंकरी तथा वसुमालिका नामक आठ शक्तियों की, तृतीय आवरण में इन्द्रादि दिक्पालों की, चतुर्थ आवरण में तथा दिक्पालों के वज्रादि आयुधों की पंचम आवरण में अर्चना की जाती है।

देवीध्मामाष्टशतं प्रसूनवदथ त्रिस्वादुयुक्तं हुनेत्।
सप्ताहं भसितेन तेन विहितं पुण्ड्रादिकं वश्यकृत्।
आज्यैस्तत्कृतहोमपातितसमाजप्तं घृतं प्राशयेत्।
साध्यं निष्परिहारकंच तदिदं वश्यम्भवेद्देहिनाम्।। (वही, ३४/४३-४६)

जप, हवन एवं आवरण-पूजा

साध्य के नक्षत्र वृक्ष की लकड़ी से साध्य की प्रतिकृति बनवाकर उसके हृदय-स्थल पर शक्ति बीज 'ह्रीं' अंकित करके उसमें प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये। फिर इस मन्त्र के दस हजार जप से उसे अभिमन्त्रित कर आंगन में गाड़ देना चाहिये। इसके बाद सात दिनों तक रात्रि में उस पर विधिवत् अग्निस्थापना और भगवती राजमुखी की सावरण अर्चना करने के अनन्तर इस मन्त्र से रक्त चन्दन से सिक्त ११० जपापुष्पों का प्रतिदिन हवन करने के अनन्तर इस प्रतिकृति को आंगन से निकाल कर किसी नदी में गाड़ देना सर्वोत्तम वशीकरण प्रयोग है।

शक्तिं साध्यर्क्षवृक्षप्रतिकृतिहृदि संलिख्य संस्थाप्य जीवं
जप्त्वा खन्यांऽगणेऽस्मिन् विधिवदनलमाधाय पुष्पैर्जवायाः।।
देवीमन्त्रेण रात्रौ दशपरशतसंख्यैस्तु काचन्दनाक्तैः-
र्हुत्वा तां सप्तरात्रं सरिति निखननादुत्तमं वश्यकर्म।। (वही, ३४/५०)

अन्नप्रदायक मन्त्र

अन्नं मह्य(य्य)न्नं मे देहि अन्नाधिपतये
ममान्नं प्रदापय स्वाहा

यह अन्नप्रदायिनी भू एवं श्रीदेवी का संयुक्त मन्त्र है। इस मन्त्र के ऋषि वैश्रवण, छन्दस् अनुष्टुप्, देवता भू तथा श्री, बीज 'ग्लौं' तथा शक्ति 'श्रीं' हैं।

भूदेवता की उपासना में अंगन्यास मन्त्र के २४ अक्षरों में से क्रमशः करण (४), इन्द्रिय (५), रस (६) तथा धातुसंख्यक (७) अक्षरों एवं अन्त के दो अक्षरों से किया जाता है।

अन्नं मह्य(य्य)न्नं मे देह्यन्नाधिपतये ममेत्युक्त्वा।
अन्नं प्रदापयेति च ठद्वयान्तोऽन्नप्रदायको मन्त्रः।।
करणेन्द्रियरसधातुद्वयवर्णैरंगमस्य मन्त्रपदैः। (वही, ३४/५१-५२)

उपर्युक्त निर्देशानुसार अन्नप्रदायक मन्त्र के षडंगन्यास निम्नवत् होंगे—

वार्णादर्वाङ्मन्त्री प्रयोजयेत्साध्यनामकर्मयुतम्।
प्रजपेद्वा हवनविधौ वांछितसिद्धिप्रदस्तथा मन्त्रः।। (वही, ३४/३६-४२)

राजमुखी मन्त्र-साधना

ओं राजमुखि राजाभिमुखि वश्यमुखि ह्रीं श्रीं क्लीं
देवि देवि महादेवि देवाधिदेवि सर्वजनस्य मुखं मम
वशं कुरु कुरु स्वाहा

४७ अक्षरात्मक इस मन्त्र को राजमुखी मन्त्र कहते हैं। इसके ऋषि, छन्दस्, देवता, बीज, शक्ति, जपसंख्या, पूजाविधि आदि वही है, जो ब्रह्मश्री मन्त्र के हैं। इस मन्त्र की साधना में मन्त्र के ४७ अक्षरों में से क्रमशः १०, ७, ४, ४, ५ तथा १७ अक्षरों से षडंगन्यास किया जाता है। जप, हवन तथा तर्पण आदि में मन्त्र में पठित 'सर्वजन' के स्थान पर साध्य के नाम का प्रयोग करना चाहिये। सात दिनों तक श्रीदेवी* अर्थात् मूर्वा लता के १०८ पुष्पों का हवन करने के बाद उस हवनाग्नि के भस्म का तिलक करने से साध्य वश में होता है। मन्त्र का जप करते हुए घृत का हवन करने और हवन के अन्त में घृत-सम्पात से बचे हुए घृत को खाने से साध्य निःसन्देह साधक के वश में हो जाता है। प्रायः इस मन्त्र का प्रयोग राजाओं, शासकों आदि को वश में करने के लिये किया जाता है।

सताररराजमुख्यन्ते राजाभिमुखिवर्णकान्।
आभाष्य वश्यमुखि च ह्रींश्रींमारार्णकान् वदेत्।।
वीप्सा देवि महादेविपदं देवाधिदेवि च।
प्रोक्त्वा सर्वजनस्येति मुखं मम वशं वदेत्।।
कुरु कुर्विति ठद्वन्द्वान्तिकं मन्त्रं समुद्धरेत्।
सप्ताधिकैः सदशभिस्तथा त्रिंशद्भिरक्षरैः।।
दशभिः सप्तभिश्चैव चतुर्भिः करणाक्षरैः।
पंचभिः सप्तदशभिर्वर्णैरंगक्रिया मनोः।।
ब्रह्मश्रीमन्त्रसम्प्रोक्ता प्रतिपत्तिरमुष्य च।
मन्त्रस्य जपक्लृप्तिश्च तथा होमविधिः स्मृतः।।
मन्त्री सर्वजनस्थाने कुर्यात्साध्याह्वयं मनोः।
प्रजपे हवने वाऽथ तथा तर्पणकर्मणि।।

* मूर्वा देवी मधुरसा मोरटा तेजनी स्रवा।
मधूलिका मधुश्रेणी गोकर्णी पीलुपर्ण्यपि।। (अमरकोश, २/४/८३)

ध्यान

ब्रह्मश्री मन्त्र की साधना में 'माथे पर अर्धचन्द्र, हाथों में पाश और अंकुश, जपा-कुसुमवर्णी तनुश्री, देवगणों से अभिवन्दित, त्रिनयना, रक्तवर्णी आलेपन तथा वस्त्रों से सुशोभित, श्वेत पुष्पों से सुशोभित भगवती पार्वती का ध्यान करते हुए प्रार्थना करनी चाहिये कि वे हम सबके लिये कल्याणकारिणी हों।

असकलशशिराजन्मौलिराबद्धपाशा-
ङ्कुशरुचिरकराब्जा बन्धुजीवारुणांगी।
अमरनिकरवन्द्या त्रीक्षणा शोणलेपां-
शुककुसुमयुता स्यात्सम्पदे पार्वती वः।। (वही, ३४/३८)

जप-हवन एवं आवरण-पूजा

ब्रह्मश्री मन्त्र की सिद्धि के लिये इसका दस हजार जप करके भुवनेश्वरी पूजन के लिये निर्धारित शक्ति पीठ का निर्माण कर उसकी कर्णिका में शक्ति बीज 'ह्रीं', प्रथम आवरण में अंगमन्त्र, द्वितीय में ब्रह्माणी आदि आठ मातृशक्तियां और तृतीय में आयुधों सहित लोकपालों की विधिवत् अर्चना करके ब्रह्मश्री मन्त्र से घृत और दुग्धयुक्त खीर का १ हजार हवन करना चाहिये। त्रिमधुर से सिक्त तिल, चावल, लवण, केला और पनस (कटहल) आदि मधुर फल, घृत तथा रक्त कमल से तीन दिनों तक एक-एक हजार हवन करने से साध्य अतिशीघ्र वश में हो जाता है।

नित्य प्रातःकाल सूर्यबिम्ब में स्थित भगवती पार्वती का चिन्तन करता हुआ साधक १०८ बार ब्रह्मश्री मन्त्र का जप करता है, तो उसमें त्रिलोकी को वश में कर लेने की शक्ति आ जाती है। इस मन्त्र के 'त्रिभुवनवशंकरी' और 'सर्वजनवशंकरी' में प्रयुक्त 'व' अक्षर से पहले साध्य का नाम और कर्म जोड़ कर जप और हवन करने से मन्त्र का प्रयोग शीघ्र ही साधक की अभिलाषा की पूर्ति करता है।

अयुतं प्रजपेज्जुहुयाद्घृतप्लुतैः पायसैर्दशांशेन।
आराधयेत्तदंगैर्मातृभिराशाधिपैश्च निशितमनाः।।
तिलतण्डुलकैर्लोणैस्त्रिमधुरसिक्तैः फलैश्च मधुरतरैः।
आज्यैररुणकुवलयैस्त्रिदिनं हवनक्रियाशु वश्यकरी।।
नित्यश्चादित्यगतां देवीं प्रविचिन्त्य तन्मुखो जप्यात्।
अष्टोत्तरशतमह्नामादौ भुवनं वशीकरोत्यचिरात्।।

ब्रह्मश्री मन्त्र

ह्रीं नमो ब्रह्मश्रीराजिते राजपूजिते जये विजये
गौरि गान्धारि त्रिभुवनवशंकरि सर्वलोकवशंकरि
सर्वस्त्रीपुरुषवशंकरि सुदुघेवा सुदुघेवा ह्रीं स्वाहा

६१ अक्षरों वाले इस मन्त्र को ब्रह्मश्रीमन्त्र कहते हैं। इस मन्त्र के ऋषि अज, देवता पार्वती, छन्दस् निवृत्, बीज ह्रीं तथा शक्ति स्वाहा है। इस मन्त्र के क्रमशः १४, १०, ८, ८ , १० तथा ११ अक्षरों से षडंगन्यास किया जाता है।

मायाहृदोरथाऽन्ते ब्रह्मश्रीराजितेऽक्षरान् प्रोक्त्वा।
राजयुतपूजितेऽर्णान् जये सविजये सगौरि गान्धारि।।
त्रिभुवनवशंकरीति च सर्वलोकान्तिके वशंकरि च।
सर्वस्त्रीपुरुषवशंकरि सुदुघे वाक्षरान् प्रवीप्स्य ततः।।
मायाद्विठान्तिको मनुरेकाधिकषष्टिवर्णकः प्रोक्तः।
ऋषिरस्याऽजो निवृच्छन्दो गौरी च देवता प्रोक्ता।।
सचतुर्दशभिर्दशभिस्तथाऽष्टभिश्चाऽष्टभिस्तथा देशभिः।
एकादशभिर्मन्त्राक्षरै क्रमादुच्यते षडंगविधिः।। (वही, ३४/३४-३७)

उपर्युक्तानुसार इस मन्त्र में अंगन्यास का रूप निम्न होगा—

ऋष्यादिन्यास

अजाय ऋषये नमः (शिरसि), निवृच्छन्दसे नमः (मुखे),
पार्वतीदेवतायै नमः (हृदये), ह्रीं बीजाय नमः (गुह्ये),
स्वाहा शक्तये नमः (पादयोः)।

षडंगन्यास

ह्रीं नमो ब्रह्मश्रीराजिते राजपूजिते हृदयाय नमः (हृदये),
जये विजये गौरि गान्धारि शिरसे स्वाहा (शिरसि),
त्रिभुवनवशंकरि शिखायै वषट् (शिखायाम्)
सर्वलोकवशंकरि कवचाय हुम् (कवचे)
सर्वस्त्रीपुरुषवशंकरि नेत्रत्रयाय वौषट् (नेत्रेषु)
सुदुघेवा सुदुघेवा ह्रीं स्वाहा अस्त्राय फट् (सर्वांगे)

कुम्भकार के हाथ लाई गई मिट्टी में साध्य के पैर की धूल और गिरगिट की वसा मिलाकर एक सुन्दर पुतली का निर्माण करके उसके हृदय-स्थल पर साध्य के नाम से युक्त उक्त यन्त्र रखकर उसकी प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये। तदनन्तर भुवनेशी बीज का १ हजार जप करके उस पुतली को भूमि में गाड़कर उस स्थल पर नित्य मूत्र विसर्जन करने से साध्य वश में हो जाता है।

> मृत्कारांगुलिकात्तया सकृकलासान्तर्वसायुक्तया
> साध्यस्यांऽघ्रिरजोयुजा मृदुमृदा क्लृप्तस्य शक्तिं हृदि।
> रूपस्याभिविलिख्य तद्विवरके साध्यं तदीरान् प्रति-
> ष्ठाप्याजप्य निखन्य तत्र दिनशो मेहेच्चिरं वश्यकृत्।। (वही, ३४/३२)

साध्यास्त्रीवशीकरण यन्त्र

स्त्री के उबटन से बची निशा अर्थात् हल्दी से अर्धरात्रि में अपनी बाईं जांघ पर साध्या का नाम 'रमाम् आकर्षय' इत्यादि रूप में लिखकर साधक अपनी बायीं हथेली से उस नाम को ढक कर उसका स्मरण करते हुए 'रुद्रदयिते योगेश्वरि स्वाहा' मन्त्र का जप करे तो, मन्त्रशक्ति साध्या को शीघ्र ही साधक के पास ले आती है।

> वामाक्ष्याः प्रतिलिख्य नाम निशया वामोरुदेशे निशा-
> मध्ये वामकरेण संशितमतिः संछादयंस्तन्मनाः।
> पूर्वं रुद्रपदं ततश्च दयिते योगेश्वरि त्विन्दुम-
> न्मन्त्रं जप्यति चेदनंगविवशां सद्यः प्रियामानयेत्।। (वही, ३४/३३)



नारी-मोहन यन्त्र

पान के पत्र पर कोकिल के नेत्रों के बाल से निर्मित कलम या ब्रुश से पूर्वोक्त विधि से निर्मित षट्कोण के मध्य 'ह्रीं' के भीतर साध्यादिक, छहों कोणों में कामबीज 'क्लीं' साध्यांकित शक्ति के चारों ओर पार्थिव (चतुष्कोण) का घेरा और चतुष्कोण के चारों कोणों में मन्मथ बीज 'क्लीं' अंकित यन्त्र उक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित कर उस पान को खाने वाला साधक नारियों को मोहित कर लेता है।

शक्तिस्थं निजनाम वह्निभवनद्वन्द्वोदरे मान्मथं
बीजं साध्यविदर्भया परिवृतं शक्त्या बहिः पार्थिवम्।
तत्कोणे स्मरमन्यपुष्टनयनप्रोत्थैः पुनः कण्टकै-
स्ताम्बूले लिखिताभिजप्तमदयेद्योषिन्मनोमोहनम्।। (वही, ३४/२६)

वशीकरण यन्त्र

शाली के चावल की पीठी से बनाई गई पुतली पर षट्कोण बनाकर उसके बीच शक्ति बीज 'ह्रीं' अंकित करके इसे शक्ति, काम, अंकुश (ह्रीं क्लीं क्रों) और प्रों बीजों से वेष्टित कर देना चाहिये। तदनन्तर इस पुतली में प्राणप्रतिष्ठा के बाद इसे त्रिमधुर में भूनकर खाने से साध्य वश में बना रहता है।

शक्त्यन्तःस्थितसाध्यनाम परितो बीजैश्चतुर्भिः समा-
बद्धं शक्तिमनोभवांकुशलिपिप्रोम्भिः समावेष्टितम्।
शाल्युत्थे प्रतिलिख्य पिष्टिविकृतौ प्राणान् प्रतिष्ठाप्य च
त्रिस्वादौ परिभर्ज्य तत्समदतः साध्यो वशे तिष्ठति।। (वही, ३४/३०)

स्त्री-पुरुष अन्योन्य वशीकरण यन्त्र

'स' अन्त वाला वर्ण 'ह', शिखी अर्थात् 'ई' और लव अर्थात् बिन्दु के योग से निर्मित बीज (ह्रीं) के दहनांश अर्थात् रकार में साध्य तथा मायांश अर्थात् ईकार में साधक का नाम लिखकर इसे एक वृत्त से घेर कर वृत्त के चारों ओर सोलह स्वर वर्ण लिखने चाहिये। फिर उक्त दहनांश और मायांश के मध्य एक द्विमुखी फलक वाला त्रिशूल बनाना चाहिये जिसका एक मुख साध्य की ओर हो और दूसरा साधक की ओर। इसे 'भर्तृयन्त्र' कहते हैं। इस यन्त्र को यदि स्त्री धारण करे तो पुरुष को और यदि पुरुष धारण करे तो स्त्री को वश में कर लेता है।

सान्तं शिखीलवयुतं दहनांशसाध्यं मायांशसाधकमथाऽभिवृतं कलाभिः।
मध्योल्लसद्द्विमुखशूलमिदन्तु भर्तुर्यन्त्राह्वयं नरनतांगिवशीकरं स्यात्।।
(वही, ३४/३१)

तद्वद्विधाय कलशं तद्यन्त्रं धारयेत् पुनर्नित्यम्।
वांछितसिद्धिं लभते भक्त्या प्रणमन्ति देवता अपि तम्।।
यन्त्रं तदेव मन्दिरभित्तावभिलिख्य पूजयेद्दिनशः।
चौरादिभूतनागा अपि तं देशं न वीक्षितुं शक्ताः।।
आलिख्य वीरपट्टे यन्त्रमिदं स्वमस्तकार्पितं कृत्वा।
युध्यन् प्रत्यर्थिनपि हत्वा यात्यव्रणांकितो योद्धा।।
गजमदमृगकाश्मीरैर्मन्त्रितमः सुरभिरोचनायुक्तैः।
विलिखेदलक्तकरसालुलितैर्यन्त्राणि सकलकार्यार्थी।।

(वही, ३४/२०-२३, २६)

रूपगर्विता मोहन यन्त्र

रात में यदि आं क्रीं ह्रीं मन्त्र से मधुरत्रय से सिक्त लवणमिश्रित राई की १ हजार आहुति दी जाय तो उर्वशी भी साधक के वश में हो जाती है, सामान्य नारियों की तो बात ही क्या।

राज्या पटुसंयुतया सपाशशक्त्यंकुशेन मन्त्रेण।
स्वाद्वक्तयाऽभिजुह्वन् निश्युर्वीशांस्तथोर्वशीं वशयेत्।।

(वही, ३४/२७)

नारी आकर्षण यन्त्र

नागवल्ली (ताम्बूल) के पत्र पर उपर्युक्त द्रव्यों से पूर्वोक्त विधि से षट्कोण अंकित करके उसके मध्य शक्ति बीज 'ह्रीं' लिखना चाहिये। फिर ह्रीं के रकार के भीतर साध्य, साधक तथा कर्मादि लिखकर शक्ति बीज को आं और क्रों से वेष्टित करना चाहिये। तदनन्तर यन्त्र के छहों कोणों में स्वस्तिक का अंकन कर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिये। फिर रात्रि में 'आं ह्रीं क्रों' मन्त्र के १ हजार जप से यन्त्र को अभिमन्त्रित कर उसे दीपक की लौ में तपाकर खाने से कामबाणों से पीड़ित प्रेम-विवश प्रेमिका प्रयोगकर्ता के पास आ जाती है।

हृल्लेखाग्निस्थसाध्याह्वयमथ बहिरांक्रोंवृतं वह्निगेह-
द्वन्द्वास्रिस्वस्तिकाढ्यं प्रतिलिखतु दले यन्त्रकं नागवल्ल्याः।
जप्त्वा शक्तिं तु पाशांकुशलिपिसहिता तापयेद्दीपवह्नौ
नक्तं भक्त्या नतांगी स्मरशरविवशा प्रेमलोलाऽभियाति।।

(वही, ३४/२८)

घटार्गल* यन्त्र अंकित करके उसकी गोली बनाकर मोम से निर्मित साध्य की प्रतिकृति के हृदय में रख, उस प्रतिकृति को त्रिमधुर से भरे हुए पात्र में रखकर पुष्प-गन्धादि से उसकी पूजा करने के बाद उसे बलि प्रदान करना चाहिये। इस विधि से सात दिनों के भीतर ही अभिलषित प्रिया साधक के पास आ जाती है। मोम की इस प्रतिकृति के हृदय में साध्य का नाम अंकित करके यदि इसे पाश, अंकुश और शक्ति (आं क्रों ह्रीं) मन्त्र का जप करते हुए अग्नि में कुछ-कुछ तपाया जाय तो तीन रातों के भीतर ही अभिलषित प्रियतमा, चाहे वह कितनी ही गर्विता हो, साधक के पास आ जायगी।

तद्वद्घटार्गलाख्यं यन्त्रं नीले विलिख्य पट्टवरे।
मोचकसाध्यप्रतिकृतिहृदये गुलिकां विधाय निःक्षिप्य।।
त्रिमधुरयुक्ते पात्रे विन्यस्याऽभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैः।
बलिमपि विकिरेद्रात्रिषु सप्ताहादानयेद्वधूमिष्टाम्।।
तामेवाथ प्रतिकृतिमग्नौ किंचित्प्रतापयेज्जपन् ।
शक्तिं सपाशांकुशमनुसाध्याह्वविदर्भितां समाहितधीः।।
विधिनाऽमुना त्रिरात्राद् गर्विततियमपि सुरांगनां मन्त्री।
आकर्षयेन्निजवांछाप्रदायिनीं मदनबाणविह्वलिताम्।।

(वही, ३४/१६-१६)

विविध प्रयोजन-सिद्धि

नीले पट पर निर्मित इस यन्त्र को लाक्षा (लाख), ताम्र, रजत अथवा स्वर्ण के आवरण से वेष्टित कर (ताबीज बनाकर) कलश-स्थापनादि विधि के अनन्तर इसे कलश जल में रखकर उक्त मन्त्र के १२ हजार जप से अभिमन्त्रित कर धारण करने से प्रत्येक इच्छा पूर्ण होती है। यदि इस यन्त्र को घर की दीवार पर अंकित करके प्रतिदिन इसकी पूजा की जाय तो चोर आदि घर में प्रवेश नहीं कर सकते। यदि कोई योद्धा इस यन्त्र को सिर (पगड़ी-टोप आदि) पर बांधकर रणभूमि में युद्ध हेतु उतरे तो वह स्वयं पूर्णरूप से सुरक्षित रह कर शत्रु का बध कर देता है। सामान्य रूप से उपर्युक्त यन्त्रों का आलेखन गजमद, मृगमद (कस्तूरी) तथा गोरोचन को अलक्तक के रस में मिलाकर किया जाना चाहिये।

यन्त्रं तदेव लाक्षाताम्रावीतं निधाय कलशजले।
जप्त्वा भानुसहस्रकमभिषिंचेद्रजतकांचनाभ्यां च।।

* देखें-प्रपंचसारतन्त्र, ११/२८-३४।

नाम पूर्वोक्त प्रकार से अंकित करना चाहिये। इसके बाद यन्त्र के बाहर दो परस्पर पुटित चतुरस्र बनाकार इनसे निर्मित कोणों के बाहर चार चतुरस्र बनना चाहिये। इस प्रकार कुल पांच यन्त्र बनाकर उन्हें शीत अर्थात् लसोड़ा के रस से लिप्त कर गुग्गुल और अगरु की धूप* से धूपित करने के पश्चात् घर, पुर अथवा देश, जिसकी भी रक्षा का विधान करना है, उसकी चारों सीमाओं में एक-एक तथा पांचवां यन्त्र गृह के तोरण या नगरादि के मध्य में गाड़ देने से इनकी रक्षा होती है।

द्वादशगुणितेऽखिलसन्नृसिंहाबीजं महेन्द्रपुरवीतम्।
शीतालिप्तं पुरलघुधूपितमन्तःप्रबद्धकर्मयुतम्।।
चतसृषु दिक्षु निखन्यात् सीमायां द्वारतोरणाऽधो वा।
देशाभिगुप्तिरेषा गुप्ततमा सूरिभिः पुरा प्रोक्ताः।। (वही, ३४/१२-१३)

उपल (पत्थर-ईंटादि) पातादि से रक्षा

स्वर्ण, रजत या ताम्र के सुन्दर चिकने पट्ट पर हरिलात, तमालपत्र, हरिद्रा, चन्दन, कपूर तथा अगरु के मिश्रण से निर्मित रस से द्वादशगुणित यन्त्र बनाकर उसमें प्राणप्रतिष्ठा करके, भुवनेश्वरी मन्त्र के एक हजार जप से अभिमन्त्रित इस यन्त्र को घर के आंगन में गाड़ देने पर घर में चोर आदि प्रवेश नहीं कर सकते तथा वास्तुदेवता, भूत तथा पिशादि द्वारा उत्पन्न परेशानियों, जैसे घर में पत्थरों का गिरना, आग लगना आदि से मुक्ति मिल जाती है तथा सम्पत्ति में शीघ्र अभिवृद्धि होती है।

अलदलनिशाकुशीतैर्मसृणे पट्टे विलिख्य यन्त्रमिदम्।
सेरस्थापनकर्म प्रतिजप्तं प्रांगणे खनेन्मन्त्री।।
तत्र विशन्ति न चौरा ग्रहकृत्याः स्यान्निकेतरक्षा च।
अश्माभिपातवारणमभिवृद्धिः सम्पदाम्भवेदचिरात्।। वही, ३४/१४-१५

वनिताकर्षण यन्त्र

रात्रि के समय नील वर्ण के किसी कोशेय आदि वस्त्र पर पूर्वोल्लिखित

---

* कुम्भोलूखलकं क्लीबे कौशिको गुग्गुलः पुरः।
शेलुः श्लेष्मातकः शीतं उद्दालो बहुबारकः।। (अमरकोश, ३/४/३४)
मरुन्माला तु पिशना स्पृक्का देवी लता लघुः। (वही, १३३)
लघुरगुरौ च मनोज्ञे..... (वही, देखें रामाश्रमी)

पाशाष्टाक्षरवीतशक्तिदहनप्रोल्लासि साध्याह्वयम्
शक्तिश्रीस्मरसंवृतं कुयुगरन्ध्राबद्धचिन्तामणि।
इत्थं षड्गुणितं विलिख्य जपितं मन्त्री दधानोऽसृक-
द्राज्ञां वामदृशां प्रियो भवति संग्रामे पुरे वा चिरम्।। (वही, ३४/१०)

ग्रह-भूतादिजन्य पीड़ा, उन्माद की शान्ति तथा गर्भरक्षादि के प्रयोग

ग्रहपीड़ा और उन्मादजन्य रोगों की शान्ति के लिये पूर्ववत् षड्गुणित यन्त्र का निर्माण करके कर्णिका में शक्ति बीज 'ह्रीं' लिखकर यन्त्र के छहों कोणों में 'ऱ्', क्, ष्, म्, ऱ्, य्, औ तथा ऊं के समूह से निर्मित चिन्तामणि बीज 'क्ष्म्र्यौं' लिखना चाहिये। फिर षट्कोण के मध्य लिखित शक्ति बीज 'ह्रीं' को नृसिंह बीज 'क्ष्रौं' से वेष्टित कर 'ह्रीं' के मध्य साध्य, साधक तथा कर्म लिख, फिर यन्त्र को बाहर से पहले अनुलोम और पुनः प्रतिलोम क्रम में मातृकाओं से वेष्टित कर दो चतुरस्रों से निर्मित भूपुर के आठों कोणों के भीतर सूर्य के चतुरक्षर-प्रणव, भुवनेश्वरी तथा अजपा 'ओं ह्रीं हंसः' अंकित करना चाहिये। यदि किसी नारी का गर्भस्राव हो जाता हो तो इस यन्त्र पर कलश-स्थापनादि विधि से भुवनेश्वरी की पूजा करने से गर्भरक्षा होती है।

चिन्तारत्नाश्रितास्रित्रियुगमथ नृसिंहावृतान्तःस्थबीजं
प्रादुः साध्याभिधानं बहिरपि लिपिभिः प्रानुलोमाभिवीतम्।
क्ष्माबिम्बद्वन्द्वरन्ध्रप्रचितचतुरर्णं ग्रहोन्मादभूत-
व्याधिघ्नं यन्त्रमस्मिन् कृतकलशविधिर्गर्भरक्षादिकारी।। (वही, ३४/११)

गृह-पुर देशादि का रक्षाकारक द्वादशगुणित यन्त्र

आचार्य शंकर ने गृह-पुर देशादि की सुरक्षा के लिये एक गोपनीय प्रयोग का उल्लेख किया है। रक्षाकारक द्वादशगुणित यन्त्र के निर्माण की विधि उन्होंने प्रपंचसारतन्त्र के ग्यारहवें पटल में बताई है। उक्त रक्षा-विधान के लिये प्रपंचसारतन्त्र के एकादश पटल में उल्लिखित विधि के अनुसार वहां निदर्शित मन्त्रादि से रहित द्वादश गुणित यन्त्र का निर्माण कर उसके १२ सन्धि-स्थलों में त्रिशूल अंकित करके शूलों के अग्रभाग में नृसिंह बीज 'क्ष्रौं' और कर्णिका के मध्य भुवनेशी बीज 'ह्रीं' अंकित करके इसके भीतर साध्य-साधक तथा कर्म का

करना चाहिये। इस विधि से निर्मित यन्त्र में प्राणप्रतिष्ठा करके प्रतिदिन १ हजार से अधिक शक्ति मन्त्र 'ह्रीं' के जप से इसे अभिमन्त्रित करना चाहिये। इस यन्त्र की घर में स्थापना करने से साध्य चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, साधक के वश में हो जाता है। इस यन्त्र को एरण्ड-पत्र पर लिख, दीपक की लौ में तपाकर घर में स्थित जलाधार (जिस स्थान पर पीने आदि के लिये जल का संग्रह किया जाता है) के नीचे दबा देने से स्त्रियों को विशेष रूप से आकर्षित किया जा सकता है।

साध्याख्यां शक्तियद्धौ नरहरिमपि रन्ध्रत्रये च त्रिशक्तौ
कर्मालिख्याऽथ लोष्टे सततगतिमपि संस्थाप्य जप्त्वा स्वशक्त्या।
आगारे स्थापयित्वा नरमुदकनिधेश्चित्रपत्रे लिखित्वा
दीपाग्नौ तापयित्वा स्त्रियममलधियः सम्यगाकर्षयेयुः।। (वही, ३४/८)

"साध्यस्य देवदत्तस्य मुखहृदयमिति पदं मध्यस्थित हृल्लेखाया उदरे, पुनः साधकस्यदेवदत्तस्य देवदत्ताया इति पदं कोणस्थतुरीय-स्वराणामुदरेषु पुनर्बाह्यस्थितहृल्लेखात्रयस्योदरेषु आकषयेदिति पदं च विलेखयेत्"। (गीर्वाणेन्द्र सरस्वती महाभागः, प्रपंचसार-सारसंग्रहः ३१/८)

षड्गुणित यन्त्र में साधना

त्रिगुणित यन्त्र में विभिन्न प्रयोजनों के लिये जिन विधियों का प्रयोग किया जाता है, वे विधियां षड्गुणित यन्त्र में भी प्रयुक्त की जा सकती हैं।

त्रिगुणितविहिता विधयः षड्गुणिते च प्रयोजनीयाः स्युः। (वही, ३४/६)

प्रियता की प्राप्ति

दो भूपुरों (चतुष्कोणों) के मध्य षड्गुणित यन्त्र का निर्माण कर यन्त्र की कर्णिका तथा छहों कोणों में भुवनेशी बीज 'ह्रीं' लिखकर कर्णिका वाले शक्ति बीज को 'आं श्रीं ह्रीं क्लीं क्लीं ह्रीं श्रीं क्रों' इस पाशाष्टाक्षर* मन्त्र से वेष्टित कर भुवनेश्वरी बीज 'ह्रीं' के वह्नि अंश अर्थात् 'र' के पार्श्व में साध्य का नाम लिखना चाहिये। फिर इस यन्त्र के छहों कोणों में अंकित शक्ति-प्रणव ह्रीं को शक्ति, श्री तथा काम बीजों से वेष्टित करके भूपुरों के आठ कोणों में चिन्तामणि बीज 'क्ष्रौं' लिखना चाहिये। इस प्रकार का यन्त्र निर्मित कर यथोक्त संख्या में जप करके उसे धारण करने से साधक युद्धभूमि हो या नगर में, राजाओंके बीच हो अथवा वनिताओं के बीच, सभी का प्रिय बना रहता है।

* पाशश्रीशक्तिस्मरमन्मथशक्तीन्दिरांकुशश्चेति पाशाष्टाक्षरमन्त्र ११/३६।

'च' से चौथा वर्ण 'झ' लिखकर, यन्त्र को चन्दन तथा कपूर से आलेपित कर सिर पर बांधने से सिर के समस्त रोग तथा ज्वरादिक तापजनित रोग समाप्त हो जाते हैं।

त्रिगुणितसंज्ञे मायालंकृतकोणे तयाऽभिसंवीते च।
या या विशेषक्लृप्तिस्तां तामपि संग्रहेण समभिदधे।।
कोणोल्लसितसुधाक्षरगलदमृतस्फुरितवह्निपरिवीतात्।
बिन्दोर्मध्यगतबीजस्थितां सुधाधारया परिस्रुतया।।
पूर्णसुषुम्नारन्ध्रां साध्यतनुं संस्मरञ्छिरसि बध्यात्।
तेनाऽरोगी पुरुषः प्रज्ञावान् दीर्घमायुराप्नोति।।
शीतांशुमण्डलस्थं कूर्मचतुर्थात्तकोणलसितमिदम्।
शीतप्रलिप्तजप्तं कधृतं शिरोरुजाज्वरार्तिहरम्।।

(प्रपंचसारतन्त्र, ३४/२-५)

वशीकरण प्रयोग

वशीकरण के लिये एक साथ दो त्रिगुणित यन्त्र बनाने चाहिए। इनमें से एक में साध्य पुरुष या स्त्री का और दूसरे में साधक पुरुष या स्त्री का नाम लिखना चाहिये। फिर साध्य का मुख ऊपर की ओर कर उसे नीचे और साधक को उसके ऊपर नीचे की ओर करके बिस्तर पर रख उनके ऊपर सोने से साध्य साधक के वश में हो जाता है। यदि इस यन्त्र को घर में गाड़कर इस पर बैठ कर भोजन किया जाय तब भी साध्य वश में हो जाता है।

तद्‍यन्त्रयुगं विलिखेदभिलषितसाध्यसाधकाख्ययुतम्।
साध्यमधस्तात्कृत्वा बद्‍ध्वाऽत्र स्वपितु साधको नित्यम्।।
विधिनाऽनेन तु सद्यः साध्योऽस्य वशे भवेदयत्नेन।
तत्तु खनित्वागारे तत्रान्नं सिद्धमत्तुवश्यकरम्।। (वही, ३४/६-७)

नये मृत्तिका पात्र के ऊपर त्रिगुणित यन्त्र का निर्माण कर इसके बीच हल्लेखा बीज 'ह्रीं' के वह्नि अंश अर्थात् 'रकार' के बीच साध्य-पुरुष या स्त्री के नाम के साथ कर्म (देवदत्तस्य रमाया वा मुखहृदयं), त्रिकोण के तीनों कोणों में भीतर की ओर शक्ति बीज 'ईं' लिखकर इनके बीच साधक-पुरुष या स्त्री का षष्ठ्यन्त नाम (देवदत्तस्य रमाया वा) और तीनों कोणों के बाहर 'ह्रीं' लिखकर इन तीनों हल्लेखाओं के बीच 'आकर्षय' पद लिखने चाहिये। फिर तीनों कोणों में लिखित चतुर्थ स्वर रूप शक्ति बीज 'ईं' के दोनों ओर नृसिंह बीज 'क्ष्रौं' अंकित

यन्त्र-विरचना और प्रयोग

त्रिगुणित, षड्गुणित, द्वादशगुणित तथा घटार्गल आदि यन्त्रों का निर्माण यदि उचित विधि से किया जाय और इनमें प्रयोजनानुसार उचित मन्त्रों का संयोजन हो, यदि यन्त्र निर्धारित फलकों पर निर्धारित द्रव्यों से बनाये जायं और उनका सही-सही प्रयोग किया जाय, तो उनका परिणाम अकल्पनीय आता है। आचार्य शंकर ने प्रपंचसारतन्त्र के चौंतीसवें पटल में विभिन्न यन्त्रों और प्रयोजनानुरूप उनमें संयोजित किये जाने वाले मन्त्रों का विशेष रूप से निरूपण किया है। यहां शंकर द्वारा निरूपित कुछ यन्त्र-मन्त्रों और विभिन्न प्रयोजनों की सिद्धि के लिये उनकी प्रयोग-विधि का उल्लेख किया जा रहा है।

त्रिगुणित यन्त्र के प्रयोग

सिर-पीड़ा तथा ज्वरादि की निवृत्ति

शंकर ने शिरोरोग एवं ज्वरादि की निवृत्ति आरोग्य, प्रज्ञा तथा दीर्घायु के लिये त्रिगुणित यन्त्र के निर्माण और उसमें साधना-विधि का उल्लेख किया है। उन्होंने बताया है कि पहले एक त्रिकोण बनाकर उसके मध्य में हृल्लेखा 'ह्रीं' लिखना चाहिये। पुनः हृल्लेखा के र् और ई के बीच साध्य का नाम अंकित करना चाहिये। तदनन्तर त्रिकोण के तीनों कोणों में भीतर की ओर बिन्दुसहित चतुर्थ स्वर 'ई' लिखकर इन तीनों बीजों के पार्श्वों में बिन्दुसहित अमृत बीज 'वं' (वं ई वं) लिखना चाहिये। तदनन्तर इन अमृत बीजों से प्रवहित होती अमृत की धाराओं से त्रिकोण के मध्य के हृल्लेखा बीज 'ह्रीं' के बिन्दु को आप्लावित होता हुआ अंकित करना चाहिये। पुनः हृल्लेखा के बिन्दु से प्रवहित हो रही अमृत धारा से साध्य का सुषुम्ना-पथ आप्लावित होता हुआ अंकित करना चाहिये। इस प्रकार से निर्मित यन्त्र को साध्य के सिर पर बांधकर भावना करनी चाहिये कि साध्य का सारा शरीर उक्त अमृत धारा से आप्लावित हो रहा है। पीड़ित व्यक्ति को स्वयं अपने सहस्रार में इस यन्त्र की भावना करनी चाहिये। इस प्रयोग से साध्य का शिरोरोग दूर होता है, वह प्रज्ञावान् बनता है तथा उसे दीर्घायु प्राप्त होती है।

त्रिगुणात्मक यन्त्र को चन्द्रमण्डल अर्थात् उकार के बीच बनाकर उसके कोणों में चतुर्थ स्वर बीज 'ई' लिख, इसके पार्श्वों में बिन्दुयुक्त कूर्म संज्ञक वर्ण

अमित लक्ष्मी प्राप्त करता है। वास्तव में वारुणी ऋचा अत्यन्त प्रभावशालिनी है। इस ऋचा के जप, हवन और तर्पण द्वारा प्राप्त वरुणदेव की कृपा से साधक की समस्त अभिलाषाएं पूर्ण होती हैं।

प्रत्यङ्मुखोऽथ मन्त्री प्रतर्पयेद्वा जलैः सुशुद्धतरैः।
यः स ह्युपद्रवाणां रुन्ध्यान्निचयं श्रियं समृच्छति च।।
बहुना किमनेन मन्त्रिमुख्यो मनुनाशु प्रसाधयेदभीष्टम्।
हवनक्रिययाऽथ तर्पणैर्वा सजपैः पाशभृतो महामहिम्नः।।

(वही, ३३/७१-७२)



शतभिषजि समुदितेऽर्के चतुःशतं पायसं हुनेत् सघृतम्।
ऋणमोचनाय लक्ष्म्यै जनसंवननाय शुक्रवारे च।। (वही, ३३/६५)

वरुण के पाश में बंधे और अंकुश से विद्ध शत्रु को सागर के पार फेंके जाते हुए चिन्तन करते हुए मन्त्र का जप और हवन करने अथवा वरुण-पाश से बंधे और तलवार के द्वारा काटे जाते हुए शत्रु का ध्यान करने से शत्रु शीघ्र नष्ट हो जाता है और यदि शत्रु का ध्यान करते हुए गोमूत्र से सिक्त वेतस् की समिधा से एक हजार हवन किया जाय तो शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

पाशनिबद्धं वैरिणमंकुशसम्प्रोतमम्बुधेः पारे।
ध्यायन्परे क्षिपन्तं वरुणे जुहुयाच्च तथा प्रजपेत्।।
पाशनिबद्धं वैरिणमसिनाच्छिद्याशु नाशयन्तममुम्।
ध्यायन् वेतससमिधो गोमूत्रयुता हुनेत् तदपहत्यै।।(वही, ३३/६६-६७)

शुक्रवार को घृतयुक्त दुग्धान्न से हवन करने से लक्ष्मी की प्राप्ति, ऋण से मुक्ति तथा विविध प्रकार के उपद्रवों कौ शान्ति होती है।

दौग्धान्नैर्भृगुवारे घृतसंसिक्तैः कृतश्च हवनविधिः।
ऋणमोचदश्चः विविधोपद्रवशमनकृद्रमाकरः प्रोक्तः।। (वही, ३३/६८)

सायंकालीन संध्या के समय पश्चिम की ओर मुख करके अग्निदेव की आराधना करने के बाद उक्त ऋचा का ४ सौ बार जप करने से समस्त दुःखों की निवृत्ति होती है।

पश्चिमसन्ध्यासमये पश्चिमवदनोऽनलं समाराध्य।
ऋचमेनामभिजप्याच्चतुःशतं सकलदुःखशमनाय।। (वही, ३३/६९)

शत्रु की सेना को स्तम्भित करने के लिये मन्त्रसाधक को किसी नदी के द्वीपादि में स्थित होकर तीन दिनों तक घृत से सिक्त शाली का ४०० हवन करना चाहिये।

शालीर्घृतसंसिक्ताः सरिदन्तरितो जुहोतु परसेनाम्।
संस्तम्भयितुं त्रिदिनं सुमना मन्त्री चतुःशतावृत्त्या। (वही, ३३/७०)

शुद्ध जल से भरी किसी सरिता में पश्चिम दिशा की ओर मुख करके यदि साधक उक्त ऋचाओं द्वारा विशुद्ध जल से वरुणदेव का तर्पण करता है तो वह अनेक प्रकार के उपद्रवों पर विजयी बनता है। पश्चिम की ओर मुख करके शुद्ध जल से वरुणदेव का एक हजार तर्पण करने से साधक उपद्रवों पर विजय तथा

(वरुण के नीचे) नामक शक्तियों की तथा अन्त में आठ दिक्पालों की अर्चना की जानी चाहिये। पूजन के पश्चात् परमगुरु को चाहिये कि वे मन्त्र की साधना करने वाले शिष्य का कलश के जल से अभिषेक करे। इसके अनन्तर शिष्य को चाहिये कि वह धन-धान्य वस्त्रादिक प्रदान कर गुरु को प्रसन्न करके पुनः वारुणी ऋचा का १ लाख जप करे।

अंगैरष्टभिरहिभिर्दिशाधिपैः समभिपूज्य वारीशम्।
कलशजलैः पुनरभिषिंचेत्परमगुरुर्मन्त्रजापिनं शिष्यम्।।
वसुभिः प्रसाद्य देशिकमथ शिष्यो मनुमिमं जपेल्लक्षम्।

(वही, ३३/६०-६१)

वारुणी ऋचा के विशिष्ट प्रयोग

वारुणी ऋचा को ऋणमोचनी ऋचा कहा जाता है। घृतयुक्त दुग्धपक्व अन्न से १० हजार हवन करने से साधक ऋण से मुक्त होकर प्रभूत लक्ष्मी प्राप्त करता है।

जुहुयाच्च दुग्धपक्वैरन्नैरयुतं घृताप्लुतैर्मतिमान्।।
ऋग्गियमृणमोचनी स्याज्जपैर्हुतैस्तर्पणैश्च मन्त्रविदः।
सम्प्राप्तदुर्गतिरपि सद्यो ह्यांच संवहेल्लक्ष्मीम्।। (वही, ३३/६१-६२)

गन्ने के रस से निर्मित घृतयुक्त श्वेत शर्करा से चार दिन उक्त संख्या में हवन करने से समस्त उपद्रव शान्त हो जाते हैं और ऋण से मुक्ति के साथ ही चिरकाल तक समस्त सम्पत्तियां प्राप्त होती हैं।

इक्षोः सितस्य शकलैर्घृतसिक्तैर्यश्चतुर्दिनं जुहुयात्।
सकलोपद्रवशान्त्यै तथर्णमुक्त्यै च सम्पदे सुचिरम्।। (वही, ३३/६३)

तीन दिनों तक प्रातःकाल गाय के दूधसहित वेतस् की १० हजार समिधाओं के हवन से प्रसन्नमुख वरुण देवता प्रसन्न होकर अकाल (वर्षा ऋतु के अतिरिक्त अन्य ऋतुओं में भी) में भी चतुर्दिक् प्रभूत जल की वर्षा करते हैं।

वेतससमिदयुतहुताद् वृष्टिमकालेऽपि वितनुते वरुणः।
गव्यक्षीरसमेतात् त्रिदिनकृताद् दिनमुखेषु मुदितमनाः।। (वही, ३३/६४)

ऋण से मुक्ति, प्रभूत लक्ष्मी तथा जन-संवाद के लिये शतभिषा नक्षत्र में सूर्य के आने पर अथवा शुक्रवार को घृतयुक्त खीर से चार सौ हवन करना चाहिये।

अक्षरों से हृदय, सात अक्षरों से शिरस्, छह अक्षरों से शिखा, आठ अक्षरों से कवच, सात अक्षरों से नेत्र और छह अक्षरों से अस्त्रन्यास करके षडंगन्यास सम्पन्न करना चाहिये। तदनन्तर ऋचा के ४२ वर्णों का न्यास क्रमशः पैरों की अंगुलियों के अग्रभाग और सन्धियों में आरम्भ के १० वर्ण, पायु, जननेन्द्रिय, मूलाधार, नाभि, कुक्षि, पीठ, हृदय, उरोज तथा गले में एक-एक (कुल ६) वर्ण, बाहुओं के अग्रभाग अर्थात् अंगुलियों के अग्रभाग तथा सन्धियों में १० वर्ण, मुख, गण्डयुग, घ्राणयुग, नेत्रयुग, कर्णयुग, भ्रूमध्य, मस्तक, ब्रह्मरन्ध्र तथा सर्वांग में एक-एक (कुल १३) वर्ण का न्यास किया जाना चाहिये।

ऋग्वारुणी ध्रुवास्वाद्या या सा त्रिष्टुब् निगद्यते।
ऋषिर्वशिष्ठत्रिष्टुप् च छन्दो वारीट् च देवता।।
अष्टभिः सप्तभिः षड्भिः पुनस्तावद्भिरक्षरैः ।
षडंगानि विधेयानि तन्त्रमन्त्रसमुदीरितैः।।
अंगुल्यग्रससन्धिपायुशिवसंज्ञाधारनाभिष्वथो
कुक्षौ पृष्ठहृदोरुरोजगलदोःसन्ध्यग्रवक्त्रेषु च।
गण्डघ्राणविलोचनश्रवणयुग्भ्रूमध्यमस्तेषु के
सर्वांगेषु तथा न्यसेद् विशदधीर्वर्णैर्मनूत्थैः क्रमात्।।

(वही, ३३/५६-५८)

ध्यान

वारुणी ऋग्विधान में श्वेतवर्ण के वस्त्राभूषणों से सुशोभित हाथों में पाश, अंकुश, अभय एवं वरदमुद्राधारी, श्वेतवर्ण के कमल पर विराजमान, गौरवर्णी प्रसन्नवदन भगवान् वरुण का ध्यान निम्नांकित स्तुति करते हुए करना चाहिये।

अच्छांशुकाभरणमाल्यविलेपनाढ्यः
पाशांकुशाभयवरोद्यतदोःसरोजः।
स्वच्छारविन्दवसतिः सुसितः प्रसन्नो
भूयाद्विभूतिविधये वरुणश्चिरं वः।। (वही, ३३/५९)

आवरण-पूजा

अष्टदल कमल-कर्णिका में भगवान् वरुण, कर्णिका में ही अंग देवताओं, आठों दलों के अग्रभाग में अष्टनाग, दलों के मध्य में वरुणदेव की सुधा, कुमुदिनी, पूर्णा, वारुणी, विश्वतोमुखी, तरंगिणी, सुरसा, सुशीता तथा व्यापिनी

समानं मनः सह चित्तमेषाम्। समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि स्वाहा"।

"नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः। समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति स्वाहा"।

तद्वदृचं प्रतियोज्य त्रिष्टुपपादांश्च पूर्वसंख्येन।
जुहुयात्सर्पिःसिक्तं पायसमचिरेण कार्यसमवाप्त्यै।। (वही, ३३/५२)

इसी प्रकार त्रिष्टुप् के प्रत्येक पाद के साथ संवादसूक्त ऋचाओं के एक-एक पाद जोड़ कर पूर्वोक्त संख्या में हवन करने से हवनकर्ता की अभिलाषाएं तुरन्त पूर्ण होती हैं।

प्रतिपादमथर्कपादं प्रतियोज्य जुहोतु पूर्ववन्मतिमान्।
तेनाऽभीष्टावाप्तिर्न चिरेण नरस्य हस्तगता।। (वही, ३३/५३)

समाज के साथ संवाद की स्थिति बनाने के लिये त्रिष्टुप् ऋचा के प्रत्येक अक्षर और प्रत्येक पाद के साथ पूर्व संख्या में हवन अथवा जल से तर्पण करना चाहिये।

अक्षरपादत्रिष्टुब्युक्तैः सूक्तैस्तु पूर्वसंख्येन।
जुहुयात्समाजरूपं संवादयितुं प्रतर्पयेद्वाद्भिः।। (वही, ३३/५४)

उल्लिखित सूक्तों को उक्त रीति से साथ-साथ पढ़ते हुए हवन-तर्पण करने वाले साधक के समस्त उद्देश्य पूर्ण होते हैं।

उद्दिश्य यद्यदिह मन्त्रितमो जुहोतु
सूक्तैरमा निगदितैस्त्रिविधैश्च मन्त्रैः।
व्यस्तैर्यथाविभवतो विधिवत्समस्तै-
स्तत्तस्य सिध्यति समग्रमयत्नमेव।। (वही, ३३/५५)

वारुणी ऋग्विधान

ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियन्तो व्यास्मत्पाशं वरुणो मुमोचत्।
अवो वन्माना अदितेरुपस्थाद् यूयं यात स्वस्तिभिः सदा नः।।
(ऋग्वेद ७/८८/७)

इस ऋचा को 'ऋग्वारुणी' कहा जाता है। वारुणी ऋचा के ऋषि वसिष्ठ, छन्दस् त्रिष्टुब् तथा देवता वरुण हैं। ४२ अक्षरों वाली इस ऋचा के क्रमशः आठ

की जानी चाहिये। प्रत्येक हवनमन्त्र के आदि में प्रणव और शक्ति का एवं अन्त में कर्मसंकल्पानुसार स्वाहा या तर्पयामि का प्रयोग भी किया जाना चाहिये। जैसे—

ओं ह्रीं अं आं इं ईं सं समिद्रयुवस वृषन्नग्ने विश्वार्न्य आ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर स्वाहा।
ओं ह्रीं उं ऊ ऋं ॠं संगच्छध्वं सं वदध्वं
सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे
संजानाना उपासते स्वाहा
ओं ह्रीं ऌं ॡं एं ऐं समानो मन्त्रः समितिः
समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन
वो हविषा जुहोमि स्वाहा।
ओं ह्रीं ओं औं अं अः समानी व आकूतिः
समाना हृदयानि वः। समानमस्तु वो मनो
यथा वः सुसहासति स्वाहा।

इसी प्रकार कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग पवर्ग, यवर्ग, शवर्ग एवं ळवर्ग के साथ इन ऋचाओं ३७ आवर्तन करने से हवन संख्या ४४४ पूरी होती है। इस प्रकार के हवन से साधक का कार्य पूर्ण होता है।

जुहुयात्कलाचतुष्कैः प्रत्यृचमायोज्य कादिवर्गचतुष्कैः।
तद्वच्च पयशळाद्यैर्वर्गैः संयोज्य पूर्वसंख्यकं मतिमान्।। (वही, ३३/५१)

इसी प्रकार त्रिष्टुब् मन्त्र के चार पादों में से प्रत्येक के साथ एक-एक ऋचा का संयोजन करके १११ आवर्तनों में घृतयुक्त पायस का हवन करने से कार्य पूर्ण होता है।

जैसे—

"जातवेदसे सुनवाम सोमं सं समिद्युवस वृषन्नग्ने विश्वार्न्य आ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर स्वाहा"।

"अरातीयतो निदहाति वेदः सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते स्वाहा"।

"स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा समानो मन्त्रः समितिः समानी

न्यास का स्वरूप

ब्रह्मणे हृदयाय नमः, विष्णवे शिरसे स्वाहा,
रुद्राय शिखायै वषट्, ईश्वराय कवचाय हुम्,
सदाशिवाय नेत्रत्रयाय वौषट्, सर्वात्मने अस्त्राय फट् ।

ध्यान

संवादसूक्त साधना में श्वेत पद्म के समान सुशोभित चन्द्रमा के मध्य में विराजमान, हाथों में पाश, अंकुश, अभय तथा वरदमुद्रा धारण किये हुए निर्मल चन्द्र और दुग्ध के समान गौर वर्ण, तीन नेत्रों वाले, यज्ञ में संवाद करते हुए देवताओं के मुख अग्निदेव का ध्यान करना चाहिये।

धवलनलिनराजच्चन्द्रमध्ये निषण्णं
करविलसितपाशं सांकुशं साभयंच।
सवरदममलेन्दुक्षीरगौरं त्रिनेत्रं
प्रणमत सुरवक्त्रं मंक्षु संवादयन्तम्।। (वही, ३३/४६)

जप, हवन आवरण-पूजा

संवादसूक्त की साधना में जप की संख्या ४४ हजार तथा हवन संख्या ४ हजार ४ सौ है। हवन दूध एवं भात से किया जाता है । इस सूक्त की साधना के लिये आग्नेय पीठ का निर्माण कर इसके प्रथम आवरण में अंगमन्त्र, द्वितीय में अग्नि की आठ मूर्तियां, तृतीय में इन्द्रसहित दस दिक्पालों की अर्चना की जाती है।

सहस्रकाणां दशकैश्चतुर्भिरथो सहस्रैश्च चतुर्भिरन्वितम्।
जपेन्मनुं सम्यगथाऽभिदीक्षितः पयोऽन्धसान्ते जुहुयाद्दशांशकम्।।
यजेत्पुरांगैश्च तदर्चनाविधौ पुनर्द्वितीयावरणेऽग्निमूर्तिभिः।
अनन्तरंच त्रिदशेश्वरादिभिः क्रमेण वह्निं विधिनेति पूजयेत्।।
(वही, ३३/४७-४८)

संवादसूक्त-साधना में संवादसूक्त के ४ मन्त्रों के साथ मातृकावर्णों का संयोजन कर साधना करने की विधि का भी शंकर ने उद्घाटन किया है। उनके अनुसार १६ कला (स्वर) वर्णों को चार-चार में विभक्त करके प्रत्येक के साथ एक-एक सूक्त का संयोजन करना चाहिये। इसी प्रकार कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग, शवर्ग एवं ळवर्ग में प्रत्येक के साथ एक-एक ऋचा का संयोजन करके ३७ बार मातृकाओं का आवर्तन करके ४४४ की हवन संख्या पूर्ण

संवादसूक्त-विधान

ऋग्वेद के दशम मण्डल के १९१वें सूक्त में पठित निम्नांकित ४ ऋचाएं संवादसूक्त के नाम से जानी जाती हैं। तान्त्रिक विधि से इनकी साधना करने से साधक की समस्त इच्छाएं पूर्ण होती हैं।

संसमिद्युवस वृषन्नग्ने विश्वार्न्य आ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर।। १।।
सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।। २।।
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।। ३।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। ४।।

संवादसूक्त के ऋषि सबलन या संवनन हैं। प्रथम, द्वितीय तथा चतुर्थ ऋचा का छन्दस् अनुष्टुब् तथा तृतीय ऋचा का त्रिष्टुब् है। प्रथम ऋचा के देवता अग्नि तथा शेष तीन ऋचाओं के देवता संज्ञान हैं। संवादसूक्त की तीसरी ऋचा बीज तथा द्वितीय ऋचा शक्ति है।

"सं समिद्युवस इत्याद्यृक्चतुष्टयात्मकसंवादसूक्तविधानं। संवादस्य तृतीया ऋग् बीजम्। द्वितीया शक्तिः। संवादाद्य इति। संवादसंज्ञानाग्निः देवतेत्यर्थः। आग्नेये पीठे पूजा"।

(प्रपंचसारतन्त्र, ३३/४५ पर विवरण)

षडंगन्यास

संवादसूक्त की साधना में ब्रह्मा से हृदय, विष्णु से शिरस्, रुद्र से शिखा, ईश्वर से कवच, सदाशिव से नेत्र तथा सर्वात्मा शब्द से अस्त्रन्यास करना चाहिये।

ब्रह्माख्यो हृदयमनुः शिरश्च विष्णू रुद्रः स्यादिह तु शिखेश्वरश्च वर्म।
नेत्रत्वे भवति सदाशिवस्तथाऽस्त्रं सर्वात्मेत्यथ कथितं षडंगमेवम्।।

(प्रपंचसारतन्त्र, ३३/४५)

के लिये 'त्र्यम्बकं यजामहे····' से और शत्रुओं के विनाश के लिये 'जातवेद सुनवाम····' से आरम्भ करना चाहिये। यह जप प्रतिदिन प्रातःकाल एक वर्ष तक करना चाहिये।

मनुममुमथ शान्त्यै तत्पदाद्यं प्रजप्याद्-
गदगणरहितायाऽप्यायुषेऽनुष्टुबाद्यम्।
विमलमतिररातिध्वंसने त्रिष्टुबाद्यं
दिनमनु दिनवक्त्रे वत्सरं संयतात्मा।। (वही, ३३/४०-४१)

यश, आयुष्य, कामनाओं की पूर्ति तथा जनसामान्य के मनोरंजन की शक्ति प्राप्ति के लिये उपर्युक्त विधि से शताक्षर मन्त्र का जप करना चाहिये।

शताक्षरमनोरयं क्रमः उदीरितः संग्रहा-
द्भजेदमुमतन्द्रितो दिनश एव मन्त्री रहः।
अभीष्टफलसिद्धये सुयशसे च दीर्घायुषे-
ऽप्यशेषजनरंजनाय चिरमिन्दिरावाप्तये।। (वही, ३३/४२)



पाप-नाश के लिये

पापों की शान्ति के लिये एक मास तक प्रतिदिन तिलों से एक-एक हजार हवन पूर्ण करके १२ ब्राह्मणों को विविध रसपूर्ण व्यंजनों से परितृप्त करना चाहिये।

अनुदिनमघशान्त्यै संयतात्मा सहस्रं
प्रतिजुहुत तिलैर्वा मन्त्रविन्मासमेकम्।
अपि दिनकरसंख्यान् भोजयीत द्विजातीन्
विविधरसविशिष्टैर्भक्तितो भोज्यजातैः।। (वही, ३३/३७)

जो साधक प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त होकर प्रतिदिन उक्त तीनों ऋचाओं का सौ-सौ बार जप करता है, वह आरोग्य और श्री-समृद्धि से युक्त होता हुआ सौ वर्षों तक जीवित रहता है। किंबहुना, शताक्षरी मन्त्र का जप करने वाला साधक सबकुछ प्राप्त कर लेता है।

शतं शतं प्रातरतन्द्रितोद्यतो जपेद्द्विजो मन्त्रममुं शताक्षरम्।
आरोग्यजुष्टं बहुलेन्दिरायुतं शतं प्रजीवेच्छरदां सुखेन सः।।
सर्वान् कामानवाप्नोति मन्त्रमेनं जपेत्तु यः।
सर्वं साधयते मन्त्री अस्त्रशस्त्रादिलक्षणम्।। (वही, ३३/३८-३९)

शताक्षर मन्त्र की विशिष्ट साधना

पहले ओंकार, फिर व्याहृतित्रय, तब शताक्षर मन्त्र, फिर व्याहृतित्रय और अन्त में ओंकार लगाकर निम्नांकित रूप में प्रतिदिन जप से लौकिक-पारलौकिक समस्त सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

"ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्, जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुन्दुरितात्यग्निः, त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्, उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्, भूर्भूवः स्वरोम्"

प्रणवव्याहृत्याद्या व्याहृतितारान्तिका च मन्त्रिवरैः।
जप्या शताक्षरी स्यादिह परलोकप्रसिद्धये दिनशः।। (वही, ३३/४०)

कामनानुसार शताक्षरी का जप

शान्ति के लिये शताक्षर मन्त्र का जप 'तत्सवितुर्वरेण्यं.. से, रोगों से मुक्ति

त्रैष्टुब् मन्त्र की जागता, तपिनी, वेदगर्भा, दहनरूपिणी, इन्दुखण्डा, शुम्भहन्त्री, नभश्चारिणी, वागीश्वरी, मदवहा, सोमरूपा, मनोजवा, मरुद्वेगा, रात्रि, तीव्रकोपा, यशोवती, तोयात्मिका, नित्या, दयावती, हारिणी, तिरस्क्रिया, वेदमाता, दमनप्रिया, समाराध्या, नन्दिनी, परा, रिपुविमर्दिनी, षष्ठी, दण्डिनी, तिग्मा, दुर्गा, गायत्री, निरवद्या, विशालाक्षी, श्वासोद्‌वाहा, नादिनी, वेदना, वह्निगर्भा, सिंहवाहा, धुर्या, दुर्विषहा, रिरंसा, तापहारिणी, त्यक्तदोषा तथा निःसपत्ना नामक ४४ शक्तियों की, तदनन्तर छठे, सातवें, आठवें और नौवें आवरण में आठ-आठ करके शिव के आदेश से विश्व को सन्तृप्त करने वाली अनुष्टुप् मन्त्र की रमा, राका, प्रभा, ज्योत्स्ना, पूर्णा, उषा, पूरणी, सुधा, विद्या, विश्वा, सिता, प्रह्वा, सारा, सन्ध्या, शिवा, निशा, आर्द्रा, प्रज्ञा, प्रभा, मेधा, कान्ति, शान्ति, धृति, मति, धरा, उमा, पावनी, पद्मा, शान्ता, अमोघा, जया तथा अमला नामक ३२ वर्ण शक्तियों की अर्चना करके अन्तिम दसवें आवरण में इन्द्र, अग्नि, यम, नैर्ऋत, वरुण, वायु, कुबेर तथा ईशान नामक दस दिक्पालों की सायुध अर्चना करनी चाहिये।

सौरे पीठे पूजा प्रोक्तैरंगैः समावृतिः प्रथमा।
प्रह्लादिन्याद्याभिस्तिस्रः प्रोक्ताः क्रमात् समावृतयः।।
पंचम्यावृतिरुक्ता त्रैष्टुभ इव जागतादिभिस्तदनु।
स्याच्च रमादिभिरावृत्तिचतुष्कमुक्तं दशम्यथेन्द्राद्यैः।।
इति शताक्षरमन्त्रसमर्चना निगदितेह दशावरणायुधैः।
प्रभजतामभिकांक्षितसिद्धये निखिलसंसृतिमोक्षपदाप्तये।।

(वही, ३३/३३-३५)

विभिन्न हवन-वस्तुओं के होम के विभिन्न फल

दीर्घायु तथा लक्ष्मी के लिये

दीर्घायु के लिये दुग्ध से सिक्त अमृता नामक लता के खण्डों से अथवा घी तथा दूध से सिक्त दूर्वा से या केवल घी से, लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये त्रिस्वादु से सिक्त रक्तकमलों से अथवा दिन में विकसित होने वाले रक्तकमलों से अथवा बिल्व से हवन करना चाहिये।

दुग्धाक्तैर्जुहुयात् सहस्रममृताकाण्डैस्तु दीर्घायुषे।
दूर्वाणां त्रितयैस्तथा घृतपयःसिक्तैर्घृतेनैव वा।
लक्ष्म्यै कोकनदैश्च शोणरुचिभिस्त्रिस्वादुयुक्तैस्तथा
रक्तैरुत्पलकैस्तदह्नि विकचैर्बैल्वैः प्रसूनैरपि।। (वही, ३३/३६)

ऋष्याद्याः पूर्वोक्तास्त्रिविधाः स्युर्हृत्त्रयोदशभिर्वर्णैः।
शिर एकादशभिश्च द्वाविंशद्भिस्तथा शिखा कवचम्।।
नयनं पंचदशार्णैः ससप्तभिर्दशभिरस्त्रमंगविधिः।
विन्यासंच मनूनां मन्त्रज्ञः पूर्ववत् क्रमात् कुर्यात्।।

(वही, ३३/२९-३०)

ध्यान

शताक्षरी मन्त्र की साधना में सूर्य, अग्नि तथा चन्द्रमा में परिव्याप्त तेजसूस्रोत परात्पर 'महस्' अर्थात् तेजस्-त्रय में परिव्याप्त शताक्षर वपुष् भगवती कुण्डलिनी का ध्यान किया जाता है।

स्मर्तव्याखिललोकवर्ति सततं यज्जंगमं स्थावरं
व्याप्तं येन च यत्प्रपंचविहितं मुक्तिश्च यत्सिद्धितः।
यद्वा स्यात् प्रणवत्रिभेदगहनं श्रुत्या च यद्गीयते
तद्वः कांक्षितसिद्धयेऽस्तु परमं ज्योतिस्त्रयोत्थं महः।। (वही, ३३/३१)

जप तथा हवन

शताक्षर मन्त्र की सिद्धि के लिये इसका १ लाख जप तथा घृत सहित दौग्धान्न अर्थात् खीर का १० हजार हवन करना चाहिये।

लक्षायतो जपविधिः शताक्षरस्याऽथ होमविधिरुक्तः।
अयुतावधिको द्रव्यं दौग्धान्नं सर्पिषा समायुक्तम्।। (वही, ३३/३२)

आवरण-पूजा

शताक्षर मन्त्र की आवरण-पूजा के लिये अष्टदल कमल और दशावरण सूर्यपीठ का उपयोग किया जाता है। पीठ के मध्य में परंज्योति की स्थापना कर प्रथम आवरण में उक्त गायत्री, त्रिष्टुप् तथा अनुष्टुप् मन्त्रों के अंगमन्त्रों की, इसके बाद के द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ आवरण में गायत्री मन्त्र की चौबीस वर्ण शक्तियों को आठ-आठ में विभाजित करके क्रमशः प्रह्लादिनी, प्रभा, नित्या, विशम्भरी, विलासिनी, प्रभावती, जया तथा शान्ता (द्वितीय में) कान्ता, दुर्गा, सरस्वती, विद्या, विशाला, ईशा, व्यापिनी तथा विमला (तृतीय में) तमोपहारिणी, सूक्ष्मा, विश्वयोनि, जयावहा, पद्मालया, परा, शोभा तथा पद्रूपा (चतुर्थ आवरण में) की पूजा करनी चाहिये।

पंचम आवरण की पूर्वादि चार दिशाओं में ग्यारह-ग्यारह ११×४ करके

वर्णात्मिका पराशक्ति सूर्य, अग्नि और चन्द्र के माध्यम से अपने ज्योतिर्मय स्वरूप को अभिव्यक्त करती है। भगवती की सूर्यात्मक ज्योति—

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्

ऋग्वेद (३/६२/१०) के २४ अक्षरों से निर्मित है।

इसी प्रकार अग्यात्मक स्वरूप—

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुन्दुरितात्यग्निः।।

ऋग्वेद, (१/६६/१) के इन चौवालीस अक्षरों से तथा चन्दात्मिका ज्योतिः

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।

ऋग्वेद (७/५६/१२) के इन बत्तीस अक्षरों से निर्मित है।

ऋग्वेद की इन तीनों ऋचाओं के सम्मिलित रूप को सूर्य, अग्नि और इन्दु रूपात्मक ज्योति का शताक्षरी मन्त्र कहा जाता है।

गायत्रिवर्णपरिपूर्णतनुश्च भानुस्त्रिष्टुब्विशिष्टमहिमा महितः कृशानुः।
आनुष्टुभाक्षरसमग्ररुचिः शशांको दद्युः समुद्यतममी परिवांछितं वः।।

(वही, ३३/२७)

यद्यपि गायत्री मन्त्र में २३ और त्र्यष्टुप् मन्त्र में ४३ अक्षर ही हैं, फिर भी गायत्री मन्त्र में 'वरेण्यं' के स्थान पर 'वरेणियम्' और त्रिष्टुप् के 'स नः पर्षदति' के स्थान पर ' स नः परिषदति' करके ४४ अक्षर माना जाता है।

चतुश्चत्वारिंशत् परिषदित्यस्य पृथक् पाठात्' इति

(शारदातिलक, २१/३४-३७ पर पदार्थादर्श व्याख्या)

शताक्षरी मन्त्र के न्यासादि

शताक्षरी मन्त्र के ऋषि विश्वामित्र, मरीचि कश्यप तथा वशिष्ठ, छन्दस् गायत्री, त्र्यष्टुप् एवं अनुष्टुप् तथा देवता गायत्री, जातवेदस् अग्नि तथा रुद्र हैं। शताक्षरी मन्त्र के क्रमशः प्रथम १३ अक्षरों से हृदय, ११ से शिरस्, २२ से शिखा, २२ से कवच, १५ से नेत्र तथा १७ अक्षरों से अस्त्रन्यास करना चाहिये। मन्त्र के वर्णों का न्यास पृथक्-पृथक् वर्णित इन तीनों मन्त्रों के वर्णन्यास की भांति ही किये जाने चाहिये।

में स्नान कर जल में खड़े होकर सूर्य की ओर मुख करके जो व्यक्ति अनुष्टुप् मन्त्र का १ हजार जप करके दूध से दशांश (१००) हवन करता है, वह आयुष्य और महती लक्ष्मी प्राप्त करता है। लाजा से हवन करने से कन्या को इच्छित वर की प्राप्ति होती है और त्रिमधुरयुक्त दुग्धवृक्षों की समिधाओं का हवन करने से सभी वर्ण साधक के वश में हो जाते हैं।

दुग्धहुताच्छान्तिः स्यात् परकृत्या नश्यति श्रियं लभते।
दधिहोमतोऽन्नवान् स्यात् संबलनकरं च तद्वदन्ति बुधाः।।
दूर्वायुतेन जुहृवन् रोगान्निर्वास्य सर्वमपमृत्युम्।
गर्वितधीरब्दानां विप्रवरः सर्वथा शतं जीवेत्।।
निजजन्मदिने पयोऽन्धसा वा शतवीर्यात्रितयैः पयोघृताक्तैः।
जुहुयाच्च शतं च विंशतिं यः स लभेदायुररोगितां चिराय।।
काश्मर्यदारुसमिधां त्रिशतं समेत-
सर्पिः पयोऽन्नसहितं त्रिदिनं जुहोतु।
विप्रान् प्रतर्प्य च गुरून् परिपूज्य सम्य-
ग्दीर्घं विमुक्तगदमायुरवाप्तुकामः।।
स्नात्वा चाऽर्कमुखोऽम्भसि स्थित इमं मन्त्रं सहस्रं जपे-
दायुष्यं प्रतिपर्व दुग्धहविषा होमो महाश्रीप्रदः।
लाजाभिर्निजवांछिताय हवनात् कन्याशु सन्दीयते
स्वाद्वक्तस्तनजद्रुहोमविधिना वर्णान् वशे स्थापयेत्।।

(वही, ३३/२२-२६)

शताक्षरी मन्त्र-साधना

भगवती पराशक्ति ज्योतिर्मयी है। संसार की व्यक्त और अव्यक्त समस्त ज्योतियां पराशक्ति की ज्योति से ही अभिद्योतित हैं। सूर्य, अग्नि और चन्द्र ये तीन प्रत्यक्ष ज्योतियां वर्णमयी हैं। इन तीनों के शरीर शताक्षरी ऋचा के वर्णों से निर्मित हैं। सूर्य का शरीर गायत्री मन्त्र के २४ वर्णों से, अग्नि का त्रिष्टुप् मन्त्र के ४४ वर्णों से तथा चन्द्रमा का शरीर अनुष्टुप् मन्त्र के ३२ वर्णों से निर्मित है। क्रमशः चौबीस वर्णात्मिका गायत्री, चौवालिस वर्णात्मिका त्रिष्टुप् और बत्तीस वर्णात्मिका अनुष्टुप् ऋक् से निर्मित शरीर वाले सूर्य, अग्नि और चन्द्र की शताक्षरी मन्त्र से साधना करने से साधक अपनी समस्त कामनाओं की प्राप्ति कर सकते हैं।

प्रजपेल्लक्षावृत्त्या द्रव्यैर्जुहुयाज्जपावसाने च।
बिल्वपलाशौ खदिरवटसिद्धार्थदौग्धदुग्धानि।।
दधि दूर्वेति दशैतान्याज्यसमेतानि होमवस्तूनि।
एकैकशः सहस्रं दशभिर्हुत्वा प्रतर्प्य विप्रांश्च।।
भवति नरः सिद्धमनुर्मन्त्रेण च सर्वकर्मकर्ता स्यात्।।

(वही, ३३/१५-१८)

अनुष्टुप् के प्रयोग

लक्ष्मी आदि की प्राप्ति

अनुष्टुप् मन्त्र से बिल्व की समिधा और फल का १० हजार हवन करने से पुष्कल लक्ष्मी, इतने ही हवन पलाश वृक्ष की समिधा और पुष्प से करने पर अपरिमित लक्ष्मी, वट की समिधाओं से हवन करने पर धन-धान्य तथा समृद्धि, खदिर की समिधाओं का हवन करने से तेजस्, बल, पुष्टि और आयुष्य की प्राप्ति होती है। तिलों से १० हजार हवन करने से अपमृत्यु और पापों से मुक्ति, सर्षप से १० हजार हवन करने से अकालमृत्यु और शत्रु का भय नहीं रहता तथा पापों से छुटकारा मिलता है। खीर के हवन से अमित लक्ष्मी, आयुष्य तथा यश मिलता है।

बिल्वैरयुतं हुत्वा महतीं लक्ष्मीमवाप्नुयाद्विप्रः।।
तावद्भिर्द्विजवृक्षैर्द्विजः श्रियं पुष्कलमवाप्नोति।
खदिरसमिदयुतहोमात् तेजोबलपुष्टिमाप्नुयादिष्टाम्।।
न्यग्रोधायुतहोमाद्धनधान्यसमृद्धिमेति न चिरेण।
अयुतं तिलैः प्रजुह्वन्नपमृत्योः पाप्मनो विमुक्तः स्यात्।।
सिद्धार्थायुतहोमैर्वैरिणमपमृत्युमपि विनाशयति।।
पायसहुतेन परमां रमामथायुर्यशो लभेन्मर्त्यः।। (वही, ३३/१८-२१)

दुग्ध के हवन से शान्ति और कृत्यादि का नाश, दही के हवन से प्रभूत अन्न की प्राप्ति होती है। दूर्वासहित दधि या घृत के हवन से रोग और अपमृत्यु की निवृत्ति होती है। अपने जन्मदिन पर खीर, शतावरी, दूध तथा घी का २ हजार हवन करने से आयुष्य और नीरोगता की प्राप्ति होती है। काश्मरी की समिधा से प्रज्ज्वलित अग्नि में जो व्यक्ति घी, दूध और अन्न का हवन तीन दिनों तक उक्त संख्या में करने के पश्चात् अपने गुरु और ब्राह्मणों को धन-धान्य से संतृप्त करता है, वह रोगों से मुक्त होकर दीर्घ आयु प्राप्त करता है। पर्व के दिनों

अनुष्टुप् मन्त्र की ३२ शक्तियों में से प्रथम आठ रमा, राका, प्रभा, ज्योत्स्ना, पूर्णा, उषा, पूरणी तथा सुधा, चौथे आवरण में विश्वा, विद्या, सिता, प्रह्वा, सारा, सन्ध्या, शिवा तथा निशा, पांचवें आवरण में आर्द्रा, प्रज्ञा, प्रभा, मेधा, कान्ति, शान्ति, धृति तथा मति, छठे आवरण में धरा, उमा, पावनी, पद्मा, शान्ता, अमोघा, जया तथा अमला नामक की, सातवें आवरण में इन्द्रादि आठ दिक्पालों की तथा अन्तिम आठवें आवरण में इन्द्रादि दिक्पालों के वज्रादि आयुधों की पूजा की जानी चाहिये।

प्रासादोक्ते पीठे गव्यैर्वा दुग्धतरुकषायैर्वा।
सम्पूर्य कलशमस्मिन् महेशमावाह्य पूजयेद्भक्त्या।।
अंगैराद्यार्काद्यैः पुनरावृतिरष्टभिर्द्वितीया स्यात्।
मन्त्रार्णशक्तिभिः स्युः पुनश्चतस्रो दिशापवज्राद्यैः।।
अर्केन्दुधरणितोयानलेरवियदात्मसंज्ञकास्ते च।।
आनुष्टुभमित्यष्टावरणं प्रोक्तं विधानवरमेवम्।।
रमा राका प्रभा ज्योत्स्ना पूर्णोषा पूरणी सुधा।
विश्वा विद्या सिता प्रह्वा सारा सन्ध्या शिवा निशा।।
आर्द्रा प्रज्ञा प्रभा मेधा कान्तिः शान्तिर्धृतिर्मतिः।
धरोमा पावनी पद्मा शान्ताऽमोघा जयाऽमला।।
द्वात्रिंशदिति निर्दिष्टाः शक्तयोऽनुष्टुभः क्रमात्।
शिवानुभावतो नित्यं जगदाप्याययन्ति याः।। (वही, ३३/६-१४)

इस प्रकार भगवान् महेश की सांगोपांग आवरण-पूजा सम्पन्न हो जाने पर गुरु को चाहिये कि वह शिष्य को उक्त कलश के जल से अभिषिंचित करे और शिष्य गुरु को स्वर्ण, आभूषणादि दक्षिणा प्रदान करे। गुरु द्वारा उपदिष्ट अनुष्टुप् मन्त्र का १ लाख जप पूर्ण करके बिल्व, पलाश, खदिर, वट, सर्षप, खीर, दुग्ध, दधि, दूर्वा तथा घी इन दस वस्तुओं का अन्य हवन सामग्रियों के साथ प्रत्येक से एक एक हजार हवन सम्पन्न करके भोजन तथा दक्षिणादि से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करे। इस विधि से अनुष्टुप् की साधना पूर्ण करने पर मन्त्र सिद्ध हो जाता है और मन्त्रसिद्ध साधक इस मन्त्र के प्रयोग से जो चाहे करने में समर्थ हो जाता है।

इति परिपूज्य महेशं कलशजलैः समभिसेचयेच्छिष्यम्।
कनकांशुकरत्नाद्यैर्गुरुमपि परिपूज्य मनुमतः सिद्ध्यै।।

सुगन्धिं नमः नेत्रेषु, पुष्टिवर्धनम् नमः मुखे,
उर्वारुकम् नमः गले, इव नमः हृदि,
बन्धनात् नमः उदरे, मृत्योः नमः गुह्ये,
मुक्षीय नमः उर्वोः, मा नमः जानुनी,
अमृतात् नमः पादयोः।

त्र्यम्बक पार्वतीपति का ध्यान

अनुष्टुब् उपासना में निर्मल श्वेत पद्म पर पद्मासन में विराजमान, जांघों पर उत्तान स्थिति में रखी दोनों हथेलियों पर पूर्ण कुम्भ, इनके ऊपर के दो हाथों में पुस्तक तथा अक्षमाला, इनके ऊपर के दो हाथों में शाश्वत सुधा से परिपूर्ण कुम्भ-युगल और उनसे ऊपर के दो हाथों में थामे दो घटों से निर्झरित हो रही सुधा की धारा से आप्लावित चन्द्रलेखा-मण्डित जटाजूट से सुशोभित भगवान् त्र्यम्बक का ध्यान करते हुए उनसे प्रार्थना करनी चाहिये कि वे हम सबके लिये कल्याणमयी सौभाग्यलक्ष्मी प्रदान करें ।

अच्छः स्वच्छारविन्दस्थितिरुभयकरांकस्थितं पूर्णकुम्भम्
द्वाभ्यां वेदाक्षमाले निजकरकमलाभ्यां घटौ नित्यपूर्णौ।
द्वाभ्यां तौ च स्रवन्तौ शिरसि शशिकलाबन्धुरे प्लावयन्तौ,
देहं देवो दधानः प्रदिशतु विशदाकल्पजातः श्रियं वः।। (वही, ३३/८)

आवरण-पूजा

अनुष्टुप् साधना में अष्टावरण प्रासादपीठ का उपयोग किया जाता है। प्रासाद पीठ का निर्माण आठ दलों वाले ऐसे कमल के रूप में किया जाता है, जिसमें आठ कमल दलों को तीन वृत्तों से घेरा जाता है और कमल की कर्णिका में प्रासाद बीज 'हौं' लिखकर उसकी नौ शक्तियों के साथ पूजा की जाती है। लेकिन, अनुष्टुप् साधना में अष्टदल कमल की कर्णिका में पंचगव्य अथवा दूध वाले वृक्षों की छाल डाल कर पकाये गये जल से भरे हुए घट की स्थापना करके उसमें भगवान् शिव का आवाहन किया जाता है। अष्टदल कमल की कर्णिका वाले प्रथम आवरण में अनुष्टुप् मन्त्र के पूर्वोक्त पांच अंगमन्त्रों, द्वितीय आवरण में सूर्य, चन्द्र, धरणि, जल, अग्नि, वायु, आकाश तथा यजमान (स्वयं साधक) रूपी शिव की आठ प्रत्यक्ष मूर्तियों, द्वितीय आवरण के बाद के चार आवरणों में से तीसरे में भगवान् महेश्वर के निर्देशानुसार विश्व को संतृप्त करने वाली

ऋष्यादिन्यास

ओं वशिष्ठर्षये नमः शिरसि, ओं अनुष्टुबुछन्दसे नमः मुखे,
ओं रुद्रदेवतायै नमः हृदये, ओं ओं बीजाय नमः गुह्ये,
ओं ह्रीं शक्तये नमः पादौ।

षडंगन्यास

त्र्यम्बकं हृदयाय नमः, यजामहे शिरसे स्वाहा,
सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् शिखायै वषट्,
उर्वारुकमिव बन्धनात् कवचाय हुम्,
मृत्योर्मुक्षीय नेत्रत्रयाय वौषट्,
मामृतात् अस्त्राय फट् ।

मन्त्रवर्णन्यास

त्र्यं नमः पूर्वे शिरसि, म्बं नमः पश्चिमे शिरसि,
कम् नमः दक्षिणे शिरसि, यं नमः उत्तरे शिरसि,
जां नमः मुखे, मं नमः उरसि, हें नमः गले,
सुं नमः कन्धरे, गं नमः नाभौ, न्धिम् नमः हृदि,
पुं नमः पृष्ठे, ष्टिं नमः कुक्षौ, वं नमः गुह्ये,
र्धं नमः गुदायाम्, नं नमः उरुमूले,
उं नमः उरु-अन्ते, र्वां नमः वामजानौ,
रुं नमः दक्षजानौ, कं नमः वामजानुवृत्तौ,
मिं नमः दक्षजानुवृत्तौ, वं नमः वामस्तने,
बं नमः दक्षस्तने, न्धं नमः वामपार्श्वे,
नां नमः दक्षपार्श्वे, न्मृं नमः वामपदे,
त्यों नमः दक्षपादे, मुं नमः वामपाणौ,
क्षीं नमः दक्षपाणौ, यं नमः वामनासापुटे,
मां नमः दक्षनासापुटे, मृं नमः शिरोर्ध्वे,
तात् नमः शिरोधः।

पुनः नीचे से ऊपर की ओर वाला पूर्वोक्त वर्णन्यास करना चाहिये ।

मन्त्रपदन्यास

त्र्यम्बकम् नमः शिरसि, यजामहे नमः भ्रूयुगे,

अक्षरन्यास

अंगन्यास के पश्चात् मन्त्र के ३२ अक्षरों का न्यास क्रमशः अपने सिर के पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, तथा उत्तर की ओर, मुख, वक्षस्थल, गले, कन्धे, नाभि, हृदय, पीठ, कुक्षि, लिंग, गुदा, उरुमूल, उरु के अन्त, वाम जानु, दक्ष जानु, वामजानुवृत्त, दक्षजानुवृत्त, वामस्तन, दक्षस्तन, वामपार्श्व, दक्षपार्श्व, वामपद, दक्षपद, वामपाणि, दक्षपाणि, वामनासापुट, दक्षनासापुट, सिर के निम्न भाग तथा सिर के ऊर्ध्व भाग में ऊपर से नीचे की ओर करना चाहिये। फिर नीचे से ऊपर की ओर के क्रम में चरणों (२), चरणाग्रों (२), चरण सन्धियों (२), गुह्य (१), आधार (१), उदर (१), स्तन (२), हृदय (१), कन्धे (२), बाहु (२), बाहुसन्धि (२), बाह्वग्र (२), आस्य (१), ओष्ठ (२), घ्राण (२), नेत्र (२), कर्ण (२), भ्रू (२), तथा सिर (१) में मन्त्र के ३२ अक्षरों का पुनः न्यास करना चाहिये ।

पदन्यास

अक्षरन्यास के बाद इस मन्त्र के 'त्र्यम्बकम्, यजामहे, सुगन्धिम्, पुष्टि-वर्धनम्, उर्वारुकम्, इव, बन्धनात्, मृत्योर्, मुक्षीय, मा, अमृतात्' इन ११ पदों को क्रमशः सिर, भौह-युग्म, नेत्रयुग, मुख, गल, हृदय, उदर, लिंग, उरुयुग, जानुयुग तथा चरणयुग में न्यस्त कर पदन्यास करना चाहिये।

प्राक्प्रत्यक्याम्यसौम्ये शिरसि च वदनोरोगलांसेषु नाभौ
हृद्देशे पृष्ठकुक्ष्योरथ शिवगुदयोरूरुमूलान्तयोश्च।
जान्वोस्तद्वृत्तयुग्मस्तनतटयुगपार्श्वेषु पत्पाणिनासा-
शीर्षेष्वप्यूर्ध्वतोऽर्णैर्न्यसतु पुनरधस्तोऽपि मन्त्री तथोर्ध्वम्।।
चरणाग्रसन्धिगुह्याधारोदरहृदयकन्धरासु पुनः।
बाह्वोः सन्ध्यग्रास्यौष्ठघ्राणदृक्श्रुतिभ्रूशीर्षेषु ।।
वर्णान् न्यस्य शिरोभ्रूदृग्वक्त्रगलहृदुदरगुह्येषु ।
उर्वो जान्वोः पदयोः पदैश्च मनुवित् क्रमेण विन्यसेत्।।
वशिष्ठादिक्रमेणैव अंगन्यासं समाचरेत्।
वशिष्ठस्त्र्यम्बकश्चैव त्रिनेत्रश्च तथैव च।
अनुष्टुपछन्दसे चेति जातियुक्तेन मन्त्रवित्।। (वही, ३३/४-७)

उक्त उल्लेख के अनुसार उक्त न्यासों का स्वरूप निम्न होगा—

अनुष्टुप् मन्त्र साधना-विधि

आचार्य शंकर ने जिन वैदिक मन्त्रों की तान्त्रिक विधि से साधना का निरूपण प्रपंचसारतन्त्र में किया है, उनमें अनुष्टुप् नामक ऋचा की साधना प्रमुख है। अनुष्टुप् साधना के प्रसंग में ही आचार्य ने त्रिष्टुभ् मन्त्र एवं गायत्री मन्त्र के सम्मिलित रूप शताक्षरी मन्त्र, संवादसूक्त तथा वारुणी ऋचा की साधना-विधियों का भी निरूपण किया है, यद्यपि त्रिष्टुभ् तथा गायत्री मन्त्रों की साधना की विधियों का उन्होंने अलग-अलग पटलों में भी निरूपण किया है। विशेष यह है कि उक्त वैदिक मन्त्रों की साधना-विधियों का निरूपण करते हुए शंकर ने मन्त्रों को लिखा नहीं है। इस विषय में आचार्य पद्मपाद की टिप्पणी है कि मन्त्रों के वैदिक होने के कारण आचार्य शंकर ने उनका उल्लेख नहीं किया है। प्रपंचसारतन्त्र में जहां भी वैदिक मन्त्रों का प्रसंग आया है, शंकर ने उनका केवल संकेत भर किया है, लिखा नहीं, जैसे पंचमन्त्र आदि। बाद के आचार्यों ने तान्त्रिक साधना के प्रसंग में वैदिक मन्त्रों का भी स्पष्ट उल्लेख किया है।

अनुष्टुप् मन्त्र

ऋग्वेद के निम्न मन्त्र को 'अनुष्टुप्' मन्त्र कहा जाता है—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।। (ऋग्वेद, ७-५९-१२)

न्यास

अनुष्टुप् मन्त्र के ऋषि वशिष्ठ, छन्दस् अनुष्टुब्, देवता रुद्र, बीज ओं तथा शक्ति ह्रीं है। त्र्यम्बकं शब्द से आरम्भ होने वाले ३२ अक्षरों में से क्रमशः प्रथम तीन वर्णों से हृदय, चार वर्णों से शिरस्, आठ वर्णों से शिखा, नौ वर्णों से कवच पांच वर्णों से नेत्र तथा तीन वर्णों से अस्त्रन्यास करना चाहिये।

ऋषिरभिहितो वशिष्ठश्छन्दोऽनुष्टुप् च देवता रुद्रः।
त्र्यम्बकपदादिकः स्यान्मनुनाऽमुनैव षडंगक्लृप्तिरिह कथिता।।
त्रिभिस्तु वर्णैर्हृदयं, शिरश्च चतुर्भिरष्टाभिरथो शिखा च।
उक्तं नवार्णैः कवचं तथाऽक्षि पंचार्णकं त्र्यम्बकमस्त्रमाहुः।।

(प्रपंचसारतन्त्र, ३३/२-३)

यो मे सोमगतः पाप्मा पावकेनेह कर्मणा कुबेरस्त्वं देवो राजा जम्भयतु स्तम्भयतु मोहयतु वशयतु मारयतु नाशयतु बलिं तस्मै प्रयच्छतु कृतं मम शुभं मम शिवं मम शान्तिः स्वस्त्ययनं मम।

यो मे ईशानगतः पाप्मा पावकेनेह कर्मणा ईशानस्त्वं देवो राजा जम्भयतु स्तम्भयतु मोहयतु वशयतु मारयतु नाशयतु बलिं तस्मै प्रयच्छतु कृतं मम शुभं मम शिवं मम शान्तिः स्वस्त्ययनं मम।

यो मे अधोगतः पाप्मा पावकेनेह कर्मणा ब्रह्मा त्वं देवो राजा जम्भयतु स्तम्भयतु मोहयतु वशयतु मारयतु नाशयतु बलिं तस्मै प्रयच्छतु कृतं मम शुभं मम शिवं मम शान्तिः स्वस्त्ययनं मम।

यो मे ऊर्ध्वगतः पाप्मा पावकेनेह कर्मणा अनन्तस्त्वं देवो राजा जम्भयतु स्तम्भयतु मोहयतु वशयतु मारयतु नाशयतु बलिं तस्मै प्रयच्छतु कृतं मम शुभं मम शिवं मम शान्तिः स्वस्त्ययनं मम।

यो मे दिवि गतः पाप्मा पावकेनेह कर्मणा सूर्यस्त्वं देवो राजा जम्भयतु स्तम्भयतु मोहयतु वशयतु मारयतु नाशयतु बलिं तस्मै प्रयच्छतु कृतं मम शुभं मम शिवं मम शान्तिः स्वस्त्ययनं मम।

इस प्रकार द्यौ के देवता सूर्यसहित दस दिशाओं के देवताओं को बलि प्रदान करनी चाहिये। इस प्रकार से बलि देने से शत्रु द्वारा प्रेषित कृत्या विनष्ट हो जाती है।

......................बलिं हरेत्।
दशस्वाशासु दिवि च मन्त्रैरेतैर्यथाक्रमम्।।....
एवं दिशासु दशसु देवताभ्यो बलिं हरेत्।
बलावेवं कृते शत्रोराशु कृत्या विनश्यति।। (वही, ३२/५८-६०)



हृदय, शिरस्, शिखा, कवच तथा अस्त्रन्यास करना चाहिये। इस मन्त्र के क्रमशः दो-दो अक्षरों का न्यास भ्रू, ललाट, नेत्रद्वय, गल, बाहुद्वय, हृदय, नाभि, पार्श्वद्वय, कटिद्वय, लिंग तथा पादद्वय में करना चाहिये।

उक्त कृत्यास्त्र को वापस लौटाते समय खड्ग-चर्मधारिणी, कृष्णवर्णा, मुक्तकेशी, दिगम्बरा, दीर्घतीक्ष्णदन्ता, सर्पाभरणा एवं साधक के शत्रुओं का भक्षण कर रही कृत्यादेवी का ध्यान करते हुए 'यां कल्पयन्ति..' मन्त्र से अपामार्ग, राई तथा घी की अलग-अलग १०८-१०८ आहुतियां देनी चाहिये।

यां कल्पयन्त्यपामार्गराजीघृतहर्वींषि च।
पृथगष्टोत्तरशतावृत्त्या हुत्वा....।। (वही, ३२/५८)

तदनन्तर दशों दिशाओं एवं द्यौः के लिये निम्नांकित मन्त्रों से बलि दी जानी चाहिये—

यो मे पूर्वगतः पाप्मा पावकेनेह कर्मणा इन्द्रस्त्वं देवो राजा जम्भयतु स्तम्भयतु मोहयतु वशयतु मारयतु नाशयतु बलिं तस्मै प्रयच्छतु कृतं मम शुभं मम शिवं मम शान्तिः स्वस्त्ययनं मम।

यो मे अग्निगतः पाप्मा पावकेनेह कर्मणा अग्निस्त्वं देवो राजा जम्भयतु स्तम्भयतु मोहयतु वशयतु मारयतु नाशयतु बलिं तस्मै प्रयच्छतु कृतं मम शुभं मम शिवं मम शान्तिः स्वस्त्ययनं मम।

यो मे यमगतः पाप्मा पावकेनेह कर्मणा यमस्त्वं देवो राजा जम्भयतु स्तम्भयतु मोहयतु वशयतु मारयतु नाशयतु बलिं तस्मै प्रयच्छतु कृतं मम शुभं मम शिवं मम शान्तिः स्वस्त्ययनं मम।

यो मे निर्ऋतिगतः पाप्मा पावकेनेह कर्मणा निर्ऋतिस्त्वं देवो राजा जम्भयतु स्तम्भयतु मोहयतु वशयतु मारयतु नाशयतु बलिं तस्मै प्रयच्छतु कृतं मम शुभं मम शिवं मम शान्तिः स्वस्त्ययनं मम।

यो मे वरुणगतः पाप्मा पावकेनेह कर्मणा वरुणस्त्वं देवो राजा जम्भयतु स्तम्भयतु मोहयतु वशयतु मारयतु नाशयतु बलिं तस्मै प्रयच्छतु कृतं मम शुभं मम शिवं मम शान्तिः स्वस्त्ययनं मम।

यो मे वायुगतः पाप्मा पावकेनेह कर्मणा वायुस्त्वं देवो राजा जम्भयतु स्तम्भयतु मोहयतु वशयतु मारयतु नाशयतु बलिं तस्मै प्रयच्छतु कृतं मम शुभं मम शिवं मम शान्तिः स्वस्त्ययनं मम।

सात दिनों तक जारी रखते हुए चतुर्दशी को समाप्त करनी चाहिये। तीन सप्ताहों तक लगातार यह प्रयोग करने से साधक के शत्रु की मृत्यु हो जाती है। यह मारण कर्म समाप्त होने वाली रात्रि को निराहार उपवास करके अगले दिन प्राणायामपूर्वक गायत्री मन्त्र का जप करने से साधक मारण क्रिया से उत्पन्न पाप से मुक्त हो जाता है।

अथवा मारणाकांक्षी साध्यवामांघ्रिपांशुभिः।।
सनिम्बतिलसिद्धार्थव्रणकृत्तैलसंयुतैः।
हिंगुत्रिकटुकोपेतैर्महिषीमूत्रपेषितैः।।
वराहपारावतयोः पुरीषेण समन्वितैः।
एतैर्विमिश्रयित्वा तु लोणं पूर्वोक्तसंख्यकम्।।
पूर्ववत्पुत्तलीं तेन लोणचूर्णेन कारयेत्।
प्राणान् प्रतिष्ठापयेच्च तत्र पूर्वोक्तसंख्यया।।
.....................दक्षिणदिङ्मुखः।
दुर्गां वा भद्रकालीं वा प्रणिपत्य यथोचितम्।।
उपस्थितेऽर्धरात्रे तु सव्यपाणिस्थशस्त्रकः।
वामपादं समारभ्य जुहुयात्पूर्वसंख्यया।।
समापयेद् दक्षपादे विकारेणाऽयसो वशी।
त्रिसप्ताहप्रयोगेण मारयेद्रिपुमात्मनः।।
तस्यां रात्र्यामुपोष्याऽथ परेऽनि तु साधकः।
प्राणायामादिभिरपि गायत्रीजपहोमकैः।।
विमुक्तपातको भूत्वा स पुनर्विहरेद्वशी।। (वही, ३२/४६-५७)

कृत्यास्त्र निवर्तन मन्त्र

परकृत कृत्यास्त्र के प्रयोग के दुष्परिणामों से बचकर उसे प्रयोक्ता के पास वापस कर देने की विधि का निरूपण भी आचार्य शंकर ने प्रपंचसारतन्त्र में किया है। शंकर के अनुसार कृत्यानिवर्तनमन्त्र निम्न है—

यां कल्पयन्ति नोरयः क्रूरां कृत्यां वधूमिव।
तां ब्रह्मणा अपनिर्णुद्म प्रत्यक्कर्तारमृच्छतु।।

पद्मपाद के अनुसार कृत्या के इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्दस् अनुष्टुब्, देवता प्रत्यंगिरा, बीज ओं तथा शक्ति ह्रीं है। ३२ अक्षरात्मक इस मन्त्र के आरम्भ के आठ अक्षरों से हृदय और छह, छह, छह तथा छह अक्षरों से क्रमशः

सप्तमं वामपादं स्यादन्याऽपि स्याद्धुतक्रिया।
सप्त सप्त विभागो वा क्रमादंगेषु सप्तसु।।
एकादशांशभिन्नैर्वा तदंगैः सप्तभिर्हुनेत्।
होमेऽन्यथा वा पूर्वन्तु दक्षिणे चरणं भवेत्।।
द्वितीयो दक्षिणकरस्तृतीयं शिर उच्यते।
वामबाहुश्चतुर्थंतु मध्यादूर्ध्वन्तु पंचमम्।।
अधोभागस्तु षष्ठः स्याद् वामपादस्तु सप्तमः।
हुत्वैवं पूर्वसम्प्रोक्तैरुपस्थाय च मन्त्रकैः।।
अर्चयित्वा दण्डदीर्घं प्रणमेद्धव्यवाहनम्। (वही, ३२/४०-४७)

गुरु-दक्षिणा

मारण कर्म की यह विधि समाप्त कर लेने के अनन्तर साधक को चाहिये कि वह अपने गुरु को स्वर्ण और मुक्तानिर्मित आभूषणों से आभूषित बछड़े वाली लाल गाय, सात कर्ष भार की स्वर्ण मुद्राएं, वस्त्र, अंगूठी आदि आभूषण तथा अन्य धन-धान्य दक्षिणा के रूप में प्रदान कर उन्हें सन्तुष्ट करे। ऐसा करने पर ही साधक को लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

सस्वर्णांच समुक्तां गां शोणां दद्यात् सतर्णकाम्।।
दक्षिणां सप्तकर्षन्तु दद्यान्मारणकर्मणि।
अंशुकं रुचकं धान्यं दत्वा सम्प्रीणयेद् गुरुम्।।
एवं कृतेन मन्त्रीष्टं लभते होमकर्मणा। (वही, ३२/४७-४९)

कुछ अन्य आभिचारिक प्रयोग

मारणकर्म

शत्रु के बाएं पांव की धूल में नीम, तिल, सरसों तथा बहेड़े का तेल, हींग, त्रिकटु (पीपल, सोंठ, कालीमिर्च), सोंठ, शूकर तथा कबूतर की विष्ठा मिला कर इन सबको भैंस के मूत्र में पीसना चाहिये। इसके बाद इस पीठी में चार मुट्ठी समुद्री नमक मिलाकर उस पीठी से साध्य की प्रतिकृति बनाकर पूर्वोक्त संख्या और विधि से उसमें प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये। फिर, आधी रात में दक्षिण दिशा की ओर मुख करके भगवती दुर्गा अथवा भद्रकाली का आवाहन-पूजनादि करके बाएं हाथ में एक तीखा शस्त्र लेकर उस पुतली के क्रमशः बाएं पैर को काट अग्नि में हवन करना आरम्भ करके अन्त में दाएं पैर का हवन करना चाहिये। प्रयोग की यह क्रिया कृष्णपक्ष की अष्टमी को आरम्भ कर चतुर्दशी तक लगातार

तमोमयि महादेवि महादेवस्य सुव्रते।
त्रियामे पुरुषं हुत्वा वशमानय देव्यु(हि)मे।।

दुर्गास्तुति

दुर्गे सर्गादिरहिते दुर्गसंरोधनार्गले।
चक्रशंखधरे देवि दुष्टशत्रु(सत्त्व)भयंकरि।।
नमस्ते दह शत्रून् मे वशमानस्य चण्डिके।
शाकम्भरि महादेवि शरणं मे भवाऽनघे।।

भद्रकाली स्तुति

भद्रकालि भवाभीष्टे भद्रसिद्धिप्रदायिनी।
सपत्नान् मे हन हन दह शोषय तापय ।।
शूलासिशक्तिवज्राद्यैरुत्कृत्योत्कृत्य मारय।
महादेवि महाकालि रक्षाऽस्मानक्षतात्मिके।। (वही, ३२/३२-३६)

प्रतिकृति-छेदन-हवन

मन्त्र प्रयोक्ता को चाहिये कि वह लवण मन्त्र के देवताओं के षोडशोपचार पूजन तथा स्तवन करने के बाद समुद्री लवण से निर्मित पूर्वोक्त पांचवीं पुतली को लोहे के किसी तीखे औजार से क्रमशः दायां पैर, नाभि के ऊपर का भाग, दाएं हाथ, गले से ऊपर का भाग सिर, बायां हाथ, नाभि के नीचे तथा बायें पैर को अलग-अलग सात भागों में अथवा दायां पैर, दायां हाथ, सिर, बायां हाथ, नाभि के ऊपर का भाग, नाभि के नीचे का भाग तथा बायां पैर अलग-अलग उनका स्पर्श करते हुए काट ले, अथवा इन सात भागों में से प्रत्येक को सात-सात भागों में विभक्त कर ले। फिर साध्य का स्मरण करते हुए उक्त पांच ऋचाओं का जप करते हुए उक्त सातों अथवा ४६ हिस्सों की आहुति अग्नि में दे। हवन की क्रिया सम्पन्न हो जाने पर साधक उक्त स्तुतियों से मन्त्र-देवताओं को प्रसन्न कर दण्डवत् प्रणाम करके उन्हें विसर्जित करे।

पुनः प्रतिकृतेरंगसप्तकं निशितायसा।
दक्षपादादिकं छित्त्वा पंचर्चं प्रजपेन्मनुम्।।
साध्यं संस्मृत्य शितधीर्जुहुयात्सप्तसंख्यया।
दक्षिणं चरणं पूर्वं ततो दक्षार्धकं पुनः।।
दक्षहस्तं तृतीयं स्याद्गलादूर्ध्वं चतुर्थकम्।
पंचमं वामहस्तं स्यात् षष्ठं वामार्धमेव च।।

अंगूठों की सन्धियों, पैरों, जंघाओं, घुटनों, उरुओं, गुदा, लिंग, नाभि, जठर, हृदय, दोनों स्तनों, कन्धों, चिबुक, मुख, नासिकाओं, नेत्रों, ललाट तथा सिर में उक्त मन्त्र के २५ वर्णों का न्यास करना चाहिये।

अंगुष्ठसन्धिप्रपदजंघाजानूरुपायुषु।
सलिंगनाभिजठरहृदयेषु स्तनद्वये।।
कन्धराचिबुकास्येषु घ्राणदृक्कर्णयुग्मके।
ललाटशिरसोर्न्यसेत् प्रतिमायां च संघशः ।। (वही, ३२/२६-२८)

न्यासादि के उपरान्त सायंकाल गाय के गोबर से कुण्ड के भीतर-बाहर एवं आसपास लीप कर पश्चिम की ओर मुख करके अग्निदेवता का आवाहन कर साध्य के नक्षत्र वृक्ष की समिधाओं से अग्नि प्रज्ज्वलित कर पूर्वादि दिशाओं में यथाक्रम मन्त्र के उक्त अग्नि आदि चार देवताओं को रजत के पात्र में रखे राजी तथा कमलपुष्प से युक्त जल से अर्घ्य प्रदान करना चाहिये।

उपलिप्तेऽथ कुण्डेऽन्तर्बहिर्गोमयवारिणा।
सान्ध्यसम्मुखमासीन आदध्याद्धव्यवाहनम्।।
प्रज्वाल्य साध्याद्दुतरुकाष्ठैरभ्यर्च्य दिक्क्रमात्।
राजीकुशीतपुष्पादिभिश्चषके राजतादिके।।
देवतां प्रति पाद्यार्घ्यं दत्वा कार्यार्थसिद्धये।
उपतिष्ठेद्हुतस्यादावन्ते मन्त्रैरितीरितैः।। (वही, ३२/२६-३१)

अर्घ्य के बाद निम्नांकित देवस्थापन तथा उपस्थापन मन्त्रों से प्रत्येक देवता का स्तवन करना चाहिये।

देवस्थापन तथा उपस्थापन स्तुति

अग्निस्तुति

त्वमाननममित्रघ्न निशाया हव्यवाहन।
हविषा मत्प्रदत्तेन तृप्तो भव तया सह।।
जातवेदो महादेव तप्तजाम्बूनदप्रभ।
स्वाहापते विश्वभक्ष लवणं दह शत्रुहन्।।

रात्रिस्तुति

ईशे शर्वरि शर्वाणि ग्रस्तं मुक्तं त्वया जगत्।
महादेवि नमस्तुभ्यं वरदे कामदा भव।।

अन्य सुन्दर पुतली का निर्माण कराये। फिर गुरु द्वारा कथित विधान के अनुसार उसमें मन्त्र का १०८ अथवा १००८ बार पाठ करते हुए प्राणप्रतिष्ठा करे। फिर उस प्रतिकृति का स्पर्श करते हुए २५ बार उक्त ऋक्-पंचक का जप करे और प्रतिकृति और अपने अंगों में पूर्वोक्त न्यासादि करे।

पुनः कृष्णाष्टमीरात्रौ पूर्वयामे गते सति।।
रक्तमाल्याम्बरो मन्त्री कृतरक्ताऽनुलेपनः।
सम्यक्कृतलिपिन्यासः प्राणायामादिकृच्छुचिः।।
कुडवं* पोतलवणं सुश्लक्ष्णं परिचूर्णितम्।
दधिक्षौद्रघृतक्षीरैः प्रोक्षयित्वा सुशोधितम्।।
आलोड्य गुडमध्वाज्यैर्विस्पष्टावयवामथ।
तेन पुत्तालिकां मन्त्री चार्वंगीं कारयेद्बुधः।।
तस्यांच स्थापयेत्प्राणान् गुर्वादिशविधानतः।
अष्टोर्ध्वशतसख्यं वा तथाऽष्टोर्ध्वसहस्रकम्।।
ऋक्पंचकं पंचविंशत्संख्यं प्रतिकृतिं स्पृशन्।
जपित्वाऽंगानि विन्यस्येत् स्वांगे प्रतिकृतावपि।। (वही, ३२/१८-२३)

तदनन्तर लवण मन्त्र के २५ वर्णों में से २१ का क्रमशः पहले स्वयं के और पश्चात् प्रतिकृति के सिर, ललाट, दोनों नेत्रों, दोनों कर्णों, दोनों नासिकाओ, मुख, चिबुक, कण्ठ, हृदय, दोनों स्तनों, नाभि, कुक्षि, कटि के दोनों ओर तथा गुह्यांग में न्यास करके शेष ४ वर्णों का न्यास एक- एक करके दोनों उरुओं, दोनों घुटनों, दोनों जंघाओं तथा दोनों पैरों में करना चाहिये।

सतारैश्चिटिमन्त्राणैश्चतुर्विंशतिसंख्यकैः।
शिरोललाटदृक्कर्णनासास्यचिबुकेष्वपि।।
सकण्ठहृदयोरोजनाभिकुक्षिकटीषु च।
मेढ्रपायूरुजान्वग्रजंघाङ्घ्रिषु च विन्यसेत्।।
अधोगुह्यादभेदः स्यादूर्ध्वं भेदो द्विके सति।
आत्मन्येवं प्रविन्यस्य पुनः प्रतिकृतौ न्यसेत्।। (वही, ३२/२४-२६)

इसके बाद विपरीत क्रम में एक साथ स्वयं और प्रतिकृति के पैरों के

* पलं प्रकुंचकं मुष्टिः कुडव स्तच्चतुष्टयम्।
चत्वारः कुडवाः प्रस्थः चतुश्प्रस्थमथाढकम्।
अष्टाढको भवेद्रोणो द्विद्रोण सूर्प उच्यते।

की साधना श्रेष्ठ मानी जाती है। साधना का आरम्भ कृष्णपक्ष तृतीया को किसी पवित्र स्थान में दीक्षित होकर मन्त्र के जप के साथ करना चाहिये।

जप पूर्ण होने पर उस स्थान पर त्रिकोण के बीच एक हाथ गहरा कुण्ड बनाना चाहिये। इसके बाद साध्य की ४ पुतलियां या प्रतिकृतियां बनवानी चाहिये। इनमें से एक साध्य के नक्षत्रवृक्ष की लकड़ी, दूसरी शाली नामक धान के चावलों की पीठी, तीसरी कुम्हार के हाथ लाई गई मिट्टी और चौथी मधुमक्खियों के छत्ते से प्राप्त मोम से बनवानी चाहिये। तदनन्तर इन प्रतिकृतियों के हृदयस्थल पर साध्य का नाम लिखकर साध्य के प्राणों को आकर्षित करके पुत्तलियों में विधिपूर्वक प्रतिष्ठित करना चाहिये। इसके उपरान्त उक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित उन प्रतिमाओं में से लकड़ी से निर्मित पुतली को उत्तान दशा में उक्त कुण्ड के अन्दर, शाली के पिष्ट से निर्मित पुतली को आसन के नीचे मिट्टी की प्रतिकृति को पांव के नीचे दबाकर मोम की पुतली को उक्त कुण्ड के ऊपर अधर में लटका देना चाहिये।

वह्निरात्री वरे स्यातां वश्याकर्षणकर्मणो।
दुर्गाभद्रे तथा देव्यौ शस्ते मारणकर्मणि।।
आरभ्य कर्मकृन्मन्त्री तृतीयां कृष्णपक्षजाम् ।
सन्दीक्षितो भवेत्पूते मन्दिरे मन्त्रजापवान्।।
निखन्या त्तत्र कुण्डं च दोर्मात्रं त्र्यस्रमेखलम्।
चतुष्कं सुन्दराकारं पुत्तलीनांच कारयेत्।।
एकां साध्यर्क्षवृक्षेण शालीपिष्टेन चाऽपराम्।
चक्रिहस्तमृदा चाऽन्यां मधूच्छिष्टेन चाऽपराम्।।
तासु हृद्देशलिखितसाध्याख्यासु समाहितः।
सम्यक् संस्थापयेत्प्राणान् साध्यादानीय साधकः।।
उत्तानां दारवीं कुण्डे खनेन्मन्त्राभिमन्त्रिताम्।
पिष्टजां विष्टरस्याऽधः पादस्थाने च मृण्मयीम्।।
लम्बयेदम्बरे सिक्थमयीमूर्ध्वमधोमुखीम्।। (वही, ३२/१२-१८)

तदनन्तर कृष्णपक्ष की अष्टमी को रात्रि का पूर्व प्रहर समाप्त होने अर्थात् आधी रात बीत जाने पर साधक को चाहिये कि वह लाल रंग के वस्त्राभूषण आदि से अलंकृत होकर प्राणायाम, वर्णान्यास आदि सम्पन्न करके एक कुरुआ (चार मुट्ठी) शुद्ध समुद्री नमक का चूर्ण बनाकर उसमें दही, मधु, घृत तथा दूध का प्रोक्षण मोयन देकर गुड़, मधु तथा घी में गूंद कर स्पष्ट अवयवों वाली एक

की साधना श्रेष्ठ मानी जाती है। साधना का आरम्भ कृष्णपक्ष तृतीया को किसी पवित्र स्थान में दीक्षित होकर मन्त्र के जप के साथ करना चाहिये।

जप पूर्ण होने पर उस स्थान पर त्रिकोण के बीच एक हाथ गहरा कुण्ड बनाना चाहिये। इसके बाद साध्य की ४ पुतलियां या प्रतिकृतियां बनवानी चाहिये। इनमें से एक साध्य के नक्षत्रवृक्ष की लकड़ी, दूसरी शाली नामक धान के चावलों की पीठी, तीसरी कुम्हार के हाथ लाई गई मिट्टी और चौथी मधुमक्खियों के छत्ते से प्राप्त मोम से बनवानी चाहिये। तदनन्तर इन प्रतिकृतियों के हृदयस्थल पर साध्य का नाम लिखकर साध्य के प्राणों को आकर्षित करके पुत्तलियों में विधिपूर्वक प्रतिष्ठित करना चाहिये। इसके उपरान्त उक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित उन प्रतिमाओं में से लकड़ी से निर्मित पुतली को उत्तान दशा में उक्त कुण्ड के अन्दर, शाली के पिष्ट से निर्मित पुतली को आसन के नीचे मिट्टी की प्रतिकृति को पांव के नीचे दबाकर मोम की पुतली को उक्त कुण्ड के ऊपर अधर में लटका देना चाहिये।

वह्निरात्री वरे स्यातां वश्याकर्षणकर्मणो।
दुर्गाभद्रे तथा देव्यौ शस्ते मारणकर्मणि।।
आरभ्य कर्मकृन्मन्त्री तृतीयां कृष्णपक्षजाम् ।
सन्दीक्षितो भवेत्पूते मन्दिरे मन्त्रजापवान्।।
निखन्या त्तत्र कुण्डं च दोर्मात्रं त्र्यस्रमेखलम्।
चतुष्कं सुन्दराकारं पुत्तलीनांच कारयेत्।।
एकां साध्यर्क्षवृक्षेण शालीपिष्टेन चाऽपराम्।
चक्रिहस्तमृदा चाऽन्यां मधूच्छिष्टेन चाऽपराम्।।
तासु हृद्देशलिखितसाध्याख्यासु समाहितः।
सम्यक् संस्थापयेत्प्राणान् साध्यादानीय साधकः।।
उत्तानां दारवीं कुण्डे खनेन्मन्त्राभिमन्त्रिताम्।
पिष्टजां विष्टरस्याऽधः पादस्थाने च मृण्मयीम्।।
लम्बयेदम्बरे सिक्थमयीमूर्ध्वमधोमुखीम्।। (वही, ३२/१२-१८)

तदनन्तर कृष्णपक्ष की अष्टमी को रात्रि का पूर्व प्रहर समाप्त होने अर्थात् आधी रात बीत जाने पर साधक को चाहिये कि वह लाल रंग के वस्त्राभूषण आदि से अलंकृत होकर प्राणायाम, वर्णान्यास आदि सम्पन्न करके एक कुरुआ (चार मुट्ठी) शुद्ध समुद्री नमक का चूर्ण बनाकर उसमें दही, मधु, घृत तथा दूध का प्रोक्षण मोयन देकर गुड़, मधु तथा घी में गूंद कर स्पष्ट अवयवों वाली एक

अनेक दैत्यों का विनाश करने वाली तीक्ष्ण रश्मियों वाली भगवती कात्यायनी दुर्गा अग्निवर्णा हैं। इनके हाथों में कमल, चक्र, शंख तथा त्रिशूल विराजमान हैं। इनके तीन नेत्र हैं तथा सिर पर किरीट सुशोभित है।

लवणमन्त्र की चतुर्थ देवता भद्रकाली हैं। तीखी लम्बी दन्तावलि, तीन नेत्र, ऊर्ध्वकेश, हाथों में कपाल, परशु, त्रिशूल तथा डमरू, घने गहरे काले बादलों-सा शरीर, घन-घनाती हुई किंकणियों की माला आदि से सुशोभित भगवती भद्रकाली का स्वरूप बड़ा ही रौद्र है। ये अपने साधकों को अमित धन-धान्य से परिपूर्ण करने वाली हैं।

अरुणोऽरुणपंकजसन्निभः स्रुवशक्तिवराभययुक्तकरः।
अमितार्चिरजात्तगतिर्विलसन्नयनत्रितयोऽवतु वो दहनः।।
नीलतरांशुककेशकलापा नीलतनुर्निविडस्तनभारा।
सांकुशपाशसशूलकपाला यामवती भवतोऽवतु नित्यम्।।
करकमलविराजच्चक्रशंखासिशूला
परिलसितकिरीटा पातितानेकदैत्या।
त्रिनयनलसितांगी तिग्मरश्मिप्रकाशा
पवनसखनिभांगी पातु कात्यायनी वः।।
सुरौद्रसितदंष्ट्रिका त्रिनयनोर्ध्वकेशोल्वणा
कपालपरशूल्लसड्डमरुकत्रिशूलाकुला।
घनाघननिभा रणद्रुचिरकिंकिणीमालिका
भवद्विभवसिद्धये भवतु भद्रकाली चिरम्।। (वही, ३२/६-६)

मन्त्रप्रयोग का अधिकारी

लवणमन्त्र के आकर्षण एवं मारणादि कर्मों को आरम्भ करने से पूर्व प्रयोगकर्ता को पहले स्वयं को प्रयोग के लिये सक्षम बनाना चाहिये। इसके लिये 'लवणाम्भसि..' आदि ऋचाओं का योग करके उक्त चिटि चिटि... आदि लवण मन्त्र का तीन हजार जप करके घृतयुक्त हवि से तीन सौ हवन करना चाहिये।

अयुतं नियतो मन्त्री मन्त्रमृक्पंचकान्वितम्।
प्रजपेत्रिसहस्रं वा सम्यगेनं समाहितः।।
दशांशेन हुनेत्सिद्ध्यै हविषा घृतसंयुजा।
एवं कृते प्रयोगाऽर्हो मन्त्री भूयान्न चान्यथा।। (वही, ३२/१०-११)

आकर्षण एवं वशीकरण के लिये अग्नि, मारण कर्म में दुर्गा तथा भद्रकाली

लवणस्य पृथिवी माता लवणस्य वरुणः पिता।।

हृदयाय नमः

लवणे हूयमाने तु पुनः कुतो निद्राकुतो रतिः।

लवणः पचति पाचयति। लवणं छिन्दति भिन्दति।

अमुकस्य दह गात्राणि दह मासं दह त्वचम्।।

शिरसे स्वाहा

दह त्वगसृग्मांसमेदोस्थिभ्यो मज्जिकां दह

यदि वसति योजनशते नदीनां वा शतान्तरे।।

शिखायै वषट्

तं दग्ध्वा नय मे शीघ्रमग्रे लवणस्य तेजसा

लोहप्राकारे नगरे कृष्णसर्पवृतार्गले

अत्रैव वशमायातु लवणमन्त्रपुरष्कृतः।।

कवचाय हुं

या ते रात्रिः शल्यविद्धस्य शूलाग्रारोपितस्य च।

या ते रात्रिर्महारात्रिः सा ते रात्रिर्महानिशा।।

अस्त्राय फट्

अथवा

ओं चिटि चिटि हृदयाय नमः, ओं चण्डालि शिरसे स्वाहा,

ओं महाचण्डालि शिखायै वषट्,

ओं अमुकं* मे कवचाय हुम्,

ओं वशमानय नेत्रत्रयाय वौषट्, ओं स्वाहा अस्त्राय फट्

लवणमन्त्र के देवता

लवणमन्त्र की साधना में इस मन्त्र के देवता अग्नि, रात्रि दुर्गा तथा भद्रकाली हैं। अग्नि रक्तकमल की भांति रक्ताभ त्रिनेत्र, हाथों में स्रुवा, शक्ति, अभय तथा वरदमुद्रा धारण करने वाले, अज अर्थात् बकरे पर विराजमान अमित आभा वाले हैं।

रात्रि या यामवती अत्यधिक कृष्णवर्णा हैं। इनके वस्त्र एवं केश भी काले हैं। रात्रि के उरोज या स्तन परस्पर सटे हुए एवं भारी हैं। ये अपने हाथों में अंकुश, पाश, त्रिशूल तथा कपाल धारण करती हैं।

* साध्य का नाम

या ते रात्रिः शल्यविद्धस्य शूलाग्रारोपितस्य च।
या ते रात्रिर्महारात्रिः सा ते रात्रिर्महानिशा।।

(वही, ३२/१-३ पर विवरण)

लवण मन्त्र के ऋषि अंगिरा, छन्दस् अनुष्टुप्, देवता अग्नि, रात्रि, दुर्गा एवं भद्रकाली, बीज क्रों तथा शक्ति ह्रीं हैं। इस मन्त्र की साधना में उक्त पांच ऋचाओं से पंचांगन्यास अथवा विद्यामन्त्र अर्थात् चिटिमन्त्र के २४ वर्णों में से क्रमशः पांच, तीन, पांच, चार, पांच तथा दो अक्षरों के आदि में प्रणव लगाकर षडंगन्यास करना चाहिये।

ऋग्भिराभिस्तु पंचांगं पंचभिर्वा समीरितम्।
विद्याक्षरैः षडंगं वा प्रणवाद्यैर्निगद्यते।।
पंचभिश्च त्रिभिरपि पंचभिः करणाक्षरैः।
सपंचभिर्युगार्णेन जातियुक्तैः समीरितम्।।
अंगिरा स्यादृषिश्छन्दोऽनुष्टुप् त्रिष्टुम् च देवताः।
अग्नीरात्रिस्तथा दुर्गा भद्रकाली समीरिता।। (वही, ३२/३-५)

चौबीस अक्षरों वाला विद्यामन्त्र (चिटिमन्त्र) निम्न है—

ओं चिटि चिटि चण्डालि महाचण्डालि अमुकं* मे
वशमानय स्वाहा

पद्मपाद के अनुसार इस मन्त्र के आदि में 'ओं आं ह्रीं क्रों' का योग करना चाहिये। इस प्रकार न्यासों का स्वरूप निम्न होगा—

ऋष्यादिन्यास

ओं अंगिरसे ऋषये नमः (शिरसि),
ओं अनुष्टुब्छन्दसे नमः (मुखे),
ओं अग्निरात्रिदुर्गाभद्रकालीदेवताभ्योः नमः (हृदये),
ओं क्रों बीजाय नमः (गुह्ये),
ओं ह्रीं शक्तये नमः (पादयोः)।

पंचांगन्यास

लवणाम्भसि तीक्ष्णोऽसि उग्रोऽसि हृदयं तव

* 'अमुकस्य' शब्द के स्थान पर साध्य के नाम का प्रयोग करना चाहिये, जैसे-मोहनस्य दह.......' या 'तुहिनायाः' आदि।

लवण मन्त्र-साधना

वशीकरण प्रयोग के लिये साधना में लवणमन्त्र को बहुत प्रभावशाली माना जाता है। इसकी विधिपूर्वक साधना करके साधक समस्त संसार को अपने वश में कर सकता है। आचार्य शंकर ने भी अपने तान्त्रिक साधना ग्रन्थ 'प्रपंचसारतन्त्र' में लवण मन्त्र की साधना में इसके जप-होमादि की विधि और इससे प्राप्त होने वाली शक्तियों का निरूपण किया है। उन्होंने अथर्वोक्त 'लवणाम्भसि...' आदि पांच ऋचाओं वाले लवण मन्त्र का उल्लेख करते हुए इसके ऋष्यादिक-न्यासों का भी विवरण दिया है।

लवणाम्भसि चेत्याद्या द्वितीया लवणेति च।
दहेति तृतीया स्यात्तं दग्ध्वेति च चतुर्थ्यपि।
ऋक्पंचमी च या ते स्याद्यथा प्रोक्तमथर्वणि।।

(प्रपंचसारतन्त्र, ३२/२-३)

शंकर के 'लवणम्भसि चेत्याद्या... 'इत्यादि अथर्वोक्त ५ लवण मन्त्रों का उल्लेख करते हुए स्पष्ट किया है कि इन मन्त्रों के आरम्भ में तार, पाश, शक्ति, अंकुश बीजों तथा 'यं लं वं' का योग किया जाना चाहिये।

तदनुसार लवण मन्त्र निम्न है—

ओं आं ह्रीं क्रों यं लं वं
लवणाम्भसि तीक्ष्णोऽसि उग्रोऽसि हृदयं तव
लवणस्य पृथिवी माता लवणस्य वरुणः पिता।
लवणे हूयमाने तु पुनः कुतो निद्राकुतो रतिः।
लवणं पचति पाचयति। लवणं छिन्दति भिन्दति
अमुकस्य दह गात्राणि दह मासं दह त्वचम्।
दह त्वगसृग्मांसमेदोऽस्थिभ्यो मज्जिकां दह
यदि वसति योजनशते नदीनां वा शतान्तरे।
तं दग्ध्वा नय मे शीघ्रमग्रे लवणस्य तेजसा
लोहप्राकारे नगरे कृष्णसर्पवृतार्गले
अत्रैव वशमायातु लवणमन्त्रपुरष्कृतः।

संशुद्धे पंचगव्ये सुमतिरथ विनिःक्षिप्य ताः कुम्भसंस्था
मन्दाग्नौ मन्त्रजापी द्विजतरुसमिधा भर्जयेत्कार्यहेतोः।।
एवं मृदुपलयोरधः संस्थापयन्ते सपंचगव्यास्ताः।।
वसुधाविप्रतिपत्तिक्षयंच पुष्टिं च कुर्वते क्रमशः।। (वही, ३१/६०-६८)

समृद्ध-लक्ष्मी-प्राप्ति हेतु

तपाये और शाण पर तराशे गये कुम्भ की भांति कान्तिवाली चक्र, शंख, गदा तथा कमलधारणी दुर्गा का ध्यान करते घृत-दुग्ध मिश्रित भात (खीर) अथवा त्रिमधुर युक्त धान, अन्न, दूध एवं दूधवाले वृक्षों की समिधाएं, घृत के साथ उक्त संख्या में हवन करने से भगवती दुर्गा प्रभूत लक्ष्मी, समृद्धि, ग्रह, नक्षत्र, गिरि, ग्राम, वन से परिपूर्ण धरती ही नहीं साधक जो कुछ भी चाहता है, प्रदान करती हैं।

रथचरणदरगदाम्बुजहस्ता निष्टप्तशातकुम्भनिभा।
सघृतपयोऽन्धोहोमान्महतीं लक्ष्मीं समावहेद्दुर्गा।।
व्रीहिभिरन्नैः क्षीरैः समिद्भिरपि दुग्धवीरुधामाज्यैः।
मधुरत्रयमधुरैर्महतीमृद्धिं करोति हुतविधिना।।
यद्यद्वांछति पुरुषस्तत्तदमुष्य प्रभावतः साध्यम् ।
सग्रहनक्षत्राढ्यां सगिरिपुरग्रामकाननां वसुधाम्।। (वही, ३१/६६-१०१)

उपर्युक्त विधियों से भगवती त्रिष्टुभा दुर्गा की उपासना करने वाले साधक में वह शक्ति आ जाती है कि वह आवश्यक होने पर इस आग्नेय मन्त्र का प्रयोग करके बिना किसी विशेष प्रयत्न के ही सागर में रहने वाले सर्पों, मत्स्यों, पत्थरों आदि को जला सकता है। इसलिये साधक को चाहिये कि वह भगवती को प्रसन्न करने के लिये इस मन्त्र की भक्ति के साथ विधिपूर्वक साधना करे।

साहिझषोपलमुदधिं दहति हि मतिमानयत्नमेतेन।।
एवं प्रोत्थापयति च मन्त्रेणाऽनेन निशितधीर्मन्त्री।।
पुसां केन कियद्वा मन्त्रस्याख्यायतेऽस्य सामर्थ्यम्।।
तस्मादेनं मनुवरमभीष्टाप्तये संयतात्मा
जप्यान्नित्यं सहुतविधिमप्यादरादर्चयीत।
भक्त्या कुर्यात्सुमतिरभिषेकादिकं कर्मजातं
कर्तुं वाऽन्यत् प्रवणमतिरत्रैव भक्तः सदा स्यात्।।

(वही, ३१/१०१-१०३)



है उन्हें तथा लोकपालों तथा उनके आयुधों को उनके मन्त्रों से बलि प्रदान करनी चाहिये।

त्रिष्टुभा शक्ति और उसके आवरण देवताओं के पूजन के उपरान्त पलाश की समिधा से अग्नि प्रज्वलित करके जनन आदि संस्कारोंसहित अग्नि की स्थापना कर जातवेद मन्त्र का पाठ करते हुए उस बालुका-राशि को भूनना चाहिये। इसके बाद पंचगव्ययुक्त उस बालुकारूपी हवि को सोलह-सोलह कुडुबक (कुरुआ ४ सेर) परिमाण में पलाश से निर्मित कुम्भों में डाल कर मध्य तथा आठों दिशाओं में निर्धारित स्थानों पर गाड़ देना चाहिये। जिस शत्रुदेश की सीमा में यह बालुकाराशि उक्त विधि से गाड़ी जायगी, उस देश के नगर गांव की तरह बन जायंगे अर्थात् उजड़ जायंगे।

बालुका-विधान की भांति ही मृत्तिका और उपल अर्थात् प्रस्तर विधान भी सम्पादित किये जा सकते हैं। इस प्रकार के रक्षा-विधान से जहां शत्रु के नगरादि नष्ट होते हैं वहीं प्रयोक्ता के ग्राम, पुर तथा राष्ट्र की रक्षा होती है तथा उसके समस्त भूमि-विवाद की समाप्ति तथा साधक की हर प्रकार की समृद्धि होती है।

सिकताचरुगव्याश्मकमृदां प्रतिष्ठा विधीयते सिद्धयै।
प्रस्थाढकघटमाना गृहपुरराष्ट्राभिगुप्तये सिकताः।।
मध्येऽष्टाशान्तासु च कुण्डानामारचय्य नवकमपि।
विधिना निवपेत् क्रमशः सिंहधनुश्छागयायिनि दिनेशे।।
तिथिषु च कालाष्टम्यां भेषु विशाखाग्निमूलभाग्ये(गे)षु।
वारेषु मन्दवाक्पतिवर्जाः सर्वे प्रशस्यन्ते तथा।।
हस्तश्रवणमघासु प्राजापत्ये च कर्म कुर्वीत।
द्वादशसहस्रसंख्यं प्रजपेद् गायत्रमपि यथा प्रोक्तम्।।
मध्ये च मूलमनुना तदायुधैरष्टदिक्षु चक्राद्यैः।
सकपालान्तैः पृथगपि संस्थापनकर्म निगदितं विधिवत्।।
तास्ताश्च देवता अपि परिपूज्य यथाक्रमेण मन्त्रितमः।
कुर्याद्बलिं दिनग्रहकरणेभ्यो लोकपालराशिभ्यः।।
सिकताषोडशकुडवं ब्रह्मद्रुमभाजनेऽन्नगव्याक्तम्।
निर्वपति यदि विधिना तं देशं ग्रामं करोति चतुरब्दात्।।
अर्केऽजस्थेऽब्धिगायामपरिमितजलायां समादाय शुद्धाः
सम्यक् संशोषयित्वातपमनु सिकताः शूर्पकोणैर्विशोध्य।

ब्रह्मद्रुमफलकान्ते मन्त्रितमः सप्तसप्तकोष्ठयुते।
कोणोदराणि हित्वा मायाबीजं सकामं मध्यगते।।
विलिखेत्क्रमेण मन्त्राक्षरांश्च शिष्टेषु तेषु कोष्ठेषु।
तत्र मरुतः प्रतिष्ठां विधाय निधाय वह्निमपि जुहुयात्।।
आज्येनाऽष्टसहस्रं फलकोपरि सम्यगात्तसम्पातम्।
विप्रतिपत्तिधरायां निखनेन्नश्यन्त्युपद्रवाः सद्यः।। (वही, ३१/८७-८६)

सीमा रक्षा प्रयोग

आचार्य शंकर ने गृह, ग्राम, नगर, देश और राष्ट्र की रक्षा के लिये बालुका-हवि, पंचगव्य, मृदा और उपल विधान का निरूपण किया है। गृह की रक्षा के लिये १ प्रस्थ* (१६ मुटठी), नगर की रक्षा के लिये १ आढ़क (४ प्रस्थ) तथा राष्ट्र की रक्षा के लिये १ घट अर्थात् द्रोण (१६ प्रस्थ) सिकता के उपयोग करने का निर्देश देते हुए शंकर ने बताया है कि मेष, सिंह, धनु में से किसी भी राशि में सूर्य के आने पर, कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि, विशाखा अग्नि, मूल, हस्त, श्रवण और मघा तथा भग नक्षत्रों, शनि तथा वृहस्पति छोड़कर अन्य किसी भी दिन उक्त रक्षा-विधान का आरम्भ किया जा सकता है।

सूर्य जब मेष राशि में हो, उस समय प्रभूत जल से परिपूर्ण समुद्रगामिनी किसी नदी से सिकता अर्थात् बालू लाकर उसे धूप में सुखा कर सूप से फटक अच्छी प्रकार स्वच्छ कर लेना चाहिये। पुनः जिस ग्राम, नगर या राष्ट्र की रक्षा का विधान करना हो, उसकी सीमा की आठों दिशाओं और मध्य में नौ कुण्डों का निर्माण करना चाहिये। फिर वहां आग्नेय गायत्री मन्त्र की साधना के प्रसंग में लिखित विधि के अनुसार १२ हजार आग्नेय गायत्री मन्त्र के जप से अभिमन्त्रित उक्त बालुका राशि को नौ भागों में विभक्त कर उक्त कुण्डों में स्थापित पंचगव्यों से भरे घटों में डाल देना चाहिये। इसके बाद बीच वाले घट में मूल जातवेद मन्त्र से त्रिष्टुभा शक्ति का आवाहन-प्राणप्रतिष्ठादि कर्म सम्पादित करके आठों दिशाओं वाले घटों में त्रिष्टुभा शक्ति के चक्र, शंख, कृपाण खेट, बाण, धनुष, त्रिशूल तथा कपाल नामक आठ आयुधों की 'चक्राय नमः' इत्यादि मन्त्रों से पूजा करके जिन दिनों, ग्रहों, नक्षत्रों, करणों, राशियों में यह प्रयोग आरम्भ किया गया

* पलं प्रकुंचकं मुष्टिः कुडवस्तच्चतुष्टयम् ।
चत्वारः कुडवाः प्रस्थः चतुश्प्रस्थमथाढकम् ।
अष्टाढको भवेद्रोणो द्विद्रोण सूर्प उच्यते ।।

नामक पुष्प के रस अर्थात् पुष्प रस-मिश्रित नमक का ४४ बार हवन करने से शत्रु का त्वरित द्रावण अर्थात् उच्चाटन होता है।

विधिवदभिज्वाल्याऽनलमन्वहमाराध्य गन्धपुष्पाद्यैः।
सन्ध्यासु जपाच्च मनुरयमाकांक्षितसर्वसिद्धिकल्पतरुः।।
कुसुमरसलुलितलोणैर्वारुणवदनो जुहोतु सन्ध्यासु।
मन्त्रार्णसंख्यमग्नेरैक्येन द्रावयेदरीनचिरात्।। (वही, ३१/८२-८३)

रक्षण

पंचगव्य में शुद्ध चावलों को पकाकर हवि तैयार कर घृत के साथ आठ हजार हवन करने के पश्चात् उस हवि का सम्पात करने और अवशिष्ट सम्पात को खाने से साधक की रक्षा होती है। हवन और प्राशन से बचे हुए उस सम्पात को आंगन, घर और द्वार पर गाड़ने से दूसरों के द्वारा प्रेषित कृत्या नष्ट हो जाती है अथवा कर्ता के पास वापस जाकर उसे ही समूल नष्ट कर देती है। इस प्रयोग से उस साधक को यह शक्ति प्राप्त हो जाती है कि उसके दृष्टिपात-मात्र से पीड़ादायक ग्रह भाग जाते हैं।

शुद्धैश्च तण्डुलैरथ हविरपि निष्पाद्यपंचगव्यमपि।
सघृतेन तेन जुहुयादष्टसहस्रं समेतसम्पातम्।।
प्राशितसम्पातस्य स्याद्रक्षा सर्वथैव साध्यस्य।
प्रांगणमन्दिरयोरपि निखनेत् द्वारेऽवशिष्टसम्पातम्।।
कृत्या नश्यति तस्य वीक्षितेन ग्रहादयो भीत्या।
कर्तारमेति कुपिता कृत्या सर्वात्मना च नाशयति।।(वही, ३१/८४-८६)

भू-विवादशमन यन्त्र

पलाशवृक्ष के फलक पर पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर की ओर आठ-आठ रेखाएं खींचने से सप्त सप्तक अर्थात् ४६ कोष्ठक बनाकर उन कोणों के मध्य वाले कोण में माया बीज 'ह्रीं' लिखकर उसके बीच साध्य का नाम और कर्म अंकित करना चाहिये। फिर इस यन्त्र के कोणों वाले चार कोष्ठों को छोड़ शेष ४४ कोष्ठों में जातवेद मन्त्र के ४४ वर्णों को लिखना चाहिये। तदनन्तर इस यन्त्र में प्राणप्रतिष्ठा कर, पास ही अग्नि का स्थापन-पूजन सम्पन्न करके घृत से १ हजार ८ बार हवन करके पलाश-फलक पर अंकित उक्त यन्त्र पर घृत-सम्पात से उस फलक को लिप्त करना चाहिये। इस यन्त्र को विवादित भूमि में गाड़ देने से भूमि से सम्बन्धित समस्त विवाद या उपद्रव शान्त हो जाते हैं।

आधाय वैश्वानरमादरेण समर्च्य सम्यङ्मरिचैर्जुहोतु।
तीव्रो ज्वरस्तस्य भवेत्पुनस्तत्तोये क्षिपेद्वश्यतमः स भूयात्।।

(वही, ३१/७८-७९)

उच्चाटन

सिंह पर आरूढ प्रचण्डाग्नि की भांति प्रज्ज्वलित बाणों को लिये शत्रु की ओर दौड़ती हुई भगवती दुर्गा और भय से त्रस्त भागते हुए शत्रु का चिन्तन करते हुए जातवेद मन्त्र के जप से अभिमन्त्रित जल को सूर्यबिम्ब की ओर फेंकने से शत्रु का उच्चाटन होता है।

सिंहस्थां शरनिकरैः कृशानुवक्त्रै-
र्धावन्तीं रिपुमनु धावमानमेनाम्।
संचिन्त्य क्षिपतु जलं दिनेशबिम्बे
जप्त्वाऽमुं मनुमपि चाटनाय शीघ्रम्।। (वही, ३१/८०)

परकृत्या-निकृन्तन

शत्रु द्वारा साधक पर प्रयुक्त की गई कृत्या को नष्ट करने अथवा उसे प्रयोक्ता पर ही प्रहार करने के लिये वापस करने की क्रिया कृत्या-निकृन्तन कही जाती है।

कृत्या-निकृन्तन की क्रिया सम्पादित करने के लिये साधक को चाहिये कि वह अपने आंगन में वेदी का निर्माण कर उस पर रात्रि में भगवती दुर्गा का विधिपूर्वक षोडशोपचार पूजन करे। तदनन्तर उक्त मन्त्र का यथोक्त संख्या (कम से कम १० हजार) में जप करके उसे भात की बलि प्रदान करे। इस पूजन से प्रसन्न भगवती कृत्या तथा उसके प्रयोग से उत्पन्न समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं।

कृत्या स्थण्डिलमंगणे भगवतीं न्यासक्रमादर्चयेद्-
गन्धाद्यैः पुनरन्धसा च विकिरेन्मन्त्री निशायां बलिम्।
जप्त्वा मन्त्रममुंच रोगसहिताः कृत्या निकृत्या कृताः-
स्तांस्तान् भूतपिशाचवैरिविहितान् दुःखानसौ नाशयेत्।। (वही, ३१/८१)

द्रावण

प्रतिदिन विधिवत् मन्त्र के जप और रात्रि में भगवती की गन्धादि पूजन द्रव्यों से अर्चना और हवनादि से उक्त मन्त्र साधक की समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले कल्पतरु की भांति है। रात्रि में पश्चिम की ओर मुख कर कुसुम

सामुद्रे च सहिङ्गुजीरकविषैः साध्यर्क्षवृक्षाकृतिम्
कृत्वाऽधोवदनां जले घटकटाहादिश्रिते क्वाथयेत्।
सप्ताहं ज्वलनं जपन् विषतरोर्यष्ट्या शिरस्ताडनम्।
कुर्वन् सप्तदिनान्तरे यमपुरक्रीडापरः स्यादरिः।। (वही, ३१/७५)

शत्रु पर मारण प्रयोग के लिये उसे अर्क या मन्दार से निर्मित रथ पर बैठे हुए, सर्पों की रज्जु से बंधे हुए चरण वाले नग्न, नीचे मुख किये, तिल के तैल से लिप्त, विषपीड़ा से आहत, भयंकर प्रज्चलित हो रहीं सूर्य की किरणों से तप्त, वायु के थपेड़ों से अत्यधिक उद्दीप्त हो रहीं ज्वालाओं से व्याकुल होता हुआ-सा चिन्तन करते हुए त्रिष्टुभ से अभिमन्त्रित जल को दूर फेंक देना चाहिये।

अर्कस्यन्दनबद्धपन्नगमुखग्रस्ताङ्घ्रिमाशाम्बरम्
न्यग्वक्त्रं तिलजाप्लुतं विषहतं दीप्तं करैर्भास्वतः।
वायुप्रेरितवह्निमण्डलमहाज्वालाकुलास्यादिकम्
ध्यायन् वैरिणिमुत्क्षिपेत् जलममुं मन्त्रं जपन् मृत्यवे।। (वही, ३१/७६)

ज्वरपीडन

गीले वस्त्र धारण कर विष्टि (भद्रा) करण वाले दिन से त्रिष्टुभ् मन्त्र का उक्त संख्या में जप आरम्भ करके सात दिनों तक रात्रि में सरसों के तेल से लिप्त मिर्च का हवन करने से शत्रु प्रलाप और मूर्च्छा वाले सन्निपात ज्वर से पीड़ित हो जाता है।

आर्द्रांशुकोऽग्निमनुना त्वथ सप्तरात्रम् सिद्धार्थतैललुलितैर्मरिचैर्जुहोतु।
आरभ्य विष्टिदिवसेऽरिनरः प्रलापमूर्च्छान्वितेन विषयीक्रियते ज्वरेण।।
(वही, ३१/७७)

ज्वरप्रताडन और वशीकरण

ताड़पत्र अथवा भोजपत्र के बीच शत्रु का नाम लिखकर उसके दोनों ओर प्रतिलोम क्रम में जातवेद मन्त्र लिख कर उसे भूमि में गाड़कर उस पर वेदी बनाकर अग्नि-स्थापना तथा अग्नि का पूजन करने के बाद मिर्च हवन करने से शत्रु तीव्र ज्वर से पीड़ित हो जाता है। बाद में उस यन्त्र को वहां से निकाल कर जल में फेंक देने से शत्रु साधक के वश में हो जाता है।

तालस्य पत्रे भुजपत्रके वा मध्ये लिखेत् साध्यनराभिधानम्।
अथाऽभितो मन्त्रमिमं विलोमं विलिख्य भूमौ विनिखन्य तत्र।।

हृदये वदने च रिपोः सम्मुखतः सम्प्रतिष्ठिते वायोः।
जूर्त्यभिभूतोऽरिः स्यात्तत्क्वथनात्पक्षमात्रकान्म्रियते।।

(वही, ३१/६७-६८)

शत्रु के नक्षत्रवृक्ष से निर्मित प्रतिकृति में कई बार प्राणप्रतिष्ठा करके काली राई के तेल से उसे लिप्त कर त्रिष्टुभ् मन्त्र का विलोम पाठ करते हुए उसे अग्नि में तपाना चाहिये। इस क्रिया से शत्रु ज्वरग्रस्त हो जायगा। उस प्रतिकृति के जिन-जिन अंगों का हवन किया जायगा, शत्रु के वे-वे अंग निष्क्रिय हो जायंगे। यदि उस पूरी प्रतिकृति का हवन कर दिया जाय, तो शत्रु निःसन्देह मर जायगा।

सैव प्रतिकृतिरसकृत्तत्प्रतिष्ठितसमीरणा च विशदधिया।
तीक्ष्णस्नेहालिप्ता विलोमजापेन तापनीयाऽग्नौ।।
विधिना ज्वरविद्धः स्यादपघनहोमेन हानिरंगस्य।
सर्वाहुत्या मरणं प्राप्नोति रिपुर्न तत्र सन्देहः।।

(वही, ३१/६९-७०)

धतूरे और कुचले के जड़ों की सात-सात हजार समिधाओं में से प्रत्येक को राई के तेल अथवा भैस के घी से संसिक्त कर कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि से आरम्भ कर चतुर्दशीपर्यन्त रात्रि में एक-एक हजार समिधाओं का सात रातों तक प्रतिलोम अनुष्टुभ् मन्त्र का उच्चारण करते हुए हवन करने से शत्रु पागल होकर निःसन्देह मर जाता है।

उन्मत्तक्ष्वेळनेत्रद्रुमभवसमिधां सप्तसाहस्रकान्तम्
प्रत्येकं राजितैलालुलितमथ हुनेन्माहिषाज्याप्लुतं वा।
कृष्णाष्टम्याद्यमेवं सुनियतचरितः सप्तरात्रं निशायाम्
निःसन्देहोऽस्य शत्रुस्त्यजति किल निजं देहमाविष्टमोहः।।

(वही, ३१/७४)

साध्य शत्रु के नक्षत्रवृक्ष की लकड़ी से उसकी प्रतिकृति निर्मित कर समुद्री नमक, हींग, जीरा और विष अर्थात् कुचला को एक साथ मिलाकर उस मिश्रण को किसी घड़े अथवा कड़ाही में पानी डालकर उबालना चाहिये। फिर उस उबलते पानी में शत्रु की उक्त प्रतिकृति को औंधेमुंह डाल उक्त अग्निमन्त्र अर्थात् त्रिष्टुभ् मन्त्र का प्रतिरात्रि एक-एक हजार जप करते हुए उसे सात रातों तक उबालते हुए उसके शिर पर कुचले की छड़ी से प्रहार करते रहना चाहिये। सात रातों तक इस प्रयोग से सात रातों के अन्दर ही शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

विमोहन

हाथ में त्रिशूल धारण किये अग्नि के समान तेजस्विनी दुर्गा का ध्यान करते हुए सरसों के तेल से संसिक्त धतूरे के बीज अथवा राईसहित मिर्च का हवन करने से दुर्गा साधक के शत्रु को पागल बना देती है।

शिखिशूलकराऽग्निनिभा सर्षपतैलाक्तमत्तबीजैश्च।
मरिचैर्वा राजियुतैर्होमादहितान् विमोहयेद्दुर्गा।। (वही, ३१/६३)

मारण

हाथों में त्रिशूल तथा तलवार धारण किये कृष्णवर्णा दुर्गा का ध्यान कर 'व्रणकृद्' अर्थात् भिलावे के बीजों के घी से संसिक्त शत्रु के नक्षत्रवृक्ष की समिधाओं का हवन करने से महीने भर में ही शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

कृष्णा शूलासिकरा रिपुदिनवृक्षोद्भवैः समित्प्रवरैः।
व्रणकृद्घृतसंसिक्तैर्होमान्मारयति मासतो दुर्गा।। (वही, ३१/६४)

अरुष्कर अर्थात् भल्लातकी (भिलावा) के बीजों के तेल से संसिक्त शत्रु के नक्षत्रवृक्ष की समिधाओं, मिर्च, नमक तथा हींग का हवन करने से शत्रु का मरण होता है।

नक्षत्रवृक्षसमिधो मरिचानि च तीक्ष्णहिंगुशकलानि।
मारणकर्मणि विहितान्यारुष्करस्नेहसिक्तानि।। (वही, ३१/६५)

शत्रु के नक्षत्रवृक्ष की समिधाओं पर साध्य का नाम, कर्म और त्रिष्टुभ् के ४४ अक्षरों को लिखकर ४४ बार हवन करने से शत्रु का मरण निश्चित है।

नक्षत्रवृक्षसमिधां विलिखितसाध्याभिधानकर्मवताम्।
सचतुश्चत्वारिंशतत्त्वयुजां होमकर्म मारणकरम्।। (वही, ३१/६६)

शत्रु के नक्षत्रवृक्ष की लकड़ी से उसकी एक प्रतिकृति बनाकर उसमें प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये। फिर मिर्च, मधु और प्रत्यक्पुष्पी (रुद्रदण्डी या आघाडा) के पराग का मिश्रण बना, उसे गर्म पानी में घोलकर उस घोल का उस प्रतिकृति के हृदय और मुख पर सिंचन करना चाहिये। इस प्रयोग से शत्रु भयंकर ज्वर से पीड़ित हो जायगा। उस घोल के जल में उस प्रतिकृति को पकाने से शत्रु एक सप्ताह के भीतर ही मर जाता है।

मरिचं क्षौद्रसमेतं प्रत्यक्पुष्पीपरागसम्भिन्नम्।
उष्णाम्भःपरिलुलितं प्रसेचयेदृक्षवृक्षपुत्तल्या।।

रक्तवर्णा पाशांकुशधारिणी दुर्गा का ध्यान करते हुए चन्दन के रस से सिक्त फलिनी (काकुन) तथा केसर अर्थात् नागकेसर के पुष्पों का रात्रि में हवन करने से भगवती दुर्गा साधक को समस्त जगत् को वश में कर लेने की शक्ति प्रदान करती है।

रक्ता पाशांकुशिनी निशि फलिनीकेसरोद्भवैः पुष्पैः।
चन्दनरससंसिक्तैर्होमाद्दुर्गा वशीकरोति जगत्।। (वही, ३१/५८)

रक्तवर्णा पाशांकुशधारिणी दुर्गा का ध्यान करते हुए त्रिमधुर से सिक्त लवण या लवणनिर्मित पुत्तली अथवा साध्य के नक्षत्रवृक्ष की समिधा के टुकड़ों से एक सप्ताह तक रात्रि एक हजार हवन करने से राजा भी साधक के वश में हो जाता है।

लवणैस्त्रिमधुरसिक्तैस्तत्कृतया वा जुहोतु पुत्तल्या।
उडुतरुकाष्ठैर्नक्तं सप्ताहान्नृपतिमपि वशे कुरुते।। (वही, ३१/५९)

कपाल, शूल, पाश तथा अंकुशधारिणी अति रक्तवर्णा दुर्गा का ध्यान करते हुए त्रिमधुर युक्त लवण-पुत्तली के टुकड़ों का होम करने से साधक साध्य को वश में कर लेता है।

सकपालशूलपाशांकुशहस्ताऽरुणतरा तथा दुर्गा।
आकर्षयेच्च लावणपुत्तल्या त्रिमधुराक्तया होमात्।। (वही, ३१/६०)

विद्वेषण

त्रिशूलधारणी धूम्रवर्णा दुर्गा का ध्यान करते हुए सरसों के तेल से सिक्त अस्थियों, कपास तथा नीम की पत्तियों एवं भेड़ के घृत का होम करने से शत्रु का विद्वेषण होता है।

ध्यात्वा धूम्रां त्रिशिखकरामस्थिभिश्च तीक्ष्णाक्तैः।
कार्पासानां निम्बच्छदमेषघृतैर्हुताच्च विद्वेषः।। (वही, ३१/६१)

उच्चाटन

उठी हुई तर्जनी वाले हाथ में त्रिशूलधारणी दुर्गा का ध्यान करते हुए कुचले की पत्तियों, मिर्च, सरसों का भैस के घृत तथा बकरे के रक्त के साथ हवन करने से शत्रु का उच्चाटन होता है।

धूम्रा तर्जनिशूलकराहितहस्ता विषदलैः समाहिषाज्यैः।
होमाच्च मरिचसर्षपचरुभिरजारुधिरसेचितैरटयेत्।। (वही, ३१/६२)

दोनों प्रकार की साधना में 'अनुपराग्वक्त्रत्व' के अलावा मन्त्रशक्ति त्रिष्टुभा के ध्यान, मन्त्र की जप संख्या, हवन, हवन-द्रव्य, आवरण-पूजा आदि में भिन्नता होती है।

रक्षानिग्रहकर्मणोरनुपराग्वक्त्राः प्रधानाकृति-
प्रख्या मन्त्रविधानविच्च दिशि दिश्येकादशैकादश।
संस्थाप्य क्रमशोऽक्षरोदितरुचीः शक्तीर्जपेद्वा मनुम्
सम्यग्वा जुहुयादनु प्रतिगतं सिद्ध्यै समाराधयेत्।। (वही, ३१/५५)

अनुलोमप्रतिलोमयोः कार्यभेदध्यानभेदं चाहरक्षेति। अनुपराग्वक्त्रा इति उभयोरपि रक्षानिग्रहकर्मणोः अनुपराग्वक्त्रत्वं ज्ञातव्यम्। मन्त्रविधानविदिति। रक्षायां चतुश्चत्वारिंशदनुलोमविधानवित्। निग्रहे चतुश्चत्वारिंशत्प्रतिलोमविधानविदित्यर्थः। मूलोक्तमेव सर्वत्र विधानं प्रतिलोमविधानेषु आवरणपूजादिकमपि प्रातिलोम्येन कार्यमिति विशेषः।

(वही, विवरण)

त्रिष्टुभ् के विभिन्न प्रयोग

स्तम्भन

त्रिष्टुभ् मन्त्र का विधिपूर्वक १० हजार जप पूर्ण करके हाथ में लौह की गदा वाली पीतवर्णा दुर्गा का ध्यान करते हुए भैंस के घृत से सिक्त बने पुलाव का विभीतक (बहेड़ा) की समिधाओं, अरिष्ट (नीम) और कोद्रव (कोदौ) से मन्त्रोच्चारण के साथ १ हजार हवन करने से शत्रु का स्तम्भन होता है।

पीताऽयोमुष्टिगदाहस्ता महिषाज्यसंयुतपुलाकैः।
बैभीतकारिष्टसमित्कोद्रवकैः स्तम्भयेच्च हुतविधिना।। (वही, ३१/५६)

वशीकरण के प्रयोग

हाथों से जलधारा प्रवाहित कर रही पाशांकुशधारिणी गौरवर्णी दुर्गा का ध्यान करते हुए त्रिमधुर से सिक्त वेतस् लता का एक हजार हवन करने से भगवती दुर्गा साध्य को साधक के वश में कर देती है तथा उसकी कृपा से प्रभूत वर्षा होती है।

सुसिता पाशांकुशयुग्विगलद्वारिप्रवाहसम्भिन्ना।
वैतससमिदाहुत्या मधुरयुजा मंक्षु वशयेद्दुर्गा।। (वही, ३१/५७)

संहरेत् संग्रहं कुर्याद्वारे त्वाचार्ययोः सुधीः।।
चरैर्विसृज्योभयकैराहरेदभ्यसेत् स्थिरैः।
दिनास्त्रं दिनकृद्युक्तं वारग्रहसमन्वितम्।। (वही, ३१/४८-५२)

कृत्यास्त्र

आग्नेयास्त्र के स्वरूप, जप, हवन, आवरण-पूजा तथा प्रयोग-विधि का निर्वचन करने के उपरान्त आचार्य शंकर ने जातवेदा (अग्नि) के 'कृत्यास्त्र' का निरूपण किया है। उनके अनुसार क्रमशः कृत्तिकादि २७ नक्षत्रों और अन्त में कृत्या (साध्य के नाम के अन्त में 'मारय मारय दह दह') को 'कृत्यास्त्र' कहा जाता है। शंकर के अनुसार अग्नि नक्षत्रों का तथा चन्द्रमा तिथियों की आत्मा है।

कृत्तिकादि च कृत्यान्तं कृत्यास्त्रं जातवेदसः।
नक्षत्रात्मा हुताशः स्यात् तिथ्यात्मेन्दुरुदाहृतः।। (वही, ३१/५३)

शंकर के 'नक्षत्रात्मा' शब्द को पद्मपाद ने द्वादश आदित्य एवं सप्तग्रहों का तथा 'तिथ्यात्मा' शब्द को पंचदश तिथियों का उपलक्षण माना है। कृत्यास्त्र के प्रयोग में साधक ही आदित्यात्मा दिनकर होता है। आदित्यात्मा साधक मध्यनाड़ी सुषुम्ना का आश्रय लेते हुए-दक्षिण नासिकास्थित पिंगला नाड़ी में स्थित अग्निप्रधान देवताओं का विसर्जन तथा वाम नासिका स्थित इडा नाड़ी में स्थित सौम्य तेजस्प्रधान देवताओं का आहरण करने की विधि को जानने वाला साधक ही कृत्यास्त्र का सफल प्रयोग कर सकता है। अन्यथा वह स्वयं ही कृत्यास्त्र का लक्ष्य बनकर इसका भयंकर कुपरिणाम भोगता है। पद्मपाद ने विवरण में कृत्यास्त्र की प्रयोग-विधि का उल्लेख किया है, लेकिन बिना गुरु का संरक्षण लिये इसका प्रयोग भयंकर हो सकता है।

ताभ्यां करोति दिनकृद्विसर्गादानकर्मणी।
इत्येष निपुणो मन्त्री प्रयोगादन्यथात्महा।। (वही, ३१/५४)

निग्रहानुग्रह की सामर्थ्य से युक्त अग्न्यात्मा त्रिष्टुभ् मन्त्र का प्रयोग रक्षा तथा निग्रह दोनों कर्मों में किया जाता है। किन्तु निग्रहानुग्रहादि कर्मों में त्रिष्टुभा शक्ति कात्यायनी दुर्गा की प्रधानाकृति 'अनुपराग्वक्त्रा' अर्थात् पश्चिमाभिमुख होनी चाहिये। पद्मपाद ने शंकर के कथन को स्पष्ट करते हुए बताया है कि रक्षा कर्म (अनुग्रह) में त्रिष्टुभ् की साधना अनुलोम साधना-विधान की भांति और निग्रह (मारणादि) कर्म में प्रतिलोम विधान की भांति सम्पादित की जाती है।

दिनास्त्र प्रयोगविधि

शंकर के अनुसार द्वादश आदित्यों सहित वार, ग्रह से युक्त उक्त मन्त्र को दिनास्त्र कहा जाता है—'दिनास्त्रं दिनकृद् युक्तं वारग्रहसमन्वितम्।' पद्मपाद ने शंकर के मन्तव्य को अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है कि क्रमशः प्राण, बुद्धि तथा दशेन्द्रियों सहित विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शक्र तथा उरुक्रम नामक १२ आदित्यों, वार तथा ग्रहों से समन्वित आग्येयास्त्र मन्त्र को 'दिनास्त्र' कहते हैं।

"दिनकृच्छब्दो द्वादशसंख्यालक्षकः प्राणबुद्धिसहितेन्द्रियदशक-युक्तमन्त्र इत्यर्थः"। (वही, विवरण)

दिनास्त्र मन्त्र के प्रयोग में नक्षत्र, तिथि, वार, राशि तथा पक्षादि का ध्यान रखा जाना चाहिये। मारण-मोहनादि आभिचारिक क्रियाओं में अस्त्रमन्त्र साधना का **आरम्भ** पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, भरणी, आर्द्रा तथा रोहिणी नामक ६ मानुष नक्षत्रों, प्रतिपदा, षष्ठी तथा एकादशी नामक नन्दा कही जानी वाली तिथियों, मंगलवार तथा वृष, सिंह, वृश्चिक एवं कुम्भ नामक स्थिर राशियों में करना चाहिये।

अस्त्रमन्त्र का **प्रयोग** ज्येष्ठा, शतभिषा, मूल, धनिष्ठा, अश्लेषा, कृत्तिका, चित्रा, मघा तथा विशाखा नामक राक्षस नक्षत्रों, चतुर्थी, नवमी तथा चतुर्दशी नामक रिक्ता कही जाने वाली तिथियों, रविवार, मेष, कर्कट, तुला तथा मकर नामक चर राशियों में करना चाहिये।

मन्त्र का **संहरण** अश्विनी, रेवती, पुष्य, स्वाती, हस्त, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा तथा श्रवण नामक दैव नक्षत्रों, भद्रा कही जाने वाली द्वितीया, सप्तमी तथा द्वादशी अथवा जया नामक तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशी तिथियों और रविवार को करके वृहस्पति तथा शुक्रवार को इसके संग्रह का विधान है।

आरम्भे मानुषाणि स्युर्नक्षत्राण्याभिचारिके।
कर्माण्यासुरभानि स्युर्दैवानि स्युस्तथा हृतौ।।
अन्त्याश्वीन्द्वर्कादितिगुरुहरिमित्रानिलाह्वया दैवाः।
पूर्वोत्तरत्रयीयमहरविधयो मानुषाः परेऽसुरभाः।।
नन्दास्वारभ्य रिक्तासु प्रयोज्याऽऽत्मनि संहरेत्।
भद्रासु संग्रहं कुर्याज्जयासु तु विशेषतः।।

अनुलोमजपेऽगानामपि पाठोऽनुलोमकः।
प्रतिलोमानि तानि स्युः प्रतिलोमविधौ तथा।।
....
प्रत्यङ्मुखेनकर्तव्यं प्रायो जपहुतादिकम्।। (वही, ३१/३६,४०)

प्रतिलोम क्रम में 'ग्नित्यतारिन्दु' 'धुन्सिन्ववेना' तथा 'श्वाविणिर्गादु' ये तीन पांच-पांच अक्षरों वाले पाद क्रमशः ज्ञानेन्द्रियात्मक, कर्मेन्द्रियात्मक तथा पंचभूतात्मक हैं। 'तिदषरिपनः स' यह सात अक्षरों वाला चतुर्थ पाद सप्तध ात्वात्मक, 'दःवेतिहादनि' एवं 'तोयतीरामम' ये छह-छह अक्षरों वाले पंचम एवं षष्ठ पाद क्रमशः उक्त छह उर्मि तथा कोशमय हैं। 'सोमवानसु' तथा 'सेदवेतजा' ये दो पंच-पंचाक्षरात्मक पाद क्रमशः शब्दादि एवं वचनादिरूप माने जाते हैं।

आद्याः पंचाक्षराः पादास्त्रयः सप्ताक्षरः पदः।
पंचमश्चाऽथ षष्ठश्च द्वौ तु पादौ षडक्षरौ।
पंचाक्षरौ तदन्तौ च तेषां भावो निगद्यते।।
आ(ग्न्या)द्यं ज्ञानेन्द्रियं कार्मं द्वितीयं पांचभौतिकम्।
तृतीयं धातवः सप्त चतुर्थं वर्णसप्तकम्।।
षडूर्मयः पंचमं स्यात् षष्ठः षाट्कौशिको मतः।
सप्तमश्चाऽष्टमः पादः शब्दाद्यं वचनादिकम्।। (वही, ३१/३१-३४)

त्रिष्टुभ् मन्त्र के ४४ वर्णों के आठ पादों के ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय से उत्पन्न जो १० वर्ण देवता कहे गये हैं, वे ऊर्ध्वदृष्टि वाले हैं। पंचभूतात्मक पांच देवता सामने की दृष्टिवाले हैं। सप्तधात्वात्मक वर्णदेवता उभयदृष्टि वाले, षडूर्मियों से उत्पन्न देव ऊर्ध्वमुखी, षट्कोशोत्पन्न देव सामने के मुख वाले हैं। दो मुखों वाले देव क्लीब तथा अधोमुखी सामने की दृष्टिवाले गोचरोत्पन्न देव स्त्री माने जाते हैं।

तत्र त्विन्द्रियजाः प्रोक्ता देवतास्तूर्ध्वदृष्टयः।।
तिर्यंचो भौतिकाः प्रोक्ता धातूत्थास्तूभयाननाः।
ऊर्मिजास्तूर्ध्ववदनास्तिर्यंचश्चाऽथ कोशजाः।।
क्लीबा मुखद्वयोपेता गोचरोत्थाः स्त्रियो मताः।
अधोमुखाश्च तिर्यंच इत्युक्तो मूर्तिसंग्रहः।।
आभिः सर्वाभिरपि च शिखाभिर्जातवेदसः।
व्याप्यते परराष्ट्रेषु वृक्षगुल्मलतादिकम्।। (वही, ३१/४४-४७)

सर्वजापेषु चाग्नेया गायत्र्या द्विगुणो जपः।।
कर्तव्यो वांछिताप्राप्त्यै रक्षायै कार्यसिद्धये। (वही, ३१/२४-२६)

हवन

त्रिष्टुब् गायत्री के ४४ वर्णों के अनुरूप ४४ हजार जप पूर्ण कर लेने के पश्चात् तिल, राजी तथा अनल (चित्रक या चीती) तथा क्षीरवृक्षों की समिधा से प्रज्वलित अग्नि में घृतसिक्त पायस अर्थात् खीर से ४४४४ होम करना चाहिये। 'अनल' अर्थ चित्रक या पाठी है। अमरकोश (पाठी तु चित्रको वह्निसंज्ञकः.. २/२४/८०) के अनुसार पाठी को ही चित्रक या वह्नि कहा जाता है।

तिलराज्यनलक्षीरवृक्षेध्महविराज्यकैः।।
सर्पिःसिक्तैः क्रमाद्धोमः साधयेदीप्सितं नृणाम्।
चत्वारि चत्वारिंशच्च चतुःशतसमन्वितम्।।
चतुःसहस्रसंयुक्तं प्रोक्तैर्द्रव्यैः हुतक्रिया।। (वही, ३१/२६-२८)

अस्त्रमन्त्र साधना

त्रिष्टुब् मन्त्र के ४४ अक्षरों का निम्न रूप में विलोम पाठ अस्त्रमन्त्र कहा जाता है—

नित्यतारिन्दु धुंसिंववेना श्वाविर्णिर्गादु तिदषरिपनः स।
दोवेतिहादनि तोयतीरामम सोमवानसु सेदवेतजा।।

चत्वारि चत्वारिंशच्च वर्णानामस्त्रमिष्यते।
विलोमपाठो वर्णानामस्त्रमाहुर्मनीषिणः।। (वही, ३१/२६)

अस्त्रमन्त्र के भी आठ पाद हैं। इनके विलोम पाठ से मन्त्र छिन्नादि २५ प्रकार के दोषों से रहित हो जाता है। अस्त्रमन्त्र के समस्त न्यासादि भी विपरीत क्रम से किये जाने चाहिये। अस्त्रमन्त्र की प्रतिलोम साधना का विधि-निरूपण करते हुए शंकर ने बताया है कि अस्त्रमन्त्र की साधना में पश्चिम दिशा की ओर मुख कर बैठ कर जप-होमादि सम्पन्न करने चाहिये। मन्त्र का जप तथा हवन पूर्वोक्त संख्या में ही करना चाहिये तथा हवन के लिये क्षीर वृक्ष की समिधाएं, राजी, तिल तथा घृत से अलग-अलग अथवा पंचगव्य से निर्मित हवि का उपयोग किया जाना चाहिये।

मन्त्र के प्रतिलोम जप में अंगक्रियादि भी प्रतिलोम क्रम में ही की जानी चाहिये। इसमें मन्त्र के पादों के प्रयोग का क्रम भी उलट जाता है तब मन्त्र के प्रतिलोम न्यासों की भांति ही इसके पद तथा वर्णन्यासादि भी उलट जाते हैं।

जया सविजया भद्रा भद्रकाली सुदुर्मुखी।
व्याघ्रसिंहमुखी दुर्गा त्रिष्टुभो नव शक्तयः।।
तत्राधाय घटं गव्यक्वाथमूत्रपयोऽम्भसाम्।
एकेन पूरणं कृत्वा आवाह्य च विभावसुम्।।
आवृतेर्बहिरग्न्यादिपादाष्टकविनिःसृताः।
मूर्तीरभ्यर्चयेदग्नेर्जातवेदादिकाः क्रमात्।।
पृथिव्यम्ब्वनिलेरानप्यात्मनेपदसंयुतान्।
अर्चयेद्दिक्षु कोणेषु निवृत्त्यादीर्यथाक्रमम्।।
दिक्ष्वेकादशसंख्याः स्युर्जार्णाद्या वर्णशक्तयः।
लोकपालांश्च तद्धेतीर्विधिनेति समर्चयेत्।।
जाग(ग्र)ता तपनी वेदगर्भा दहनरूपिणी।
सेन्दुखण्डा शुम्भहन्त्री सनभश्चारिणी तथा।।
वागीश्वरी मदवहा सोमरूपा मनोजवा ।
मरुद्वेगा रात्रिसंज्ञा तीव्रकोपा यशोवती।।
तोयात्मिका तथा नित्या दयावत्यपि हारिणी।
तिरस्क्रिया वेदमाता तथाऽन्या दमनप्रिया।।
समाराध्या नन्दिनी च परा रिपुविमर्दिनी।
षष्ठी च दण्डिनी तिग्मा दुर्गा गायत्रिसंज्ञिका।।
निरवद्या विशालाक्षी श्वासोद्वाहा च नादिनी।
वेदना वह्निगर्भा च सिंहवाहाह्वया तथा।।
धुर्या दुर्विषहा चैव रिरंसा तापहारिणी।
त्यक्तदोषा निःसपत्ना चत्वारिंशच्चतुर्युताः।। (वही, ३१/१०-२३)

आवरण-पूजा समाप्त कर लेने के बाद आचार्य का कर्तव्य है कि वह शिष्य का उक्त कलश-जल से अभिसिंचन करके उस कलशादि को पूजन-यन्त्र से उठाकर स्वयं ले ले। तदनन्तर उस यन्त्र पर बैठकर शिष्य गुरु की उपस्थिति में ही त्रिष्टुब् मन्त्र का ४४ हजार जप करे। प्रत्येक प्रकार की कामना की सिद्धि और रक्षा के लिये आग्नेयगायत्री अर्थात् त्रिष्टुब् के अक्षरों अर्थात् ४४ से दुगुना अर्थात् ८८ हजार जप करना चाहिये।

अभिषिच्य पुनः शिष्यं कुम्भादीन् गुरुराहरेत्।
ईदृशं यन्त्रमारुह्य जपेच्छिष्यः सुयन्त्रितः।।
मन्त्राक्षरसहस्रन्तु सिध्यर्थं गुरुसन्निधौ।

तत्पश्चात् अष्टदल कमल की केसरों वाले **प्रथम आवरण** में अंगमन्त्रों **'जातवेदसे सुनवाम हृदयाय नमः, सोममरातीयतो शिरसे स्वाहा, निदहाति वेद शिखायै वषट्, स न परि षदति कवचाय हुं, दुर्गाणि विश्वा नावेव नेत्रत्रयाय वौषट्, सिन्धुन्दुरितात्यग्नि अस्त्राय फट्'** से अंगपूजा सम्पन्न करनी चाहिये। फिर षड्कोणात्मक इस यन्त्र के बाहर **द्वितीय आवरण** में त्रिष्टुब् के आठ पादों से उद्भूत जातवेद, सप्तजिह्वा, हव्यवाहन, अश्वोदरज, वैश्वानर, कौमारतेजा, विश्वमुख तथा देवमुख नामक अग्नि की अष्टमूर्तियों की क्रमशः पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर **तृतीय आवरण** में पूर्वादि मुख्य दिशाओं के कोणों में क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु बीज 'लं वं रं तथा यं' जोड़ तथा 'नमः' लगाकर **'लं पृथिव्यात्मने नमः , वं जलात्मने नमः, रं अग्नये नमः, यं वायवे नमः', चतुर्थ आवरण** में **निवृत्त्यै नमः** आदि रूप से निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या तथा शान्ति नामक कलाओं की अर्चना करनी चाहिये।

इसके बाद पंचम आवरण में त्रिष्टुभ् के ४४ वर्णों की ४४ वर्ण शक्तियों को क्रमशः ११-११ के चार वर्गों में विभाजित कर प्रत्येक के नाम के अन्त में चतुर्थी विभक्ति लगाकर 'जाग्रतायै नमः' आदि रूप में क्रमशः जाग्रता, तपनी, वेदगर्भा, दहनरूपिणी, इन्दुखण्डा, शुम्भहन्त्री, नभश्चारिणी, वागीश्वरी, मदवहा, सोमरूपा, मनोजवा का पूर्व दिशा में, मरुद्वेगा, रात्रि, तीव्रकोपा, यशोवती, तोयात्मिका, नित्या, दयावती, हारिणी, तिरस्क्रिया, वेदमाता, दमनप्रिया की दक्षिण में, समाराध्या, नन्दिनी, परा, रिपुमर्दिनी, षष्ठी, दण्डिनी, तिग्मा, दुर्गा, गायत्री, निरवद्या, विशालाक्षी की पश्चिम में तथा श्वासोद्वाहा, नादिनी, वेदना, वह्निगर्भा, सिंहवाहा, धुर्या, दुर्विषहा, रिरंसा, तापहारिणी, त्यक्तदोषा तथा निःसपत्ना की पश्चिम दिशा में पूजा सम्पन्न करनी चाहिये। तदनन्तर **छठे आवरण** में इन्द्रादि लोकपालों और सातवें आवरण में उनके वज्रादि आयुधों की पूजा कर आवरण-पूजा तथा मन्त्र का दुगुना अर्थात् ८८ हजार जप करना चाहिये।

दीक्षा प्रवर्त्यते पूर्वं यथावद्देशिकोत्तमैः।
ततोऽस्त्रक्लृप्तिः सम्प्रोक्ता स्यात्प्रयोगविधिस्ततः।।
दीक्षकाख्याक्षराण्यादौ शक्त्याद्येष्ट्य ततो बहिः।
यन्त्रं षड्गुणितं कृत्वा दुर्वर्णलसितास्रकम्।।
बहिरष्टदलं पद्मं प्रोक्तलक्षणलक्षितम्।
अत्र पीठं यजेन्मन्त्री क्रमात् सनवशक्तिकम्।।

रसना, कण्ठ, बाहुओं, हृदय, कुक्षि, कटि, लिंग, उरुओं, घुटनों, जंघाओं तथा चरणों में किया जाना चाहिये। पदन्यास में नेत्र तथा कर्ण में दो-दो पदों का तथा शेष १४ अंगों में एक-एक पद का न्यास किया जाना चाहिये। इस प्रकार के देहन्यास के पश्चात् ध्यान-जपादि की क्रिया सम्पन्न की जानी चाहिये।

शराब्धिद्वीष्वेकवह्निद्वयेकैकद्विद्विपावकैः।
द्वयग्निद्वयग्निद्विद्विवर्णैःरष्टादशपदानि हि।

(शारदातिलक, पदार्थादर्शटीका २६/३७-३८)

ध्यान

आचार्य शंकर के अनुसार त्रिष्टुब् की साधना में चमकती हुई विद्युत् लता के समान कराल, संक्रुद्ध सिंह की पीठ पर आसीन, हाथों में चक्र, शंख, असि, खेट, धनुष-बाण, त्रिशूल तथा शत्रुओं के विनाश के लिये उठी हुई तर्जनीवाली, हाथों में ढाल तथा तलवार धारण की हुई, प्रहार में निपुण कन्याओं से घिरी हुई नवीन कांसे के वर्ण वाली त्रिनयना भगवती कात्यायिनी दुर्गा का ध्यान किया जाना चाहिये।

उद्यद्विद्युत्करालाकुलहरिगलसंस्थाऽरिशंखासिखेटे-
ष्विष्वासाख्यत्रिशूलानरिगणभयदां तर्जनीं चाऽऽदधाना।
चर्मास्युद्घूर्णदोर्भिः प्रहरणनिपुणाभिर्वृता कन्यकाभि-
र्दद्यात्कार्शानवीष्टांस्त्रिनयनलसिता चापि कात्यायिनी वः।।

(वही, ३१/६)

त्रिष्टुब् की आवरण-पूजा

त्रिष्टुब् की अनुलोम साधना में आवरण-पूजा के लिये 'त्रिष्टुभा शक्तिबीज 'ह्रीं' के मध्य साधक के नामाक्षरों को लिखकर उसके बाहर प्रपंचसारतन्त्र के नवम पटल में वर्णित विधि से षड्गुणित यन्त्र बनाकर इस यन्त्र के बीच में पंचगव्य, दशमूल-क्वाथ, गोमूत्र तथा दुग्धमिश्रित जल में से किसी एक से पूरित घट की स्थापना करके यन्त्र के छहों कोणों में 'दुर्' बीज अंकित करना चाहिये। फिर उस षट्कोण के बाहर अष्टदल कमल का निर्माण कर उसकी कर्णिका में पूर्वादि क्रम से जया, विजया, भद्रा, भद्रकाली, सुमुखी, दुर्मुखी, व्याघ्रमुखी तथा सिंहमुखी नामक आठ तथा यन्त्र के मध्य दुर्गा नामक त्रिष्टुभ् की नौवीं शक्ति का इनके नाम में चतुर्थी विभक्ति लगाकर, (जैसे-जयायै नमः, विजयायै नमः आदि) षोडशोपचार पूजन करना चाहिये।

कर्मेन्द्रियात्मक तथा पंचभूतात्मक हैं। चतुर्थ सप्ताक्षरात्मक पाद 'तोनिदहाति वेद' त्वचा, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र रूप सप्त धात्वात्मक, पंचम षडक्षरात्मक पाद 'स न परिषद' बुभुक्षा, पिपासा, शोक, मोह, जरा तथा मृत्यु नामक छह उर्मिमय, छठा छह अक्षरों वाला पाद 'तिदुर्गाणि विश्वा' शुक्र से निष्पन्न मज्जा, अस्थि तथा स्नायु तथा रक्त से निष्पन्न त्वचा, मांस तथा शोणितरूप छह कोशमय, सप्तम पंचाक्षर पाद 'नावेव सिन्धुन्' शब्द, रूप, स्पर्श, रस तथा गन्ध रूप तथा अष्टम पंचाक्षर पाद 'दुरितात्यग्नि' वचन, आदान, गति, विसर्जन तथा आनन्द रूपात्मक है।

आ(ग्न्या)द्यं ज्ञानेन्द्रियं कार्मं द्वितीयं पांचभौतिकम्।
तृतीयं धातवः सप्त चतुर्थं वर्णसप्तकम्।।
षडूर्मयः पंचमं स्यात् षष्ठः षाट्कौशिको मतः।
सप्तमश्चाष्टमः पादः शब्दाद्यं वचनादिकम्।। (वही, ३१/३३-३४)

अनुलोम क्रम में प्रपंचसारतन्त्र के श्लोक संख्या ३१/३३ में 'आद्यं' पाठ तथा प्रतिलोम क्रम में 'आद्यं' के स्थान पर 'ग्न्याद्यं' पाठ माना जाना चाहिये।

षडंगन्यास

मूलतः ४४ अक्षरों वाली इस ऋचा के वर्णों एवं पादों का उपयोग वर्णन्यास तथा पदन्यास में किया जाता है। नौ, सात, छह, सात, आठ तथा सात अक्षरों 'जातवेदसे सुनवाम' 'सोममरातीयतो' 'निदहाति वेद' 'स नः परि षदति' 'दुर्गाणि विश्वा नावेव' 'सिन्धुन्दुरितात्यग्निः' से क्रमशः षडंगन्यास करना चाहिये।

वर्णन्यास

अंगुष्ठ, गुल्फ, जंघा, जानु तथा उरुयुगल में, कटि, गुह्य, नाभि एवं हृदय में, स्तनों एवं पार्श्वयुगल में, स्कन्धयुगल, स्कन्ध-मध्य, पीठ, बाहुमूल, उपबाहु, कूर्पर, प्रकोष्ठ, मणिबन्ध तथा हस्ततलयुगलों में, मुख एवं नासिका, अक्षि, कर्णयुगलों में, ललाट, मस्तिष्क तथा मूर्धा में क्रमशः ऋचा के ४४ वर्णों का न्यास करना चाहिये। (वही, ३१/४-६)

पदन्यास

त्रिष्टुब् ऋचा के 'जातवेदसे, सुनवाम, सोमम्, अरातीयतः, नि, दहाति, वेदः, स, न, परि, षदति, दुर्गाणि, विश्वा, नावा, इव, सिन्धुम्, दुरितातिं, अग्निः' अठारह पदों का न्यास क्रमशः शिखा, ललाट, दोनों नेत्रों, दोनों कर्णों, ओष्ठ,

अनुलोमजपेऽगानामपि पाठोऽनुलोमकः।
प्रतिलोमानि तानि स्युः प्रतिलोमविधौ तथा।।
अन्तपादप्रतीपे हि तथा तानि भवन्ति हि।
वर्णप्रतीपे हि तथा मात्रा च प्रतिलोमके।।
प्रतिपत्तिविशेषांश्च तत्र तत्र विचक्षणः।
गुर्वदिशविधानेन प्रविदध्यान्न चान्यथा।। (वही, ३१/३६-३८)

अनुलोम विधि में मूल त्रिष्टुब् मन्त्र के ४४ अक्षरों में से क्रमशः नौ अक्षरों से हृदय, सात अक्षरों से शिरस्, छह् अक्षरों से शिखा, सात अक्षरों से कवच, आठ अक्षरों से नेत्र तथा अन्तिम सात अक्षरों से अस्त्रन्यास किया जाना चाहिये।

नवभिः सप्तभिः षड्भिः सप्तभिश्च तथाऽष्टभिः।
सप्तभिर्मूलमन्त्रेण कुर्यादंगानि वर्णकैः।। (वही, ३१/३)

इस प्रकार त्रिष्टुब् मन्त्र में षडंगन्यास का स्वरूप निम्न होगा-

षडंगन्यास

जातवेदसे सुनवाम हृदयाय नमः,
सोममरातीयतो शिरसे स्वाहा,
निदहाति वेद शिखायै वषट्,
स न परि षदति कवचाय हुं,
दुर्गाणि विश्वा नावेव नेत्रत्रयाय वौषट्,
सिन्धुन्दुरितात्यग्निः अस्त्राय फट्।

त्रिष्टुभ् मन्त्र के पाद

४४ वर्णों वाले त्रिष्टुभ् मन्त्र में ८ पाद हैं। मन्त्र के अनुलोम तथा विलोम क्रम दोनों ही स्थितियों में इनमें से प्रथम तीन पाद पांच-पांच अक्षरों वाले, चतुर्थ पाद सात अक्षरों का, पांचवें और छठे पाद छह-छह अक्षरों वाले तथा सातवां और आठवां पाद पांच-पांच अक्षरों के हैं।

आद्याः पंचाक्षराः पादास्त्रयः सप्ताक्षरः पदः।
पंचमश्चाऽथ षष्ठश्च द्वौ तु पादौ षडक्षरौ।।
पंचाक्षरौ तदन्तौ च तेषां भावो निगद्यते।। (वही, ३१/३१-३२)

अनुलोम क्रम में मन्त्र के पांच-पांच अक्षरों वाले प्रथम तीन पाद 'जातवेदसे' 'सुनवामसो' तथा 'ममरातीय' क्रमशः पंच ज्ञानेन्द्रियात्मक, पंच

त्रिष्टुभ् साधना-विधान

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः।।

(ऋग्वेद, १-६६-१)

उपर्युक्त आग्येया त्रिष्टुभ् विद्या ऋग्वेदीय है। प्रपंचसारतन्त्र में अन्य वैदिक ऋचाओं की भांति ही शंकर ने त्रिष्टुब् ऋचा का भी स्पष्ट उल्लेख न करके केवल इसके ऋषि-छन्दसादि एवं न्यासों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार त्रिष्टुब् ऋचा के ऋषि काश्यप, छन्दस् स्वयं त्रिष्टुब् तथा देवता जातवेद अग्नि हैं। पद्मपाद के अनुसार इस ऋचा का बीज रं तथा शक्ति ह्रीं है।

अथ वक्ष्यामि विद्यायास्त्रिष्टुभः प्रवरं विधिम्।
ऋषिच्छन्दोदेवताभिरंगन्यासक्रमैः सह।।
मरीचिः काश्यपो नाम ऋषिश्छन्दः स्वयं स्मृतम्।
देवता जातवेदोऽग्निरुच्यतेऽगान्यतो मनोः।।

(प्रपंचसारतन्त्र, ३१/१-२)

इस प्रकार त्रिष्टुब् मन्त्र की साधना में ऋष्यादिन्यास का स्वरूप निम्न होगा-

ओं काश्यपमरीचर्षये नमः (शिरसि),
ओं त्रिष्टुब्छन्दसे नमः (मुखे),
ओं जातवेदोग्निदेवतायै नमः (हृदये),
ओं रं बीजाय नमः (गुह्ये),
ओं ह्रीं शक्तये नमः (पादयोः)।

षडंगन्यास

साधक की कामनानुसार त्रिष्टुभ् मन्त्र की साथना की दो विधियां हैं। पहली अनुलोम विधि और दूसरी प्रतिलोम विधि। अनुलोम विधि में वर्ण, पद, पादादि न्यासादिकों का क्रम अनुलोम ही रहता है, जबकि प्रतिलोम विधि में यह प्रतिलोम हो जाता है। प्रतिलोम साधना समर्थ गुरुओं के निर्देशन में ही सम्पन्न की जानी चाहिये, अन्यथा यह साधक के लिये ही हानिकारक हो सकती है।

ब्रह्मवर्चस् के लिये

ब्रह्मवर्चस् की प्राप्ति के लिये १ हजार पलाश के पुष्पों का हवन करना चाहिये।

.....पालाशैर्ब्रह्मवर्चसे जुहुयात्। (वही, ३०/७२)

उपर्युक्त तिल, आज्य, पायस्, कमल, दूर्वा, पलाश के पुष्प एवं समिधा तथा अन्नादि सभी हवन द्रव्यों को एक साथ मिला कर हवन करने से साधक की सभी कामनाएं पूर्ण होती हैं।

सर्वैरेतैर्जुहुयात्सर्वफलाप्त्यै द्विजेश्वरो मतिमान्।। (वही, ३०/७२)

भगवती गायत्री के जप, हवन तथा पूजन का अमित प्रभाव है। यद्यपि गायत्री उपासना की अनेक विधियां हैं, फिर भी शंकर द्वारा निरूपित गायत्री उपासना की विधि सरलतम और शीघ्र फल देने वाली है। शंकर ने इसे वेदसार गायत्री का रहस्यमय सार कहा है।

इति परमरहस्यं वेदसारस्य सारं
गदितमज सुशुद्धैर्योगिभिर्ध्यानगम्यम्।
अमुमथ जपहोमध्यानकाले य एवं
भजति स तु विमुक्तः कर्मभिर्मुक्तिमेति।। (वही, ३०/७३)



Scanned by CamScanner

अथ पुनरमुमभिषिंचेत् संयतचित्तं च देशिकः शिष्यम्।
कृतहुतविधिमपि विधिवद् विहितबलिं दत्तदक्षिणं गुरवे।।
भूयस्त्वक्षरलक्षं गायत्रीं संयतात्मको जप्त्वा।
जुहुयात्पायसघृततिलदूर्वाभिर्दुग्धतरुसमिद्भिरपि।।
एकैकं त्रिसहस्रं मन्त्री समभीष्टसिद्धये...। (वही, ३०/६७-६६)

.....मुक्त्यै।
अक्षरसहस्रसंख्यं मुख्यतरैः केवलैस्तिलैर्जुहुयात्...। (वही ३०/६६)

गायत्री मन्त्र के विशेष प्रयोग

मोक्ष के लिये

मोक्षप्राप्ति के लिये केवल तिलों से २४ हजार हवन करना चाहिये।

पाप-विनाश एवं दीर्घायुष्य के लिये

पापों के विनाश तथा दीर्घायु के लिये १ हजार कमलों का हवन करना चाहिये।

.......सरोरुहैरयुतम्।
दुरितोच्छेदनविधये मन्त्री दीर्घायुषे च विशदमतिः।। (वही, ३०/७०)

दीर्घायु के लिये

दीर्घायु की इच्छा वाले को चाहिये कि वह घृतसहित खीर अथवा केवल घृत या तिलसहित दूर्वा या सब साथ मिलाकर ३ हजार हवन करे।

आयुःकामो जुहुयात् पायसहविराज्यैः केवलाज्यैश्च।
दूर्वाभिः सतिलाभिः सर्वैस्त्रिसहस्रसंख्यकं मन्त्री।। (वही, ३०/७०)

लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये

त्रिमधुर से युक्त लाल कमलों के हवन से निर्धन साधक भी लक्ष्मीवान् बन जाता है।

अथवा त्रिमधुरसिक्तैररुणैर्जुहुयात् सरोरुहैरयुतम्।
नष्टश्रीरपि भूयो भवति मनोज्ञः स मन्दिरं लक्ष्म्याः। (वही, ३०/३१)

अन्न-प्राप्ति के लिये

अन्न की प्राप्ति के लिये अन्न का ही हवन करना चाहिये।

अन्नाद्यर्थ्यन्नैरपि..... (वही, ३०/७२)

में शक्ति का आवाहन कर उसका ध्यान करते हुए **प्रथम आवरण** के आग्नेय, पश्चिम तथा ईशान नामक तीनों कोणों में ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्ररूपी त्रिमूर्ति, पूर्व, नैर्ऋत्य तथा वायव्य दिशा में गायत्री, सावित्री तथा सरस्वती नामक त्रिशक्तियों, **द्वितीय आवरण** में चारों मुख्य दिशाओं के मध्य में आदित्य तथा पूर्वादि में दिनेश की रवि, भानु, भास्कर तथा सूर्य नामक चतुर्मूर्तियों के साथ उपदिशाओं में उनकी उषा, प्रज्ञा, प्रभा तथा सन्ध्या नामक चार शक्तियों की, **तृतीय आवरण** में पूर्वादि क्रम से ही प्रह्लादिनी, प्रभा, नित्या, विश्वंभरा, विलासिनी, प्रभावती, जया तथा शान्ता, **चतुर्थ आवरण में** कान्ता, दुर्गा, सरस्वती, विद्या, रूपा, विशालेशा, व्यापिनी तथा विमला, **पंचम आवरण** में तमोपहारिणी, सूक्ष्मा, विश्वयोनि जयावहा, पद्मालया, परा, शोभा तथा पद्मभद्रा एवं दिग्पालों सहित भगवान् सूर्य की गन्ध से लेकर नैवेद्य तक षोडशोपचार पूजा करनी चाहिये।

संचिन्त्य भर्तारमिति प्रभाणां त्रिशक्तिमूर्तीः प्रथमं समर्च्य।
आदित्यशक्त्याख्यचतुष्टयेन यजेद्द्वितीयावरणे दिनेशम्।।
प्रह्लादिनीं प्रभां नित्यां सविश्वंभरसंज्ञिकाम्।
विलासिनीप्रभावत्यौ जयां शान्तां क्रमाद्यजेत्।।
कान्तां दुर्गासरस्वत्यौ विद्यां रूपाह्वयां तथा।
विशालेशां व्यापिनीं च विमलाख्यां क्रमाद् यजेत्।।
तमोपहारिणीं सूक्ष्मां विश्वयोनिं जयावहाम्।
पद्मालयां परां शोभां (पद्म) भद्ररूपां तथा यजेत्।।
मातृभिः सारुणान्ताभिः षष्ट्यथो सप्तमी ग्रहैः।
आदित्यपार्षदन्तैरप्यष्टमीन्द्रादिभिः सुरैः।।
आवृतिः कथिता चेति विधानं परमीदृशम्।। (वही, ३०/६१-६६)

पुरश्चरण-हवन

गायत्री की आवरण-पूजा सम्पन्न कराके आचार्य को चाहिये कि वह उक्त कलश के जल से शिष्य का अभिसिंचन करे तथा शिष्य को चाहिये कि वह गुरु को वस्त्राभूषणादि, दक्षिणा समर्पित कर उन्हें प्रसन्न करे। इसके अनन्तर साधक को चाहिये कि वह गायत्री मन्त्र की सिद्धि के लिये मन्त्र के २४ अक्षरों के अनुरूप २४ लाख जप करे तथा खीर, घृत, तिल, दूर्वा तथा दुग्धतरु की समिधाओं में से प्रत्येक का तीन-तीन हजार हवन करे।

क्रमात्तारादिमन्त्राणामृष्यादीन् विन्यसेत् सुधीः ।
तत्र तु प्रणवस्याऽऽदावृषिरुक्तः प्रजापतिः ।।
छन्दस्तु देवी गायत्री परमात्मा च देवता ।
जमदग्निभरद्वाजभृगुगौतमकाश्यपाः ।।
विश्वामित्रो वसिष्ठख्य ऋषयो व्याहृतीरिताः ।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च वृहती पंक्तिरेव च ।।
त्रिष्टुबूजगत्यौ छन्दांसि कथ्यन्ते देवता अपि ।
सप्तार्चिरनिलः सूर्यो वाक्पतिर्वरुणो वृषा ।।
विश्वेदेवा इति प्रोक्ताः सप्तव्याहृतिदेवताः ।
हृन्मुखांसोरुयुग्मेषु सोदरेषु क्रमान्न्यसेत् ।।
विश्वामित्रस्तु गायत्र्या ऋषिश्छन्दः स्वयं स्मृतम् ।
सवितास्या देवता च ब्रह्मा शिरऋषिः स्मृतः ।।
छन्दस्तु देवी गायत्री परमात्मा च देवता ।।
स्थानेषु पूर्वमुक्तेषु सतारा व्याहृतीर्न्यसेत् ।
गायत्रीं शिरसा विद्वान् जप्यात्त्रिः स्यादुपासना ।। (वही, ३०/४०-४७)

गायत्री शक्ति का ध्यान

गायत्री मन्त्र की उपासना में मन्दार, गोरोचनांजन तथा जवाकुसुम की आभा वाले तीन मुखों वाली, रत्नजडित चन्द्राकार मुकुट से सुशोभित, चौबीस वर्णों से निर्मित शरीरांगों वाली अशरीरिणी, कमल, चक्र, गदा, त्रिशूल, कपाल, पाश, अंकुश, इष्ट तथा अभय मुद्राधारिणी भगवती तारिणी गायत्री का ध्यान करना चाहिये।

मन्दाराहृवयरोचनांजनजवाच्छाभैर्मुखैरिन्दुम-
द्ररत्नोद्यन्मुकुटांगसन्ततचतुर्विंशार्णचित्राऽतनुः ।
अब्जे चारिगदाहृवयौ गुणकपालाख्यौ च पाशांकुशे-
ष्टाभीतीर्दधती भवेद्भवदभीष्टोद्भाविनी तारिणी ।। (वही, ३०/६०)

आवरण-पूजा

गायत्री की उपासना में आवरण-पूजा के लिये त्रिगुणित मण्डल का निर्माण करके उसमें गायत्री, सावित्री एवं सरस्वती नामक तीन शक्तियोंसहित सूर्यपीठ-पूजा सम्पन्न करनी चाहिये। तदनन्तर सौरपीठ पर कलश की स्थापना करके पंचगव्य अथवा पूर्वोक्त क्वाथ जल से कलश को भरना चाहिये। फिर उस कलश

'वेदों का सार यही 'सोऽहम्' है। गायत्री और गायत्रीशिरः मन्त्र इस अर्थ कि 'मैं वही हूं' के ही प्रतिपादक हैं, अतः इन्हें 'वेदसार' कहा जाता है।

आपोज्योती रस इति सोमाग्न्योस्तेज उच्यते।
तदात्मकं जगत्सर्वं रसस्तेजोद्वयं युतम्।।
अमृतं तदनाशित्वाद्बहुत्वाद्ब्रह्म उच्यते।।
यदानन्दात्मकं ब्रह्म सत्यज्ञानादिलक्षणम्।
तद्भूर्भुवः स्वरित्युक्तं सोऽहमित्योमुदाहृतम्।।
एतत् तु वेदसारस्य शिरस्त्वाच्छिर उच्यते।
लक्षणैरिति निर्दिष्टे वेदसारे सुनिष्ठितः।। (वही, ३०/२६-३२)

गायत्री उपासना

आचार्य शंकर ने—

'ओं भूर्भुवः स्वः जनः महः तपः सत्यं
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात्'

प्रणव तथा व्याहृतियों सहित इस गायत्री मन्त्र में पठित ओं, सप्त व्याहृतियों तथा मूल गायत्री मन्त्र के ऋष्यादि का भी उल्लेख किया है। उनके अनुसार इस मन्त्र में आये 'ओं' के ऋषि प्रजापति, छन्दस् देवी गायत्री, देवता परमात्मा हैं। जमदग्नि, भरद्वाज, भृगु, गौतम, काश्यप, विश्वामित्र तथा वसिष्ठ क्रमशः सप्तव्याहृतियों के ऋषि हैं। इसी प्रकार इस मन्त्र की व्याहृतियों के क्रमशः गायत्री, उष्णिग्, अनुष्टुब्, वृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् तथा जगती छन्दस् हैं। सप्त व्याहृतियों के देवता क्रमशः अग्नि, वायु, सूर्य, ब्रह्मा, वरुण, वृषा तथा विश्वेदेवा हैं। इन सातों का न्यास क्रमशः हृदय, मुख, दोनों कन्धों, दोनों जांघों तथा उदर में किया जाता है।

मन्त्र में पठित चौबीस अक्षरों वाले मूल गायत्री मन्त्र के ऋषि विश्वामित्र, छन्दस् गायत्री, देवता सविता हैं। गायत्रीशिरः मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्दस् देवी गायत्री तथा देवता परमात्मा हैं। व्याहृतियों का न्यास भी हृदयादि सप्तांगों में क्रमशः करना चाहिये। तार, व्याहृति-सप्तक तथा गायत्रीशिरः सहित गायत्रीमन्त्र का प्रतिदिन प्रातः, मध्याह्न तथा सायं पूर्वोक्त प्रकार से हृदय तथा अधोभाग के अंगों में न्यास सहित जप करना ही गायत्री उपासना है।

देवस्य वृष्टिदानादिगुणयुक्तस्य नित्यशः ।
प्रभूतेन प्रकाशेन दीप्यमानस्य वै तथा ।।
ध्यै चिन्तायामतो धातोर्निष्पन्नं धीमहीत्यदः ।
निगमाद्येन दिव्येन विद्यारूपेण चक्षुषा ।।
दृश्यो हिरण्मयो देव आदित्ये नित्यसंस्थितः ।
हीनतारहितं तेजो यथा स्यात् स हिरण्मयः ।।
यः सूक्ष्मः सोऽहमित्येवं चिन्तयामः सदैव तु ।
द्वितीयाष्टाक्षरस्यैवं व्याहृतिर्भुव ईरिता ।।
धियो बुद्धीर्मनोरस्य छान्दसत्वाद् य ईरितः ।
कृतश्च लिंगव्यत्यासः सूत्रात् सुपूतिङुपग्रहात् ।।
यत् तु तेजो निरुपमं सर्ववेद (देव) मयात्मकम् ।
भजतां पापनाशस्य हेतुभूतमिहोच्यते ।।
न इति प्रोक्त आदेशः षष्ठ्यसौ युस्मदस्मदोः ।
तस्मादस्माकमित्यर्थः प्रार्थनायां प्रचोदयात् ।।
तृतीयाष्टाक्षरस्यापि व्याहृतिः स्वरितीरिता ।
एवं दशपदान्यस्यास्त्रयश्चाऽष्टाक्षराः स्मृताः ।।
षडाक्षराश्च चत्वारः स्युश्चतुर्विंशदक्षराः ।
इत्थं भूतं यदेतस्य देवस्य सवितुर्विभाः ।।
वरेण्यं भजतां पापविनाशनकरपरम् ।
भर्गोऽस्माभिरभिध्यातं धियस्तन्नः प्रचोदयात् ।।
उक्त्वैवमत्र गायत्री पुनस्तच्छिर उच्यते । (वही, ३०/१३-२८)

गायत्रीशिरः मन्त्र

चतुर्विंशति अक्षरात्मक गायत्री मन्त्र के पद-पादादिकों की व्याख्या तथा तात्पर्यार्थ के निर्वचन के अनन्तर शंकर गायत्रीशिरः मन्त्र **"आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों"** के निर्वचन के प्रसंग में बताते हैं कि अप् सोमात्मक है और ज्योति अग्न्यात्मक। इन दोनों का तेजस् रस है। अप् और अग्नि के तेजस् से उत्पन्न रस से ही सारा संसार निर्मित है। वह रस अविनाशी है, अतः इसे अमृत कहते हैं। अमृतरूपी रस व्यापक है, अतः यह ब्रह्म कहलाता है। ब्रह्म सत्य ज्ञान तथा आनन्दमय है। 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' आदि श्रुति-सिद्धान्त इसका समर्थन करते हैं। सत्य-ज्ञानादि स्वरूप ब्रह्म ही 'भूर्भुवः स्वः' का वाच्य है। गायत्रीशिरः मन्त्र में पठित 'ओं' पद का तात्पर्य 'सोऽहम्' अर्थात् 'मैं वही हूं' है।

Scanned by CamScanner

भजनीयता और सभी प्राणियों के लिये प्रार्थनीयता की ओर संकेत करता है। इन तीन पदों के 'तत् सवितुः वरेण्यम्' इन ८ अक्षरों की व्याहृति 'भूः' है। २४ अक्षरों की पूर्ति के लिये 'वरेण्यं' के णकार को 'णि' माना जाता है।

मन्त्र के द्वितीय पाद 'भर्गो देवस्य धीमहि' इन आठ अक्षरों की व्याहृति 'भुवः' है। इनमें से 'भर्गः' पद पापों को भून डालने वाले चित् के प्रखर प्रकाश के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

'देवस्य' पद वृष्टि, दान आदि तथा देव की देदीप्यमानता के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

चिन्तनात्मक 'ध्यै' धातु से निष्पन्न 'धीमहि' शब्द 'निगमादि दिव्य नेत्रों से दृश्य, दीनतादि दोषरहित, आदित्यमण्डल में स्थित जो हिरण्मय देव है, वह मैं ही हूं' इस प्रकार के चिन्तन का निर्देश करता है।

गायत्री मन्त्र के तृतीय पाद 'धियो यो नः प्रचोदयात्' का सम्बन्ध 'स्वः' व्याहृति से है। आठ अक्षरों वाले इस पाद में पठित 'धियः' शब्द का अर्थ बुद्धि है।

'यः या यत्' शब्द से पूर्व भर्गः शब्द से निर्दिष्ट अखिल देवमय, निरुपम तेजस्, जो साधकों के पापों को नष्ट कर देता है, की ओर संकेत किया गया है।

'नः' पद षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में 'अस्माकम्' शब्द के स्थान पर आदेश (प्रयुक्त) है। 'प्रचोदयात्' पद प्रार्थनार्थक है।

प्रणवस्य व्याहृतीनां गायत्र्यैक्यमथोच्यते ।
अत्रापि तत्पदं पूर्वं प्रोक्तं तदनु वर्ण्यते ।।
तद् द्वितीयैकवचनमनेनाखिलवस्तुनः ।
सृष्ट्यादिकारणं तेजोरूपमादित्यमण्डले ।।
अभिध्येयं सदानन्दं परं ब्रह्माभिधीयते ।
यत्तत् सवितुरित्युक्तं षष्ठ्येकवचनात्मकम् ।।
धातोरिह विनिष्पन्नं प्राणिप्रसववाचकात् ।
सर्वासां प्राणिजातीनामिति प्रसवितुः सदा ।।
वरेण्यं वरणीयत्वात् सेवनीयतया तथा ।
भजनीयतया सर्वैः प्रार्थनीयतया स्मृतम् ।।
पूर्वस्याक्षरस्यैवं व्याहृततिर्भूरिति स्मृता ।
पापस्य भर्जनाद् भर्गो भक्तिस्निग्धतया तथा ।।

का द्योतक है। 'तपः' शब्द ज्ञानियों के लिये ज्ञान का कारण तथा अज्ञानियों के लिये ताप का कारण होने से ज्ञान और ताप दोनों का व्यंजक है। 'सत्यम्' अनृत से परे तथा आत्मस्वरूप तथा अनन्त 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' होने के कारण ब्रह्म का ही वाचक है। इसके अतिरिक्त 'ओं' का अकार भूः है, उकार भुवः, मकार स्वः, बिन्दु महः, नाद जनः, शक्ति तपः और शान्त सत्य है।

प्रकाशितादौ प्रणवप्रपंचता निगद्यते व्याहृतिसप्तकं पुनः।
सभूर्भुवः स्वश्च महोजनस्तपःसमन्वितं सत्यमिति क्रमेण।।
भूः पदार्था व्याहृतयो भूःशब्दस्तदि वर्तते।
तत्पदं सदिति प्रोक्तं सन्मात्रत्वात् तु भूरतः।।
भूतत्वात्कारणत्वाच्च भुवःशब्दस्य संगतिः।
सर्वस्य स्वीरणात् स्वात्मतया च स्वरितीरितम्।।
महत्त्वाच्च महस्त्वाच्च महःशब्दः समीरितः।
तदेव सर्वजनता तस्माद्(त्तु) व्याहृतिर्जनः।।
तपो ज्ञानतया चैव तथा तापतया स्मृतम्।
सत्यं परत्वादात्मत्वादनन्तज्ञानतः स्मृतम्।।
प्रणवस्य व्याहृतीनामतः सम्बन्ध उच्यते।
अकारो भूरुकारस्तु भुवो मार्णः स्वरीरितः।।
बिन्दुर्महस्तथा नादो जनः शक्तिस्तपः स्मृतम्।
शान्तं सत्यमिति प्रोक्तं यत्स्यात् परतरं पदम्।। (वही, ३०/६-१२)

१० पदों, तीन अष्टाक्षरों, चार षडक्षरों और चौबीस अक्षरों वाले **'गायत्री मन्त्र से वाच्य जो ध्यातव्य परम तेजस् रूप परमेश्वर है, वह हमारी बुद्धि को प्रेरित करे'** अर्थ के प्रतिपादक गायत्री मन्त्र 'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्' में तीन पाद हैं। इनमें से प्रथम पाद के 'तत्' 'सवितुः' 'वरेण्यं' इन तीन पदों की व्याख्या के प्रसंग में आचार्य शंकर के अनुसार 'तत्' पद द्वितीया विभक्ति के एकवचन का है। इस पद का लक्ष्य आदित्यमण्डलवर्ती सदानन्द स्वरूप परब्रह्म ही है।

'सवितुः' पद प्राणियों के प्रसव अर्थवाली 'षूङ्' प्राणिप्रसवे' धातु से निर्मित शब्द 'सवितृ' के षष्ठी विभक्ति के एकवचन का है और यह सर्वप्रसविता परमेश्वर के अर्थ में ही प्रयुक्त है।

मन्त्र का तृतीय पद 'वरेण्यं' परमेश्वर की वरणीयता, सेवनीयता,

सन्ध्योपासनया जपेन च तथा स्वाध्यायभेदैरपि।
प्राणायामविधानतो मतिमतां ध्यानैस्तथा नित्यशः।।

(प्रपंचसारतन्त्र, ३०/१-४)

ओम् का अर्थ

प्रणव, व्याहृति सप्तक, चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री एवं आपो ज्योतीरसोऽमृतम्.... का क्रमशः निर्वचन करते हुए आचार्य शंकर ने बताया है कि मन्त्र के आदि में जो तार अर्थात् 'ओम्' है, वह प्रकृतिरूपा परावाक् कुण्डलिनी शक्ति की विकृति पश्यन्ती आदि से उद्भूत या अभिव्यक्त होता है। मूलाधार में जो प्रकाश रूप (चिदग्नि) परावाक् कुण्डलिनी स्थित है, वही जब भ्रमर की भांति गुजार करती हुई सुषुम्ना मार्ग में प्रविष्ट होती है, तब मात्रा अर्थात् कुण्डलिनी* के अ उ म, बिन्दु, नाद, नादान्त और शान्त नामक सात वाचक भेदों के साथ क्रमशः वाच्य रूप से ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव, शक्ति और परा के रूप में अभिव्यक्त होती हुई 'ओम्' के रूप में ध्वनित होती है। वाचक-वाच्य दोनों भेदों से शून्य यही शक्ति सहस्रार में जाकर विशुद्ध ज्योति मात्र रह जाती है।

आदौ तारः प्रकृतिविकृतिप्रोत्थितोऽसौ च मूला-
धारादारादलिविरुतिराविश्य सौषुम्नमार्गम्।
आद्यैः शान्तावधिभिरनुगो मात्रया सप्तभेदैः
शुद्धो मूर्धावधिपरिगतः शाश्वतोऽन्तर्बहिश्च।। (वही, ३०/५)

सप्त व्याहृतियां और ओम्

भूः, भुवः, स्वः, जनः, महः, तपः और सत्यम् रूप जो सात व्याहृतियां हैं, उनके अर्थ का निर्वचन करते हुए आचार्य शंकर ने बताया कि 'भूः' का सम्बन्ध 'तत्' पद से है और 'तत्' पद् 'तत्सदेव सौम्य' 'ओं तत्सत्' इत्यादि श्रुतिप्रमाणों से 'सद्' ही है। इसके अतिरिक्त 'भूः' स्वयं सत्तार्थक है। 'भुवः' शब्द का 'भु' अक्षर भूतात्मक है और 'व' अक्षर वमनात्मक। अतः भुवः शब्द जगत् के उपादान कारण का द्योतक है। 'स्वः' शब्द आत्मार्थक एवं स्वर्गसुखात्मक है। 'महः' शब्द चैतन्यज्योति का वाचक है। चैतन्यज्योति का देश, काल तथा वस्तु तीनों ही रूपों में महत्त्व है। महत्त्व ब्रह्म है। अतः महः शब्द ब्रह्म का वाचक है। 'जनः' शब्द सर्वजनता का वाचक है। सर्वजनता ब्रह्म में है। अतः जनः शब्द ब्रह्म

* मात्रा कुण्डलिनी शक्तिः ए इत पद्मपादः।

गायत्री-साधना

गायत्री मन्त्र को 'वेदसार' कहा जाता है। यह मन्त्र वैदिक मन्त्रों में सर्वश्रेष्ठ है। शंकर ने गायत्री मन्त्र के वैदिक होने के कारण इसका साक्षात् उल्लेख न करके प्रकारान्तर से कूट द्वारा किया है। कभी विकृत न होने वाली मूल प्रकृति, महद्, अहंकार तथा पंच सूक्ष्मभूतरूपी प्रकृति-विकृतियों, पंच कर्मेन्द्रियों, पंच ज्ञानेन्द्रियों एवं पंच महाभूत तथा मनसूरूपी विकृतियों वाले चौबीस तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करने वाली (**तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्**) चौबीस अक्षरात्मिका अखिलार्थानुगता शक्ति कुण्डलिनी का ही दूसरा नाम गायत्री है।

शंकर के अनुसार—तार (ओं), सात व्याहृतियां (भूः, भुवः, स्वः, जनः, महः, तपः एवं सत्यं) मूल गायत्रीमन्त्र (तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्) तथा गायत्रीशिरः मन्त्र 'ओमापोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवस्वरों' सहित गायत्री मन्त्र अन्वर्थक माना जाता है (गायनात् त्रायते इति गायत्री) अर्थात् इसके गायन या जप से साधक की रक्षा होती है।

शंकर मानते हैं कि गायत्री मन्त्र की साधना का अधिकार केवल 'द्विज-भूदेवों' को है। 'द्विज भूदेव' शब्द से तन्तुक्रिया अर्थात् यज्ञोपवीत के अधिकारी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जातियों का बोध होता है। प्रतिदिन सन्ध्योपासना, जप, स्वाध्याय, प्राणायाम तथा ध्यानादि भेदों के साथ गायत्री उपासना का अधिकार केवल उन्हीं द्विज-भूदेवों को है, जिनके मातृ-पितृ दोनों कुल पवित्र हैं।

अथाऽखिलार्थानुगतैव शक्तिर्युक्ता चतुर्विंशतितत्त्वभेदैः।
गायत्रिसंज्ञाप्यथ तद्विशेषान् सहप्रयोगान् कथयामि सांगान्।।
ताराह्वयो व्याहृतयश्च सप्त गायत्रिमन्त्रः शिरसा समेतः।
अन्वर्थकं मन्त्रमिमन्तु वेदसारं पुनर्वेदविदो वदन्ति।।
जप्यः स्यादिह परलोकसिद्धिकामैर्मन्त्रोऽयं महिततरो द्विजैर्यथावद्।
भूदेवा नरपतयस्तृतीयवर्णाः सम्प्रोक्ता द्विजवचनेन तेऽत्र भूयः।।
तेषां शुद्धकुलद्वयोत्थमहसामारभ्य तन्तुक्रियां
तारव्याहृतिसंयुता सहशिरो गायत्र्युपास्या परा।

का हवन करता है, तो उसे सात दिनों के भीतर ही अपने वर्ण और जातियों के बीच ही आवास प्राप्त होता है।

अनुदिनमष्टशतं यो जुहुयात् पुष्पैरनेन मन्त्रेण।
सप्तदिनैः स तु लभते वासतद्वर्णसंकाशम्।। (वही, २६/४३)

जो व्यक्ति प्रतिदिन इस मन्त्र से चण्डेश का १०८ बार तर्पण करता है, उसे चार मास से पूर्व ही महालक्ष्मी अर्थात् अपार समृद्धि की प्राप्ति होती है।

अहरहरष्टशतं यो मन्त्रेणाऽनेन तर्पयेदीशम्।
तस्य तु मासचतुष्कादर्वाक् संजायते महालक्ष्मीः।। (वही, २६/४४)

एक अन्य पुत्तलिका प्रयोग

साध्य के नक्षत्र वृक्ष की सुकोमल छाल और पिसे हुए लवण को मिलाकर साध्य की एक प्रतिकृति बनाकर उसमें प्राणप्रतिष्ठा करने के बाद रात्रि में उसे काट-काट कर चण्ड मन्त्र का जप करते हुए सात दिनों तक हवन करने से, वह साध्य चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, इस जन्म में वश में तो रहेगा ही, दूसरे जन्म में भी वह वश में रहेगा, इसमें कोई संदेह नहीं।

साध्यर्क्षांघ्रिपचर्मणां सुमसृणां पिष्टैश्च लोणैः कृतां
छित्वा पुत्तलिकां प्रतिष्ठितचलां जप्त्वा च रात्रौ हुनेत्।
सप्ताहं पुरुषोऽंगना यदि चिरं वश्यस्त्ववश्यं भवे-
दस्मिन् जन्मनि नाऽत्र चोद्यविषयो देहान्तरेऽसंशयः।। (वही, २६/४५)

शंकर का विश्वास है कि जो साधक उक्त विधान के अनुसार श्रद्धापूर्वक चण्डमन्त्र का जप, हवन और आवरण पूजादि करता है, इस संसार में उसकी कामनाएं तो पूर्ण होती ही हैं, मृत्यु के अनन्तर वह शिवरूप भी हो जाता है।

इति चण्डमन्त्रविहितं विधिवद्विधिमादरेण य इमं भजते।
स तु वांछितं पदमिहाप्य पुनः शिवरूपतामपि परत्र लभेत।।
(वही, २६/४६)



शंकर ने इस प्रसंग में एक विशेष उल्लेख यह किया है कि चण्डेश के त्र्यक्षर मन्त्र 'ऊर्ध्व फट्' का जप जितनी संख्या में किया जाता है, उतनी ही संख्या में षडक्षर मन्त्र का भी जप किया जाना चाहिये। यहां स्पष्ट नहीं कि 'षडक्षर' से शंकर का तात्पर्य 'ओं नमः शिवाय' से है अथवा किसी अन्य षडक्षर मन्त्र से, अथवा उनका कहना है कि उक्त चण्डमन्त्र की साधना के अन्त में षडक्षर मन्त्र 'ओं नमः शिवाय' का जप भी ३ लाख करना चाहिये। प्रस्तुत प्रसंगानुसार यह मन्त्र 'चुं (चं) चण्डाय नमः' हो सकता है।

एवं जपहुतार्चाभिः सिद्धे मन्त्रे तु मन्त्रिणः।
वांछितादधिकं लभ्येत्कांचनं नात्र संशयः।।
त्र्यक्षरस्य जपो यावत्तावज्जप्यात् षडक्षरम्।
ऐहिकामुष्मिकीं सिद्धिं तथा हि लभते नरः।। (वही, २६/४०-४१)

चण्डेश्वर की उपासना के फल का उल्लेख करते हुए शंकर ने बताया है कि विधिपूर्वक चण्डेश्वर मन्त्र के जप, हवन तथा आवरण-पूजा से मन्त्र के सिद्ध होने से साधक को उसकी अभिलाषा से भी अधिक स्वर्ण और ऐहिक तथा पारलौकिक समृद्धि की प्राप्ति होती है।

चण्ड मन्त्र के कुछ अन्य प्रयोग

चण्ड मन्त्र के एक वशीकरण प्रयोग का उल्लेख करते हुए शंकर ने बताया है कि त्रिमधुरयुक्त शाली के चूर्ण से पुरुष या स्त्री, जिसे भी वश में करना हो, उसकी एक प्रतिकृति बनाकर पुरुष प्रतिकृति के दाएं और स्त्री के बाएं पैर के अंगूठे से आरम्भ कर काट-काट कर चिता के काष्ठ से प्रज्वलित अग्नि में १०८ बार इस मन्त्र से हवन करने से साध्य हमेशा के लिये वश में हो जाता है। यह प्रयोग चारों वर्णों के लिये विहित और वशकारक है।

कृत्वा पिष्टेन शाल्याः प्रतिकृतिमनलं चापि काष्ठैश्चिताना-
माधायारभ्य पुंसस्त्रिमधुरलुलितं दक्षिणांगुष्ठदेशात्।
छित्वा छित्वाऽष्टयुक्तं शतमथ जुहुयाद् योषितो वामभागा-
द्विप्रादीनां चतुर्णां वशकरमनिशं मन्त्रमेतद्धुतान्तम्।।

(वही, २६/४२)

आवास-प्राप्ति के लिये

यदि कोई व्यक्ति प्रतिदिन सात दिनों तक उक्त चण्ड मन्त्र से १०४ पुष्पों

रक्तकमल पर विराजमान भगवान् चण्डेश का ध्यान करते हुए प्रार्थना करनी चाहिये कि वे आप-हम सबकी रक्षा करें।

अव्यात्कपर्दकलितेन्दुकलः करात्तशूलाक्षसूत्रककमण्डलुटंक ईशः।
रक्ताभ्र(भ)वर्णवसनोऽरुणपंकजस्थो नेत्रत्रयोल्लसितवक्त्रसरोरुहो वः।।

(वही, २६/३३)

जप-हवन एवं आवरण-पूजा

दीक्षित साधक को चाहिये कि वह मन्त्र की जागृति के लिये चण्डेश मन्त्र का ३ लाख जप करके त्रिमधुरयुक्त तिल और तण्डुलों अथवा व्याघात की समिधाओं का ३० हजार हवन करे। चण्डेश की आवरण-पूजा पूर्वोक्त पीठ के प्रथम आवरण में अंगमन्त्र, द्वितीय में अष्टमातृकाएं और तृतीय में दिक्पालादिकों सहित गन्धादि से की जाती है।

कृतसंदीक्षो मन्त्री जप्याल्लक्षत्रयंच मन्त्रमिमम्।
जुहुयात्त्रिमधुरयुक्तैः सतिलैरपि तण्डुलैर्दशांशेन।
व्याघातसमिद्भिर्वा मनुजापी तावतीभिरथ जुहुयात्।
पूर्वोक्त एव पीठे गन्धाद्यैरर्चयेच्च चण्डेशम्।। (वही, २६/३४-३५)

आचार्य शंकर ने चण्डगायत्री 'चण्डचण्डाय विद्महे चण्डेश्वराय धीमहि तन्नश्चण्डः प्रचोदयात्' के जप को भगवान् चण्ड का सान्निध्य प्रदान करने वाला कहा है। इसके साथ ही उन्होंने पूजा-अर्चना आदि विधानों में 'चण्डेश्वराय' के आरम्भ में 'चुं' बीज और अन्त में 'नमः' लगाकर 'चुं चण्डेश्वराय नमः' मन्त्र के प्रयोग का उल्लेख किया है। चण्डेश्वर के इस मन्त्र के बीज के स्वरूप का निर्वचन करते हुए शंकर ने बताया है कि विद्वानों ने विष्णु (उ) सहित दण्डी (अनुस्वारवान्) कूर्म (च्) 'चुं' को इस मन्त्र का बीज कहा है।

चण्डचण्डाय चेत्युक्त्व प्रवदेद् विद्महेपदम्।
चण्डेश्वराय च प्रोक्त्वा धीमहिपदमुच्चरेत्।।
तन्नश्चण्ड इति प्रोक्त्वा ब्रूयाद् भूयः प्रचोदयात्।
एषा तु चण्डगायत्री जपात्सन्निधिकारिणी।।
अंगैः समातृभिर्मन्त्री लोकेशैः सम्प्रपूजयेत्।
कूर्मो विष्णुयुतो दण्डी बीजमस्योच्यते बुधैः।।
वदेच्चण्डेश्वरायेति बीजादिहृदयान्तिकम्।
अर्चनादिष्विमं मन्त्रं यथावत् सम्प्रयोजयेत्।। (वही, २६/३६-३८)

चण्डेश्वर मन्त्र-विधान

छठा स्वर (ऊ), हुतवह (र्), त से चतुर्थ वर्ण (ध्), य से चतुर्थ (व्), आदि स्वर (अ) और इनके अन्त में फट् मिलाने से निर्मित मन्त्र 'ऊर्ध्व फट्' चण्डेश्वर मन्त्र कहलाता है।

चण्ड मन्त्र के ऋषि त्रिक्, छन्दस् अनुष्टुप्, देवता चण्डेश हैं। शंकर के अनुसार चण्डमन्त्र का बीज 'चुं' (पद्मपादादि के अनुसार 'चं') तथा शक्ति फट् है। इस मन्त्र में 'फट्' अन्त वाले दीप्त, ज्वल, ज्वालिनि, तट, हन तथा सर्वज्वालिनि शब्द से षडंगन्यास किया जाता है।

षष्ठस्वरो हुतवहस्तययोतुरीयावादिस्वरो मनुरयं कथितः फडन्तः।
अस्य त्रिको निगदितो मुनिरप्यनुष्टुप् छन्दश्च चण्डसहितो मनुदेवतेशः।।
(वही, २६/३१)

कूर्मो विष्णुयुतो दण्डी बीजमस्योच्यते बुधैः।। (वही, २६/३८)

चं बीजं फट् शक्तिः। (वही, विवरण)

दीप्तज्वलज्वालिनिभिस्तटेन च हनेन च।
सर्वज्वालिनिसंयुक्तैः फडन्तैरंगमारभेत्।। (वही, २६/३२)

तदनुसार चण्डमन्त्र के न्यासादि निम्नवत् होंगे—

ऋष्यादिन्यास

त्रिकर्षये नमः शिरसि, अनुष्टुब् छन्दसे नमः मुखे,
चण्डेशदेवतायै नमः हृदि, चुं (चं) बीजाय नमः गुह्ये,
फट् शक्तये नमः पादयोः।

षडंगन्यास

दीप्तफट् हृदयाय नमः, ज्वल फट् शिरसे स्वाहा,
ज्वालिनी फट् शिखायै वषट्, तट फट् कवचाय हुं,
हन फट् नेत्रत्रयाय वौषट्, सर्वज्वालिनि फट् अस्त्राय फट्।

ध्यान

चण्डेश्वर मन्त्र की साधना में चन्द्रकला से सुशोभित जटाजूट, हाथों में त्रिशूल, अक्षमाला, कमण्डलु तथा टंक धारण किये, रक्तवर्णी मेघों के समान विशाल रक्तवर्णदेहवाले, रक्त-वसनधारी, तीन नेत्रों से सुशोभित मुखकमल,

धारण करना अत्यन्त हितकारी होता है। इस यन्त्र के धारण से लक्ष्मी, आयु, पुष्टि, सौभाग्य के साथ वशीकरण की शक्ति प्राप्त होती है और चोर, सर्प तथा महासर्प आदि का भय नहीं रह जाता।

बिम्बद्वन्द्वे कृशानोर्विलिखतु मनु(णि)मेनं ससाध्यं तदस्रि-
ष्वग्न्यादीन् व्यंजनार्णान् स्वरयुगलमथो सन्धिषट्के यथावत्।
तारावीतंच बाह्ये कुगृहपरिवृतं गोमयाद्रोचनाभ्यां
लाक्षाबद्धं निबध्याज्जपमहितमिदं साधु साध्योत्तमांगे।।
लक्ष्म्यायुःपुष्टिकरं परंच सौभाग्यवश्यकृत् सततम्।
चोरव्यालमहोरगभूतापस्मारहारि यन्त्रमिदम्।। (वही, २६/२७-२८)

षट्कोण के मध्य साध्य के नाम सहित चिन्तामणि मन्त्र लिखकर षट्कोण के छहों कोणों के बाहर अग्निबीज 'रं' तथा षट्कोण को स्पर्श करता हुआ अग्नि की ज्वाला के आकार वाला एक वृत्त अंकित कर इसे चिन्तामणि मन्त्र के १००८ जप से अभिमन्त्रित कर विषवृक्ष अर्थात् कुचले के वृक्ष की सर्वोच्च शाखा पर इस भावना से स्थापित किया जाय कि यह नरसिंह हैं। इस विधि से निर्मित और स्थापित इस यन्त्र के प्रभाव से भयभीत सिंह, वराह, चोर तथा पिशाचादि इसके आस-पास फटक भी नहीं सकते।

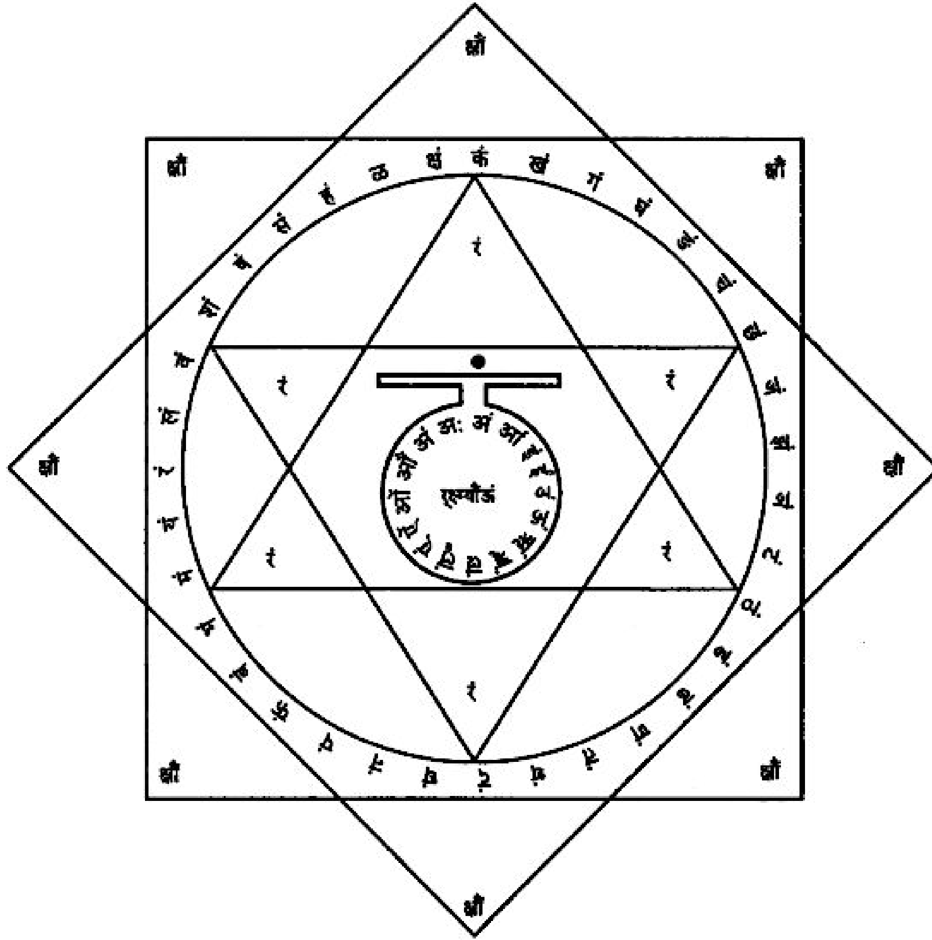
साध्याख्याकर्मयुक्तं दहनपुरयुगे मन्त्रमेनं तदस्रि-
ष्वग्निज्वालाश्च बाह्ये विषतरुविटपे साग्रशाखे लिखित्वा।
जप्त्वाऽष्टोर्ध्वं सहस्रं नृहरिकृतिधिया स्थापयेत् तत्र शत्रु-
व्याघ्रादिक्रोडचोरादिभिरपि च पिशाचादयो न व्रजन्ति।।

(वही, २६/२६)

आचार्य शंकर का कथन है कि सिद्धों और देवों से पूजित चिन्तामणि मन्त्र साधकों की सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला कल्पद्रुम है। यह धर्म अर्थ, काम तथा मोक्ष रूप चतुर्वर्ग की पूर्ति करने वाला तथा ग्रह, ज्वर एवं विषादि कष्टों को दूर करके साधक के जीवन को सुख एवं सौभाग्य प्रदान करता है।

ससिद्धसुरपूजितः सकलवर्गसंसाधको
ग्रहज्वरविषापहो विविधकामकल्पद्रुमः।
किमत्र बहुना नृणामभिमतार्थचिन्तामणिः
समुक्त इह संग्रहान्मनुवरस्तु चिन्तामणिः।। (वही, २६/३०)

सर्वरक्षाकर यन्त्र



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - २९/२६)

[**जपसंख्या - १० हजार • आहुति-संख्या - १ हजार**
हवनद्रव्य - मधुरत्रय]

षट्कोण के बीच चिन्तामणि मन्त्र, इसके भीतर साध्य का नाम, षट्कोण के छहों कोणों में चिन्तामणि मन्त्र के आरम्भिक छह अक्षर, षट्कोण की सन्धियों के दोनों ओर (नपुंसक स्वरों ऋ ॠ ऌ ॡ को छोड़कर) दो-दो स्वर (अथवा चिन्तामणि मन्त्र के शेष औ और ऊ दो अक्षर) लिख कर इस यन्त्र को 'ओं' से वेष्टित कर इसके बाहर चतुरस्र बनाना चाहिये। इस यन्त्र को गोमय (गाय के गोबर) के जल और गोरोचन से कागज या वस्त्र आदि पर अंकित कर जप, हवनादि से अभिमन्त्रित कर लाख से बने ताबीज आदि में रख साध्य के सिर पर

कृत्वा वह्नेः पुरमनु मनुं बन्धुजीवेन तस्मि-
न्नाधायाऽग्निं विधिवदभिसम्पूज्य चाऽऽज्यैः शताख्यम्।
त्रैलोहाख्ये प्रतिविहितसंपातमष्टोत्तरं त-
द्धुत्वा जप्तं दुरितविषवेतालभूतादिहारि।। (वही, २६/२४)

सर्वरक्षाकर यन्त्र

एक त्रिकोण बनाकर उसके भीतर चिन्तामणि बीज और मन्त्र के मध्य में साध्य का नाम लिखे। फिर इस त्रिकोण के बाहर एक षट्कोण निर्मित कर उसके छहों कोणों में चिन्तामणि मन्त्र के पूर्वोक्त छह अंगमन्त्रों को पूर्वादि क्रम में लिख दे। तदनन्तर इस षट्कोण के बाहर एक अष्टदल कमल बनाकर उसके दलों में पूर्वादि क्रम में चिन्तामणि मन्त्र के 'र् क् ष् म् र् य् औ ऊं' आठ बीज लिखे और इसके बाहर तीन वृत्त बनाकर प्रथम वृत्त को स्वरों से, द्वितीय को कादि पच्चीस व्यंजनों और तृतीय को यादि दस व्यंजनों से घेर दे। फिर इस यन्त्र के बाहर चतुरस्र बनाकर इसके चारों कोणों में नरसिंह बीज 'क्ष्रौं' लिखकर कलशस्थापना तथा अर्चनादि सम्पन्न करने से यन्त्र सिद्ध हो जाता है। इस यन्त्र को धारण करने से प्रत्येक प्रकार की रक्षा होती है।

साध्याख्यागर्भमेनं लिख दहनपुरे कर्णिकायां षडस्रं
बाह्यास्रिष्वंगमन्त्रान् दलमनु परितो बीजवर्णान् विभज्य।
भूयोऽचः कादियार्दीस्त्रिषु वृतिषु कुगेहास्रके नारसिंहं
तस्मिन् कार्यो यथावत्कलशविधिरयं सर्वरक्षाकरः स्यात्।।
(वही, २६/२५)

एक षट्कोण बनाकर उसके मध्य 'ठं' बीज लिख उसके बीच अकारादि सोलह स्वरों से आवृत चिन्तामणि मन्त्र लिखे। षट्कोण के छठों कोणों में 'रं' बीज लिखे। फिर इसके बाहर कादि व्यंजन वर्णो से आवृत सूर्यबिम्ब अर्थात् वृत्त बना दे। तदनन्तर इसके बाहर दो चतुरस्र बनाकर इसके आठों कोणों में नरसिंह बीज 'क्ष्रौं' लिखे। इसके बाद पूर्वोक्त विधि से इसकी पूजा-अर्चना के बाद इसे धारण करने से ग्रह, विषम ज्वर तथा जूति (जूड़ी ज्वर) आदि विशेष रोगों से रक्षा होती है।

टान्ते लिख्यात्कलाभिर्वृतमनुमनलावासयुग्मेन वह्नि-
द्योतत्कोणेन बाह्ये तदनु सवितृबिम्बेन काद्यवर्णभाजा।
तद्बाह्ये क्ष्मापुराभ्यां लिखितनृहरियुक्तास्रकाभ्यां तदेतद्
यन्त्रं रक्षाकरं स्याद् ग्रहभयविषमक्ष्वेलजूर्त्यादिरोगे।। (वही, २६/२६)

दक्षिणपार्श्वदक्षिणपादैर्जुहुयात् स्त्रीवश्ये। पुरुषवश्ये तु विपरीत-मित्यर्थः"। (वही, विवरण)

अहिपत्र अर्थात् पान के पत्ते पर मकार और रकार 'म्र' के बीच साध्य का नाम लिखकर इसे चतुरस्र से घेर कर चतुरस्र के चारों कोणों में लांगलिक अर्थात् 'ठं' लिख कर खिलाने से सिर के रोग दूर हो जाते हैं।

विषपावकोद्यदभिधानगदं ठगतं कुकोणधृ(यु)तलांगलिकम्।
अहिपत्रक्लृप्तपरिजप्तमिदं शिरसो रुजं प्रशमयेददनात्।।
(वही, २६/२२)

वशीकृत साध्य के साथ स्वेच्छापूर्वक क्रीड़ादि व्यवहार करने के लिये चिन्तामणि मन्त्र 'र्क्ष्म्र्यौऊं' के र् क् ष् म् र् य् औ ऊ ं (बिन्दु) अक्षरों में से र् सहित क् से साध्य के कण्ठ को अवरुद्ध करके, मज्जा (ष्) और म् से उसकी वाम और दक्षिण भुजाओं को बांध, अनल (र्), समीर (य्) औ और ऊ से क्रमशः उसके वाम और दक्ष दोनों कन्धों, मुख और नाभि को बांध, चन्द्रामृत बिन्दुरूप अनुस्वार से उसके जीव को उसके हृदय में स्थापित करके उसे समग्र रूप में अपने वश में कर लेना चाहिये।

कण्ठे केनाऽवरुद्ध्याऽर्पितदहनयुजा मज्जया मेन वामं
दक्षं संवेष्ट्य वक्षोरुहमनलसमीरौभिरंसद्वयंच।
वक्त्रे नाभौ च दीर्घं सुमतिरथ विनिःक्षिप्य बिन्दुं निशेशं
वक्षस्याथाय बद्ध्वा चिरमिव विहरेत्कन्दुकैरात्मसाध्यैः।। (वही, २६/२३)

त्रिकोण बनाकर उसके बीच बन्धुजीव (दुपहरिया) के पुष्प के रस से चिन्तामणि मन्त्र लिखकर अग्नि-स्थापना और पूर्वोक्त शैव पीठ पर उक्त विधानानुसार अर्चनादि सम्पन्न कर, चिन्तामणि मन्त्र से सौ बार घृत का हवन करने के अनन्तर शेष घृत का संपात मातृका-विधान में वर्णित विधि* के अनुसार त्रिलौह (स्वर्ण, रजत और ताम्र) निर्मित मुद्रिका पर डालकर मन्त्र के १०८ बार जप से उस मुद्रिका को अभिमन्त्रित करके धारण करने से विष, वेताल तथा भूत-प्रेतादि की बाधाओं से मुक्ति मिलती है।

पद्मपाद के अनुसार बन्धुजीव पुष्प के रस से लीपी गई भूमि पर उक्त यन्त्र बनाना चाहिये।

* प्रपंचसारतन्त्र, ७/१२-१३

चिन्तामणि मणि बीज 'रं' को अपनी जननेन्द्रिय के अग्रभाग में स्थित रूप में चिन्तन करता हुआ साधक यदि साध्या की योनि में लिंग प्रविष्ट करे, तो वह उसके स्पर्शमात्र से वश में हो जाती है और उसकी योनि से स्निग्धस्राव होने लगता है।

निजशिवशिरःस्थितं तद्बीजं स्मृत्वा प्रवेशयेद् योनौ।
यस्यास्तत्सम्पर्कात्तांच स्रवयेत् क्रमेण (क्षणेन) वशयेच्च।।

(वही, २६/१६)

पहले एक त्रिकोण बनाकर इसके बाहर षट्कोण बनाया जाय। फिर इसके छहों कोणों में अग्निबीज 'रं' लिखा जाय। तदनन्तर त्रिकोण के मध्य चिन्तामणि मन्त्र 'र्क्ष्म्र्यौऊं' लिखकर इसके द्वितीय रकार के भीतर साध्य का नाम लिखकर इसे विपरीत क्रम में लिखे स्वरों से आवृत कर उसे आंगन में दबा दिया जाय, तो यह क्रिया प्रेमियों को वश में कर लेती है।

पद्मपाद के अनुसार रमण में रत प्रेमियों के साथ-साथ स्खलित होने के लिये किया जाने वाला यह प्रयोग 'अग्नि-अमृतस्थ' प्रयोग कहा जाता है।

पररेफगर्भधृतसाध्यपदं त्रिकगं हुताशयुगषट्कवृतम्।
विगतस्वरावृतमगारभुवि स्थितमेतदाशु वशयेद्रमणान्।। (वही, २६/२०)

"उभयोरपि सहक्षरणार्थमग्न्यमृतस्थप्रयोगान्तारमाह"। (वही, विवरण)

मधुरत्रय सहित शाली के आटे से साध्य की प्रतिमा बना कर उसे काट-काट कर तीन दिन तक चिन्तामणि मन्त्र से हवन किया जाय, वह शीघ्र ही वश में हो जाता है।

पद्मपाद के अनुसार स्त्री प्रतिमा का विभाजन एवं हवन वाम पाद, वाम पार्श्व, वाम हस्त, शिर, दक्षिण हस्त, दक्षिण पार्श्व तथा दक्षिण पाद के क्रम से तथा पुरुष प्रतिमा का विभाजन तथा हवन इससे विपरीत क्रम से किया जाना चाहिये।

मधुरत्रयसंयुतेन शालीरजसा पुत्तलिकां विधाय तेन।
मनुना जुहुयात्तया(था) विभज्य त्रिदिनं यस्य कृते वशीभवेत् सः।।

(वही, २६/२१)

"तयाविभज्येति। सव्यपाद सव्यपार्श्व सव्यहस्त शिरो दक्षिणहस्त

पारिभद्रसुमनोदलभद्रं वह्निबिम्बगतमक्षरमेतत्।
संस्मरेच्छिरसि यस्य स वश्यो जायते न खलु तत्र विचारः।।

(वही, २६/१७)

यदि किसी कामिनी की योनि में अपने नाम के बीच में स्थित चिन्तामणि बीज का चिन्तन किया जाय, तो वह साधक की मन्त्ररूपी रज्जु से खींची जाती हुई क्षणभर में ही वश में हो जाती है।

पद्मपाद ने इस प्रसंग में कुण्डलिनी के जागरण से निष्पन्न होने वाली ऊर्ध्वरेतस् क्रिया की ओर संकेत किया है। वे कहते हैं कि यहां साध्या की योनि में स्थित मन्त्ररूपी रज्जु से उसके मन के आकर्षण होने के कथन में आचार्य शंकर का तात्पर्य 'स्त्री या पुरुष की जननेन्द्रिय के माध्यम से निकलने वाली कुण्डलिनी की आकर्षण-शक्ति से पुरुष अथवा स्त्री के रेतस् या रजस् के आकर्षण से है। कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत् हो जाने पर किन्हीं-किन्हीं योगियों में रेतस् या रजस् का ऊर्ध्वारोहण या तो स्वतः होने लगता है या योगी उसे ध्यानक्रिया से आकर्षित कर ओजस् में परिवर्तित कर लेते हैं।

पद्मपाद के अनुसार रेतस् या रजस् जिसका भी प्रतिबन्ध अर्थात् स्तम्भन इष्ट हो, उसे उसके आश्रय-स्थल चन्द्रमण्डल या योनिस्थान के बीच स्थित चिन्तामणि मन्त्र को चतुरस्र के भीतर पृथिवी बीज 'लं' के मध्य चिन्तन करना चाहिये। यदि रेतस् या रजस् का स्तम्भन इष्ट न हो तो अग्निबीज 'रं' के मध्य में ऐसा ध्यान करना चाहिये।

"योनिस्थमन्त्ररज्ज्वाबद्धस्य तस्या मनसः स्वलिंगनिःसृतकुण्डली-शक्त्याकर्षणध्यानमुक्तम्। स्रवयेच्चेति। यस्य प्रतिबन्ध इष्टः, शुक्रस्य रक्तस्य वा तदाश्रये पृथ्वीबीजस्थमर्णं चिन्तयेत्। इतरत्राऽग्निबीजस्थं तत इष्टं भवतीतित्यर्थः"।। (वही, विवरण)

यदि (पुरुष अथवा स्त्री) साधक अपने नाम के बीच 'रं' बीज को किसी नारी की योनि (या पुरुष की जननेन्द्रिय) में स्थित रूप में ध्यान करे, तो वे क्षण भर में ही उसके वश में हो जाते हैं और कामोद्दीपन के कारण उनकी जननेन्द्रियों से शुक्र (रेतस्) या रुधिर (रजस्) स्रवित होने लगता है।

निजनामगर्भमथबीजमिदं परिचिन्त्य योनिसुषिरे सुदृशः।
वशयेत्क्षणाच्छिततया मनसः स्रवयेच्च शुक्रमथवा रुधिरम्।।

(वही, २६/१८)

शिरोरोगी और इसी प्रकार पृथ्वीमण्डल अर्थात् चतुरस्र में स्थित इस बीज का उसके कण्ठनाल में ध्यान करने से उसकी वाणी अवरुद्ध हो जाती है।

कृष्णाभं प्राणगेहस्थितमथ नयने ध्यातमान्ध्यं विधत्ते
वाधिर्यं कर्णरन्ध्रेऽर्दितमपि वदने कुक्षिगं शूलमाशु ।
मर्मस्थाने समीरं सपदि शिरसि वा दुःसहं शीर्षरोगं
वाग्रोधं कण्ठनालेऽवनिवृतमथ तन्मण्डले बीजमेतत् ।।

(वही, २६/१४)

रोगों से मुक्ति के लिये प्रयोग

स्वरों से आवृत ओस की बिन्दुओं की भांति निर्मल आभा वाले चिन्तामणि मन्त्र का नेत्रों में ध्यान करने से नेत्ररोग, स्त्रियों की योनि में चिन्तन से योनि से होने वाला रक्तस्राव, कुक्षि में ध्यान से उदर रोग नष्ट हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त शरीर में विषैले फोड़ा-फुंसी, ज्वर, अधिक प्यास, रक्तामय अर्थात् मल आदि में रक्त का आना, विभ्रम, शरीर में जलन तथा सिर की पीड़ा आदि रोगों में रोग से सम्बन्धित शरीर के अंगों में चिन्तामणि मन्त्र का ध्यान करने से रोगी रोगों से मुक्त हो जाता है।

प्रालेयत्विषि च स्वरावृतमिदं नेत्रे स्मृतं तद्रुजं
यौनौ वामदृशोऽस्रविस्रुतिमथो कुक्षौ च शूलं जयेत्।
विस्फोटे सविषे ज्वरे तृषि तथा रक्तामये विभ्रमे
दाहे शीर्षगदे स्मरेद्विधिमिमं संतृप्तये मन्त्रवित् ।। (वही, २६/१५)

साध्या नारी के हृदयकमल में स्थित प्राणों को चिन्तामणि मन्त्र के बीजाक्षरों से बांध, उसके सिर पर विधु (बिन्दु) सहित तेजस् अर्थात् अग्निबीज 'रं' स्थापित कर, वायु बीज 'यं' रूपी रज्जु से साधक उसे अपनी इच्छानुसार अपने पास खींच सकता है।

साध्याया हृदयकुशेशयोदरस्थं प्राणाख्यं दृढमभिबध्य बीजवर्णैः।
तेजस्तच्छिरसि विधुं विधाय वातेनाकर्षेदपि निजवाञ्छयैव मन्त्री ।।

(वही, २६/१६)

त्रिकोण के मध्य पारिजात (मन्दार) के पुष्प की पंखुड़ियों के मध्य की नीलाभ कान्ति वाले 'रं' का चिन्तन जिसके भी सिर पर किया जायगा, वह ध्याता के वश में हो जायगा, यह निश्चित है।

कुछ बताकर पीड़ित को मुक्त कर चला जाता है। इसके अलावा 'रं' बीज का जप करते हुए भूत-पीड़ित को बन्धुजीव (दुपहरिया) का पुष्प सुंघाने से भी उसमें उक्त आवेश होता है।

वह्नेर्बिम्बे वह्निवत् प्रज्वलन्तं न्यस्त्वा बीजं मस्तके ग्रस्तजन्तोः।
ध्यात्वाऽऽवेशं कारयेद्बन्धुजीवं तज्जप्तं वा सम्यगाघ्राणनेन।।

(वही, २६/१२)

चिन्तामणि मन्त्र के प्रथमवर्ण रकार के स्थान पर यदि शुक्लाक्षर अर्थात् 'स्' रखकर मन्त्र 'स्क्ष्म्ल्र्यौऊं' का श्वेत वर्ण के रूप में मस्तक पर ध्यान किया जाय, तो शिरोरोग दूर होने के साथ ही साधक को शारीरिक-मानसिक पुष्टि भी प्राप्त होती है।

आकर्षण और वशीकरण के लिये रक्ताक्षर 'र्' युक्त रक्तवर्णी 'र्क्ष्म्ल्र्यौऊं' का, संक्षोभन और स्तम्भन के लिये प्रथम रकार के स्थान पर ह् रखकर स्वर्णवर्णी 'ह्क्ष्म्ल्र्यौऊं' का, अंगपीड़ा तथा उच्चाटन के लिये आदि र् के स्थान पर वायुवर्ण 'य्' रखकर धूम्रवर्णी 'य्क्ष्म्ल्र्यौऊं' का, स्तम्भन के लिये पृथ्वीवाचक वर्ण 'ल्' जोड़ पीतवर्णी 'ल्क्ष्म्ल्र्यौऊं' का तथा मोक्षप्राप्ति के लिये प्रथम र् के स्थान पर वरुण वर्ण 'व्' जोड़कर अत्यन्त निर्मल श्वेतवर्णी 'व्क्ष्म्ल्र्यौऊं' का मस्तक में ध्यान करना चाहिये।

शुक्लादिः शुक्लभाः पौष्टिकशमनविधौ कृष्टिवश्येषु रक्तो
रक्तादिः क्षोभसंस्तोभनविधिषु हकारादिको हेमवर्णः।
धूम्रोऽङ्गामर्दनोच्चाटनविधिषु समीरादिको मा(ऽवा) दिरुक्तः
पीताभः स्तम्भनादौ मनुरतिविमलो मुक्तिभाजामना(दा)दिः।।

(वही, २६/१३)

अभिचार-प्रयोग

वायुगृह (छह बिन्दु युक्त) वृत्त* में स्थित कृष्णवर्णी चिन्तामणि मन्त्र का ध्यान शत्रु के नेत्रों में करने से वह अन्धा, कान के छिद्रों में स्थित ध्यान से बहरा, मुख में ध्यान से मुखरोगी, कुक्षि में ध्यान से उदर पीड़ा से ग्रस्त, हृदय आदि मर्म स्थानों में ध्यान से वायु-विकार से पीड़ित, सिर में ध्यान से असहनीय

* वृत्तं व्योम्नो बिन्दुषट्कान्वितं तद्वायोरग्नेः स्वस्तिकोद्यत्त्रिकोणम्।
अब्जोपेतार्द्धेन्दुमद्बिम्बमाप्यं स्याद्वज्रोद्यच्चातुरस्रं धरायाः।। (प्रपंचसारतन्त्र, १/४६)

अकारादि सोलह स्वरों अर्थात् चन्द्रकलाओं से घिरा हुआ और चन्द्रमा से स्रवित हो रहे अमृत की धारा से संसिक्त-सा चिन्तन करते हुए, इस मन्त्र का जप करे, तो उसकी अकाल मृत्यु नहीं होती और वह विष, ज्वर, स्मृतिभ्रंश, विभ्रम तथा सिर के रोगों से मुक्त हो जाता है।

शिरसोऽप्यतरन्निशेशबिम्बस्थितमम्भिर्वृतमागलत्सुधार्द्रम्।
अपमृत्युहरं विषज्वरापस्मृतिविभ्रान्तिशिरोरुजापहंच।। (वही, २६/१०)

पहले एक षट्कोण निर्मित कर उसके छहों कोणों में वैश्वानर के स्वकीय वर्ण 'रं' से आरम्भ कर मन्त्र के छह अक्षर लिखे जायं। तदनन्तर इस षट्कोण के बीच एक त्रिकोण बना कर उसके मध्य में विपरीत क्रम से बिन्दुयुक्त १६ स्वर लिखे जायं। तदनन्तर चिन्तामणि मन्त्र जप से इसे अभिमन्त्रित करके धारण किया जाय, अथवा इस यन्त्र को अपने सिर पर स्थित-सा चिन्तन किया जाय, तो ग्रहजन्य पीड़ाएं क्षणभर में नष्ट हो जाती हैं।

निजवर्णविकीर्णकोणवैश्वानरगेहद्वितयावृतत्रिकोणम्।
विगतस्वरवीतमुत्तमांगे स्मृतमेतत् क्षपयेत् क्षणाद् ग्रहार्तिम्।।
(वही, २६/११)

पद्मपाद के अनुसार षट्कोण के छहों कोणों में अग्निबीज 'रं' इन अग्निबीजों के उदर में पूर्वादि क्रम से क्रमशः मन्त्र के रकारादि मूल अक्षर 'र् क् ष् म् र् य्' लिखने चाहिये। फिर षट्कोण के भीतर स्थित त्रिकोण के बीच लिखे अग्निबीज 'रं' के बिन्दु में अग्निबीज का मूलाक्षर 'र्' लिखा जाय। तदनन्तर प्रपंचसारतन्त्र (२६/२२) में उल्लिखित विधि के अनुसार 'म' के भीतर अग्निबीज और उसके भीतर साध्य का नाम एवं ककार अथवा मकार से सम्बन्धित रकार के भीतर साधक का नाम और साथ ही कर्म लिखना चाहिये।

"सर्वकोणेष्वग्निबीजं लिखित्वा तेषु बीजेषु मूलाक्षराणि षट्कोण-पूर्वकोणमारभ्य लिखित्वा मध्यगताग्निबीजे बिन्दौ मूलं लिखित्वा तत्र वक्ष्यमाणक्रमेण मकारसम्बन्धरेफोदरे साध्यं कोदरे मोदरे वा साधकं साधकांशे कर्म च विलिखेदिति"। (वही, विवरण)

भूत-प्रेतादि से ग्रस्त व्यक्ति के सिर पर त्रिकोण बनाकर उसके बीच अग्नि बीज 'रं' लिखने से उस व्यक्ति में उसे पीड़ा देने वाले भूतादि का आवेश होता है। पीड़ित के शरीर में आविष्ट भूतादि अपने और पीड़ित व्यक्ति के बारे में सब

उल्लिखित शैवपीठ* पर दो विधियों से की जाती है। प्रथम विधि के अनुसार प्रासादोक्त पीठ पर भगवान् उमेश अथवा अर्धनारीश्वर का आवाहन करके पूर्व निर्मित अष्टदल कमल की कर्णिका में चिन्तामणि बीज, प्रथम आवरण में अंगमन्त्र, द्वितीय आवरण में वृषभ, क्षेत्रपाल, चण्डेश्वर, दुर्गा, गुह, नन्दी, गणेश तथा सैन्यपाल के प्रथम अक्षर में अनुस्वार लगाकर 'वृं वृषभाय नमः, क्षं क्षेत्रपालाय नमः...' आदि रूप में, तृतीय आवरण में ब्रह्माणी आदि अष्टमातरों एवं चतुर्थ आवरण में दिक्पालों की ध्यान, आवाहन, नैवेद्य, नीराजन और प्रणाम से पंचोपचार** पूजा करनी चाहिये।

शैवोक्तपीठांगपदैर्यथावद् वृक्षेचदुर्गुनगसैर्मुखाद्यैः।
समातृभिर्दिक्पतिभिर्महेशं पंचोपचारैर्विधिनाऽर्चयीत।। (वही, २६/७)

आवरण-पूजा की द्वितीय विधि यह है कि उक्त यन्त्र के प्रथम आवरण में पूर्वादि आठों दिशाओं में मन्त्र के आठों अक्षर क्रमशः 'रं नमः, कं नमः, षं नमः, मं नमः, रं नमः, यं नमः, औं नमः, ऊं नमः' के रूप में, द्वितीय आवरण में अष्ट मातृवर्ग और तृतीय आवरण में दिक्पाल अर्चित किये जायं।

आरभ्यादिज्वलनं दिक्संस्थैरष्टभिर्मनोर्वर्णैः।
आराधयेच्च मातृभिरिति सम्प्रोक्तः प्रयोगविधिरपरः।। (वही, २६/८)

चिन्तामणि मन्त्र के प्रयोग

कुछ साधकों ने चिन्तामणि मन्त्र के ककार से पहले वाले रकार के स्थान पर ह्स् जोड़कर 'ह्स्क्ष्म्र्यौऊं' के रूप में जप करना विशेष फलप्रद कहा है। इसी प्रकार यदि उक्त मन्त्र के प्रथम रकार के स्थान पर प्रासाद मन्त्र जोड़कर 'हौं क्ष्म्र्यौऊं' का जप किया जाय, तो नीरोग व्यक्ति में अधिक ऊर्जा का या स्वस्थता का आवेश कराया जा सकता है।

कात्पूर्वं हसलिपिसंयुक्तं जपादौ जप्तॄणां प्रवरमितीह केचिदाहुः।
प्रासादाद्ययुतजपेन मंक्षु कुर्यादावेशादिकमपि नीरुजांश्च मन्त्रः।।
(वही, २६/६)

साधक यदि अपने सिर से उतरते हुए चन्द्रमण्डल के बीच स्वयं को

* देखें प्रपंचसारतन्त्र, २७/ १०-१३

** ध्यानमाहवनं चैव शक्त्या यच्च निवेदितम्।
नीराजनं प्रणामं च पंचपूजोपकारकाः।। जाबालिः।

मस्तक, त्रिनयन, उमा के साथ क्रीडारत, आठ भुजाओं में सर्प, परशु, त्रिशूल, खड्ग, अग्नि, कपाल, बाण और धनुष धारण किये भगवान् उमेश का ध्यान करते हुए उनसे प्रार्थना करनी चाहिये कि वे आप और हम सबकी रक्षा करें।

अहिशशधरगंगाबद्धतुंगाप्तमौलि-
त्रिदशगणनताऽंघ्रिस्त्रीक्षणः स्त्रीविलासः।
भुजगपरशुशूलान् खड्गवह्नी कपालं,
शरमपि धनुरीशो बिभ्रदव्याच्चिरं वः।। (वही, २६/३)

अर्धनारीश्वर का ध्यान

ऐश्वर्य-प्राप्ति हेतु किये जाने वाले नित्य जप-पूजादि या पुरश्चरण में ऐसे अर्धनारीश्वर का ध्यान करना चाहिये जिसके शरीर का वामभाग (नारीरूप) ललित हाव-भावों से युक्त, दायां भाग (महेश्वर के रूप में) भीषण, वामभाग के हाथों में पाश और कमल, दाएं भाग के हाथों में कपाल और त्रिशूल सुशोभित हो रहा है।

हावभावललितार्धनारिकं भीषणार्धमथवा महेश्वरम्।
पाशसोत्पलकपालशूलिनं चिन्तयेज्जपविधौ विभूतये।। (वही, २६/४)

अभिचारादि क्रूर प्रयोगों में फड़कती हुई षोडश भुजाओं में त्रिशूल धारण किये, तीन नेत्रों वाली, शरीर पर सर्प लिपटाये, रक्त वर्ण के वस्त्राभूषण एवं आलेपन से युक्त भगवती का ध्यान करना चाहिये।

अथवा षोडशशूलव्यग्रभुजा त्रिनयनाहिनद्धांगी।
अरुणांशुकानुलेपनवर्णाभरणा च भगवती ध्येया।। (वही, २६/५)

जप-हवनादि

भगवान् उमेश या उनके अर्धनारीश्वर रूप का विधिपूर्वक पूजन-अर्चन करने वाले साधक को चाहिये कि वह प्रतिदिन नियत संख्या में जप करते हुए चिन्तामणि मन्त्र का १ लाख जप पूर्ण होने पर त्रिमधुर से सिक्त तिल-तण्डुलों का १० हजार हवन करे।

विहितार्चनविधिरथाऽनुदिनं प्रजपेद् दशायुतमितं मतिमान्।
अयुतं हुनेत्त्रिमधुरार्द्रतरैस्तिलतण्डुलैस्तदवसानविधौ।। (वही, २६/६)

आवरण-पूजा

चिन्तामणि मन्त्र की साधना में आवरण-पूजा प्रासाद मन्त्र-विधान में

चिन्तामणि मन्त्र-साधना

अपने नाम 'चिन्तामणि' के अनुरूप ही चिन्तन मात्र से साधकों की समस्त अभिलाषाओं की पूर्ति करने वाले चिन्तामणि मन्त्र के स्वरूप, जप, हवन एवं अर्चनादि विधियों के निर्वचन के प्रसंग में आचार्य शंकर सर्वप्रथम मन्त्र के स्वरूप का उद्घाटन करते हुए बताते हैं कि 'अनल (र्), क (क्), ष (ष्), म (म्), रेफ् (र्), प्राण (य्), सत्यान्त (औ), वामश्रुति (ऊ) और चन्द्रखण्ड (बिन्दु) का संमिलित रूप 'र्क्ष्म्र्यौऊं' चिन्तामणि मन्त्र है।

अथ सजपहुताद्यो वक्ष्यते साधुचिन्ता-
मणिरभिमतकामप्राप्तिकल्पद्रुमोऽयं।
अनलकषमरेफप्राणसत्यान्तवाम-
श्रुतिहिमरुचिखण्डैर्मण्डितो मन्त्रराजः।। (प्रपंचसारतन्त्र, २६/१)

चिन्तामणि मन्त्र के ऋषि काश्यप, छन्दस् अनुष्टुप्, देवता उमेश अथवा अर्धनारीश, बीज रं तथा शक्ति औं है। इस मन्त्र की साधना में 'यान्त' अर्थात् य् तक जाकर अन्त होने वाले (योऽन्तः येषां तैः यान्तैः) मन्त्र के वर्णों (र क ष म र य) से षडंगन्यास किया जाता है।

ऋषिरपि काश्यप उक्तश्छन्दोऽनुष्टुप् च देवतोमेशः।
यान्तैः षड्भिर्वर्णैरंगं वा देवताऽर्धनारीश।। (वही, २६/२)

तदनुसार न्यासों के रूप निम्न होंगे—

ऋष्यादिन्यास

काश्यपर्षये नमः शिरसि, अनुष्टुप् छन्दसे नमः मुखे,
उमेश (अर्धनारीश्वर) देवतायै नमः हृदि,
रं बीजाय नमः गुह्ये, औं शक्तये नमः पादयोः।

षडंगन्यास

रं हृदयाय नमः, कं शिरसे स्वाहा, षं शिखायै वषट् ,
मं कवचाय हुं, रं नेत्रत्रयाय वौषट्, यं अस्त्राय फट्।

उमेश का ध्यान

सर्पराज, चन्द्रमा और गंगा से सुशोभित सिर, चरणों में देवताओं के

इस प्रकार जो व्यक्ति प्रतिदिन प्रातःकाल प्रसन्न मन से मृत्युंजय-विधान में उल्लिखित विधि के अनुसार मृत्युंजय मन्त्र का जप उससे शिवार्चन और हवन करता है, उसकी समस्त अभिलाषाएं पूर्ण होती हैं, उसके पुत्र-पौत्रादि परिवार में वृद्धि और सम्पन्नता होती है और स्वयं बहुत दिनों तक जीवित रह मृत्यु के अनन्तर शिवरूप हो जाता है।

प्रोक्तैर्ध्यानजपार्चनाहुतविधानाद्यैश्च मृत्युंजयं
यो मन्त्री प्रभजेन्मनुं प्रतिदिनं प्रातः प्रसन्नाशयः।
तस्येष्टानि भवन्ति संसृतिरपि स्फीता च पुत्रादयः
सम्पन्नाः सुसुखी च जीवति चिरं देहापदि स्याच्छिवः॥

(वही, २८/५५)



सम्भोजयेद्धोमदिनेषु विप्रान् सप्ताधिकान् स्वादुभिरन्नभोज्यैः।
सतर्णका गाश्च हुतावसाने दद्याद् द्विजेभ्यो हुतकर्मकृद्भ्यः।।
(वही, २८/४७-४६)

जन्मदिन और जन्म-नक्षत्र पर हवन

जो व्यक्ति अपने जन्मदिन पर उक्त सात द्रव्यों में से प्रत्येक से सौ-सौ बार हवन करके ब्राह्मणों को मधुरान्न का भोजन कराता है, दीर्घायु होने के साथ ही उसकी अपनी समस्त कामनाएं भी पूर्ण हो जाती हैं। इसके अलावा जो अपने जन्म-नक्षत्र में इन सात अथवा किसी एक द्रव्य से एक हजार हवन करता है, वह विघ्न-बाधाओं से मुक्त दीर्घायु प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति नियम से प्रतिदिन त्रिमधुरयुक्त दूर्वा की एकादश आहुति देता है, वह अकाल मृत्यु और रोगों पर विजय प्राप्त करते हुए दीर्घायु प्राप्त करता है।

निजजन्मदिने शतं शतं यो जुहुयाद् द्रव्यवरैश्च सप्तसंख्यैः।
मधुरैः प्रतिभोजयेच्च विप्रानभिवाञ्छन्नियमेन दीर्घमायुः।।
अथवा सप्तभिरेतैर्द्रव्यैरेकेन वा सहस्रतयम्।
जन्मर्क्षहोममात्रान्निरुपद्रवमुत्तमं व्रजेदायुः।।
दूर्वात्रितयैर्जुहुयान्मन्त्रविदेकादशाहुतीर्दिनशः।
जित्वाऽपमृत्यरोगान् प्रयात्यसावायुषश्च दैर्घ्यमपि।।(वही, २८/५०-५२)

जन्म नक्षत्र में विशेष हवन

जो व्यक्ति अपने जन्म नक्षत्र सहित आगे के तीन नक्षत्र वाले दिनों में क्रमशः अमृता, काश्मरी और वकुल की समिधाओं से प्रज्वलित अग्नि में १ हजार हवन करता है, उसके समस्त रोग, अपमृत्यु और पाप नष्ट हो जाते हैं।

जन्मर्क्षाणां त्रितये छिन्नाकाश्मर्यवकुलजैरिध्मैः।
क्रमशो हुनेत् सहस्रं नश्यन्त्यपमृत्युरोगदुरितानि।। (वही, २८/५३)

अकाल मृत्यु पर विजय

जो व्यक्ति सफेद सर्षपों से १ हजार हवन करते हैं, उनके समस्त उपद्रव नष्ट हो जाते हैं। अपामार्ग के हवन से अकाल मृत्यु पर विजय तथा दीर्घायु प्राप्त होती है।

सितसिद्धार्थैः सहस्राहुत्या नश्यन्त्युपद्रवा ज्वरजाः।
तद्वदपामार्गहुतान्मृत्युंजयमप्यरोगतां लभते।। (वही, २८/५४)

जप-हवनादि किये जाने चाहिये। विशेषता यह है कि अन्त्य बीज 'सः' प्रधान साधना में शिशुरूप शंकर का ध्यान किया जाता है। पद्मपाद ने शिशुरूपधारी शिव के स्वरूप का उल्लेख करते हुए बताया है कि इस साधना में सुन्दर कटिसूत्रादि बालोचित अलंकारों से सुशोभित, बाएं हाथ में अर्धचन्द्र को पकड़े और दाएं हाथ से उसे खाते (खाने का बालोचित अभिनय करते) हुए मुक्तागौर शिव और शिवा के त्रिवर्षीय दिगम्बर रूप का ध्यान करना चाहिये।

अथवाऽमलकमलपुटान्तरितं शिशुवेशभूषणं रुद्रम्।
ध्यात्वा जप्याद् यथावद् भूतक्लृप्त्या मृत्युनाशनं दृष्टम्।।

(वही, २८/४५)

"तत्र त्रिवर्षं दिग्वाससं विचित्रकिंकिण्याद्यलंकृतं वामहस्ते अर्धेन्दु-धरं तमेव दक्षिणहस्तेन भक्षयन्तं मुक्तावर्णं देवं देवीं च ध्यायेत्"।

(वही, ४५ पर विवरण)

मृत्युंजय मन्त्र के प्रयोग

लक्ष्मी एवं आरोग्य-प्राप्ति

अमृता लता के चार अंगुल माप के खण्डों का मृत्युंजय मन्त्र के उच्चारण के साथ १२ हजार हवन करने से आरोग्य, आयुष्य और लक्ष्मी प्राप्त होती है।

चतुरंगुलिपरिमाणैरमृताखण्डैरथाऽर्कं साहस्रम्।
जुहुयाच्च दुग्धसिक्तैरारोग्यायाऽऽयुषे च लक्ष्म्यै च।। (वही, २८/४६)

अभिचार एवं ज्वरादि से मुक्ति

अमृता, वट, तिल, दूर्वा, दूध, घृत तथा खीर इन सात द्रव्यों का सात दिनों तक क्रम से अगल-अलग एक-एक हजार हवन करने से तीव्र ज्वर, भयंकर अभिचार, उन्मादी एवं दाहक रोग तथा मूर्च्छा आदि से अतिशीघ्र मुक्ति मिल जाती है और साधक शतायु होता है। हवन के दिनों में प्रतिदिन सात से अधिक ब्राह्मणों को सुस्वादु अन्न का भोजन कराना चाहिये तथा हवन कराने वाले ब्राह्मणों को बछड़ियों वाली गायें दान में देनी चाहिये।

अमृतावटतिलदूर्वाः पयो घृतं पायसं क्रमेणेति।
सप्तद्रव्याण्युक्तान्येतैर्जुहुयात् पृथक् सहस्रतयम्।।
तीव्रे ज्वरे घोरतरेऽभिचारे सोन्मादके दाहगदे च मोहे।
तनोति शान्तिं न चिरेण होमः संजीवनं चाऽब्दशतप्रमाणम्।।

ततश्छिन्नोद्भवानां च समिद्भिश्चतुरंगुलैः।
दुग्धसिक्तैः समिद्धेग्नौ षट्सहस्रद्वयं हुनेत्।।
यस्तु वह्नौ जुहोत्येवं यावत्संख्येन साधकः।
तावत्संख्यैः सुधाकुम्भैरग्निः प्रीणाति शंकरम्।।
आप्यायितोऽग्निना शर्वः साधकस्येप्सितान् वरान्।
प्रदद्यादायुराद्यांश्च दुरन्तान् प्रलयान्तिकान्।। (वही, २८/४०-४३)

'जूं' प्रधान साधना

अन्तर्योगात्मक मध्यम बीज 'जूं' प्रधान अनुलोम साधना में उक्त मन्त्र 'ओं जूं सः' के बाद साध्य का नाम और 'पालय पालय' लिखकर प्रतिलोम क्रम में 'सः जूं ओं' (ओं जूं सः साध्यनाम पालय पालय सः जूं ओं) लिखना चाहिये। इस मन्त्र का जप भी इसी रूप में करना चाहिये। यह दूसरा मृत्युंजय मन्त्र है।

मन्त्रान्ते साध्याख्यां पालययुगलं प्रतीपमपि मन्त्रम्।
प्रोक्त्वा समापयेन्मनुमयमपि मृत्युंजयाह्वयो मन्त्रः।। (वही, २८/४४)

पद्मपाद के अनुसार मध्यम बीज 'जूं' की अनुलोम साधना में 'ज्विं (साध्यनाम) पालय पालय नमः शिवाय ज्वीं' और प्रतिलोम में 'ज्वीं शिवाय नमः पालय पालय (साध्यनाम) ज्विं' बोलना चाहिये।

इस साधना में उमा और शिव के वरद-अभय मुद्रा एवं पुस्तकधारी स्वरूप का ध्यान करके उक्त रूप से मन्त्र का जप करना चाहिये। इसी प्रकार ईशान का भी उक्त रूप से मन्त्रोच्चारण और पालय-पालय आदि के बाद 'ज्वीं (साध्यनाम) पालय पालय ईशानाय नमः ज्वीं' आदि जप करना चाहिये।

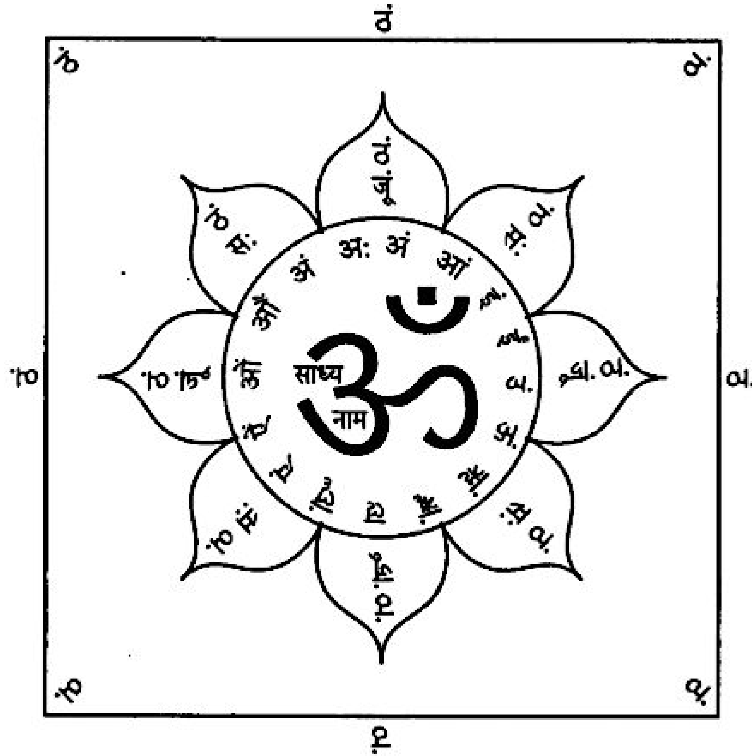
"मन्त्रमपि प्रोक्त्वा प्रतीपं प्रतिलोमं समापयेदित्यन्वयः। पालयेत्यस्यान्ते ज्वीं नमः शिवाय ज्वींमित्येतन्मन्त्रमुक्त्वा प्रतिलोममुच्चरेदित्यर्थः। रजतवर्णा मुद्रापुस्तकधरा देव्यत्र ध्येया। पुनः पूर्वददक्षरत्रय विशिष्टषोडशस्वरयुक्तं पद्मद्वयं संचिन्त्य तन्मध्ये मुद्रापुस्तकधरं देवं संचिन्त्य पालयान्ते ज्वीं ईशानाय नमः ज्वीमिति जपित्वा प्रतिलोमं जपेदति मध्यबीजयोगः"। (वही, श्लोक ४४ पर विवरण)

'सः' प्रधान साधना

तृतीय बीज 'सः' प्रधान साधना में पूर्ववत् दो कमलपत्रों के बीच 'ओं जूं सः स्वीं नमः शिवाय स्वीं' और 'स्विं ईशाय नमः स्विं' इत्यादि मन्त्र रूपों से ही

उपर्युक्त विधि से मृत्युंजय यन्त्र का निर्माण करके विधिवत् पूजित शैव पीठ पर पंचगव्य से भरे कलश की स्थापना कर पीठ पर भगवान् मृत्युंजय की षोडशोपचार पूजा करनी चाहिये। पुनः साधक पर इस जल का अभिसिंचन करने से वह लक्ष्मी, वशीकरण की शक्ति और पीड़ा से मुक्ति प्राप्त करता है। यह यन्त्र दूसरों के द्वारा साधक कर किये गये मारणादि अभिचारों का भी नाशक है।

मृत्युञ्जय यन्त्र



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - २८/३९)

[मन्त्र - 'ओं जूं सः' • जपसंख्या - ३ लाख • हवनद्रव्य - अमृता]

अभिसिंचन क्रिया के बाद दुग्ध-सिक्त छिन्नोद्भव (गुडूची) की चार अंगुल लम्बे टुकड़ों का अमलतास की समिधाओं से प्रज्वलित अग्नि में १२ हजार हवन करना चाहिये। इस प्रकार साधक जितनी संख्या में इस विधि से अग्नि में हवन करता है, अग्निदेव उतने ही अमृत-भरे कुम्भों से भगवान् शिव का अभिषेक कर प्रसन्न करते हैं। सुधाकुम्भों के अभिषेक से प्रसन्न शंकर साधक को अमोघ वांछित वर के अतिरिक्त दीर्घायु प्रदान करते हैं।

इति कृतयन्त्रविभूषितमण्डलमध्ये निधाय कलशमपि।
आपूर्य चाऽभिषिंचेच्छ्रीवश्यकरं ग्रहाभिचारहरम्।।

ऊर्ध्वाधः प्रोतपद्मद्वयदलनिचितैरक्षरैस्तैर्ध्रुवाद्यैः-
राद्यन्तैर्मन्दमन्दप्रतिगलितसुधापूरसंसिच्यमानम्।
ईशानं सूक्ष्मरूपं विमलतरसुषुम्नान्तरा सन्निषण्णं
ध्यायन्नाप्नोति रोगैर्नियतपरिहृतस्तज्जपाद्दीर्घमायुः।। (वही, २८/३८)

पद्मपाद के अनुसार शंकर के 'ईशानं सूक्ष्मरूपं' में पठित 'सूक्ष्म' शब्द का तात्पर्य शिव के सूक्ष्म या बीज रूप 'इं' से है। अतः पुरुष रूप शिव की साधना में उक्त वर्णों के पहले 'इं' जोड़ना चाहिये और प्रकृति या स्त्रीरूप की साधना में 'ईं' जोड़ना चाहिये। इस सन्दर्भ में शिव स्त्री-रूप हैं और ईशान पुरुष-रूप। अतः शक्ति-प्रधान पंचाक्षर मन्त्र में 'ईं' जोड़ना चाहिये और पुरुष-प्रधान ईशान की साधना में उक्त तीनों मन्त्राक्षरों में 'इं' जोड़ा जाना चाहिये। तदनुसार मन्त्र का रूप 'ईं नमः शिवाय ईं' और 'इं ईशानाय नमः इं' होगा। पद्मपाद के अनुसार शक्ति-प्रधान उक्त मन्त्र की साधना में वीणावादनरत शिव के स्फटिकवर्णी रूप का ध्यान किया जाना चाहिये।

"ईशानं सूक्ष्मरूपमिति मन्त्रविशेषमाह। इकारः सूक्ष्मशब्दार्थः। ततः इं ईशानाय नमः इं' इति मन्त्रः सिद्धः अनुलोमविलोममध्ये"।
(वही, श्लोक ३८ पर विवरण)

मृत्युंजय यन्त्र

शंकर के अनुसार मृत्युंजय यन्त्र के निर्माण के लिये पहले एक अष्टदल कमल का निर्माण करके उसकी कर्णिका में 'ओं' लिख कर उसके अन्तराल में साध्य का नाम लिखना चाहिये। फिर पूर्वादि मुख्य दिशाओं वाले चार पत्रों में 'जुं' तथा आग्नेयादि चार कोणों के पत्रों में 'सः' लिखना चाहिये। फिर एक चतुरस्र से इसे आवृत कर चतुरस्र के बाहर की ओर पूर्वादि चारों ओर मृगांक अर्थात् 'ठं' लिखकर चारों कोणों में भीतर की ओर भी 'ठं' लिखना चाहिये। तत्पश्चात् मृत्युंजय मन्त्र के तीन लाख जप से अभिमन्त्रित इसको धारण करने से साधक कारागारादि बन्धन, ग्रह तथा रोगादि बाधाओं से मुक्त हो जाता है।

आदौ तारं विलिखतु ससाध्याह्वयं कर्णिकायां
दिक्पत्रेष्वप्यपरमपरं वाऽपि तत्कोणकेषु।
भूयो भूमेः परमनु मृगांकं तदस्त्रेषु टान्तं
जप्त्वा बन्धग्रहगदविषध्वंसि यन्त्रं तदेतत्।। (वही, २८/३६)

मुक्तावर्णी माना जाता है। इन तीनों साधनाओं के समय रुद्र के ध्यान में इसे ध्यान में रखना चाहिये।

प्रणव-प्रधान साधना में शिव के रूप तथा आवरणादि विशेष होते हैं। शंकर के अनुसार प्रणव-प्रधान मृत्युंजय साधना में रुद्र का ध्यान साधक की अपनी सुषुम्ना नाड़ी को कमल-नाल के रूप में भावना करते हुए उसमें ऊर्ध्वमुखी और अधोमुखी दो कमलपत्रों के बीच 'ओं जूं सः ओं जूं सः' अक्षरों के बीच कर्णिका में आदि बीज 'ओं' के मध्य में विराजमान शिव का चिन्तन नीरोगता और आयुष्य के लिये करना चाहिये।

तारनालमथ मध्यपत्रकं ह्याद्यकर्णिकायुतं क्रमोत्क्रमात्।
चिन्तयेन्नियतमन्तरा शिवं नीरुजे च नियतायुषेऽब्जयोः।।

(वही, २८/३७)

पदमपाद ने शंकर के 'चिन्तयेन्नियतमन्तरा शिवम्' की व्याख्या करते हुए कहा है कि यहां नियत का तात्पर्य मायाबीज 'ईं' से है। इस प्रकार दो माया बीजों के बीच भगवान् शिव का पंचार्ण मन्त्र 'नमः शिवाय' को अनुलोम क्रम में '**ईं नमः शिवाय ईं**' तथा प्रतिलोम क्रम में 'ईं शिवाय नमः ईं' रूप में लिखा जाना चाहिये। यह शिव के मायाप्रधान स्त्री-रूप की साधना है। पद्मपाद के अनुसार शिव के स्फटिक, रजत और मुक्ता इन तीन वर्णों में से यहां वीणावादन कर रहे स्त्रीरूप स्फटिकवर्णी शिव का ध्यान करना चाहिये।

"नियतमन्तरा नियतस्य नित्यस्य मायाबीजस्याऽनुलोमविलोम-मन्त्रमध्यस्थितस्य अन्तरा मध्ये शिवं पंचाक्षरमित्यर्थः। ततो ध्यानार्थमीं नमः शिवाय ईमिति मन्त्रः सूचितः अनुलोमविलोममध्ये। अत्र च शिवः स्फटिकनिभः स्त्रीरूपो वीणावादनपरो ध्येयः"।

(वही, श्लोक ३७ पर विवरण)

प्रणव-प्रधान एक अन्य साधना का निरूपण करते हुए शंकर ने बताया है कि उक्त सुषुम्नानाल पर स्थित ऊर्ध्व तथा अधोमुखी दो कमल पुटों के बीच ईशान नामक ऐसे सूक्ष्म रूप शिव का ध्यान करना चाहिये, जिनका शरीर ललाट पर स्थित चन्द्ररेखा से मन्द-मन्द स्रवित हो रहे अमृत-रस से सिंचित हो रहा है। मृत्युंजय के इस रूप का ध्यान करने वाला साधक दीर्घकालिक भयानक रोग से मुक्त होकर दीर्घायु प्राप्त करता है।

सुशोभित चन्द्ररेखा से मन्द-मन्द प्रस्रवित हो रही अमृतधारा से आर्द्र शरीर, चन्द्र, सूर्य और अग्निमय तीन नेत्रों वाले, एक हाथ वरदमुद्रा में (अथवा जानु पर) शेष तीन में पाश, वेद (हरिण शिशु) और अक्षमाला धारण किये, स्फटिक, रजत एवं मुक्ता की भांति गौरवर्ण ईश का ध्यान करे।

पुटितनलिनसंस्थं मौलिबद्धेन्दुरेखा-
गलदमृतजलार्द्रचन्द्रवह्न्यर्कनेत्रम्।
स्वकरकलितमुद्रापाशवेदाक्षमालं
स्फटिकरजतमुक्तागौरमीशं नमामि।। (वही, २८/३३)

जप-हवनादि

मृत्युंजय मन्त्र के स्फुरण के लिये इसका तीन लाख जप तथा दुग्ध एवं घृत से सिक्त गिलोय के चार-चार अंगुल के टुकड़ों से तीन हजार हवन करना चाहिये।

जप्तव्योऽयं मन्त्रवर्यस्त्रिलक्षं दीक्षापूर्वं होमकृत् स्याद्दशांशैः।
दुग्धाज्याक्तैः शुद्धखण्डैर्गुडूच्या गुर्वादिशात्साधको हव्यवाहे।।
(वही, २८/३४)

आवरण-पूजा

मृत्युंजय मन्त्र की साधना में आवरण-पूजा प्रतिदिन प्रासादमन्त्रोक्त विधि से निर्मित शैवपीठ पर की जानी चाहिये। पूजा के लिये निर्मित यन्त्र के प्रथम आवरण में अंगमन्त्र, द्वितीय में इन्द्रादि लोकपाल और तृतीय में उनके वज्रादि आयुधों की अर्चना होती है। इस प्रकार से विधिपूर्वक जप, अर्चना और हवन से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

अर्चा कार्या नित्यशः शैवपीठे स्यादर्घ्यंगैर्लोकपालैस्तदस्त्रैः।
सम्यक् पूजावस्तुभिर्मन्त्रजापी प्रोक्तं ह्येतन्मृत्युजेतुर्विधानम्।।
इति जपहुतार्चनादिभिः सिद्धो मन्त्रोक्तमूर्तिविहिततनुः।
समाचरेन्निजान्तर्योगं कृत्यापमृत्युनाशकरम्।। (वही, २८/३५-३६)

ओं प्रधान साधना

मृत्युंजय मन्त्र में 'ओ जूं सः' तीन अक्षर हैं। 'ओं प्रधान साधना में गौर वर्ण के मृत्युंजय रुद्र का ध्यान करना चाहिये। इसी प्रकार मध्याक्षर जूं-प्रधान साधना में रुद्र का वर्ण रजत के समान श्वेत तथा अन्त्याक्षर सः प्रधान साधना में

मृत्युञ्जय मन्त्र-विधान

भगवान् रुद्र का मृत्यंजय नामक महामन्त्र अमित प्रभावशाली है। इस मन्त्र की साधना से रोग तथा अकालमृत्यु को जीता जा सकता है। आचार्य भगवान् शंकराचार्य ने मृत्युंजय मन्त्र का उद्घाटन करते हुए इसकी सरल साधना-विधि का भी निरूपण किया है। इनके अनुसार आरम्भ में ध्रुव (ओं) सहित ख अक्षर से सातवां अक्षर ज अनुस्वार एवं कर्ण (ऊ)सहित (जूं), कु (पृथ्वी अर्थात् ल) से पंचम वर्ण (स) दो इन्दुओं अर्थात् विसर्ग सहित (सः) से बना 'ओं जूं सः' मृत्युंजय मन्त्र है। यह मन्त्र साधक की अकाल मृत्यु आदि से रक्षा करने में समर्थ है।

खसप्तमः कर्णयुतोऽर्यचन्दवान् कुपंचमो द्वीन्दुयुतो ध्रुवादिकः।
मनुस्त्वयं मृत्युजयात्मकः स्फुटं समीरितः साधकरक्षणक्षमः।।
(प्रपंचसारतन्त्र, २८/३१)

मृत्युंजय मन्त्र के ऋषि कहोल, छन्दस् रुद्र, देवता मृत्युंजयरुद्र, बीज जूं तथा शक्ति सः है। दीर्घस्वर युक्त भृगु (स) से षडंगन्यास किया जाता है। तदनुसार इस मन्त्र की साधना में न्यास के रूप निम्नांकित होंगे—

ऋष्यादिन्यास

कहोलर्षये नमः शिरसि, देवीगायत्री छन्दसे नमः मुखे,
मृत्युंजयरुद्रदेवतायै नमः हृदये, जूं बीजाय नमः गुह्ये,
सः शक्तये नमः पादयोः।

षडंगन्यास

सां हृदयाय नमः, सीं शिरसे स्वाहा, सूं शिखायै वषट्,
सैं नेत्रत्रयाय वौषट्, सौं कवचाय हुं, सः अस्त्राय फट् ।

ऋषिरस्य कहोलाख्यश्छन्दो देव्यादिका च गायत्री।
स्याद् देवता च मृत्युंजयरुद्रोंऽगान्यथाचरेद् भृगुणा।। (वही, २८/३२)

ध्यान

मृत्युंजय मन्त्र के साधक को चाहिये कि वह योग्य गुरु से दीक्षित होकर उसकी अनुज्ञा से 'दो कमलपत्रों (आज्ञाचक्र) के बीच विराजमान, माथे पर

वर्माक्षर 'हुं' तथा पश्चिम, आग्नेय और ईशान वाले कोणों में अघोर मन्त्र का अन्तिम अक्षर 'फट्' लिखना चाहिये। विधिवत् अर्चित इस अघोर यन्त्र को धारण करने से व्यक्ति ग्रहपीड़ा तथा रोगादिकों के भय से मुक्त बना रहता है।

षट्कोणे कर्णिकायां स्फुरयुगलयुतां साध्यगर्भां च शक्तिं
कोणाग्रे प्रस्फुरद्वन्द्वकमथ विलिखेन्मन्त्रवर्णान् दलेषु।
षड्वेदद्वन्द्वषड्वेदकचतुर्युगषट्संख्यकान् बाह्यषट्के
वर्मास्त्राणां तदेतद् ग्रहगदभयहृद् यन्त्रमाघोरमाहुः।। (वही, २८/२८)

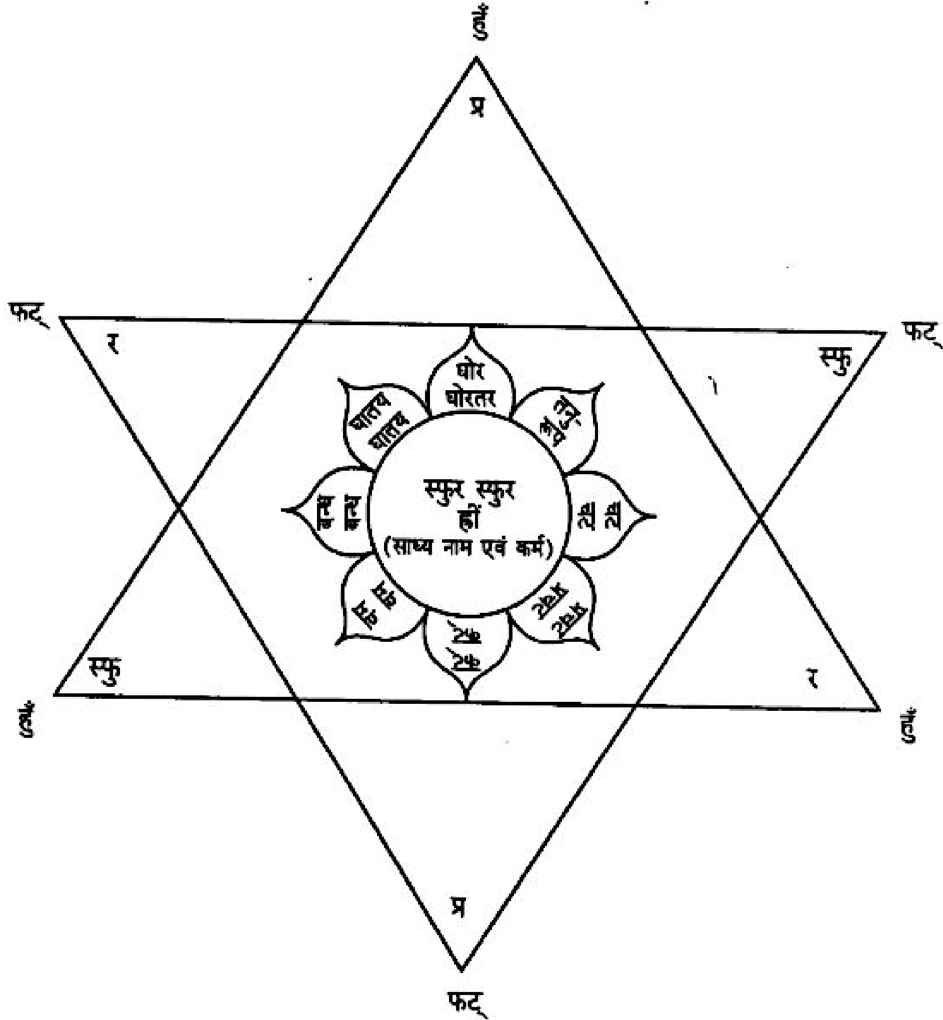
अघोर मन्त्र का विधिवत् जप, पूजन, हवन आदि करने वाले साधक को शत्रु, चोर, ग्रहपीड़ा, शस्त्रभय तथा ज्वरादिक रोग स्पर्श भी नहीं कर सकते। इसलिये साधक को चाहिये कि वह कामनाओं की पूर्ति के लिये अघोर मन्त्र का विधिवत् जप, पूजन, हवन तथा पूजादि करता रहे।

न च रिपवो न च रोगा न ग्रहपीडा न शस्त्रबाधा च।
न क्ष्वेळरुजोमर्त्यान् स्पृशन्त्यघोरास्त्रमन्त्रजापपरान्।
तस्मादघोरास्त्रमनुं प्रजप्यात् समर्चयेत् तद्विहितं विधानम्।
हुनेच्च तेनैव च समस्तवांछासंसिद्धये चाऽथ विमुक्तये च।।
(वही, २८/२९-३०)



बीच में साध्य का नाम तथा कर्मादि लिखना चाहिये। तदनन्तर षट्कोण के छहों कोणों में (भीतर) अघोर मन्त्र के 'प्रस्फुर प्रस्फुर' अंश के एक-एक अक्षर लिखने चाहिये। फिर कमलदलों में पूर्वादि क्रम से छह (घोर घोरतर), चार (तनूरूप), चार (चट चट), छह (प्रचट प्रचट), चार (कह कह), चार (वम वम), चार (बन्ध बन्ध) और छह (घातय घातय) अक्षर लिखने चाहिये। फिर इस षट्कोण के बाहर उसके पूर्व, नैर्ऋत्य और वायव्य दिशा वाले कोणों में अघोर मन्त्र का

अघोर यन्त्र



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - २८/२८)

[जपसंख्या - १ लाख • आहुति-संख्या - १० हजार
हवनद्रव्य - घृतयुक्त तिल, चावल या खीर आदि]

सम्पूजयीत विधिनेति षडक्षरोत्थ-
मार्गेण वा मनुपरिस्फुरणाय मन्त्री।। (वही, २८/२१-२४)

अघोरमन्त्र के प्रयोग

भूतादि तथा अपस्मार से मुक्ति

रात्रि के समय घृतयुक्त अपामार्ग की समिधा, तिल, पायस तथा घी से अलग-अलग एक-एक हजार हवन करने से भूतादि से उत्पन्न रोग तथा अपस्मार समाप्त हो जाते हैं।

आज्यापामार्गसमित्तिलसर्षपपायसाज्यकैश्च पृथक्।
रात्रौ सहस्रहोमाद् भूतापस्मारादिशान्तिरुद्दिष्टा।। (वही, २८/२५)

ग्रहपीड़ा से मुक्ति

श्वेत पुष्प वाले पलाश, निर्गुण्डी, कनक (धतूरा) तथा अपामार्ग की समिधाओं को मिलाकर अथवा अलग-अलग एक-एक हजार हवन से ग्रहों के बन्धन से अतिशीघ्र मुक्ति मिल जाती है।

सितकिंशुकनिर्गुण्डीकनकापामार्गजन्मनां समिधाम्।
पृथगपि सहस्रहोमान्नग्रहमोक्षोऽचिराद्ग्रहाणां स्यात्।। (वही, २८/२६)

प्रतिकूल ग्रहों की शान्ति

शिव पंचमी (शुक्ल पंचमी) की रात्रि में पंच गव्ययुक्त अपामार्ग की समिधा से १० हजार और फिर आरग्बध अर्थात् अमलतास की समिधा से १० हजार हवन करने अथवा पंचगव्यसहित घृत और अपामार्ग की हवि से १० हजार हवन करने के बाद घृत-संपात से बचा हुआ घृत ग्रहपीड़ित व्यक्ति को खिलाने से उसके सारे प्रतिकूल ग्रह शान्त हो जाते हैं।

गव्याक्तैर्जुहुयात्पृथग्दशशतं मन्त्री मयूरेध्मकैः-
र्भूयस्तैश्चतुरंगुलैश्च शिवपंचम्यां निशायां हुनेत्।
सर्पिर्मार्गसपंचगव्यचरुभिः सर्पिः ससम्पातकं
हुत्वा तत्प्रतिभोजयेत्प्रतिशमं यान्त्येव सर्वे ग्रहाः।। (वही, २८/२७)

अघोर यन्त्र

एक षट्कोण के भीतर अष्टदल कमल निर्मित कर उसकी कर्णिका में अघोर मन्त्र के 'स्फुर स्फुर' वर्ण युक्त 'ह्रीं' बीज लिखना चाहिये। फिर ह्रीं के

स्वच्छो मुमुक्षोस्तु भवेदघोरः काम्यक्रियायामपि रक्तवर्णः।
कृष्णोऽभिचारे ग्रहवैकृते च प्रोक्तो जपः स्यादपि लक्षमानः।।

(वही, २८/१८-१६)

आवरण-पूजा

अघोर मन्त्र के परिस्फुरण अर्थात् सिद्धि के लिये उनकी आवरण-पूजा करनी चाहिये। आवरण-पूजा के लिये अष्टदल कमल का निर्माण करके उसकी कर्णिका में भुवनेशी बीज 'ह्रीं' लिख उसके बीच साध्य का नाम लिखना चाहिये। तत्पश्चात् साध्य के नाम सहित भुवनेशी बीज को बिन्दुयुक्त स्वरों से आवेष्टित करना चाहिये। तदनन्तर पूर्वादि क्रम से पांच दलों में से प्रत्येक में क्रमशः कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग तथा पवर्ग के पांच-पांच अक्षर, छठे दल में य, र, ल, सातवें में व, श, स और आठवें दल में स, ह ळ तथा क्ष अक्षर लिखने चाहिये। इसके बाद आठों दलों के बीच में अघोर मन्त्र के तीन-तीन अक्षर और दलाग्रों में मन्त्र के शेष अक्षरों में से तीन-तीन अक्षर लिखने चाहिये। इसके बाद यन्त्र के बाहर षट्कोण बनाकर पूर्व, नैर्ऋत्य और वायव्य कोणों में 'हुं' तथा पश्चिम, आग्नेय और ईशान कोणों में 'फट्' लिखना चाहिये।

इस प्रकार आवरण-पूजा यन्त्र का निर्माण करके पंचगव्य अथवा पूर्वोक्त रीति से पंचगव्य अथवा पूर्वोक्त क्वाथ से भरे घट यन्त्र के बीच स्थापित करना चाहिये। आवरण देवों सहित भगवान् अघोर का आवाहन करके यन्त्र के मध्य में अघोर, प्रथम आवरण में अंगमन्त्र, द्वितीय में अघोर के परशु आदि आयुध, तृतीय में ब्रह्माणी आदि अष्टमातृवर्ग और चतुर्थ आवरण में आयुधसहित इन्द्रादि दिक्पाल पूजित किये जाने चाहिये। अघोर की आवरण-पूजा षडक्षर मन्त्र 'ओं नमः शिवाय' की पूजा-विधि से भी की जा सकती है।

हल्लेखास्थितसाध्याक्षरविलसत्कर्णिकं कलावीतम्।
वर्गाष्टकान्तकेसरमन्त्ये सहळक्षयाक्षरोल्लसितम्।।
मन्त्राक्षरत्रयोद्यद्दलमध्यदलाग्रकं च तद्बाह्ये।
वह्निपुटास्रिसमाश्रितकवचास्त्रं प्रतिविलिख्य यन्त्रमिदम्।।
कृत्वा समाप्य मण्डलमत्र विनिःक्षिप्य पूरयेत्कलशम्।
पीठे पिनाकपाणेर्गव्यैर्वा क्वाथक्लृप्ततोयैर्वा।।
अंगावृतेरनु च हेतिभिरीरिताभिः
पश्चाच्च मातृभिरथाऽपि दिशाधिनाथैः।

देहन्यास

अघोर मन्त्र को पांच (ह्रीं स्फुर स्फुर), छह (प्रस्फुर प्रस्फुर), दो (घोर), आठ (घोरतर तनुरूप), चार (चट चट), छह (प्रचट प्रचट), चार (कह कह), चार (वम वम), चार (बन्ध बन्ध), छह (घातय घातय) तथा दो (हुं फट्) अक्षरों के ग्यारह भागों में विभाजित कर क्रमशः मूर्धा, नेत्र, मुख, कण्ठ, हृदय, नाभि, लिंग, उरु, जानु, जंघा तथा दोनों पैरों में न्यस्त करना चाहिये।

कदृगास्यकण्ठहृन्नाभ्यन्धूरुषु जानुजंघयो पदयोः।
एकादशधा भिन्नैर्मन्त्रार्णैर्न्यसतु विग्रहे मन्त्री।।
पंचभिरथो सषड्भिर्द्वाभ्यामप्यष्टभिश्चतुर्भिश्च।
षड्भिश्चतुस्त्रयेण च षड्भिर्द्वाभ्यां च भेदितैः क्रमशः।।

(वही, २८/१६-१७)

अघोर का ध्यान

अघोर मन्त्र की साधना में प्रलयकालीन मेघों के समान कृष्णवर्णी, हाथों में परशु, डमरु, खड्ग, ढाल, बाण, धनुष, त्रिशूल तथा कपाल धारण करने वाले अष्टभुजी, अत्यन्त भयप्रदायक, भीषण मुख वाले, त्रिनेत्र, रक्त वस्त्र धारण किये, शरीर पर सर्पों की सज्जा किये, भक्तों को अभिलषित वर प्रदान करने वाले, उनके शत्रुओं, नाग एवं ग्रहादिकों का भक्षण कर रहे तथा भक्तों के विरोधियों के उच्छेदक भगवान् अघोर का ध्यान करना चाहिये।

मोक्षप्राप्ति के लिये अघोर के निर्मल स्वच्छ रूप का, काम्य साधना में रक्तवर्णी अघोर का तथा मारण-मोहनादि अभिचार क्रियाओं की सिद्धि के लिये तथा ग्रहों की प्रतिकूलता के शमन हेतु कृष्णवर्णी अघोर का ध्यान करना चाहिये।

जप एवं हवन

अघोर मन्त्र की सिद्धि के लिये इसका १ लाख जप करके घृत-सिक्त तिल और चावलों का अथवा घृतयुक्त पायसादि हवि का दस हजार हवन करने से साधक की कामनाएं पूर्ण होती हैं।

कालाभ्राभः कराग्रैः परशुडमरुकौ खड्गखेटौ च बाणे-
ष्वासौ शूलं कपालं दधदतिभयदो भीषणास्यस्त्रिनेत्रः।
रक्ताकाराम्बरोऽहिप्रवरघटितगात्रोऽरिनागग्रहादीन्
खादन्निष्टार्थदायी भवदनभिमतोच्छित्तये स्यादघोरः।।

'ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर घोर घोरतर तनुरूप चट चट प्रचट प्रचट कह कह वम वम बन्ध बन्ध घातय घातय हुं फट्।

> जीवशिखिकर्णरेफान् प्रतिवीप्सा प्रादिकांश्च पुनरपि तान्।
> मेधाप्यायिनियान्तांस्तानेव तरान्तिकान् सतनुरूपान्।।
> आभाष्य चटप्रचटौ सकहवमौ बन्धघातयौ वीप्सा।
> प्रोक्ता वर्मास्त्रावधि समुद्धरेच्छक्तिपूर्वकं मन्त्रम्।। (वही, २८/१२-१३)

न्यास

अघोर मन्त्र के ऋषि अघोर, छन्दस् त्रिष्टुप्, देवता अघोररुद्र, बीज हुं तथा शक्ति ह्रीं हैं। ५१ अक्षरों वाले अघोर मन्त्र के क्रमशः ५ अक्षरों से हृदय, ६ से शिरस्, १० से शिखा, १० से कवच, ८ से नेत्र और १२ अक्षरों से अस्त्र न्यास करके षडंगन्यास किया जाता है।

> ऋषिरस्याऽघोराख्यः सम्प्रोक्तस्त्रिष्टुबुच्यतेच्छन्दः।
> रुद्रोऽप्यघोरपूर्वः सम्प्रोक्ता देवताऽस्य मनोः।।
> हृत्पंचभिस्तदर्णैः शिरोऽपि षड्भिः शिखा तथा दशभिः।
> तावद्भिरेव कवचं दृगष्टभिर्द्वादशभिरपि चाऽस्त्रम्।।
>
> (वही, २८/१४-१५)

तदनुसार न्यास निम्नांकित होंगे—

ऋष्यादिन्यास

अघोरर्षये नमः शिरसि, त्रिष्टुब् छन्दसे नमः मुखे,
अघोररुद्रदेवतायै नमः हृदये, हुं बीजाय नमः गुह्ये,
ह्रीं शक्तये नमः पादयोः।

षडंगन्यास

ह्रीं स्फुर स्फुर हृदयाय नमः,
प्रस्फुर प्रस्फुर शिरसे स्वाहा,
घोर घोरतर तनुरूप शिखायै वषट्,
चट चट प्रचट प्रचट कवचाय हुं,
कह कह वम वम नेत्रत्रयाय वौषट्,
बन्ध बन्ध घातय घातय हुं फट् अस्त्राय फट्।

आसीनश्चन्द्रखण्डप्रतिघटितजटः क्षीरगौरस्त्रिनेत्रो
दद्यादाद्यैः शुकाद्यैर्मुनिभिरभिवृतो भावशुद्धिं भवो वः।। (वही, २८/८)

जप-हवन तथा आवरण-पूजा

दक्षिणामूर्ति मन्त्र का ३२ हजार जप करने के बाद दुग्ध-सिक्त तिल अथवा घृतमिश्रित खीर या दोनों से दशांश हवन करना चाहिये। आवरण-पूजा पूर्वोक्त कलशादि की स्थापना विधि तथा पंचाक्षर मन्त्र की विधि के अनुसार निर्मित शैव पीठ पर की जानी चाहिये। इस प्रकार मन, वचन और तन से भगवान् दक्षिणामूर्ति के मन्त्र के जप, हवन, स्तुति और नमस्कारादि से प्रसन्न शिव साधक की समस्त मनःकामनाओं को पूर्ण करते हैं। दक्षिणामूर्ति साधना करने वाला साधक आगमों का ज्ञाता, कविवर, वेदान्तज्ञ, वादविजयी तो हो ही जाता है, मृत्यु के अनन्तर अद्वैत-विद्या के फलरूप शिवपद को प्राप्त भी करता है।

प्राक्प्रोक्तविधानेन च सम्यक् सम्पूज्य साधु कलशाद्यैः।
कृतसंदीक्षो मन्त्री जप्यादेनं मनुं समाहितधीः।।
द्वात्रिंशदयुतमानं प्रतिजप्य जुहोतु तद् दशांशमितैः।
दुग्धाप्लुतैस्तिलैर्वा साज्येन पयोऽन्धसा द्वयेनाऽपि।।
जप्त्वैवं मन्त्रमेनं दिनमनु गिरिशं पूजयित्वा च हुत्वा।
स्तुत्वा नत्वा मनोवाक्तनुभिरवहितः प्राप्य कामानशेषान्।
व्याख्याता चागमानां भुवि कविषु वरः साधु वेदान्तवेदी
वादीट् सोऽद्वैतविद्याफलममलतरं याति शैवं पदं तत्।।
(वही, २८/९-११)

अघोरास्त्र मन्त्र-विधान

आरम्भ में शक्ति बीज ह्रीं तदनन्तर क्रम से जीव (स्) शिखी (फ्) कर्ण (उ) रेफ् (र) के योग से बने शब्द 'स्फुर' का दो बार **स्फुर स्फुर**, फिर इन्हीं शब्दों में प्र लगा कर दो बार **'प्रस्फुर प्रस्फुर'**, फिर मेघा (घ्), आप्यायिनि ओ और यावर्ण के अन्त वाला वर्ण (र) अर्थात् **'घोर'** शब्द, फिर तर अन्तवाला यही शब्द (**घोरतर**) और उसके अन्त में **तनुरूप** शब्द, तदनन्तर चट, प्रचट, कह, वम शब्द दो-दो बार **'चट चट प्रचट प्रचट'** कह कह **वम वम**, पुनः बन्ध शब्द दो बार (बन्ध बन्ध) फिर य अन्तवाला घात शब्द दो बार (घातय घातय) पुनः वर्म (हुं) एवं अस्त्र (फट्) के योग से रक्षाप्रधान निम्नांकित अघोर मन्त्र बनता है—

दक्षिणामूर्तिरुद्राय नमः (हृदि), ओं बीजाय नमः (गुह्ये),
ह्रीं शक्तये नमः (पादयोः)।

षडंगन्यास

ओं ह्रीं दक्षिणामूर्तये ह्रां हृदयाय नमः,
ओं ह्रीं तुभ्यं ह्रीं शिरसे स्वाहा,
ओं ह्रीं वटमूलनिवासिने ह्रूं शिखायै वषट्,
ओं ह्रीं ध्यानैकनिरतांगाय ह्रैं कवचाय हुं,
ओं ह्रीं नमो रुद्राय ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्,
ओं ह्रीं शम्भवे ह्रः अस्त्राय फट्।

अक्षरन्यास

तार और शक्ति वर्णों को छोड़कर मन्त्र के ३२ अक्षरों का न्यास क्रमशः मूर्धा तथा ललाट में (एक-एक), कान, नयन तथा कपोलों में (दो-दो), नासिका और मुख में (एक-एक), बाहु, बाहुसन्धि और कूर्पर में (दो-दो), कण्ठ, मुखमण्डल, हृदय, स्तन और नाभि में (एक-एक), कटि में (दो) तथा लिंग में (एक), पाद, पादसन्धि, जंघा तथा जानु में (दो-दो) करके 'दं नमः मूर्धनि, क्षिं नमः ललाटे, णां नमः वामकर्णे, तुं नमः दक्षिणकर्णे....' आदि रूप से करने के बाद 'ओं नमः ह्रीं नमः' से सम्पूर्ण शरीर में व्यापक न्यास करना चाहिये।

कालिकश्रुतिदृग्गण्डद्वयनासास्यके दश।
दोःसन्धिकण्ठाननहृन्नाभिकट्यन्धुषु क्रमात्।।
पत्सन्धिषु पुनर्द्वाभ्यां मन्त्रविद्व्यापकं न्यसेत्।। (वही, २८/६-७)

ध्यान

न्यास-क्रिया के अनन्तर वटवृक्ष के नीचे विराजमान, चारों हाथों में से एक में वरदमुद्रा, दूसरे में परशु, तीसरे में मृगशिशु लिये चौथा हाथ अपनी जानु पर रखे, सर्पराज वासुकि से आबद्ध कटि, जटाजूट में अर्धचन्द्र, दुग्ध की भांति गौर, त्रिनेत्र, शुकादि मुनियों से घिरे भगवान् दक्षिणामूर्ति का ध्यान करते हुए प्रार्थना करनी चाहिये कि वे हमारे भावों को निर्मल बनाएं।

मुद्रां भद्रार्थदात्रीं सपरशुहरिणां बाहुभिर्बाहुमेकं
जान्वासक्तं दधानो भुजगवरसमाबद्धकक्षो वटाधः।

तार (**ओं**) और शक्ति (**ह्रीं**) से निरुद्ध (दोनों ओर से बद्ध), अद्रिः द और क्षिणा (**दक्षिणा**), काल (म) और कर्ण (ऊ) और (**मू**), कामिका (त) र् और ये (**मूर्तये**) अक्षर, तु और ध्या वर्णों के बीच वटमूलनिवासिने (**तुभ्यं वटमूलनिवासिने**) तथा **'ध्यानैकनिरतांगाय नमो रुद्राय शम्भवे'** मिलाने से छत्तीस अक्षर वाला दक्षिणामूर्ति मन्त्र बन जाता है। तात्पर्य यह है कि दक्षिणामूर्ति मन्त्र के आदि और अन्त दोनों ओर ओं ह्रीं जोड़ने से निम्नांकित छत्तीस अक्षर वाला दक्षिणामूर्ति मन्त्र बनता है—

ओं ह्रीं दक्षिणामूर्तये तुभ्यं वटमूलनिवासिने।
ध्यानैकनिरतांगाय नमो रुद्राय शम्भवे ह्रीं ओं।

अद्रिः क्षिणा कालकर्णकामिकायुग्प्रयेक्षराः।
तुध्यामध्यगताः स्युर्भ्यं वटमूलनिवासिने।।
ध्यानैकनिरतांगाय नमो रुद्राय शम्भवे।
तारशक्तिनिरुद्धोऽयं मन्त्रः षट्त्रिंशदक्षरः।। (प्रपंचसारतन्त्र, २८/२-३)

दक्षिणामूर्ति मन्त्र के ऋषि शुक, छन्दस् अनुष्टुब्, देवता रुद्र, बीज ओं तथा शक्ति ह्रीं है। मन्त्र के मूल बत्तीस अक्षरों को क्रमशः ऋतु (छह), अक्षि (दो), वसु (आठ), वसु (आठ), अग्नि (पांच) और गुण (तीन) अक्षरों में विभाजित कर प्रत्येक खण्ड के आरम्भ में 'ओं ह्रीं' तथा 'ह' के साथ दीर्घ स्वरों को जोड़कर षडंगन्यास किया जाता है।

शुकः प्रोक्तो मुनिश्छन्दोऽप्यनुष्टुप् समुदाहृतम्।
दक्षिणामूर्तिरुद्रोऽस्य देवता समुदाहृता।।
तारशक्त्यादिकैर्ह्रांद्यैर्मन्त्राक्षरैः क्रमात्।
ऋत्वक्षिवसुवस्वग्निगुणवर्णैर्विभागशः।
मन्त्री कुर्यात्षडंगानि जातियुंजि समाहितः।। (वही, २८/४-५)

तदनुसार न्यासों का रूप निम्न होगा—

ऋष्यादिन्यास

शुकर्षये नमः (शिरसि), अनुष्टुब् छन्दसे नमः (मुखे),

दीर्घी कलायुतविषश्च शिवायवर्णाः-
स्याच्छूलिनो मनुरयं वसुवर्णयोगी।। (वही, २७/७०)

ध्यान

अष्टाक्षरमन्त्र की साधना में समस्त संपदाओं की प्राप्ति के लिये दायें हाथ को बाईं जंघा पर तथा दायें हाथ में रक्तकमल धारण की हुई अपनी प्रिया पार्वती के बाएं उरोज पर अपना एक (बांया) हाथ रखे तथा शेष तीन हाथों में परशु, मृग तथा इष्टमुद्रा धारण किये हुए, समस्त वस्त्राभूषणों से सुशोभित, कामदेव के समान सुन्दर, पद्मासनस्थ स्वर्णवर्णी पार्वतीपति भगवान् शिव का ध्यान करना चाहिये।

वामांकन्यस्तवामेतरकरकमलाया स्तथा वामबाहु-
न्यस्तारक्तोत्पलायाः स्तनविधृतलसद्वामबाहुः प्रियायाः।
सर्वाकल्पाभिरामो धृतपरशुमृगेष्टः करैः कांचनाभो
ध्येयः पद्मासनस्थः स्मरललिततनुः सम्पदे पार्वतीशः।। (वही, २७/७१)

जप, हवन तथा आवरण-पूजा

इस अष्टाक्षर मन्त्र का आठ लाख जप तथा आठ हजार हवन सम्पन्न करके शैव पीठ पर पूर्वोक्त प्रकार से आवरण-पूजा सम्पन्न करनी चाहिये। आवरण-पूजा में पंचार्ण मन्त्र (नमः शिवाय) के ही अंगन्यास, पंचब्रह्मपूजा आदि पूर्वोक्त विधि के अनुसार ही सम्पन्न करनी चाहिये।

पंचार्णोक्तांऽगाद्यः पंचब्रह्मप्रदिष्टपूजश्च।
वसुमितलक्षजपोऽयं मन्त्रस्तावत्सहस्रहोमश्च।। (वही, २७/७२)

इस प्रकार भगवान् शिव के एकाक्षर मन्त्र 'हौं', पंचाक्षर मन्त्र 'नमः शिवाय', षडक्षर मन्त्र 'ओं नमः शिवाय' एवं अष्टाक्षर मन्त्र 'ओं ह्रीं हौं नमः शिवाय' के उपरोक्त जप, हवन, पूजन तथा ध्यान की विधि से भगवान् शिव की आराधना करने वाला साधक इस लोक में समस्त लोगों में सम्मान एवं प्रेम, धन, ऐश्वर्य, यश, लक्ष्मी तथा दीर्घायु प्राप्त करके मृत्यु के पश्चात् शिवलोक को प्राप्त करता है।

इति जपहुतिपूजाध्यानकैरीशयाजी
प्रियतरचरितः स्यात्सर्वतो देहभाजाम्।
धनविभवयशःश्रीसम्पदा दीर्घजीवी
तनुविपदि च शैवं तत्परं धाम भूयात्।। (वही, २७/७३)

❋

६ लाख (पंचाक्षर मन्त्र में ५ लाख तथा षडक्षर मन्त्र में ६ लाख) जप करके अमलतास की समिधा से प्रज्ज्वलित अग्नि में इन मन्त्रों से त्रिमधुर का ५ अथवा ६ हजार हवन करने के एक अन्य विधान का उल्लेख भी शंकर ने किया है।

अमुमेव मनुवरं मनुलक्षं हृल्लेखयाऽभितो निरुद्धम्।
जप्त्वा नृपतरुसमिधां मधुरयुजां मनु सहस्रमपि जुहुयात्।।
(वही, २७/६७)

ध्यान

इस विधान में वरद, शूल, कपाल तथा अभयमुद्रा वाले, बायीं जंघा पर सुशोभित एवं बाएं हाथ में रक्तकमल लिये भगवती पार्वती की शरीर की कान्ति से दीप्यमान भगवान् हर का ध्यान एवं वन्दना करके शैवपीठ पर पंचावरण देवताओं के साथ पूजा करनी चाहिये। पंचावरण के मध्य में भगवान् ईश, प्रथम आवरण में हृल्लेखायुक्त अंग देवताओं, द्वितीय में ह्रीं युक्त वृषादिकों, तृतीय में आठ मातृकाओं, चतुर्थ में इन्द्रादि दिक्पालों और पंचम में इनके आयुधों की पूजा की जाती है।

वन्दे हरं वरदशूलकपालहस्तं साभीतिमद्रिसुतयोज्ज्वलदेहकान्तिम्।
वामोरुपीठगतया निजवामहस्तन्यस्तारुणोत्पलयुजा परिरब्धदेहम्।।
आवृतिरंगैराद्या हृल्लेखाद्याभिरनु वृषाद्यैश्च।
मात्राशेशैरुक्तं पंचावरणं विधानमीशस्य।। (वही, २७/६८-६६)

(४) अष्टाक्षर शिव-मन्त्र विधान

आचार्य शंकर ने प्रासाद-साधना विधान के अन्तर्गत ही अष्टाक्षर मन्त्र का उद्घाटन तथा इसके साधना-विधान का निरूपण किया है। अष्टाक्षर शिव-मन्त्र का उद्घाटन करते हुए शंकर ने बताया है कि शशि (अनुस्वार) युक्त आप्यायनी ओ (ओं), बिन्दु (अनुस्वार) जिसके अन्त में है, ऐसी अरुणा (ह्), अग्नि (र्), तथा माया (ई) से निर्मित बीज 'ह्रीं', एवं इन्दु (अनुस्वार) तथा भुवन (चौदह) संख्यक अक्षर (औ) से युक्त नकुली (ह्) से निर्मित बीजाक्षर 'हौं' और दीर्घी संज्ञक वर्ण (न), एवं कला (अर्थात् १६वें स्वर विसर्ग) से युक्त विष (मः) तथा 'शिवाय' वर्णों से युक्त 'ओं ह्रीं हौं नमः शिवाय' त्रिशूलधारी शिव का अष्टाक्षर मन्त्र है।

आप्यायिनी शशियुताऽप्यरुणाऽग्निमाया-
बिन्द्वन्तिका च नकुली भुवनेन्दुयुक्ता।

नमश्चतुर्धाप्रोद्भूतभूतभी(भू)भूतात्मने भुवः।
भूरिभारार्तिसंहर्त्रे भूतनाथाय शूलिने।।
विश्वग्रासाय विलसत्कालकूटविषाशिने।
तत्कलंकांकितग्रीवनीलकण्ठाय ते नमः।।
नमो ललाटनयनप्रोल्लसत्कृष्णवर्त्मना।
ध्वस्तस्मरनिरस्ताधियोगिध्येयाय शम्भवे।।
नमो देहार्धकान्ताय दग्धदक्षाध्वराय च।
चतुर्वर्गे(र्णे)ष्वभीष्टार्थदायिने मायिनेऽणवे।।
स्थूलाय मूलभूताय शूलदारिंतविद्विषे।
कालहन्त्रे नमश्चन्द्रखण्डमण्डितमौलये।।
विवाससे कपर्दान्तर्भ्रान्ताहिसरिदिन्दवे।
देवदैत्यासुरेन्द्राणां मौलिघृष्टांघ्रये नमः।।
भस्माभ्यक्ताय भक्तानां भुक्तिमुक्तिप्रदायिने।
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय शंकराय नमो नमः।।
नमोऽन्तकान्धकरिपवे पुरद्विषे नमोऽस्तु ते द्विरदवराहभेदिने।
विषोल्लसत्फणिवरबद्धमूर्तये नमो सदा वृषवरवाहनाय ते।।
वियन्मरुद्धुतवहवार्वसुन्धरामखेशरव्यमृतमयूखमूर्तये।
नमः सदा नरकभयापभेदिने भवेह नो भवभयभंगकृद्विभो।।

(वही, २७/५५-६४)

इस प्रकार से भगवान् चन्द्रमौलि की स्तुति करने के बाद उन्हें बाह्यपीठ से विसर्जित कर अपने हृदय-कमल में स्थापित करना चाहिये। तदनन्तर यज्ञ में भाग ले रहे गुरु एवं ब्राह्मणों को दक्षिणादि से तृप्त कर उन्हें विदा करके पुनः उक्त पंचाक्षर या षडक्षर मन्त्र का यथाशक्ति जप करना चाहिये।

स्तुत्वेन्दुखण्डपरिमण्डितमौलिमेवमुद्वासयेत्पुनरमुं हृदयाम्बुजे स्वे।
अभ्यर्च्य देह(व)मपि संयतचित्तवृत्तिर्भूत्वा शिवो जपतु मन्त्रमहेशमेनम्।।
सन्तर्प्य विप्रान् पुनरेवमेव सम्पूजयेदिन्दुकलावतंसम्।
जपेद्यथाशक्ति शिवस्वरूपो भूत्वा तथाऽन्ते च शिवः स भूयात्।।

(वही, २७/६५-६६)

ईश का पंचावरण विधान

उक्त पंचाक्षर या षडक्षर मन्त्र को आदि तथा अन्त में हृल्लेखा बीज ह्रीं से निरुद्ध करके 'ह्रीं ओं नमः शिवाय ह्रीं' या 'ह्रीं नमः शिवाय ह्रीं' का ५ लाख अथवा

दशमन्यास

तत्पुरुषाय नमः ललाटे, अघोराय नमः जठरे,
सद्योजाताय नमः वामांसे, वामदेवाय नमः दक्षांसे,
ईशानाय नमः हृदये।

इस प्रकार से गोलकन्यास सम्पन्न करके जपे गये मन्त्र की सिद्धि के लिये निम्नांकित मन्त्र का जप करना चाहिये—

'नमोस्तु स्थाणुभूताय ज्योतिर्लिंगामृतात्मने।
चतुर्मूर्तिवपुच्छायाभासितांगाय शम्भवे।।'

इस मन्त्र के जप के अनन्तर षडक्षर मन्त्र से पूजन पीठ पर प्रतिष्ठित एवं अपने शरीर में स्थित शंकर को तीन या पांच बार पुष्पांजलि समर्पित करना चाहिये।

पुनस्तत्प्रतिपत्यर्थं जपेन्मन्त्रमिमं सुधीः।।
नमोऽस्तु स्थाणुभूताय ज्योतिर्लिंगावृ(मृ)तात्मने।
चतुर्मूर्तिवपुश्छायाभासितांगाय शम्भवे।।
कुर्यादनेन मन्त्रेण निजदेहे समाहितः।
मन्त्री पुष्पांजलिं सम्यक् त्रिशः पंचश एव च।। (वही, २७/५०-५२)

आवरण-पूजा

पंचाक्षर या षडक्षर शिवमन्त्र की आराधना में आवरण-पूजा प्रासादमन्त्र वाले शैवपीठ पर ही की जाती है। इसके प्रथम आवरण में तत्पुरुषाय नमः, अघोराय नमः, सद्योजाताय नमः, वामदेवाय नमः तथा ईशानाय नमः से अंगपूजा, द्वितीय आवरण में अनन्तादि अष्टमूर्तियों, तृतीय में वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकरिणी, बलविकरिणी, बलप्रमथिनी, सर्वभूतदमनी तथा मनोन्मनी नामक शक्तियों, चतुर्थ आवरण में वृष, क्षेत्रपाल, चण्डेश्वरादि, पंचम आवरण में लोकपालों और अन्त में उनके आयुधों की अर्चना की जाती है।

इस विधि से आवरण-पूजा सम्पन्न करने के पश्चात् निम्नांकित स्तवन से भगवान् शिव की स्तुति करनी चाहिये—

शिव-स्तुति

नमो विरिंचिविष्ण्वीशभेदेन परमात्मने।
सर्गसंस्थितिसंहारव्याहृति(वृत्ति)व्यक्तमूर्तये।।

द्वितीयन्यास

ओं नमः कण्ठमूले, नं नमः नाभौ, मं नमः वामपार्श्वे,
शिं नमः दक्षपार्श्वे, वां नमः पृष्ठे, यं नमः हृदये।

तृतीयन्यास

ओं नमः मूर्धनि, नं नमः मुखे, मं नमः वामनेत्रे,
शिं नमः दक्षनेत्रे वां नमः वामनासिकायाम्,
यं नमः दक्षनासिकायाम्।

चतुर्थन्यास

ओं नमः वामहस्तमूले, नं नमः दक्षहस्तमूले,
मं नमः वामहस्तकूर्परे, शिं दक्षहस्तकूर्परे,
वं नमः वामहस्त अंगुल्यग्रे, यं नमः दक्षहस्त अंगुल्यग्रे।

पंचमन्यास

ओं नमः वामपादमूले, नं नमः दक्षपादमूले,
मं नमः वामपाद जानौ, शिं नमः दक्षपादजानौ,
वां नमः वामपादांगुल्यग्रे, यं नमः दक्षपादांगुल्यग्रे।

षष्ठन्यास

ओं नमः शिरसि, नं नमः मुखे, मं नमः हृदये,
शिं नमः जठरे, वां नमः वामोरौ, यं नमः दक्षोरौ।

सप्तमन्यास

ओं नमः वामपादे, नं नमः दक्षपादे, मं नमः हृदये,
शिं नमः आनने, वां नमः वामपार्श्वे, यं नमः दक्षपार्श्वे।

अष्टमन्यास

ओं नमः नाभौ, नं नमः वामहस्ते, मं नमः दक्षहस्ते,
शिं नमः मुखे, वां नमः वामांसे, यं नमः दक्षांसे।

नवमन्यास

ओं नमः मुखे, नं नमः वामांसे, मं नमः दक्षांसे
शिं नमः पादयोः , वां नमः अंसयोः, यं नमः हृदये।

तथा स्कन्द, चतुर्थ आवरण में इन्द्रादि लोकपाल तथा पांचवें आवरण में लोकपालों के वज्रादि आयुधों की षोडशोपचार पूजा की जाती है।

ईशानादि उक्त पंचदेवों में से तत्पुरुषादि चार देवों के अपने-अपने विशेष स्वरूप हैं, ये चारों चार-चार मुखवाले हैं। किन्तु ईशान इनसे विलक्षण और पांच मुख वाले हैं। इन सबकी आवरण-पूजा में इनके अपने-अपने अंगदेवताओं, शक्तियों, मूर्तियों, दिक्पालों और इनके आयुधों के साथ की जानी चाहिये।

उल्लसितमुखचतुष्कास्तेजोरूपो विलक्षणस्त्वीशः।।
आवृतिराद्या मूर्तिभिरंगैरन्याऽपराप्यनन्ताद्यैः।
अपरोमादिभिरपरेन्द्राद्यैरपरा तदायुधैः प्रोक्ताः।। (वही, २७/४३-४४)

स्वदेहरूपी पीठ में गोलकन्यास

शंकर ने उपर्युक्त पीठावरण के अलावा साधक द्वारा अपने शरीर को ही पीठ मानकर पिनाकपाणि शंकर के षडक्षर मन्त्र 'ओं नमः शिवाय' के विधान को सम्पन्न करने की विधि का निरूपण किया है। इस विधि में अपने शरीर में ही षडक्षर मन्त्र के वर्णों का न्यास करना होता है। इसे गोलकन्यास कहा जाता है।

कथयामि मनोर्विधानमन्यन्मुनिपूज्यं प्रवरं पिनाकपाणेः।
स्वतनौ परिकल्प्य पीठमंगान्यपि विन्यस्य तथैव मन्त्रवर्णान्।।
हृन्मुखांसोरुयुग्मेषु षड्वर्णान् क्रमशो न्यसेत्।
कण्ठमूले तथा नाभौ पार्श्वयुक्पृष्ठहृत्सु च।।
मूर्द्धास्यनेत्रघ्राणेषु दोःपत्सध्यग्रकेषु च।
स शिरोवक्त्रहृदयजठरोरुपदेष्वपि।।
हृदाननपरश्वेणाभीत्याख्यवरदेषु च।
मुखांसहृदयेषु त्रीन् परान् पादोरुकुक्षिषु।।
उर्ध्वाधः क्रमशः कुर्याद् गोलकन्यासमुत्तमम्।
पुनस्तत्पुरुषाघोरसद्योवामेशसंज्ञकान्।
ललाटजठरद्व्यंसहृदयेषु क्रमान्न्यसेत्।। (वही, २७/४६-५०)

उपर्युक्त उल्लेखानुसार न्यासों के स्वरूप निम्नवत् होंगे—

प्रथमन्यास

ओं नमः हृदये, नं नमः मुखे, मं नमः वामांसे,
शिं नमः दक्षांसे, वां नमः वामोरौ, यं नमः दक्षोरौ।

वक्त्रन्यास

नं नमः पूर्वमुखे, मं नमः दक्षिण मुखे,
शिं नमः पश्चिममुखे , वां नमः उत्तरमुखे,
यं नमः ऊर्ध्वमुखे।

ध्यान

पंचाक्षर और षडक्षर मन्त्र की साधना में कुठार, मृग, अभय तथा वरद मुद्राधारी, प्रसन्न वदन, त्रिनेत्र, जटाजूट पर धनुषाकार अर्धेन्दु को धारण करने वाले, समस्त अलंकारों से मण्डित, पद्मासन पर विराजमान, व्याघ्राम्बरधारी, अमृतरस में मिश्रित मोती (श्वेत) तथा पराग (पीत) वर्ण अर्थात् गौरवर्णी पर्वत के समान विशाल देह वाले, चन्द्रमौलि भगवान् शिव का ध्यान करना चाहिये।

बिभ्रद्दोर्भिः कुठारं मृगमभयवरौ सुप्रसन्नो महेशः
सर्वालंकारदीप्तः सरसिजनिलयो व्याघ्रचर्मात्तवासाः।
ध्येयो मुक्तापरागामृतरसकलिताद्रिप्रभः पंचवक्त्र-
स्त्र्यक्षः कोटीरकोटीघटिततुहिनरोचिःकलोत्तुंगमौलिः।। (वही, २७/४१)

जप एवं हवन

पंचाक्षर अथवा षडक्षर मन्त्र की साधना में जप संख्या मन्त्र में विद्यमान प्रति अक्षर १ लाख की चार गुना होनी चाहिये। इस प्रकार पंचाक्षर मन्त्र में जपसंख्या २० लाख और षडक्षर मन्त्र में जपसंख्या २४ लाख होनी चाहिये। हवन दूधवाले वट आदि वृक्षों की समिधा से प्रज्ज्वलित अग्नि में शुद्ध तिलों, घी तथा खीर से किया जाना चाहिये। जहां तक हवन संख्या का प्रश्न है, तो नियम यह है कि जितने लाख जप हैं, उतने ही हजार हवन होने चाहिये। इस प्रकार पंचाक्षर मन्त्र में २० हजार एवं षडक्षर मन्त्र में २४ हजार हवन किये जाने चाहिये।

अक्षरलक्षचतुष्कं जप्यात्तत्तावत्सहस्रमपि जुहुयात्।
शुद्धैस्तिलैर्घृतैर्वा दुग्धान्नैर्दुग्धभूरुहेध्मैर्वा।। (वही, २७/४२)

आवरण-पूजा

पंचाक्षर या षडक्षर मन्त्र की साधना में आवरण-पूजा प्रासादमन्त्र के लिये विहित पीठ पर ही की जाती है। इसके प्रथम आवरण में अनन्त, सूक्ष्म, शिवोत्तम, एकनेत्र, रुद्र, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ तथा शिखण्डी नामक अष्टमूर्तियों, द्वितीय आवरण में अंगमन्त्र, तृतीय में उमा, चण्डेश्वर, नन्दी, महाकाल, गणेश्वर, वृष, भृंगी, रिटि

वक्तृहृत्पादगुह्याख्यमूर्धस्वपि च नामभिः।।
प्राग्याम्यवारुणोदीच्यवक्त्रेष्वाप च मूर्धनि।। (वही, २७/३७-४०)

प्रोक्तं पूर्वमिति प्रासाद इत्यर्थः। अं बीजं आय शक्तिः, (वही, पद्मपाद)

पंचाक्षर मन्त्र के न्यासों का स्वरूप

ऋष्यादिन्यास

वामदेवर्षये नमः शिरसि, पंक्तिछन्दसे नमः मुखे,
सदाशिवदेवतायै नमः हृदये, अं बीजाय नमः गुह्ये,
आयशक्तये नमः पादयोः।

पंचांगन्यास

पंचांगन्यास

नं नमः हृदयाय नमः, मं नमः शिरसे स्वाहा,
शिं नमः शिखायै वषट्, वां नमः कवचाय हुं,
यं नमः अस्त्राय फट् ।

षडंगन्यास

ओं नमः हृदयाय नमः, नं नमः शिरसे स्वाहा,
मं नमः शिखायै वषट्, शिं नमः कवचाय हुं,
वां नमः नेत्रत्रयाय वौषट्, यं नमः अस्त्राय फट् ।

अंगुल्यादिन्यास

नं तत्पुरुषाय नमः तर्जन्योः,
मं अघोराय नमः मध्यमयोः,
शिं सद्योजाताय नमः अनामिकयोः,
वां वामदेवाय नमः कनिष्ठिकयोः,
यं ईशानाय नमः अंगुष्ठयोः।

देहन्यास

नं तत्पुरुषाय नमः मुखे, मं अघोराय नमः हृदये,
शिं सद्योजाताय नमः पादयोः, वां वामदेवाय नमः गुह्ये,
यं ईशानाय नमः मूर्धनि।

पंचाक्षर एवं षडक्षर शिवमन्त्र

आचार्य शंकर ने प्रासादमन्त्र के अंगभूत ईशानादि पंचमन्त्रों से ईशानादि पंचदेवों की साधना की विधि का निरूपण करने के बाद साधक की समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले भगवान् शिव के पंचाक्षर मन्त्र की साधना-विधि का सांगोपांग निरूपण किया है। शिव के पंचाक्षर मन्त्र का उद्धार करते हुए शंकर ने बताया है कि 'दीर्घ' (न), विसर्गी (:), 'विष' (मः), 'अक्षि' (इ) सहित 'मृत्यु' (शि), 'वा' अक्षर एवं 'पवन' (य) से पंचाक्षर मन्त्र 'नमः शिवाय' बनता है। यह पंचाक्षर मन्त्र साक्षात् ओंकार से उत्पन्न हुआ है, अतः इसके आदि में 'ओं' जोड़ा जाता है। इस प्रकार यह षडक्षर मन्त्र 'ओं नमः शिवाय' बन जाता है। प्रणव से आकाशादि पंचभूत उत्पन्न होते हैं अतः पंचाक्षर मन्त्र 'नमः शिवाय' पंचभूतात्मक है। यह समस्त जगत् पंचभूतों से ही निर्मित है, अतः पंचभूतात्मक यह मन्त्र जगदात्मा अर्थात् विश्वमय है।

दीर्घो विषो विसर्गी मृत्युः साक्षी च सवाक्षरः पवनः।
ताराद् भवति यदस्मात्तदादिरभिधीयते मनुप्रवरः।।
अस्याऽक्षराण्यमूनि च पंच स्युः पंचभूतगानि तथा।
जगदपि भूतारब्धं तेन हि जगदात्मतोदिताऽस्य मनोः।।(वही, २७/३६)

जगदात्मक 'नमः शिवाय' मन्त्र के ऋषि वामदेव, छन्दस् पंक्ति, देवता ईश, बीज अं तथा शक्ति आय है।

पंचाक्षर मन्त्र के पांच अक्षरों से पंचांगन्यास किया जाता है और ओंकार सहित मन्त्र के छह अक्षरों से क्रमशः षडंगन्यास किया जाता है। तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव तथा ईशान नामक पंचदेवों के नाम से पूर्व मन्त्र के पंचाक्षरों को क्रमशः लगाकर तर्जनी से आरम्भ कर अंगुल्यादिन्यास, मुख, हृदय, पाद, उपस्थ तथा मूर्धा में देहादिन्यास तथा पंचमुखी शिव तथा स्वयं को पांच मुखों वाला शिवस्वरूप मानते हुए पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर तथा ऊर्ध्व दिशावर्ती पांचमुखों में न्यास को मुखन्यास कहा जाता है।

प्रोक्तमृष्यादिकं पूर्वमंगवर्णैस्तु मन्त्रजैः।
अंगुलीदेहवक्त्रेषु मूलमन्त्राक्षरादिकान्।।
न्यसेत्तत्पुरुषाघोरसद्योवामेशसंज्ञकान्।
सतर्जनीमध्यमान्त्यानामिकांगुष्ठकेषु च।।

अनादिभवे नमः मेधायै नमः, भजस्व मां नमः प्रज्ञायै नमः,
भवाय नमः प्रभायै नमः, उद्भवाय नमः सुधायै नमः

मन्त्रों से पैरों और हाथों के तलवों, नासिका, सिर तथा दोनों हाथों में अंगुलियों से किया जाता है।

इसी प्रकार का कलान्यास देवादि की प्रतिमाओं तथा अपने शरीर में भी किया जा सकता है, जो अत्यन्त प्रभावशाली और ईशानादि पंचदेवों की समीपता प्रदान करने वाला है।

कलाः प्रविन्यसेद्देहे वक्ष्यमाणक्रमेण तु।।
ताः स्युः पंच चतस्रोऽष्टौ त्रयोदश चतुर्द्वयम्।
अष्टत्रिंशत्कलाः सम्यक् न्यस्तव्या मन्त्रवित्तमैः।।
दिक्षु प्राग्याम्यवारीड्वसुपनिजभुवामैन्द्रवारार्किराज्ञां
हृद्ग्रीवांसद्वयीनाभ्युदरचरमवक्षःसु गुह्याण्डयोश्च।
सोर्वोर्जान्वोः सजंघास्फिगुभयकटिपार्श्वे च पद्दोस्तलेषु
घ्राणे के बाहुयुग्मेष्वपिर्विशदमतिर्विन्यसेदंगुलीभिः।।
विन्यासः प्रतिमाकृतौ च नितरां सान्निध्यकृत्स्यादयं
देहे वापि शरीरिणां निगदितः सामर्थ्यकारीति च।
आस्ते यत्र तथाऽमुनैव दिनशो विन्यस्तदेहः पुमान्
क्षेत्रं देशममुंच योजनमितं शैवागमज्ञा विदुः।। (वही, २७/३०-३३)

आवरण-पूजा

अड़तीस कलाओं के विन्यास के अनन्तर उक्त शैवपीठ पर पद्मासन पर विराजमान क्रमशः स्वर्ण, वैडूर्य, विद्रुम, मरकत, मुक्ता, नीलम, माणिक्य तथा धूम्र अर्थात् गोमेद की प्रभा वाले उमा, चण्डेश्वर, नन्दी, महाकाल, गणेश्वर, वृषपाल, भृंगी तथा स्कन्द तथा दिक्पालों, उनके आयुधों की पूजा की जानी चाहिये। इस विधि से ईशानादि की उपासना-अर्चना करने वाला साधक इस लोक में समस्त सुखों का भोग करते हुए मृत्यु के पश्चात् परम लोक को प्राप्त होता है।

न्यस्यैवं पंचभिर्ब्रह्मभिरथ शिवमाराधयेद्दृग्भिराभि-
र्मध्यप्राग्याम्यसौम्यापरदिशि पुनरंगैरनन्तादिभिश्च।
अन्योमाद्यैर्दिशापैः पुनरपि कुलिशाद्यैर्यजेदेवमुक्तं,
पांचब्रह्म विधानं सकलसुखयशोभुक्तिमुक्तिप्रदं च।। (वही, २७/३४)

अथ घोरेभ्यो नमः मेघायै नमः,
घोर नमः क्षुधायै नमः,
घोरतरेभ्यो नमः निद्रायै नमः,
सर्वतः सर्व नमः मृत्यवे नमः,
सर्वेभ्यो नमः मायायै नमः,
नमस्ते अस्तु नमः भयायै नमः,
रुद्ररूपेभ्यो नमः ज्वरायै नमः

इन मन्त्रों से क्रमशः हृदय, ग्रीवा, दोनों कन्धों, नाभि, उदर, पायु तथा वक्षस् में करना चाहिये।

वामदेव की कलाएं

रजा, रक्षा, रति, पाल्या, कामा, संयमिनी, कृशा (क्रिया), वृद्धि, स्थिरा, रात्रि, भ्रामिणी, मोहनी तथा जरा नामक वामदेव की तेरह कलाएं हैं। इनका न्यास—

वामदेवाय नमः विरजाय नमः, ज्येष्ठाय नमः रक्षायै नमः,
रुद्राय नमः रत्यै नमः, कालाय नमः पाल्यै नमः,
कलाय नमः कामायै नमः, विकलनाय नमः संयमिन्यै नमः,
बलाय नमः कृशायै नमः, बलविकलाय नमः वृद्ध्यै नमः,
बलाय नमः स्थिरायै नमः, प्रमथनाय नमः रात्र्यै नमः,
सर्वभूताय नमः भ्रामिण्यै नमः, दमनाय नमः मोहिन्यै नमः,
मनोन्मनाय नमः जरायै नमः

इन मन्त्रों से क्रमशः उपस्थ, दोनों अण्डों, उरु, दोनों घुटनों, दोनों जंघाओं, दोनों पिण्डलियों, कटि, दोनों पार्श्वों में करना चाहिये।

सद्योजात की कलाएं

वृद्धि, सिद्धि, द्युति, लक्ष्मी, मेधा, प्रज्ञा, प्रभा तथा सुधा नामक आठ कलाएं सद्योजात की हैं। इन कलाओं का न्यास—

सद्योजातं प्रपद्यामि नमः वृद्ध्यै नमः,
सद्योजाताय वै नमः सिद्ध्यै नमः,
भवे नमः द्युत्यै नमः, अभवे नमः लक्ष्म्यै नमः,

अष्टत्रिंशत्कलान्यास

ईशानादि पंचदेवताओं की साधना में इनका न्यास इनकी ३८ कलाओं के साथ शरीर के विभिन्न अंगों में किया जाता है।

ईशान की कलाएं

शशिनी, अंगदा, इष्टदा, मरीचि, अंशुमालिनी नामक पांच कलाएं ईशान की हैं। इनका न्यास अपने को शिवात्मक मानते हुए—

ईशानः सर्वविद्यानां नमः शशिन्यै नमः,
ईश्वरः सर्वभूतानां नमः अंगदायै नमः,
ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपति ब्रह्मा नमः इष्टदायै नमः,
शिवो मे अस्तु नमः मरीच्यै नमः,
सदाशिवो नमः ज्वालिन्यै नमः

इन पांच मन्त्रों से ईशान की प्रतिमा के क्रमशः पूर्वादि दिशावर्ती चार दिशाओं वाले चार मुखों एवं ब्रह्मा की (ऊर्ध्व) दिशा वाले पांचवें मुख में करके पांचों मुखों तथा अपने सिर के पूर्व, दक्षिण, पश्चिमं, उत्तर तथा ऊपर की ओर करना चाहिये।

तत्पुरुष की कलाएं

निवृत्ति प्रतिष्ठा, विद्या तथा शान्ति नामक तत्पुरुष की चार कलाएं हैं। इनका न्यास—

तत्पुरुषाय विद्महे नमः शान्त्यै नमः,
महादेवाय धीमहि नमः विद्यायै नमः,
तन्नो रुद्रः नमः प्रतिष्ठायै नमः,
प्रचोदयान्नमः निवृत्यै नमः,

मन्त्रों से पूर्व, पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तर चारों दिशाओं वाले मुखों में करना चाहिये।

अघोर की कलाएं

अघोर की तमसा, मोहा, क्षया, निद्रा, व्याधि, मृत्यु, क्षुधा तथा तृषा नामक आठ कलाएँ हैं। इनका न्यास—

अघोरेभ्यो नमः तामस्यै नमः,

मन्त्र के ऋषि वामदेव, छन्दस् कृति तथा देवता भग, सद्योजात मन्त्र के ऋषि हर, छन्दस् अनुष्टुप् तथा देवता भग ही हैं।

वक्ष्यामि शैवागमसारमष्टत्रिंशत्कलान्यासविधिं यथावत्।
सपंचभिर्ब्रह्मभिरीशपूर्वैः सर्ष्यादिकैः सांगविशेषकैश्च।।
ईशोऽनुष्टुबूभूरीश्वरास्तत्पुरुषसंज्ञगायत्र्यापः।
पुनरग्न्यनुष्टुबापो वामकृतिभगा हरस्त्वनुष्टुबूभगयुक्।

(वही, २७/२५-२६)

षडंगन्यास

शंकर के अनुसार इन पंचमन्त्रों की साधना में पंच इन्द्रिय तार अर्थात् (ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें ह्सौः) में क्रमशः 'सर्वज्ञाय से हृदय न्यास, अमृते तेजोमालिनि तृप्ताय ब्रह्मशिरसे से शिरोन्यास, ज्वलितशिखिशिखे अनादिबोधाय से शिखान्यास, वज्रिणे वज्रधराय स्वतन्त्राय से कवचन्यास, सौं चौं (वौं) हौं अलुप्तशक्तये से नेत्रन्यासतथा श्लीं पशु हुं फट्' से अस्त्रन्यास करना चाहिये। करन्यास, देहन्यास तथा मुखन्यास पूर्वोल्लिखित रूप में ही किये जाते हैं।

इन्द्रियतारसमेतं सर्वज्ञायेति हृच्छिरस्त्वमृते।
तेजोमालिनि पूर्वं तृप्ताय ब्रह्मशिरसे इति कथितम्।।
ज्वलितिशिखिशिखान्ते त्वनादिबोधाय चाऽन्वितेह शिखा।
वज्रिणे वज्रधराय स्वान्ते तन्त्रायेति वर्म नेत्रंच।।
सौ चौ (वौ) हौ बिन्दुयुतं सम्प्रोक्त्वाऽलुप्तशक्तये च तथा।
श्लीं पशु हुं फट् अनन्तशक्तये तथा चाऽस्त्रं स्यात्।
समुनिछन्दोदैवतयुक्तं तदंगषट्कमिति कथितम्।।
करदेहमुखन्यासं मन्त्री पूर्ववदाचरेत्।। (वही, २७/२७-३०)

तदनुसार षडंगन्यास निम्नवत् होगा—

ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें ह्सौः सर्वज्ञाय (सर्वात्मने) हृदयाय नमः,
अमृते तेजोमालिनि तृप्ताय ब्रह्मशिरसे शिरसे स्वाहा,
ज्वलितशिखिशिखा अनादिबोधाय शिखायै वषट्,
वज्रिणे वज्रधराय स्वतन्त्राय कवचाय हुं,
सौं चौं (वौं) हौं अलुप्तशक्तये नेत्रत्रयाय वौषट्,
श्लीं पशु हुं फट् अनन्तशक्तये अस्त्राय फट् ।

इसके बाद पूर्वादि क्रम से इन्द्रादि दिक्पालों तथा उनके कुलिशादि आयुधों की पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार से 'प्रासादमन्त्र' की जप, हवन तथा आवरणादि पूजा-अर्चना करने से साधक को धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष नामक चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है।

अनन्तसूक्ष्मौ च शिवोत्तमश्च तथैकपूर्वावपि नेत्ररुद्रौ।
त्रिमूर्तिश्रीकण्ठशिखण्डिनश्च प्रागादिपत्रेषु समर्चनीयाः ।।
शूलाशनिशरचापोल्लासिदोर्दण्डभीषणाः सर्वे।
पद्मासनाश्च नानाविधभूषणभूषितास्त्रिनेत्राश्च।
पाटलपीतसितारुणशितिरक्तशितिप्रभाश्च धूम्रान्ताः।
कोटीरघटितविलसच्छशिकलायुताश्च मूर्तयः क्रमशः।।
उमा चण्डेश्वरो नन्दी महाकालो गणेश्वरः।
वृषभृंगिरिटिस्कन्दाः सम्पूज्याश्चोत्तरादिकाः।।
कनकविदूरजविद्रुममरकतमुक्तासिताच्छरक्ताभाः।
पद्मासनसंस्थाश्च क्रमादुमाद्या गुहान्तिकाः प्रोक्ताः।।
पुनराशेशास्तदनु च कुलिशाद्या दिक्क्रमेण संपूज्याः।
प्रासादविधानमिदं निगदितमिति सकलवर्गसिद्धिकरम्।।
अमुना विधिना महेशपूजां दिनशो यः कुरुते समाहितात्मा।
स तु सम्यगवाप्य दृष्टभोगान् परमन्ते परिपूर्णमिति धाम।।

(वही, २७/१८-२४)

पांचब्रह्म विधान

ईशान आदि पंचदेवों की पूजा में अष्टत्रिंशत्कलान्यास विधि को शंकर ने 'शैवागमसार' कहा है। प्रासादमन्त्र की साधना का निरूपण करने के उपरान्त इसके अवयव रूप ईशानादि पंचदेवताओं की साधना-विधि का निरूपण करते हुए आचार्य शंकर ने ईशानादि देवों के जिन पांच मन्त्रों का संकेत किया है, उनका उल्लेख किया जा चुका है। इनमें से प्रत्येक मन्त्र की साधना में इन मन्त्रों के ऋषि, छन्दस् तथा देवता का उल्लेख भी शंकर ने किया है।

पंचमन्त्रों के ऋष्यादि

उक्त ईशानादि पांच मन्त्रों में से ईशान मन्त्र के ऋषि भूः, छन्दस् अनुष्टुप् तथा देवता ईश्वर, तत्पुरुष मन्त्र के ऋषि तत्पुरुष, छन्दस् गायत्री तथा देवता आप्, अघोर मन्त्र के ऋषि अग्नि, छन्दस् अनुष्टुप् और देवता आप् हैं। वामदेव

पंचदेवों के स्वरूप

ईशानादि पंचदेवों में से सद्योजात वेद, अक्षमाला, पाश, अभय एवं वरद-मुद्राधारी कुन्द एवं मन्दार पुष्प की भांति गौरवर्ण हैं। वामदेव अभय मुद्रा, परशु, अक्षमालाधारी केसरवर्णी हैं। अघोर अक्षमाला, वेद, पाश, अंकुश, डमरु, खट्वांग, शूल तथा कपालधारी, भयानक दांतों वाले, भयजनक एवं अंजन की भांति कृष्णवर्णी हैं। तत्पुरुष वेद, अभय, वरदमुद्रा तथा कुठारधारी विद्युद्वर्णी हैं। सद्योजात, वामदेव, अघोर तथा तत्पुरुष चार मुख, चार बाहु और तीन नेत्रों वाले हैं। किन्तु, ईशान अभय-वरदमुद्राधारी, अभीप्सित से भी अधिक प्रदानकर्ता, पंचमुखी तथा मुक्ता की भांति गौरवर्णी हैं। इन पांच देवों की निवृत्ति आदि पांच शक्तियां पंचभूतमयी, तेजोरूपा, हाथ-पैर एवं वर्णादि से रहित शक्तिरूपा और जगद्व्यापिनी हैं।

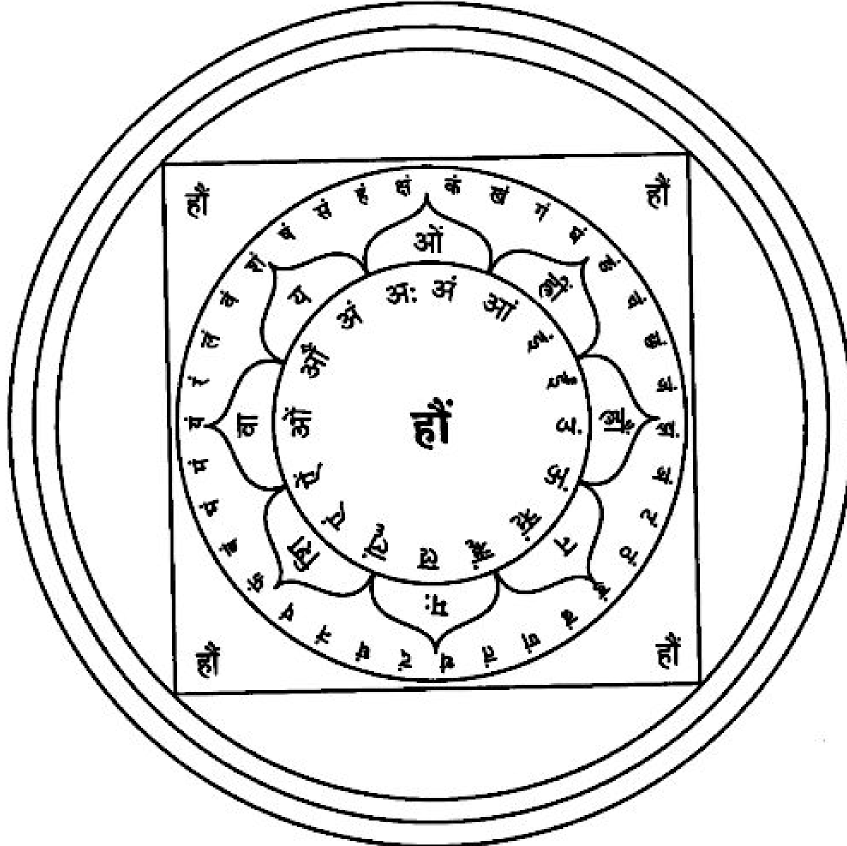
सद्यो वेदाक्षमालाभयवरदकरः कुन्दमन्दारगौरो
वामः काश्मीरवर्णोऽभयवरदपरश्वक्षमालाविलासी।
अक्षस्रग्वेदपाशांकुशडमरुखट्वांगशूलान् कपालं
बिभ्राणो भीमदंष्ट्रोऽञ्जनरुचितनुर्भीतिदं चाऽप्यघोरः।।
विद्युतवर्णोऽथ वेदाभयवरदकुठारान् दधत्पूरुषाख्यः
प्रोक्ताः सर्वे त्रिनेत्रा विधृतमुखचतुष्काश्चतुर्बाहवश्च।
मुक्तागौरोऽभयेष्टाधिककरकमलोऽघोरतः पंचवक्त्र-
स्त्वीशो ध्येयोऽम्बुजन्मोद्भवमुररिपुरुद्रेश्वराः स्युः शिवान्ताः।।
भूतानां शक्तित्वाद्व्याप्तत्वाज्जगति वा निवृत्त्याद्याः।
तेजोरूपाः करपदवर्णविहीना मनीषिभिः प्रोक्ताः।। (वही, २७/१५-१७)

आवरण-पूजा

आवरण-पूजा में अष्टदल कमल के दलों पर क्रमशः पाटल, पीत, श्वेत, अरुण, कृष्ण, रक्त, कृष्ण तथा धूम्रवर्णी, शूल, वज्र, बाण, धनुष धारण करने वाले, भयजनक, अनेक प्रकार के आभूषणों से आभूषित, तीन नेत्रों वाले, अर्धचन्द्रधारी, पद्मासन पर विराजमान अनन्त, सूक्ष्म, शिवोत्तम, एकनेत्र, रुद्र, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ तथा शिखण्डी नामक आठ मूर्तियों की पूजा पूर्वादि दल क्रम से करनी चाहिये। इनके साथ क्रमशः स्वर्ण, वैडूर्य, विद्रुम, मरकत, मुक्ता, नीलम, हीरक तथा माणिक्य की आभा वाले उमा, चण्डेश्वर, नन्दी, महाकाल, गणेश्वर, वृष, भृंगीरिटि तथा स्कन्द की पूजा उत्तरादि क्रम से की जानी चाहिये।

"मध्ये प्रासादिकं केसरेषु स्वरान् दलेष्वष्टाक्षरं तद्बहिः वृत्ते व्यंजनानि पार्थिवकोणेषु प्रासादं लिखेत्। तद्बहिः गुणवृत्तादिकं लिखेदित्यर्थः"। (वही, श्लोक १० पर विवरण)

प्रासाद यन्त्र (पद्मपादानुसार)



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - २७/८-१०)

[जपसंख्या - १० लाख • आहुति-संख्या - १ लाख • हवनद्रव्य - मधुरत्रय से सिक्त कनेर के पुष्प, जवापुष्प, कमल खीर अथवा अमलतास की समिधाएं]

इसके बाद अपनी देह में ही यथोक्त न्यासादि सम्पन्न कर ऊर्ध्वादि पूर्वोक्त पांच दिशाओं में ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात नामक पंचदेवों तथा उपदिशाओं में निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति तथा शान्त्यतीता नामक पांच भूतकलाओं की इनके नाम के पूर्व इनके बीज लगाकर अर्चना सम्पन्न करनी चाहिये।

न्यासक्रमेण देहे मन्त्री गन्धादिभिः समभ्यर्च्य।
पूर्वोक्तदिक्षु मूर्तीर्विदिक्षु सनिवृत्तिपूर्विकां च यजेत्।। (वही, २७/१४)

जप तथा हवन

प्रासादमन्त्र की सिद्धि तथा समृद्धि के लिये इस मन्त्र का १० लाख जप तथा जप पूर्ण हो जाने पर मधुरत्रय से सिक्त कनेर अथवा जवापुष्प या कमलपुष्प अथवा विशुद्ध खीर का १ लाख हवन नृपवृक्ष अर्थात् अमलतास की समिधाओं से प्रज्ज्वलित अग्नि में इसी मन्त्र से करना चाहिये।

जुहुयाच्च दशांशतस्तदन्ते मधुराक्तैः करवीरजप्रसूनैः।
अथवा कुसुमैर्जवासमुत्थैः कमलैर्वा विमलेन पायसेन।
नृपवृक्षभवैः समिद्वरैर्वा जुहुयात् साधकसत्तमः समृद्ध्यै।।

(वही, २७/८-६)

आवरण-पूजा

प्रासादमन्त्र की आवरण-पूजा शैवपीठ पर की जाती है। पीठ का निर्माण मुख्यतः अष्टदल कमल, उसके बाहर तीन वृत्त, राशिमण्डल, वीथी तथा कल्पतरु आदि बना कर की जाती है। पीठ निर्माण के बाद 'ओं नमो भगवते सकलगुणात्मने शक्तियुक्ताय अनन्ताय योगपीठात्मने नमः' मन्त्र से पीठ की पूजा करके वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकरिणी, बलविकरिणी, बलप्रमथिनी, सर्वभूतदमनी तथा मनोन्मनी नामक शूलिन शिव की नौ पीठशक्तियों की पूजा करनी चाहिये।

अष्टपत्रगुणवृत्तराशिभिर्वीथिकल्पतरुभिः समावृतम्।
मण्डलं प्रतिविधाय शूलिनः पीठमत्र नवशक्तिभिर्यजेत्।।
वामा ज्येष्ठा रौद्री कालाख्या कलबलाद्यविकरिण्यौ।
सबलप्रमथिनिसर्वभूतदमन्यौ मनोन्मनीं च यजेत्।।
तारादिकं नतिमपि प्रोक्त्वा भगवत्पदं चतुर्थ्यन्तम्।
सकलगुणात्मपदान्ते शक्तियुक्ताय चेति संभाष्य।।
भूयोऽनन्तायेति च योगान्ते पीठात्मने चेति।
नमसा युक्तं ब्रूयात्पीठाख्योऽयं मनुः समुद्दिष्टः।। (वही, २७/१०-१३)

पद्मपाद के अनुसार अष्टपत्र कमलदल का निर्माण कर उसके मध्य में प्रासाद बीज 'हौं', केसरों में षोडश स्वर, कमलदलों में 'ओं ह्रीं हौं नमः शिवाय' अष्टाक्षर मन्त्र, फिर उसके बाहर के वृत्त में व्यंजनवर्ण, उसके बाद पार्थिव कोणों में प्रासादमन्त्र तब उसके अनन्तर तीन वृत्त से निर्मित होता है।

से अनुस्वारसहित ह्रस्व स्वरों ओ, ए, उ, इ तथा अ का संयोजन करके हों हें हुं हिं तथा हं से यह न्यास करना चाहिये।

जैसे—

हों ईशानाय नमः, हें तत्पुरुषाय नमः, हुं अघोराय नमः,
हिं वामदेवाय नमः, हं सद्योजाताय नमः।

पंचांगन्यास

तदनन्तर ईशानादिक पांच मन्त्रों के ईशान, तम्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात नामक पांच देवताओं का न्यास उनके नाम बीज सहित क्रमशः अपने मूर्धा, मुख, हृदय, गुह्येन्द्रिय तथा चरणों में करना चाहिये। फिर मुखसहित अपने ही शरीर को ईशात्मक मानकर ऊर्ध्व, पूर्व, दक्षिण, उत्तर तथा पश्चिम दिशा वाले ईश के पंचमुखों का न्यास अपने सिर के ऊपर, पूर्व, दक्षिण, उत्तर तथा पश्चिम दिशा की ओर करना चाहिये।

ईशानस्तत्पुरुषाघोराख्यौ वामदेवसंज्ञश्च।
सद्योजाताह्वय इति मन्त्राणां देवताः क्रमात् पंच।।
मूर्धाननहृद्गुह्यकपादेषु च नामभिः स्वबीजाद्यैः।
ऊर्ध्वप्राग्दक्षोदक्पश्चिमगेष्वाननेषु विन्यस्येत्।।
प्रतिपाद्य निजं शरीरमेवं प्रजपेदिन्द्रियलक्षकं शिवात्मा।

(वही, २७/६-८)

ध्यान

प्रासादमन्त्र की साधना में सिर पर बंधे जटाजूट में अर्धचन्द्र धारण किये, पंचमुख, त्रिनेत्र, दस हाथों में शूल, सर्प, टंक, घण्टा, असि, शृणि, कुलिश, पाश, अग्नि तथा अभयमुद्राधारी, विविध आभूषणों से सुशोभित, अपघन अर्थात् कालिमारहित स्फटिक मणि के समान शुभ्रवर्णी, प्रसन्नवदन, पद्मासनस्थ अभिलषित से भी अधिक सम्पद् प्रदान करने वाले भगवती पार्वती के स्वामी सदाशिव का ध्यान करते हुए उन्हें नमन करना चाहिये।

शूलाही टंकघण्टासिशृणिकुलिशपाशाग्न्यभीतीर्दधानम्
दोर्भिः शीतांशुखण्डप्रतिघटितजटाभारमौलिं त्रिनेत्रम्।
नानाकल्पाभिरामापघनमभिमतार्थप्रदं सुप्रसन्नम्
पद्मस्थं पंचवक्त्रं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि।। (वही, २७/४)

करन्यास

प्रासादमन्त्र की साधना में करन्यास का विशिष्ट विधान है। इसमें ईशानादि पांच मन्त्रों का न्यास क्रम से हाथों के दोनों अंगूठों, तर्जनियों, मध्यमाओं, अनामिकाओं एवं कनिष्ठिकाओं में किया जाता है। इसके अतिरिक्त ईशानादिकों के नाम से पूर्व विपरीत क्रम से अनुस्वारसहित ह्रस्व स्वरों से भी अंगुल्यादि क्रम से न्यास किया जा सकता है। ईशानादि से शंकर का तात्पर्य ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात नामक पांच देवों से है।

ईशानादीन्मन्त्रवित् पंचमन्त्रान् अंगुष्ठादिष्वंगुलीषु क्रमेण।
न्यस्येदन्भिर्व्युत्क्रमाद् व्योमगाभिर्ह्रस्वाख्याभि स्ताभिरेवांऽगुलीभिः।।

(वही, २७/५)

ईशानादि पांच मन्त्र और उनसे अंगुष्ठादिन्यास निम्न हैं—

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपति-
र्ब्रह्मणोऽधिपति ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्
अंगुष्ठाभ्यां नमः,
तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्
तर्जनीभ्यां नमः,
अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यश्च सर्वतः सर्वसर्वेभ्यः
नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः
मध्यमाभ्यां नमः,
वामदेवाय नमः, ज्येष्ठाय नमः, रुद्राय नमः, कालाय नमः,
कलविकलाय नमः, बलाय नमः, बलविकलाय नमः,
बलप्रमथनाय नमः, सर्वभूतदमनाय नमः, मनोन्मनाय नमः,
अनामिकाभ्यां नमः,
सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः। भवे अभवे
अनादि भवे भजस्व मां भवोद्भवाय नमः
कनिष्ठिकाभ्यां नमः।

लेकिन, यदि ईशानादि पांच मन्त्रों से न्यास न करना हो तो ईशानादि पांच मन्त्रों के क्रमशः ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात नामक पांच देवताओं के नाम से पूर्व प्रासादमन्त्र के बीजाक्षर व्योम बीज 'ह्' में विलोम क्रम

शिव का एकाक्षर मन्त्र

जिसके जप, अर्चना और हवन से साधक के मन में प्रसन्नता का संचार होता है, ऐसे 'प्रासाद' नामक मन्त्र का उद्धार करते हुए आचार्य शंकर ने बताया है कि विलोम क्रम में अन्त्यवर्ण (क्ष) से तृतीय वर्ण (ह) एवं अर्द्धेन्दु (अनुस्वार) सहित अनुग्रह नामक वर्ण (औ) मिलकर प्रासाद मन्त्र 'हौं' बनता है।

अथाऽभिवक्ष्यामि मनुं समासात्प्रासादसंज्ञं जगतो हिताय।
येन प्रजप्तेन यथाऽर्चितेन हुतेन सिद्धिं लभते यथेष्टाम्।।
प्रसादनत्वान्मनसो यथावत्प्रासादसंज्ञाऽस्य मनोः प्रदिष्टा।
अन्त्यात्तृतीयः प्रतिलोमतः स्यादनुग्रहार्द्धेन्दुयुतश्चमन्त्रः।।

(प्रपंचसारतन्त्र, २७/२)

प्रासादमन्त्र 'हौं' के द्रष्टा ऋषि वामदेव, छन्दस् पंक्ति, देवता ईश अर्थात् सदाशिव हैं। शंकर या पद्मपाद ने प्रासाद मन्त्र के बीज और शक्ति का उल्लेख नहीं किया है। 'तेनैव... बीजेन' से इंगित कर दिया है कि प्रासादमन्त्र का बीज 'हं' तथा शक्ति 'औं' है। प्रासादमन्त्र के बीजाक्षर 'हं' के साथ क्लीब रहित दीर्घस्वरों को जोड़कर अंगन्यास किया जाता है।

ऋषिरस्य वामदेवः पंक्तिश्छन्दश्च देवतेशः स्यात्।
तेनैवाऽक्लीबकलादीर्घयुजाऽंगानि तस्य बीजेन।। (वही, २७/३)

तदनुसार प्रासादमन्त्र में न्यास निम्नवत् होंगे—

ऋष्यादिन्यास

वामदेवर्षये नमः (शिरसि), पंक्तिछन्दसे नमः (मुखे),
सदाशिवदेवतायै नमः (हृदि), हं बीजाय नमः (गुह्ये),
औं शक्तये नमः (पादयोः)।

षडंगन्यास

हं हृदयाय नमः, हीं शिरसे स्वाहा,
हूं शिखायै वषट्, हैं कवचाय हुं,
हौं नेत्रत्रयाय वौषट्, हः अस्त्राय फट्।

करने वाले व्यक्ति, समाज या देश धन-धान्य, कुल आदि से समृद्ध होते हैं तथा समस्त रोग-दरिद्रता आदि नष्ट होकर उन्हें सार्वकालिक सुख प्राप्त होता है।

दत्त्वासुवर्णवासांसि गुरवे ब्राह्मणानपि।।
प्रतर्प्य विभवैः सम्यक् भोजयेद्देवताधिया।
तत्रोपसर्गा नश्यन्ति नरनारीमहीस्थिताः।।
ग्रहक्षुद्रपिशाचाद्या नेक्षन्ते तां दिशं भयात्।
अश्मपातादिका ये च भया नश्यन्ति ते चिरात्।।
शस्यर्द्धिर्गोसमृद्धिश्च प्रजावृद्धिश्च जायते।
धनधान्यसमृद्धिश्च वर्धते तत्कुलं क्रमात्।
दारिद्र्यरोगनिर्मुक्तं सुखमाभूतसंप्लवम्।। (वही, २६/६२-६५)

हाथों में महास्त्रों को धारण किये प्रहार करने के लिये उद्यत अति सशक्त सेनाओं वाले राक्षसों से घिरे साक्षात् इन्द्र की भी इस विष्णुपंजर ने रक्षा की थी, तो इसका आश्रय लेने वाले किसी अन्य व्यक्ति की तो बात ही क्या?

रक्षोभिरक्षतबलैरसुरैश्च दैत्यैः
सर्वैः समुद्यतमहास्त्रधरैः परीतम्।
विष्णोस्तु पंजरमिदं प्रभजन्तमव्यात्
साक्षादपीन्द्रमपरत्र नरे कथा का।। (वही, २६/६६)



ततः क्रमेण चक्रादीन् दिक्कुण्डेषु चतुर्ष्वपि।
पुनः शंखादिकांस्तद्वत् कुण्डेष्वस्त्राश्रितेष्वपि।।
तथा दण्डादिकानष्टौ छिद्राशासु प्रकल्पयेत्।
मध्ये पुनरधश्चोर्ध्वे कोलकेसरिणौ यजेत्।।
चक्रस्य प्राक्तने कुण्डे स्थापयेद्विनतासुतम्।। (वही, २६/५०-५८)

अवट या कुण्ड-पूजन समाप्त कर लेने के बाद उन कुण्डों को समतल करके उस स्थान को गोबर से लीप देना चाहिये। तदनन्तर गुरु को चाहिये कि वह मध्य स्थान में एक आसन पर पूर्व की ओर मुख करके बैठ जाय तथा अपने सामने किसी ऊंची चौकी पर स्वर्णनिर्मित एक फलक स्थापित करके उस पर विश्वरूप हरि का पूर्ववत् आवाहन करके गीत, वाद्य, नैवेद्यादि से पूजन करे। इसके बाद मुख्य दिशाओं, उप दिशाओं तथा छिद्र दिशाओं में क्रमशः चक्रादि चार, शंखादि चार एवं दण्डादि आठ विष्णु-पार्षदों को दधि, सक्तुक, लाजा, तिल तथा हरिद्रा सहित पांच पदार्थों से मिश्रित भात की तीन-तीन हवियां विकीर्ण करे।

इस बलिकर्म की समाप्ति के पश्चात् यजमान को चाहिये कि वह भगवान् विश्वरूप विष्णु का पार्षदों सहित विसर्जन करके पूजा की परिसमाप्ति करे।

ततः समस्थलीकृत्य क्रमात्समुपलिप्य च।।
प्रत्यगासनमासीनो मध्यगस्थण्डिले स्थिते।
यन्त्रे कांचनपट्टस्थे पूजयेत्पूर्ववत्प्रभुम्।।
वादित्रघोषबहुलं निवेद्यान्तं यथाक्रमम्।
हुनेच्च पूर्वसन्दिष्टैर्द्रव्यैः पूर्वोक्तमानतः।।
आशोपाशान्तराशासु बलिं दद्यात्त्रिशस्त्रिशः।
क्रमाच्चक्रादिमूर्तीनां पंचपूराऽन्धसा सुधीः।।
तत उद्वास्य देवेशं पूजां परिसमाप्य च। (वही, २६/५८-६२)

देवपूजा सम्पन्न करने के बाद रक्षा-यज्ञ सम्पन्न कराने वाले गुरु तथा ब्राह्मणों को यथायोग्य सुवर्ण तथा वस्त्राभूषणादि प्रदान कर उन्हें सन्तुष्ट करके उनमें देवबुद्धि रखते हुए उन्हें भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार का रक्षा-विधान सम्पन्न करने से पूर्वोक्त वास्तु, ग्राम, नगर आदि तथा देश की धरती पर विपरीत प्रभाव डाल रहीं समस्त बाधाएं नष्ट हो जाती हैं। इसके साथ ही विपरीत ग्रह, क्षुद्र पिशाचादि उस ओर नजर उठा कर देख भी नहीं सकते तथा भूतादिजन्य पत्थरों की वर्षा आदि का भय भी नहीं रहता। रक्षाकर यज्ञ

देश जिसकी भी रक्षा के लिये विधान किया जा रहा है, उसकी सीमा में आठों दिशाओं तथा इनके छिद्रों या सन्धियों में १६ तथा मध्य में पांच (एक विश्वरूप विष्णु, एक, चक्र एक वराह तथा एक नृसिंह तथा एक गरुड़ के यजन के लिये) चतुरस्र आकार के कुण्ड खोदने चाहिये। दिशाओं वाले कुण्डों की लम्बाई-चौड़ाई तथा गहराई एक हाथ होनी चाहिये। मध्य के पांच कुण्डों की तीन-तीन हाथ होनी चाहिये। इस प्रकार कुल मिलाकर २१ कुण्ड खोदने चाहिये। फिर एक से दूसरे के बीच आने-जाने के लिये साफ-सुथरे मार्गों का निर्माण करना चाहिये। तदनन्तर इन कुण्डों और उनके सम्पर्क मार्गों को गाय के गोबर से लीप कर श्वेत कमल के २० (२१) पत्ते लाकर उनमें पत्थर, सिकता, अथवा चरु भर देना चाहिये। इसके बाद गुरु को चाहिये कि वह विष्णुपंजर की भावना करते हुए बीच वाले कुण्ड में वैष्णव पीठ की स्थापना करके वहां विश्वरूप विष्णु की भावना से स्थापना कर उनकी षोडशोपचार अर्चना करे।

इसके बाद उक्त १६ कुण्डों में से पूर्वादि चार दिशाओं वाले कुण्डों में क्रमशः चक्र, गदा, शार्ङ्ग तथा खड्ग की, उपदिशाओं वाले कुण्डों में शंखादि चार की तथा छिद्राशाओं के आठ कुण्डों में दण्डादि आठ पार्षदों की भावना करते हुए उनमें भी सिकतादि भर कर अर्चना करके मध्य वाले विश्वरूप कुण्ड के नीचे वाले कुण्ड में वराह, ऊपर वाले कुण्ड में नृसिंह, दायें वाले कुण्ड में चक्र तथा बायें वाले कुण्ड में गरुड की पूजा करनी चाहिये।

आग्नेये वक्ष्यमाणेन विधानेन समाहितः।
सिकतोपलचर्वादीन् साधयेदथ तैः क्रियाम्।।
वास्तौ पुरे वा ग्रामे वा विदध्याद् विषयेऽपि वा।
मध्ये च षोडशाशान्ते खनेदष्टादशावटान्।।
अष्टादशन्तु चक्रस्य विदध्यात्पुरतोऽवटम्।
हस्तागाधांस्तथाऽऽयामांश्चतुरस्रान् समन्ततः।।
अन्योन्यतश्चंक्रमार्थं शुद्धान् मार्गान् विधाय च।
गोमयेनोपलिप्यैतानानीय स्थाप्य वस्त्वपि।।
शुक्लपुष्करपत्रेषु निदध्याद् विंशतिष्वपि।
ततो मध्यगकुण्डस्य प्रविश्य पुरतो गुरुः।।
तदन्तरिष्ट्वा पीठं च तत्र यन्त्रमनुस्मरन्।
स्थापयेद्वैष्णवे स्थाने विश्वरूपधिया सुधीः।।

प्रकार का भयानक कष्ट आ पड़ने पर अष्टाक्षर मन्त्र 'ओं नमो नारायणाय' के पहले तथा बाद में सुदर्शन मन्त्र 'सहस्रार हुं फट्' का योग करना चाहिये।

पूर्वं स्थाने हृषीकेशमन्त्रयुक्तं विधानवित्।
विश्वरूपात्मकं जप्याद् वैष्णवं मूलमन्त्रकम्।।
योजयित्वा जपेत्पश्चात्चक्रादिषु यथाक्रमम्।
चतुर्षु चतुरः पादान् गीतात्रिष्टुप्समुद्भवान्।।
पूर्णेषु षोडशस्वेवमाद्यं पादं वराहके।
द्वितीयं नारसिंहे च तृतीयं गारुडे पुनः।
चतुर्थं चक्रमन्त्रे च योजयित्वा जपेत्सुधीः।। (वही, २६/४६-४८)

पुनः पद्मपाद ने इन मन्त्रों की जपविधि के क्रम को अधिक स्पष्ट करते हुए बताया है कि 'ओं ह्रीं ओं विष्णुः प्राच्यां स्थितश्चक्री से आरम्भ कर 'ओं ह्रीं रं विष्णुरग्रे स्थितं चक्रम्' तक तीन बार जप करके षोडशाक्षरादि छह मन्त्रों का तीन बार आवर्तन कर पूर्वोक्त गाथा के मन्त्र 'क्षुरान्त' से लेकर 'विष्णुचक्ररया हताः' तक एक बार जप करके षोडशाक्षरादि छह मन्त्रों का एक-एक बार जप करना चाहिये। तदनन्तर त्रिष्टुबादि छह मन्त्रों का पांच बार आवर्तन कर 'ओं नमो भगवते विष्णवे विश्वरूपमूर्ते माम्..' इत्यादि विश्वरूप मन्त्र का पांच बार जप करना चाहिये। चक्रादि २४ मन्त्रों को पांच बार जपे। पद्मपाद के अनुसार गाथाचक्र मन्त्रों के साथ भी उपर्युक्त विधि से गीतामन्त्र का संयोजन करना चाहिये।

उनके अनुसार 'ओं नमो नारायणाय स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या सहस्रार हुं फट् ओं ह्रीं ओं विष्णुः प्राच्यां स्थितः चक्री ओं नमो भगवते विष्णवे चक्रमूर्ते मां रक्ष रक्ष ओं नमो भगवते विष्णवे चक्राय चक्रमूर्तये चक्रमूर्तिधराय चक्रमूर्तिधरसेना-पतये सहस्रार हुं फट्' चक्र मन्त्र है। इसी प्रकार गदादि मन्त्र भी समझने चाहिये।

सुधीरिति । गाथाचक्रमन्त्रेष्वपि गीतात्रिष्टुबादियोगज्ञ इत्यर्थः'।
(द्रष्टव्य—वही, विवरण)

नगरादि का रक्षा-विधान

साधक अपने शरीर की रक्षा विष्णुपंजर की सहायता से किस प्रकार कर सकता है, इसका विवरण देने के बाद आचार्य शंकर ने अपने भवन, नगर, ग्राम और राष्ट्र की रक्षा की विधि का निरूपण किया है। भवन, ग्राम, नगर अथवा

शंकर के अनुसार विश्वरूप मन्त्र के साथ जपे जाने वाले चक्र मन्त्र का स्वरूप निम्नांकित है—'ओं नमो भगवते सर्वजिष्णवे विश्वरूपिणे वासुदेवाय चक्रादिसर्वायुधभृते नमः' है—

ओं नमो भगवते सर्वजिष्णवे विश्वरूपिणे।
वासुदेवाय चक्रादिसर्वायुधभृते नमः।। (वही, २६/४३)

विश्वरूप विष्णु के उक्त मन्त्र की साधना में मन्त्र-जप के समय सूर्य-मण्डल, चन्द्र-मण्डल तथा अग्निमण्डल में स्फुरित हो रहे क्रमशः गायत्री, अनुष्टुप् तथा त्रिष्टुब् मन्त्रों की शक्ति से युक्त अतएव अत्यधिक प्रभाव वाले महाविष्णु रूप उपास्य देवता के चरणारविन्द से प्रवहमान अमृत से अपने शरीर को आप्लावित होता हुआ-सा चिन्तन करना चाहिये।

अर्केन्दुवह्निनिलयस्फुरितत्रिमन्त्रशक्तिप्रवृद्धमहसः परमस्य विष्णोः।
पादारविन्दगलितामृतसिक्तगात्रं साध्यं स्मरेज्जपविधावपि साधकेशः।।
(वही, २६/४४)

वेताल, भूत, दुष्टग्रह, पापाचारी पिशाच, शत्रु, नाग तथा सर्पादि से पीड़ित साधक को चाहिये कि वह चिन्तन करे कि भगवान् विष्णु के साथ सम्पर्क होने से उनके हाथों में लपलपा रहे चक्रादि द्वारा उठा-उठा कर पटके जाने तथा उनके भीषण मुख, नेत्र, चरण, वाणी तथा घोर हुंकारादि से उन वेतालादिकों के शरीर विदीर्ण तथा चूर्ण-चूर्ण हो रहे हैं।

विष्णोः सान्निध्यलब्धोल्लसितचलचलद्धस्तदण्डोद्यतास्त्रै-
श्चक्राद्यैर्भीषणास्येक्षणचरणवचोहासहुंकारघोरैः।
उत्क्षिप्ताक्षिप्तकृत्तस्फुटितविदलितांश्चूर्णितध्वस्तगात्रान्
ध्यायेद्वेतालभूतग्रहदुरितपिशाचारिनागादिरोगान्।। (वही, २६/४५)

विश्वरूप तथा चक्रादि मन्त्रों के जप से पहले गीतोक्त मन्त्र 'स्थाने हृषीकेश...' का योग करके इन मन्त्रों का पांच-पांच बार जप करना चाहियें। तदनन्तर चक्र, गदा, शार्ङ्ग तथा खड्ग मन्त्रों के साथ गीतामन्त्र के चार पादों में से क्रमशः एक-एक पाद जोड़कर तथा इसी प्रकार षोडशाक्षर मन्त्र में भी इन्हें जोड़कर जप करना चाहिये। तदनन्तर गीतामन्त्र के प्रथम पाद को वराह मन्त्र के साथ, द्वितीय पाद को नरसिंह मन्त्र के साथ, तृतीय पाद को गरुड़मन्त्र के साथ तथा चतुर्थ पाद को चक्रमन्त्र के साथ संयुक्त कर जप करना चाहिये। किसी भी

शौनक उवाच

त्रिपुरं जन्धुषः पूर्वं ब्रह्मणा विष्णुपंजरम्।
शंकरस्य कुरुश्रेष्ठ रक्षणाय निरूपितम्।।
वागीशेन तु शक्रस्य बलं हन्तुं प्रयास्यतः।
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि तन्निबोध महीपते।।
विष्णुः प्राच्यां स्थितश्चक्री विष्णुर्दक्षिणतो गदी।
प्रतीच्यां शार्ङ्गधृग् विष्णुः खड्गी चैव ममोत्तरे।।
हृषीकेषो विकोणे तु तच्छिद्रेषु जनार्दनः।
क्रोडरूपी हरिर्भूमौ नरसिंहोऽम्बरे मम।।
क्षुरान्तमेवं तच्चक्रं भ्रमत्येतत्सुदर्शनम्।
तस्यांशुमाला दुष्प्रेक्ष्या हन्तुं प्रति निशाचरम्।
गदा येयं सहस्रार्चिरुद्वमत्पावकोल्वणा।
रक्षो भूतपिशाचानां डाकिनीनां च नाशिनी।
शार्ङ्गविस्फूर्जितं चैतद् वासुदेवस्य मद्रिपून्।।
तिर्यगमुष्यकूष्माण्डप्रेतादीन् हन्त्वशेषतः।
खड्गधारा ज्वलज्ज्योत्स्ना निधूर्ता ये ममाहिताः।।
तेषां तु सौम्यतां सद्यः गरुडेनेव पन्नगाः।
सर्वे भवन्तु ते सौम्याः कृष्णशंखरवाहताः।।
चित्तवृत्तिहरा ये मे जनाः स्मृतिहारकाः।
बलौजसां च हर्तारः ये च रक्षणनाशकाः।।
कूष्माण्डा स्ते प्रणस्यन्तु विष्णुचक्ररथाहताः।।
वराहो रक्षतु जले विषमेषु च वामनः।
अटव्यां नारसिंहस्तु सर्वतः पातु केशवः।।
बुद्धिस्वास्थ्यं मनस्स्वाथ्यं स्वास्थ्यमैन्द्रियकं तथा।।
ममास्तु देवदेवस्य वासुदेवस्य कीर्तनात्।।
पृष्ठे पुरस्तान्मम दक्षिणोत्तरे विकोणतश्चास्तु जनार्दनो हरिः।
तमीड्यमीशानमनन्तमच्युतं जनार्दनं प्रणपतितो न सीदति।।
यथा परं ब्रह्म हरिस्तथा परं जगत्स्वरूपं च स एव केशवः।
ऋतेन तेनाच्युत नाम कीर्तनात् प्रणाशमेतु त्रिविधं ममाशुभम्।।

इति गाथा।।

तच्च विश्वरूपमन्त्रं 'ओं नमो भगवते विष्णवे विश्वरूपमूर्ते मामित्यादिको ग्राह्यः। विश्वरूपमन्त्रेणसार्धं चक्रादिचक्रान्तान्तान् एकविंशतिमन्त्रान् पंच पंचवारं जपेदित्यर्थः। पूर्वोद्धृतविश्वरूपमन्त्रेण सहाऽयं पंचवारं प्रथमतो जप्यः। ततश्चक्रादिमन्त्राः। (वही, विवरण)

विश्वरूप मन्त्र के साथ जपे जाने वाले उक्त बीस मूल मन्त्र निम्नांकित हैं—

ओं ह्रीं ओं विष्णुः प्राच्यां स्थितश्चक्री।
ओं ह्रीं नं विष्णुर्दक्षिणतो गदी।
ओं ह्रीं मों प्रतीच्यां शाङ्र्गधृग्विष्णुः।
ओं ह्रीं भं विष्णुः खड्गी ममात्तरे।
ओं ह्रीं गं हृषीकेषो आग्नेय कोणे
ओं ह्रीं वं हृषीकेशो नैर्ऋत्य कोणे
ओं ह्रीं तें हृषीकेशो वायव्य कोणे
ओं ह्रीं वां हृषीकेषो ईशान कोणे
ओं ह्रीं सुं जनार्दनः प्राची-आग्नेयछिद्रे
ओं ह्रीं दें जनार्दनः आग्नेय-दक्षिणछिद्रे
ओं ह्रीं वां जनार्दनः दक्षिणनैर्ऋत्यछिद्रे
ओं ह्रीं यं जनार्दनः नैर्ऋत्य-उदीचीछिद्रे
ओं ह्रीं स्वां जनार्दनः उदीचीवायव्यछिदे
ओं ह्रीं हां जनार्दनः वायव्यप्रतीचीछिद्रे
ओं ह्रीं फट् जनार्दनः प्रतीचीशानछिद्रे
ओं ह्रीं फट् जनार्दनः ईशानप्राचीछिद्रे
ओं ह्रीं हूं क्रोडरूपीहरिर्भूमौ
ओं ह्रीं क्ष्रौ नरसिंहोऽम्बरे
ओं ह्रीं क्ष्रौं गरुड़ः अग्रे
ओं ह्रीं रं चक्रम् अग्रे

गाथा

शतानीक उवाच

विष्णुपंजरमिच्छामि श्रोतुं धर्मभृतां वर।
सदा सर्वभयेभ्यस्तु रक्षा या परमा भवेत्।।

पंचांग न्यास के अनन्तर तीन-तीन मन्त्रों अर्थात् पूर्वोक्त 'त्रिष्टुब्, अनुष्टुब् तथा गायत्री' इन तीन मन्त्रों एवं 'गीता, त्रिष्टुप् तथा विश्वरूप षोडशाक्षर' एवं—

विष्णुः प्राच्यां स्थितश्चक्री विष्णुर्दक्षिणतो गदी।
प्रतीच्यां शाङ्र्गधृग् विष्णुः खङ्गी चैव ममोत्तरे।।
हृषीकेषो विकोणे तु तच्छिद्रेषु जनार्दनः।
क्रोडरूपी हरिर्भूमौ नरसिंहोऽम्बरे मम।।

इन गाथा मन्त्रों का एक-एक बार जप करना चाहिये।

तदनन्तर 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय हुं फट् स्वाहा' इस षोडशाक्षर मन्त्र के सोलह मन्त्रों, वराह, नृसिंह, गरुड़ तथा चक्र के ४ मन्त्रों तथा 'ओं नमो भगवते महाविष्णवे वासुदेवाय विश्वादिरूप शरणं भव मे प्रभविष्णवे नमः' इस विश्वरूप मन्त्र सहित इन २१ मन्त्रों में प्रत्येक का पांच-पांच बार जप पूर्ण करके 'विष्णुपंजर गाथा' का तीन बार पाठ करना चाहिये।

विष्णुः प्राच्यादिकमथ जपेन्नारसिंहोऽम्बरान्तं
त्रींस्त्रींन् मन्त्रान् पुनरपि तथा पंचशस्त्वेकविंशम्।
बुद्धिस्वास्थ्यप्रभृति च तथा पंचवारं त्रिगाथां
भूयो जप्याद् विमलशितधीश्चक्रमन्त्राभिधानम्।। (वही, २६/४२)

"विष्णुः प्राच्यादिकमथ जपेदिति। त्रिष्टुबनुष्टुब्गायत्रीगीतात्रिषटुब्विश्वरूपषोडशाक्षराणां सकृत् सकृत् जपानन्तरं शतानीक उवाचेत्यारभ्य तन्निबोध महीपते इत्यन्तः सकृत् जप्त्वा त्रिष्टुबादिमन्त्रषट्कं त्रिवारमावर्त्याऽनन्तरमित्यथशब्दार्थः। षोडशाक्षराक्षरवराहनृसिंहगरुड़चक्रबीजैः सप्रणवशक्तिभिः सह तेषां जपः कार्यः"।

(वही, ४२ पर विवरण)

पद्मपाद के अनुसार पहले पूर्वोक्त विश्वरूप मन्त्र 'ओं नमो भगवते महाविष्णवे विश्वरूपमूर्तये ओं नमो विष्णवे विश्वरूपमूर्तिधराय ओं नमो भगवते विष्णवे विश्वरूपमूर्तिधरसेनाधिपतये ओं नमो भगवते महाविष्णवे वासुदेवाय विश्वरूप शरणं भव मे प्रभविष्णवे नमः' के पश्चात् 'ओं नमो भगवते विष्णवे विश्वरूपमूर्ते मां रक्ष रक्ष' मन्त्र का पांच बार जप करना चाहिये। तदनन्तर चक्रादि मन्त्रों का पांच-पांच बार जप करना चाहिये।

ब्रह्मवृहस्पती ऋषिभ्यां नमः शिरसि,
अनुष्टुप् छन्दसे नमः मुखे,
विश्वरूपविष्णवे नमः हृदये,
ओं बीजाय नमः गुह्ये,
नमः शक्तये नमः पादयोः।

पंचांगन्यास

विष्णुपंजर मन्त्र में षडंग न्यास नहीं, अपितु पंचांग न्यास किया जाता है। इस न्यास में अष्टार्ण मन्त्र 'ओ नमो नारायणाय' तथा षडक्षर चक्र मन्त्र 'सहस्रार हुं फट्' के बीच गीतामन्त्र—'स्थाने हृषीकेश...' के क्रमश-एक-एक पाद तथा अन्त में समस्त गीता मन्त्र को जातियों के साथ योजित करके पंचांग न्यास किया जाता है।

अष्टार्णचक्रमनुमध्यगतैश्च पादै-
र्व्यस्तैस्तथा सुमतिरारचयेत्समस्तैः।
गीतामनोः क्रमश एव तु जातियुंजि
पंचांगकानि हरिपंजरकल्पितानि।। (वही, २६/४१)

उपर्युक्तानुसार पंचांगन्यास का स्वरूप निम्न होगा—

ओं नमो नारायणाय स्थाने हृषीकेष तव प्रकीर्त्या
सहस्रार हुं फट् हृदयाय नमः,
ओं नमो नारायणाय जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च
सहस्रार हुं फट् शिरसे स्वाहा,
ओं नमो नारायणाय रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सहस्रार हुं फट् शिखायै वषट्,
ओं नमो नारायणाय सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः
सहस्रार हुं फट् कवचाय हुं,
ओं नमो नारायणाय
स्थाने हृषीकेष तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः।।
सहस्रार हुं फट् अस्त्राय फट्।

आहुतियां घृतान्न की दी जानी चाहिये। तदनन्तर चक्रादि चतुर्मूर्तियों तथा शंखादि द्वादश मूर्तियों को दुग्धवृक्षों की समिधाओं से १०८ आहुतियां उनके मन्त्रों से दी जानी चाहिये।

हुत्वा मनुवर्णसमं षोडशवर्णं जुहोतु षोडशशः।
जुहुयाच्च वासुदेवादिकं शान्त्यादींश्चाऽथ रुद्रसंख्येन।।
दुग्धतरूत्थाः समिधः क्रमेण चक्रादिभिश्चतुर्मन्त्रैः।
जुहुयादष्टोऽर्ध्वशतं शङ्खाद्यैर्द्वादशभिरथ मनुभिः।।

(वही, २६/३५-३६)

त्रिष्टुप् तथा अनुष्टुप् मन्त्रों के पदमन्त्रों से इन मन्त्रों की वर्णसंख्या के बराबर तिल तथा श्वेत सर्षपों से अलग-अलग हवन करना चाहिये। इसी प्रकार केशवादि सोलह मूर्तियों में से प्रत्येक को घृत की बारह-बारह तथा इन्द्रादि अष्ट लोकपालों को एक-एक कर आठ आहुतियां तथा महाव्याहृतियों से एक-एक आहुति देकर अग्निदेव का विसर्जन करके विष्णुपंजर के देवों की समर्चना की समाप्ति करनी चाहिये।

तिलसिद्धार्थैर्जुहुयाद्विकारसंख्यं पृथक् पृथङ्मन्त्री।
त्रिष्टुबनुष्टुपृतत्पदमन्त्रैर्मन्त्रार्णसंख्यकं हविषा।।
सघृतेन केशवाद्यैर्दिनकरसंख्यं तथेन्द्रवज्राद्यैः।
जुहुयात्पृथगपि वसुमितमथ च महाव्याहृतीर्हुनेन्मतिमान्।।
आराध्य च विसृज्याऽग्निमभिषिच्य सुसंयतः।
विष्णोस्तु पंजरे कुर्याद्... (वही, २६/३७-३९)

विष्णुपंजर मन्त्र के ऋष्यादि तथा न्यास

'ओं नमो भगवते वासुदेवाय हुं फट् स्वाहा' इस षोडशाक्षर विष्णुमन्त्र के ऋषि ब्रह्मा तथा वृहस्पति, छन्दस् अनुष्टुब् तथा देवता विश्वरूप विष्णु, बीज ओं तथा शक्ति नमः हैं।

.......दृषी ब्रह्मवृहस्पती।।
छन्दस्यनुष्टुप् त्रिष्टुप् च मुनिभिः समुदाहृते।
विश्वरूपादिको विष्णुर्विष्णुपंजरदेवता।। (वही, २६/३९-४०)

ऋष्यादि न्यास

उपर्युक्त निर्देशानुसार ऋष्यादि न्यास का स्वरूप निम्नांकित होगा—

गदा का स्वरूप

मुखादि पर कुद्ध भाव वाली गदा का वर्ण पीला है। उसके वस्त्र तथा अनुलेपनादि भी पीत ही है। गदा के सिर पर गदा चिह्नवाला मुकुट है। गदा के हाथों में गदा, चक्र, शंख तथा धनु है। गदा का पूजन कमलचक्र के दक्षिण दिशा वाले दल में पूर्वोक्त गदामन्त्र से करनी चाहिये।

पूज्या गदा गदाङ्कितमौलिः सगदा सचक्रशङ्खधनुः।
पीताम्बरानुलेपा पीता क्रुद्धा च याम्यसंस्थदले।। (वही, २६/२४)

शाङ्‌र्ग का स्वरूप

शाङ्‌र्ग के माथे पर धनुष का चिह्न अंकित है। इनका वर्ण श्याम तथा हाथों में शाङ्‌र्ग, चक्र, शंख तथा गदा है। इसके वस्त्रानुलेपनादि तथा माला आदि रक्त वर्ण हैं। शाङ्‌र्ग की अर्चना पश्चिम दल में करनी चाहिये।

शाङ्‌र्गं शाङ्‌र्गाङ्कितकं श्यामं शाङ्‌र्गारिदरगदाहस्तम्।
रक्तांशुकानुलेपनमाल्यादि वारुणे यजेत् पत्रे।। (वही, २६/२५)

खड्ग का स्वरूप

खड्ग के सिर पर खड्ग का चिह्न है। इनके हाथों में खड्ग, चक्र, गदा तथा शाङ्‌र्ग है। धूम्र वर्ण के खड्ग के वस्त्रानुलेपन तथा माल्यादि विकृत अर्थात् विचित्र वर्ण वाले हैं। खड्ग का पूजन उत्तर दिशावाले दल में करना चाहिये।

खड्गं सखड्गशिरसं खड्गारिगदाधनुःकरं धूम्रम्।
विकृताम्बरानुलेपनस्रजं समर्चयेदुदक्पत्रे।। (वही, २६/२६)

शङ्ख का स्वरूप

शङ्ख के माथे पर शङ्ख का चिह्न तथा वर्ण श्वेत है। इनके हाथों में खड्ग, चक्र, गदा तथा धनुष है। इनके वस्त्राभूषणादि भी श्वेत वर्ण के ही हैं। महानाद करने वाले शङ्ख की अर्चना आग्नेय दिशा में करनी चाहिये।

शङ्खं सशङ्खशिरसं शङ्खारिगदाधनुःकरं सुसितम्।
सितवसनमाल्यभूषं यजेन्महानादमग्निसंस्थदले।। (वही, २६/२७)

हल, मुसल तथा शूल के स्वरूप

हल, मुसल तथा शूल के सिर पर उनके अपने हलादि चिह्न हैं तथा ये अपने-अपने अस्त्रादिकों के अलावा पूर्वोक्त अन्य तीन अस्त्रों को धारण करते

तथा साथ में ही भगवान् की नौ शक्तियों का भी पूजन करना चाहिये। तदनन्तर यन्त्र के मध्य ही पूर्वादि मुख्य दिशाओं में वासुदेवाय नमः, संकर्षणाय नमः, प्रद्युम्नाय नमः, अनिरुद्धाय नमः मन्त्रों से वासुदेवादि चार मूर्तियों और आग्नेयादि उप- दिशाओं में शान्त्यै नमः, श्रियै नमः, सरस्वत्यै नमः, रत्यै नमः मन्त्रों से शान्त्यादि चार शक्तियों की पूजा करनी चाहिये।

अग्नीषोमात्मकमरिगदाशार्ङ्गखड्गैः सशंखै-
रुद्यद्बाहुं हलमुसलशूलैः सदण्डैः सकुन्तैः।
शक्त्या पाशाङ्कुशकुलिशटङ्कग्निभिश्चाऽर्कवह्नि-
द्योतद्वक्त्राङ्घ्रिकसरसिजं तप्तकार्त्तस्वराभम्।।
विष्णुं भास्वत्किरीटं मणिमुकुटकटीसूत्रकेयूरहार-
ग्रैवेयोर्म्यादिमुख्याभरणमणिगणोल्लासिदिव्याङ्गरागम्।
विश्वाकाशावकाशप्रविततमयुतादित्यसङ्काशमुद्यद्
बाह्वग्रव्यग्रनानायुधनिकरधरं विश्वरूपं नमामि।।
अभ्यर्च्य पूर्ववत्पीठं नवशक्तिसमन्वितम्।
अर्चयेत्क्रमशो विद्वान् मूर्तिशक्तिचतुष्टयम्।।

(वही, २६/२०-२२)

चक्रादि के स्वरूप का ध्यान एवं पूजन

विश्वरूप विष्णु, मूर्ति तथा शक्ति चतुष्टय का ध्यान एवं पूजन सम्पन्न कर लेने के बाद चक्रादिकों का ध्यान तथा पूजन उनके निजमन्त्रों से षोडशदल कमल में पूर्वादि क्रम से करना चाहिये।

चक्र का स्वरूप

चक्र का शरीर और वस्त्रादि रक्त वर्ण के हैं। उनके सिर पर चक्र चिह्नांकित मुकुट सुशोभित हो रहा है। उन्होंने अपने हाथों में शंख, चक्र, गदा तथा शार्ङ्ग नामक धनुष धारण कर रखा है। उनकी दाढें तथा मुख विकराल हैं। इस रूप में चक्र का ध्यान करते हुए पूर्वोक्त चक्र मन्त्र से उनकी पूजा षोडशदल कमल के पूर्वदिशावर्ती दल में करनी चाहिये।

चक्रंच चक्राङ्ककिरीटमौलिं सशङ्खचक्रं सगदं सशार्ङ्गम्।
रक्ताम्बरं रक्ततनुं करालदंष्ट्राननं प्राग्दलकेऽर्चयीत।।

(वही, २६/२३)

प्रथम वृत्त के भीतर अनुष्टुभ् मन्त्र तथा इसके बाहर सूर्यमण्डलात्मक वृत्त बनाकर इसके भीतर गायत्री मन्त्र लिखना चाहिये।

सत्रिष्टुभा वह्निगृहेण पूर्वं सानुष्टुभेन्दोर्निलयेन चापि।
गायत्रमन्त्रोल्लसितेन भूयः संवेष्टयेदर्कनिकेतनेन।
अनुलोमविलोमगैश्च वर्णैरभिवीतं च सुधापुटद्वयेन।
नलिनं बहिरष्टयुग्मपत्रं प्रविदध्यादथ मूर्तिमन्त्रयुक्तम्।।

(वही, २६/१७-१८)

विष्णुपंजर में लिखे जाने वाले जातवेदस् त्रिष्टुब्, अनुष्टुब् तथा गायत्री मन्त्र निम्नांकित हैं—

त्रिष्टुभ् मन्त्र

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः।।

अनुष्टुप् मन्त्र

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।

गायत्री मन्त्र

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।।

विश्वरूप यन्त्र में विष्णु का आवरण-पूजन

उपर्युक्त विधि से निर्मित विश्वरूप यन्त्र में विश्वरूप विष्णु का उनकी नौ शक्तियों सहित षोडशोपचार पूजा के बाद अग्नि-सोममय, चक्र, गदा, शाङ्‌र्ग, खड्ग, शंख, हल, मुसल, शूल, दण्ड, कुन्त, शक्ति, पाश, अंकुश, वज्र, टङ्क तथा शतमुख अग्नि से युक्त सनद्ध बाँहों वाले, सूर्य तथा अग्नि के समान द्युतिमान मुख, चरण तथा हस्तकमल तथा तप्त कांचन की आभा वाले द्युतिमान मुकुट धारण किये, मणिजटित स्वर्णमय कटिसूत्र, केयूर, हार तथा कई लड़ियों वाले कण्ठहार आदि आभूषण एवं मणियों एवं दिव्य अंगराग से सुशोभित, ब्रह्माण्ड-विवर में बिखरे हुए हजारों सूर्यों की आभावाले तथा करतलों में नाना प्रकार के आयुध धारण किये भगवान् विश्वरूप विष्णु का ध्यान और उन्हें नमन कर यन्त्र के मध्य में विश्वरूप मन्त्र से उनका आवाहनादि षोडशोपचार पूजन

नमोऽन्त आठमन्त्र

ओं नमो भगवते विष्णवे दण्डमूर्तिधराय सेनापतये नमः
ओं नमो भगवते विष्णवे कुन्तमूर्तिधराय सेनापतये नमः
ओं नमो भगवते विष्णवे शक्तिमूर्तिधराय सेनापतये नमः
ओं नमो भगवते विष्णवे पाशमूर्तिधराय सेनापतये नमः
ओं नमो भगवते विष्णवे अंकुशमूर्तिधराय सेनापतये नमः
ओं नमो भगवते विष्णवे कुलिशमूर्तिधराय सेनापतये नमः
ओं नमो भगवते विष्णवे परशुमूर्तिधराय सेनापतये नमः
ओं नमो भगवते विष्णवे शतमुखवह्निमूर्तिधराय सेनापतये नमः

महावराह मन्त्र में ओं नमो भगवते विष्णवे के बाद तथा महावराहाय शब्द से पूर्व पोत्रधृतधराय शब्द एवं महानृसिंह मन्त्र में नृसिंहाय शब्द से पहले नखदलितरिपुविग्रहाय शब्द जोड़ना चाहिये। इसी प्रकार गरुड़ मन्त्र में विष्णवे शब्द के बाद हरिवाहनाय प्राणात्मने शब्द जोड़ना चाहिये।

पोत्रं धृतधरं विद्वान् वाराहे विष्ण्वभिख्ययोः।।
अन्तरा योजयेन्मन्त्री नारसिंहे पुनः सुधीः।
नखं च दलितं चैव रिपुविग्रहमेव च।।
योजयित्वा नृसिंहात्प्राक् सिंहमन्त्रं समापयेत्।
विष्णोरन्ते महापक्षिराजाय च गरुत्मते।।
हरिपूर्वं वाहनाय प्राणात्मन इतीरयेत्।
नमोऽन्तोऽसौ तु विद्वद्भिर्मन्त्रो गारुत्मतो मतः।।

(वही, २६/१३-१६)

इस उल्लेख के अनुसार वराह, नरसिंह एवं गरुड़ के मन्त्र क्रमशः निम्नांकित होंगे—

ओं नमो भगवते विष्णवे पोत्रधृतधराय महावराहाय नमः
ओं नमो भगवते विष्णवे नखदलितरिपुविग्रहाय नृसिंहाय नमः
ओं नमो भगवते विष्णवे महापक्षिराजाय गरुत्मते हरिवाहनाय
प्राणात्मने नमः।

तदनन्तर इस यन्त्र के उक्त त्रिकोण की तीनों भुजाओं के भीतर जातवेदस् त्रिष्टुभ् मन्त्र लिखना चाहिये। इसके बाद त्रिकोण के बाहर बने चन्द्रमण्डलात्मक

शंखहलमुसलशूलान्यग्न्याद्यश्रिष्वथाऽष्टबीजेषु।
विलिखेत् दण्डं कुन्तं शक्तिं पाशांकुशकुलिशपरशुशतमुखवह्नीन्।।
(वही, २६/६-८)

उक्त षोडश मूर्तियों के निजमन्त्र क्रमशः ओं, नमः, चतुर्थ्यन्त भगवत्, विष्णु, सहस्रारादि स्वनाम, मूर्तिधर, सेनापति पद वाले होते हैं। विशेषता यह है कि महासहस्रारादि प्रथम चार मूर्तियों के मन्त्रों के अन्त में 'हुं फट्' महापांचजन्यादि चार मूर्तियों के मन्त्रों के अन्त में 'स्वाहा' तथा महादण्डादि आठ मूर्तियों के मन्त्रों के अन्त में 'नमः' पद जोड़ा जाता है।

सप्रणवहृदयभगवद्विष्णुस्वाख्यानमूर्तिधरयुक्ताः।
सेनापतिसहिता निजमन्त्रान्ता मूर्तयोऽत्र लिखितव्याः।।
सहस्रारपदं पूर्वं कौमोदकी ततो भवेत्।
महाशार्गंपदं पश्चात् महाखड्गपदं पुनः।।
प्रोक्तानि वर्मास्त्रान्तानि निजमन्त्राणि वै क्रमात्।
पूर्वं महापांचजन्यं महाहलमनन्तरम्।।
ततो महामुसलकं महाशूलं ततः परम्।
स्वाहान्तानि च मन्त्राणि शंखदीनां क्रमाद्विदुः।।
दण्डादीनामथाष्टानामन्ते युञ्ज्यान्नमः पदम्।। (वही, २६/६-१३)

इस निर्देश के अनुसार चक्रादि षोडशमूर्तियों के निजमन्त्र निम्नांकित होंगे—

चक्रादि के निज मन्त्र

वर्मास्त्रान्त चार मन्त्र

ओं नमो भगवते विष्णवे सहस्रारचक्रमूर्तिधराय सेनापतये हुं फट्
ओं नमो भगवते विष्णवे कौमोदकीगदामूर्तिधराय सेनापतये हुं फट्
ओं नमो भगवते विष्णवे महाशार्ङ्गमूर्तिधराय सेनापतये हुं फट्
ओं नमो भगवते विष्णवे महाखड्गमूर्तिधरायसेनापतये हुं फट्

स्वाहान्त चार मन्त्र

ओं नमो भगवते विष्णवे महापांचजन्यमूर्तिधराय सेनापतये स्वाहा
ओं नमो भगवते विष्णवे महाहलमूर्तिधराय सेनापतये स्वाहा
ओं नमो भगवते विष्णवे महामुसलमूर्तिधराय सेनापतये स्वाहा
ओं नमो भगवते विष्णवे महाशूलमूर्तिधराय सेनापतये स्वाहा

यन्त्र में मन्त्र-लेखन के प्रसंग में सबसे पहले यन्त्र के मध्यवाले वृत्त में भुवनेश्वरी बीज 'ह्रीं' लिख कर उसे त्रिकोण से वेष्टित कर देना चाहिये। द्वादशगुणित यन्त्र के मध्य में शक्ति बीज 'ह्रीं' लिखने के बाद इसके बिन्दुभाग के ऊपर विष्णु वाची बीजाक्षर 'अं' लिखना चाहिये। इसके बाद शक्ति बीज के दोनों कपोलों अर्थात् दोनों ओर क्रमश 'नृसिंह बीज 'क्ष्रौं' तथा वराह बीज 'हूं' लिखना चाहिये। इस प्रकार यन्त्र के मध्य में 'ह्रीं, अं, क्ष्रौं तथा हूं' चार बीजों का आलेखन होता है। तदनन्तर त्रिकोणान्तर्गत स्थित इस शक्ति वृत्त को 'ओं नमो भगवते महाविष्णवे वासुदेवाय विश्वादिरूप शरणं भव मे प्रभविष्णवे नमः' इस विश्वादिरूप मन्त्र से वेष्टित करना चाहिये। फिर इस वृत्त के बाहर वृत्ताकार में ही 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय हुं फट् स्वाहा' यह षोडशार्ण मन्त्र लिखना चाहिये। फिर इसके बाहर बने चतुरस्रद्वय के बाहर बने वृत्त के भीतर अनुलोम तथा वृत्त के बाहर प्रतिलोम क्रम की मातृकाओं से चतुरस्रों को वेष्टित कर देना चाहिये।

शक्तेर्द्वादशगुणिते यन्त्रे मन्त्राणि मण्डलान्यपि च।
बीजानि यानि चोक्तान्येभिः क्लृप्तन्तु पंजरं विष्णोः।।
विष्णुं लिखेन्मध्यगशक्तिबिन्दौ कपोलयोः सिंहवराहबीजे।
तद्विश्वरूपाह्वयमन्त्रवीतं प्रवेष्टयेत्षोडशवर्णकेन।।
तारं हृदन्ते भगवत्पदं महाविष्णुवासुदेवौ च ङेऽन्तौ।
विश्वादिरूप शरणं भव मे प्रभविष्णवे नमः स्यान्मन्त्रः।।
द्वादशाक्षरमन्त्राऽन्ते भवेतां कवचास्त्रकौ।
स्वाहान्तः षोडशार्णोऽयं मन्त्रः सर्वार्थसाधकः।। (वही, २६/२-५)

तदनन्तर इस यन्त्र के बाहर वाले सोलह दलों में पूर्वादि क्रम से मुख्य दिशाओं में उक्त षोडशार्ण से उत्पन्न चक्र, गदा, शाङ्गं, खड्ग, आग्नेयादि चारों उपदिशाओं में शंख, हल, मुसल तथा शूल तथा शेष आठ शक्ति दलों में क्रमशः दण्ड, कुन्त, शक्ति, पाश, अंकुश, कुलिश, परशु तथा शतमुखवह्नि नामक मूर्तियों का 'ओं नमः भगवते विष्णवे' स्वनाम तथा मूर्तिधर शब्द एवं सभी के अन्त में 'सेनापतये' पद से युक्त अपने-अपने मन्त्र का आलेखन करना चाहिये।

क्रमेण तद्वर्णविकारजाताश्चक्रादिकाः षोडशमूर्तयः स्युः।
याभिस्तु विष्णोरिह पंजरस्य प्रवर्त्यते शक्तिरनेकरूपा।।
यन्त्रस्य बीजेषु चतुर्षु पूर्वं प्राग्दक्षिणप्रत्यगुदग्गतेषु।
विद्वांस्तु चक्रं च गदां च शाङ्गं खड्गंच मन्त्रैः सहितं विलिख्यात्।।

विष्णुपंजर-विधान

विष्णुपंजर-विधान वास्तव में एक विशेष प्रकार के रक्षायन्त्र में भगवान् विष्णु और उनके पार्षदों के विभिन्न मन्त्रों के संयोजन और पूजन से सम्बन्धित है। इस यन्त्र का निर्माण ब्रह्मा ने त्रिपुरासुर-वध के लिये प्रयाण कर रहे शंकर की विजय-कामना और रक्षा के लिये किया था। इसी यन्त्र का अवलम्बन करके देवराज इन्द्र ने बलासुर पर विजय प्राप्त की थी।

अथ सम्प्रति विष्णुपंजरस्य प्रतिवक्ष्यामि समासतो विधानम्।
जितवांस्त्रिपुरं हरोऽपि येन त्रिदशानामधिपो बलासुरंच।।

(प्रपंचसारतन्त्र, २६/१)

विष्णुपंजर (विश्वरूप) यन्त्र के निर्माण की विधि

विष्णुपंजर की मूल रूपरेखा द्वादशगुणित यन्त्र पर निर्भर है। द्वादशगुणित यन्त्र की निर्माण-विधि का उल्लेख प्रपंचसारतन्त्र के ग्यारहवें पटल में वर्णित है। आचार्य शंकर के अनुसार द्वादशगुणित यन्त्र की रचना के लिये पहले दो अग्निपुरों के द्वन्द्व (परस्पर सम्बद्ध चार त्रिकोणों) का निर्माण किया जाना चाहिये।

व्याहृत्यावीतशक्तिज्वलनपुरयुगद्वन्द्वसन्ध्युत्थशक्त्या-
वीतं कोणात्तदुर्बीजकमनु च कपोलात्तगायत्रिमन्त्रम् ।
आग्नेयावीतमर्णैर्वृतमनुविगतैर्भूपुराभ्यां च रन्ध्रे
क्ष्रौं चिन्तारत्नकं द्वादशगुणितमिदं यन्त्रमिष्टार्थदायि । (वही, ११/२)

द्वादशगुणित यन्त्र का निर्माण करके उसके मध्य में एक वृत्त बनाकर उस वृत्त को त्रिकोणरूपी अग्निमण्डल से घेर कर उस त्रिकोण को एक अन्य वृत्त से वेष्टित कर देना चाहिये। फिर उस वृत्त को परस्पर पुटित दो चतुष्कोणरूपी धरामण्डल से वेष्टित कर उसके बाहर दो वृत्त बनाना चाहिये। तदनन्तर इसके बाहर षोडशदल कमल का आलेखन करना चाहिये। इस प्रकार वृत्त, त्रिकोण तथा चतुष्कोणयुग्म तथा षोडशदलरूपी मण्डलों से युक्त द्वादशगुणित यन्त्र में वक्ष्यमाण मन्त्रों का और यदि सम्भव हो तो तत्तद् देवताओं के मन्त्रों सहित चित्रों का भी आलेखन करना चाहिये।

नीरोग सुखी जीवन के लिये

भगवान् नृसिंह को प्रज्ज्वलित अग्नि में स्थित मानते हुए जो व्यक्ति प्रातः-काल दूर्वा के तीन-तीन खण्डों को दूध और घी से सिक्त करके १ हजार हवन करता है, वह नीरोग रहते हुए दीर्घायु होता है तथा अपने परिवार के साथ सुखी जीवन व्यतीत करता है।

दशाधिकशतैः पयोघृतयुतैश्च दूर्वात्रयै-
र्हुनेद्दिनमुखे विभुं नरहरिं विचिन्त्यानले।
अवाप्य स तु दीर्घमायुरखिलैर्विमुक्तो गदैः
सुखी भवति मानवो निजकलत्रपुत्रादिभिः।। (वही, २५/५७)

नृसिंह मन्त्र की उपर्युक्त विधियों से साधना करने वाले साधक की अभिलाषाएं शीघ्र ही पूर्ण होती हैं और वह धन-धान्य से समृद्ध, विद्वानों और शासकों से सम्मानित, शान्तचित्त हो जाता है तथा देहान्त के अनन्तर भगवान् विष्णु के परम धाम को प्राप्त होता है।

विस्तारैः किं प्रतिजपति यो मन्त्रमेनं यथोक्तम्
लब्ध्वा कामान् समभिलषितानाशु मन्त्री स भूयात्।
द्रव्यैराढ्यो द्विजनृपवरैः पूजितः शान्तचेता
देहान्ते स्यात् परमपरिशुद्धं परं धाम विष्णोः।। (वही, २५/५८)



धन-धान्य समृद्धि के लिये

जो व्यक्ति प्रतिदिन मधुरत्रय से सिक्त १ हजार लाल कमलों का हवन नियम से करता है, उसकी मनोकामना एक मास के भीतर ही पूर्ण हो जाती है तथा वर्षभर में वह धन-धान्य से समृद्ध हो जाता है।

रक्तोत्पलैः प्रतिदिनं मधुरत्रयाक्तैर्यो वा जुहोति नियमेन सहस्रसंख्यैः।
मासेन वांछितमवाप्स्यति मन्त्रजापी स्याद्वत्सरेण धनधान्यसमृद्धगेहः।।

(वही, २५/५३)

लक्ष्मी तथा दीर्घायु की प्राप्ति

त्रिमधुरसिक्त १२ हजार खिले हुए रक्तकमलों का हवन करने से अत्यधिक लक्ष्मी तथा दीर्घायु की प्राप्ति होती है और व्यक्ति संसार में सबका प्रिय हो जाता है।

आरक्तैस्तरणिसहस्रकैः प्रफल्लैरम्भोजै स्त्रिमधुरसंयुतैर्जुहोतु।
लक्ष्मीः स्यादतिमहती महत्तथायुः सम्प्राप्य सकलजगत्प्रियश्च भूयात्।।

(वही, २५/५४)

अभिलषित कन्या या वर की प्राप्ति के लिये

प्रतिदिन सूर्योदय के समय पन्द्रह दिनों तक जो व्यक्ति त्रिमधुर से सिक्त लाजा का हवन करता है, उसे अभिलषित कन्या या अभिलषित वर की प्राप्ति होती है।

लाजाभिस्त्रिमधुरसंयुताभिरह्नो मासार्धं प्रतिजुहुयान्मुखे सहस्रम्।
कन्यार्थी प्रतिलभते वरोऽथ कन्यां कन्या वा भवति वरार्थिनी वराढ्या।।

(वही, २५/५५)

ग्रह-शान्ति के लिये

अपामार्ग की समिधा से प्रज्ज्वलित अग्नि में तिल, राई अपामार्ग की मंजरीसहित घृत से दो हजार हवन करने वाले व्यक्ति को विपरीत ग्रहों की नाराजगी से उत्पन्न किसी रोग का भय नहीं रहता और ना ही किसी शत्रु द्वारा किये गये अभिचार-प्रयोग से उसे कोई हानि ही होती है।

तिलैः सराजीखरमंजरीसमिद्धविर्घृतैश्च द्विसहस्रसंख्यकैः।
प्रजुहृवतो नैव रुजो ग्रहोद्भवा न वाऽभिचारक्षतिरस्य जायते।।

(वही, २५/५६)

रथचरणशंखपाशांकुशकुलिशगदाह्वयानि चाऽस्त्राणि।
दारणमुद्राकरयोर्ययोस्तदीयौ कृपाणखेटाख्यौ।। (वही, २५/४६-४८)

जप-हवनादि

उक्त षडक्षर नरसिंह मन्त्र की सिद्धि के लिये साधक के लिये आवश्यक है कि वह गुरु से दीक्षित होकर मन्त्र का छह लाख जप करे तथा जप पूर्ण होने के अनन्तर शुद्ध घृत से छह हजार हवन करे।

इति कृतदीक्षः प्रजपेदक्षरलक्षप्रमाणात्मकं मन्त्रम्।
जुहुयाच्च षट्सहस्रं जपावसाने घृतेन शुद्धेन।। (वही, २५/४६)

भूतबाधा समाप्ति के लिये

अपामार्ग के पौधे को जड़सहित उखाड़ कर उसकी मंजरियों सहित सात दिन तक १ हजार हवन और पंचगव्य में स्नान करने से भूतबाधा समाप्त हो जाती है।

खरमंजरीसमुत्थं जुहुयादथ मंजरीसहस्रयुतम्।
प्रस्नातपंचगव्यं सप्तदिनं भूतशान्तये मन्त्री।। (वही, २५/५०)

ज्वर से मुक्ति

अमृता लता के चार अंगुल लम्बे खण्डों को दुग्ध से सिक्त कर नृसिंह मन्त्र से चार दिनों तक तीन-तीन हजार हवन करने से ज्वर से पीड़ित व्यक्ति का ज्वर समाप्त हो जाता है।

छिन्नरुहां समिधां त्रिसहस्रं यश्च जुहोति चतुर्दिनमात्रम्।
दुग्धयुतं नचिरान्मनुजानां होमविधिर्ज्वरशान्तिकरः स्यात्।।
(वही, २५/५१)

शिरोरोगादि से मुक्ति

भूर्जपत्र अथवा तृणराज (ताड़)[1] पत्र पर नृसिंह यन्त्र बनाकर उसे नृसिंह मन्त्र के जप से अभिमन्त्रित कर सिर पर बांधने से शिरोरोग, ज्वर तथा विभ्रम रोग समाप्त हो जाते हैं।

अस्य यन्त्रमभिलिख्य भूर्जके साधु वाऽथ तृणराजपत्रके।
मन्त्रजप्तमथ शीर्षबन्धनाज्जूर्तिविभ्रमशिरोरुजापहम्।। (वही, २५/५२)

---
१. 'तृणराजाह्वयस्तालः', अमरकोष।

नृसिंह यन्त्र

षट्कोण के भीतर हृल्लेखा बीज 'ह्रीं' लिख कर छहों कोणों के भीतर षडर्ण नृसिंह मन्त्र के एक-एक अक्षर, तदनन्तर अष्टदल कमल बनाकर उसकी केसरों में दो-दो करके सोलह स्वर लिखने चाहिये। फिर प्रत्येक दल के मध्य नृसिंहानुष्टुप् मन्त्र के चार-चार अक्षर लिखकर इन्हें व्यंजन वर्णों से वेष्टित करना चाहिये। तत्पश्चात् यन्त्र के बाहर परस्पर पुटित दो चतुरस्र बनाकर इसके कोणों में चिन्तामणि मन्त्र 'क्ष्म्रौं' के एक-एक अक्षर र् क् ष् म् र् य् औ ऊं लिखना चाहिये।

इस प्रकार से नृसिंह यन्त्र का निर्माण करके वैष्णवपीठ पर स्थापित पूर्वोक्त कषाय-क्वाथ से भरे घट की स्थापना करके उस पर भगवान् नृसिंह की आवरणसहित पूजा करनी चाहिये। आवरण-पूजा में प्रथम आवरण में अंगपूजा, द्वितीय में नरसिंह के छह हाथों के आयुधों चक्र, शंख, पाश, अंकुश, वज्र तथा गदा एवं दारणमुद्रा* वाले दो हाथों में धारण किये जाने वाले कृपाण तथा खेट नामक आयुधों की पूजा की जानी चाहिये। तत्पश्चात् तृतीय आवरण में इन्द्रादि लोकपालों तथा चतुर्थ आवरण में उनके वज्रादि आयुधों की अर्चना करनी चाहिये। इस विधि से निर्मित नृसिंह यन्त्र का विधिवत् अर्चनादि के बाद इसे धारण करने से राक्षस, पिशाच, रोग, शत्रु तथा विषपीडादि का भय नहीं रहता।

हृल्लेखान्तःस्थसाध्यं दहनपुरयुगास्रिस्थमन्त्रार्णमन्तः-
सिंहानुष्टुप्चतुर्वर्णकलसितदलाढ्यं कलाकेसरंच।
वृत्तोद्यद्व्यंजनावेष्टितमवनिपुरान्तःस्थवृत्तो(चिन्तो)पलं तद-
यन्त्रं रक्षःपिशाचा मयरिपुविषध्वंसनं नारसिंहम्।।
इति विरचितयन्त्रप्रोज्ज्वले मण्डले प्राक्-
समभिहितकषायाम्भोभिरापूर्य कुम्भम्।
प्रतियजतु तदंगैरस्त्रभेदैस्तदीयै-
स्तदनु शतमखाद्यैः साधु वज्रादिकैश्च।।

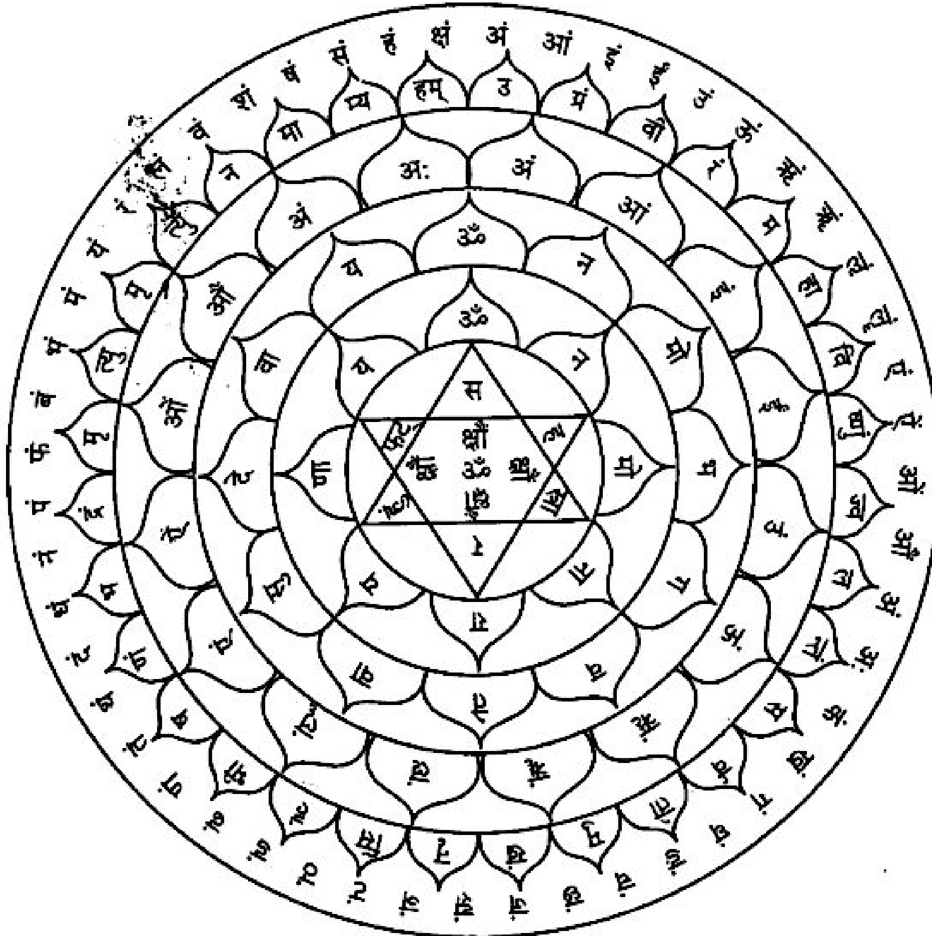
---

* हिरण्यकशिपु के वक्षस्थल को विदीर्ण करते समय भगवान् नरसिंह ने फैली और शत्रु की छाती की ओर मुड़ी हुई अंगुलियों वाली जिस मुद्रा का प्रदर्शन किया था, उसे दारण मुद्रा कहा जाता है।

उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतो मुखं।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्।।

के एक-एक अक्षर लिख कर उसके बाहर एक वृत्त बनाकर उसे मातृका वर्णों से घेर देना चाहिये। इसके बाद षट्कोण के मध्य 'ओं' लिखकर इसे नृसिंह बीजों से वलयित कर देना चाहिये।

नृसिंह यन्त्र



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - २५/४५)

[जपसंख्या - ६ लाख • आहुति-संख्या - ६ हजार • हवनद्रव्य - शुद्ध घृत]

षट्कोणस्थसुदर्शनं वसुदलप्रोल्लासिताष्टाक्षरं,
बाह्ये द्वादशवर्णपत्रकमलं तत्षोडशार्णच्छदम्।
द्वात्रिंशन्मनुवर्णपत्रकमलं वृत्तोल्लसन्मातृकम्
मध्योत्थं ध्रुवमूर्तिबीजवलयं चक्रं नृसिंहात्मकम्।। (वही २५/४५)

ऋष्यादिन्यास

स्वयंभुवे ऋषये नमः शिरसि, पंक्तिछन्दसे नमः मुखे,
नरसिंहदेवतायै नमः हृदये, क्ष्रौं बीजाय नमः गुह्ये,
ह्रीं शक्तये नमः पादयोः।

षडंगन्यास

आं हृदयाय नमः हृदये, ह्रीं शिरसे स्वाहा शिरसि,
क्ष्रौं शिखायै वषट् शिखायाम्, क्रों नेत्रत्रयाय वौषट्,
हुं कवचाय हुं, फट् अस्त्राय फट्।

ध्यान

साधना के समय नितान्त रौद्ररूप, तीखें दांत और विकृत मुखाकृति वाले, चक्र, शंख, पाश, अंकुश, वज्र, गदा तथा दारण नामक आयुधों को धारण किये, नाभि के नीचे रक्त तथा नाभि से ऊपर श्वेतवर्ण वाले, दिव्य आभूषणों से सुशोभित, सूर्य, अग्नि तथा चन्द्ररूपी तीन नेत्रों वाले भगवान् नृसिंह का ध्यान करते हुए प्रार्थना करनी चाहिये कि वे आप-हम सबकी रक्षा और समस्त सुख प्रदान करें।

अव्यान्निर्व्याजरौद्राकृतिरतिविकृतास्योल्लसततीक्ष्णदंष्ट-
श्चक्रं शंखं च पाशांकुशकुलिशगदादारणख्यान्दधानः।
रक्ताकारश्च नाभेरथ उपरि सितो दिव्यभूषाविशेषो
देवोऽर्काग्नीन्दुनेत्रो निखिलसुखकरो नारसिंहश्चिरं वः।। (वही, २५/४४)

नृसिंह यन्त्र

पहले एक षट्कोण का निर्माण करके उसे एकवृत्त से घेर उसके बाहर अष्टदल कमल, अष्टदल के बाहर वृत्त और वृत्त के बाहर द्वादशदल कमल, उसके बाहर वृत्त और वृत्त के बाहर षोडश दल कमल, तदनन्तर वृत्त और वृत्त के बाहर बत्तीस दल का वर्णकमल बनाना चाहिये। फिर षट्कोण के छहों कोणों में सुदर्शन मन्त्र 'सहस्रार हुं फट्' के एक-एक अक्षर, षट्कोण के बाहर अष्टदल कमल के प्रत्येक पर्ण में अष्टाक्षर मन्त्र 'ओं नमो नारायणाय' के एक-एक अक्षर, इसके बाहर के द्वादश दल कमल के प्रत्येक दल में द्वादशाक्षर मन्त्र 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' के एक-एक अक्षर, उसके बाहर के सोलह दलों में क्रमशः सोलह स्वर, तत्पश्चात् ३२ दलों वाले कमल के प्रत्येक दल में बत्तीस अक्षर वाले नृसिंह मन्त्र—

दूर्वात्रितय से १ हजार हवन करना चाहिये। इस प्रकार के हवन से एक वर्ष के भीतर ही साधक की अभिलाषा पूर्ण हो जाती है।

श्रीकामः श्रीप्रसूनैर्दशकमथ शतानां हुनेद्बिल्वकाष्ठैः-
स्तत्पत्रैर्वा प्रसूनैः सुमतिरथ समिद्भिः फलैर्वा तदीयैः।
पुत्रेप्सुः पुत्रजीवेन्धनचितदहने तत्फलैर्वा सहस्रैः-
दूर्वाभिस्त्वायुषेऽब्दादभिमतमखिलं प्राप्नुयान्मन्त्रजापी।। (वही, २५/४०)

मेधा की प्राप्ति के लिये

यदि कोई साधक नृसिंह मन्त्र से १०८ बार अभिमन्त्रित ब्राह्मी अथवा वचा का प्रतिदिन प्रातः भक्षण करता है, तो उसे अपरिमित मेधा की प्राप्ति होती है और वह एक वर्ष के भीतर ही वेदशास्त्रज्ञ हो जाता है।

ब्राह्मीं वचां वाऽष्टशताभिजप्तां प्रातः समद्यान्नृहरिं विचिन्त्य।
सम्प्राप्य मेधां स तु वेदशास्त्रनिष्णातधीः स्यादपि वत्सरेण।।
(वही, २५/४१)

वास्तव में, नृसिंह मन्त्र इतना प्रभावशाली है कि विधिपूर्वक इसका जप-हवनादि करने वाले साधक की समस्त अभिलाषाएं पूर्ण होती हैं तथा मृत्यु के उपरान्त वह भगवान् नृसिंह के परम लोक को प्राप्त करता है।

उक्तैः किमत्र बहुभिर्मनुनाऽमुनैव सम्प्रार्थितं सकलमेव लभेद्विधिज्ञः।
तस्मादमुं भजत तत्प्रतिपन्नचित्ताः संसारसागरसमुत्तरणार्थिनो ये।।
(वही, २५/४२)

नृसिंह षडक्षर मन्त्र

पाश (आं) और अंकुश (क्रों) बीजों के बीच शक्ति (ह्रीं) और नृसिंह बीज (क्ष्रौं) तदनन्तर वर्म (हुं) और अस्त्र (फट्) का संयोग 'आं ह्रीं क्ष्रौं क्रों हुं फट्' यह नृसिंह का षडक्षर मन्त्र है। नृसिंह षडक्षर मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्दस् पंक्ति, देवता नरसिंह, बीज क्ष्रौं तथा शक्ति ह्रीं है। इसमें षडंगन्यास मन्त्र के छह अक्षरों से किया जाता है।

पाशांकुशान्तरितशक्तिनृसिंहबीजे वर्मास्त्रयुङ्मनुरयं कथितः षडर्णः।
ऋष्यादिकाः स्वभवपंक्तिकनारसिंहा वर्णैश्च मन्त्रनिहितैः कथितं षडंगः।
(वही, २५/४३)

तदनुसार न्यासों का स्वरूप निम्न होगा—

परराष्ट्र-विजय के विशिष्ट प्रयोग

वैष्णव पीठ पर भगवान् नृसिंह की पूर्वोक्त विधि से पूजा करके उनके सामने बहेड़े की लकड़ियों से प्रज्ज्वलित अग्नि में समूल अर्थात् जड़ से फूल तक उखाड़े गये सरकण्डों के १ हजार टुकड़ों का हवन करना चाहिये। हवन करते समय नृसिंह मन्त्र का उच्चारण ऐसे करना चाहिये, जैसे साधक शत्रु को चबा रहा है तथा सरकण्डे के खण्डों को अग्नि में इस प्रकार फेंकना चाहिये मानों वह शत्रुओं को विदीर्ण कर रहे अस्त्रों को उन पर फेंक रहा है। इस प्रकार हवन पूर्ण करने के बाद शासक को चाहिये कि वह शत्रुदेश पर अपनी सेना से आक्रमण कर दे और यह चिन्तन करता रहे कि जैसे उसकी सेना शत्रु-सेना का संहार ऐसे कर रही है, मानों भगवान् नृसिंह दैत्यों की सेना का संहार कर रहे हैं। यह हवन तब तक जारी रहना चाहिये जब तक कि शत्रु की सेना पर विजय प्राप्त करके अपनी सेना वापस लौट कर नहीं आ जाती। इस प्रकार के प्रयोग से सुर, असुर, राक्षस और यक्षादि की सेनाओं पर भी विजय प्राप्त की जा सकती है, मानव-सेना की तो बात ही क्या?

अथ परराष्ट्रजयेच्छो राज्ञः कुर्यात्प्रयोगविधिमेवम्।
नरहरिमपि विधिना तं हिरण्यकशिपुद्विषं समभ्यर्च्य।।
तस्य पुरस्ताद्विधिवन्निधाय वह्निं विभीतकतरुकाष्ठैः।
उज्ज्वलिते च ज्वलने समूलतूलैः शरेध्मशतदशकैः।।
खादन्निवोच्चरेन्मनुमरींश्च भिन्दन्निव क्षिपेत्समिधः।।
हुत्वा परराष्ट्रेभ्यः पृतनां सन्नाह्य सम्मुखे तस्याः।
निघ्नन्तं रिपुसेनां स्मरेन्नृसिंहं पुरेव दितितनयान्।।
यावज्जितारिरेष्यति नृपतिस्तावज्जपेत् स्मरन्देवम्।
सेन्द्रसुरासुररक्षोयक्षानपि जयति का कथा मनुजे।। (वही, २५/३६-३६)

विभिन्न अभिलाषाओं की पूर्ति के लिये हवन-द्रव्य

लक्ष्मी, पुत्र तथा दीर्घायु प्राप्ति के लिये

लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये कमल के १ हजार पुष्पों अथवा इतनी ही बिल्व की समिधाओं या बिल्वपत्रों अथवा बिल्वफलों का हवन करना चाहिये।

पुत्र की प्राप्ति के लिये पुत्रजीवक की समिधा से प्रज्ज्वलित अग्नि में पुत्रजीवक के १ हजार फलों का हवन करना चाहिये। दीर्घायु प्राप्ति के लिये

उच्चारण करते हुए सात दिनों तक प्रतिदिन मन्त्र का १ हजार आठ जप करे। इस प्रयोग से निःसन्देह साधक के शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

किसी पर मारणकर्म का प्रयोग करना सामान्यतया उचित नहीं है। इससे पाप लगता है। इस पाप से मुक्ति और आत्मशान्ति के लिये उक्त मन्त्र का १ हजार जप अलग से करना चाहिये। इसी प्रकार वशीकरण, आकर्षण, विद्वेषण, मोहन तथा उच्चाटनादि के प्रयोग से पहले साधक को मन्त्र का उक्त संख्या में जप करके अपने को प्रयोग का अधिकारी बनाकर ही उक्त प्रयोग करने चाहिये तथा प्रयोग के अन्त में उक्त विधि से शान्ति-विधान भी करना आवश्यक है।

पूर्वतरे मृत्युपदे विधाय निजसाध्यनाम मन्त्रितमः।
क्रूरेण चक्षुषा तं दहन्निवालोक्य जपतु सप्तदिनम्।।
दिनशोऽष्टोर्ध्वसहस्रं म्रियते रिपुरस्य नाऽत्र सन्देहः।
मारणकर्म न शस्तं क्रियते यद्ययुतमथ जपेच्छान्त्यै।।
वश्याकृष्टिद्वेषणमोहोच्चाटादिकानि यदि वांछेत्।
तदर्हया प्रतिपत्त्या तत्तत्कर्म प्रसाधयेन्मन्त्री।। (वही, २५/३१-३३)

मारणादि प्रयोग के नियम

सामान्यतया मारणादि प्रयोग करने से पहले प्रातःकाल भगवान् सूर्य और नृसिंह की विधिवत् अर्चना करने के बाद उनकी और अपने गुरु की अनुमति प्राप्त करके ही राजरक्षा अथवा अपने प्रिय की रक्षा के लिये अभिमन्त्रित भस्मादि का प्रयोग करना चाहिये।

दिनमनु दिननाथं पूजयित्वा दिनादौ
नरहरिमपि सम्यक् प्रोक्तमार्गेण मन्त्री।
तदनु तदनुमत्या भस्मना मन्त्रितेन
प्रतिरचयतु राज्ञे वाऽप्यभिष्टाय रक्षाम्।। (वही, २५/३४)

प्रत्येक प्रकार के उपद्रव की शान्ति, सम्पत्ति एवं अभिलषित वस्तु की प्राप्ति तथा दूसरे राष्ट्र पर विजय आदि के लिये भगवान् नृसिंह की पूजा-अर्चना के पश्चात् पूर्वोक्त न्यास के स्थानों, मन्त्र के अक्षरों का न्यास और फिर उन्हीं स्थानों पर भस्म-लेपन करना चाहिये।

न्यासोक्तेषु स्थानेष्वपि न्यसेद्भस्मना च मन्त्रार्णान्
अखिलोपद्रवशान्त्यै सम्पत्त्यै वांछितार्थसिद्ध्यै च।। (वही, २५/३५)

का विष दूर हो जाता है। सिर, आंख, कान, हृदय, गला तथा पेट के रोग तथा ज्वर, विसर्प, वमन हिचकी, दूसरों के द्वारा किये गये मन्त्र, औषधि तथा आभिचारिक प्रयोगों से उत्पन्न रोग भी इस प्रयोग से शान्त हो जाते हैं।

मूषिकलूतावृश्चिकबहुपादाद्युद्भवं विषं शमयेत्।
अष्टोत्तरशतजापान्मनुरयमभिमन्त्रितंच भस्माद्यम्।।
सशिरोक्षिकर्णहृद्गलकुक्षिरुजाज्वरविसर्पवमिहिक्काः।
मन्त्रौषधाभिचारिककृतान् विकारानयं मनुः शमयेत्।।

(वही, २५/२६-२७)

उच्चाटन प्रयोग

स्वयं को नरसिंह तथा अपने शत्रु को हरिण के छौने के रूप में चिन्तन करते हुए उसे प्रतिदिन भावना से ही आकाश से जमीन पर फेंके। साधक शत्रु को जिस दिशा की ओर फेंकेगा, वह अपना घर-परिवार छोड़ उसी दिशा की ओर निकल जायगा और फिर कभी वापस नहीं आयेगा।

नरहरिवपुषात्मना गृहीतं हरिणशिशुं निजवैरिणं विचिन्त्य।
क्षिपतु गगनतः क्षितौ सुदूरं यमनुदिनं प्रतिचाट्यते स मासात्।।
यांच दिशं प्रति मनुना क्षिप्तोऽसौ तां दिशं प्रयात्यचिरात्।
पुत्रकलत्रधनादींस्त्यक्त्वा न पुनर्निवृत्तये सहसा।। (वही, २५/२८-२९)

मारण प्रयोग

स्वयं को नरसिंह मानते हुए शत्रु के शरीर को अपने तीखे नखों से विदीर्ण कर खाते हुए-सा चिन्तन करने से शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

नरहरिवपुषात्मना निजारिं खरनखराग्रसमग्रभिन्नदेहम्।
क्षणमिव निहतं विचिन्त्य खादन्निव जपतां मनुमेष नाशमेति।।

(वही, २५/३०)

एक अन्य मारण प्रयोग

प्रयोगकर्ता को चाहिये कि पहले वह अपने शत्रु की एक प्रतिकृति बनवाये। फिर उस प्रतिकृति की ओर क्रूरदृष्टि से देखते हुए नृसिंह मन्त्र—

उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतो मुखम्।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्।।

में प्रयुक्त प्रथम 'मृत्यु'पद के स्थान पर शत्रु के नाम (जैसे—कंसमृत्युं) का

शान्त हो जाते हैं। जल में आहुति देने से 'शान्ति' होती है, इस बात का प्रमाण 'आपो हि शान्ता' (आपो हि ष्ठा मयोभुव स्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे। यजुर्वेद, ११/५०) श्रुति है। इस प्रकार के जल में हवन से समस्त उपद्रवों की शान्ति के साथ ही साधक की समस्त अभिलाषाओं की सम्पूर्ति भी होती है।

दूर्वात्रिकैरष्टसहस्रसंख्यैराराध्य मन्त्री जुहुयादथाप्सु।
शान्तिं प्रयान्त्येव तदोपसर्गा आपो हि शान्ता इति च श्रुतिः स्यात्।।
उत्पाते सति महति ह्युपद्रवाणां होमोऽयं भवति च शान्तिदो नराणाम्।
यद्वाऽन्यन्निजमनसेप्सितं च कामं तत्प्राप्नोत्यखिलनृणां प्रियंच भूयात्।।
(वही, २५/२१-२२)

दुःस्वप्नों का सुस्वप्नों में परिवर्तन

किसी भयंकर दुःस्वप्न के बाद सारी रात नृसिंह मन्त्र का जप करते हुए बिता देने से दुःस्वप्न सुस्वप्न में परिवर्तित हो जाता है।

दुःस्वप्नेष्वपि दृष्टेष्ववशिष्टा जाग्रता निशा नेया।
जपमानमन्त्रशक्त्या सुस्वप्नो भवति तत्क्षणादेव।। (वही, २५/२३)

भयानक भय से मुक्ति

भयंकर जंगली जानवरों, सर्पों, महासर्पों से भरे जंगल से नृसिंह मन्त्र का जप करते हुए गुजरने से किसी प्रकार का भय नहीं रह जाता और असाध्य भी साध्य हो जाता है।

चरन् वने दुष्टमृगाहिघोरव्यालाकुले मन्त्रमिमं जपेद्यः।
असाधितं साधितमेव तस्य न विद्यते भीर्बहुरूपजाता।।(वही, २५/२४)

सर्प के विष से मुक्ति

यदि किसी को सर्प काट ले तो एक कलश में जल भर कर उस जल को नृसिंह मन्त्र के १ हजार आठ बार जप से अभिमन्त्रित कर विष से पीड़ित व्यक्ति पर अभिषिंचन करने से विष शान्त हो जाता है।

जप्तेनाऽष्टसहस्रं कलशेनाऽप्यहिविषार्तमभिषिंचेत्।
अतिविषमेण विषेणाऽप्यसौ विमुक्तः सुखी भवति।। (वही, २५/२५)

मूषकादि विष-हरण

नृसिंह मन्त्र से १०८ बार अभिमन्त्रित जल, औषधि या भस्म पीड़ित व्यक्ति पर छिड़कने या खाने से मूषक, मकड़ी, वृश्चिक, कनखजूरा आदि के दंश

एकाक्षर नृसिंह मन्त्र-साधना

वर्णमाला का अन्तिम वर्ण (क्ष्), अनलवर्ण (र्), भुवन संज्ञक वर्ण (औ) तथा बिन्दु (अनुस्वार) मिलाने से एकाक्षर नृसिंहमन्त्र 'क्ष्रौं' बनता है। इस मन्त्र की विधिवत् साधना से ऐसा कुछ भी नहीं, जो साधक को अप्राप्य हो।

वर्णान्त्यानलभुवनबिन्दुभिरुक्तं नृसिंहबीजमिदम्।
तन्नास्ति सम्यगमुना मन्त्रविदा साधितेन यदसाध्यम्।। (वही, २५/१७)

इस मन्त्र के ऋष्यादिक तथा जप-हवनादि विधियां पूर्वोक्त ही हैं, किन्तु अंगन्यास नृसिंह बीज में दीर्घस्वरों को योजित करके किया जाता है।

ऋष्यादिकमपि पूर्ववदंगं बीजेन दीर्घयुजा।
ध्यानार्चनादिकमन्यदशेषं समानं स्यात्।। (वही, २५/१८)

इस प्रकार षडंगन्यास का स्वरूप निम्नांकित होगा—

क्ष्रां हृदयाय नमः, क्ष्रीं शिरसे स्वाहा,
क्ष्रूं शिखायै वषट्, क्ष्रैं कवचाय हुं,
क्ष्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, क्ष्रः अस्त्राय फट्।

नृसिंहमन्त्र की जप-हवनादि की समाप्ति के अनन्तर गुरु को पर्याप्त दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये और हवनादि में भाग लेने वाले ब्राह्मणों को भी भोजन-दक्षिणादि से संतृप्त करना चाहिये। जो व्यक्ति नृसिंहमन्त्र की उक्त विधि से साधना करता है, उसे इस संसार में तो सब अभिलषित प्राप्त होता ही है, मृत्यु के बाद वह भगवान् के परमधाम को प्राप्त होता है।

विभवानुरूपतोऽस्मै दातव्या दक्षिणा च निजगुरवे।
प्राणप्रदानकर्त्रे न च कार्यं वित्तसाठ्यममलधिया।।
संप्रीणयित्वा गुरुमात्मशक्त्या सम्पूजयेद्विप्रवरान् यथावत्।
स त्वैहिकीं शुद्धिमवाप्य शुद्धं परं परत्रापि पदं समेति।।

(वही, २५/१९-२०)

नृसिंह बीजमन्त्र 'क्ष्रौं' के प्रयोग

उपद्रव शान्ति के लिये

तीन-तीन दूर्वाखण्डों को संयोजित कर नृसिंह मन्त्र से कलश में स्थित जल में हवन करने से शत्रुओं तथा रोगों आदि से उत्पन्न किये गये समस्त उपद्रव

जप-हवनादि

नरसिंह मन्त्र के ३२ हजार जप के बाद साधक मन्त्र के प्रयोग का अधिकारी बन जाता है। मन्त्र के दस हजार जप से पुरश्चरण होता है तथा ३२ लाख जप और घृतसहित खीर का ३२ हजार हवन करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। जप की पूर्णता के लिये प्रतिदिन नरसिंह भगवान् की पूजा करते रहना चाहिये। पद्‌मपाद के अनुसार जप की परिपूर्ति के लिये उक्त संख्या में नरसिंह मन्त्र के जप के पश्चात् ब्रह्म नवाक्षर मन्त्र 'हं कमलासनाय नमः, द्वादशाक्षर मन्त्र (ओं नमो भगवते वासुदेवाय), पंचाक्षर गरुड़ मन्त्र 'क्षिप ओं स्वाहा' तथा 'आं अनन्ताय नमः' आदि मन्त्रों का जप भी यथाशक्य करना चाहिये।

द्वात्रिंशतिकसहस्रैरधिकृतिरयुतैर्भवेत्पुरश्चरणम्।
तावद्भिस्तावद्भिर्लक्षैः सिद्धिः समीरिता चास्य मनोः।।
विकृतिद्विगुणसहस्रैर्जुहुयादाज्यान्वितैश्च दुग्धान्नै।।
जपपरिपूर्त्तौ मन्त्री दिनशः सम्पूजयेच्च नरसिंहम्।।

(वही, २५/१३-१४)

नृसिंह मन्त्र के प्रयोग

मृत्युंजय प्रयोग

अष्टदल कमल की रचना करके कर्णिका के मध्य नरसिंह बीज 'क्ष्रौं' आठों दलों में नरसिंह मन्त्र के ३२ अक्षरों में से प्रत्येक में चार-चार वर्ण, दलों के बाहर मातृका वर्ण का आवेष्टन करके इनके बाहर परस्पर पुटित दो चतुष्कोणों का निर्माण करना चाहिये। फिर इस पुटित चतुष्कोण के आठ कोणों में नृसिंह बीज लिखना चाहिये। तदनन्तर इस यन्त्र पर पंचगव्य अथवा पूर्वोक्त क्वाथ से भरे घट की स्थापना करके घृतयुक्त दुग्धान्न का १ हजार आठ हवन करके तीन बार नृसिंह मन्त्र का उच्चारण करते हुए उक्त कलश जल जिस व्यक्ति पर छिड़का जाय, वह अकाल मृत्यु से बच जाता है।

विधाय तद्बीजविशिष्टकर्णिकं चतुश्चतुर्वर्णलसद्दलाष्टकम्।
सुलक्षितं मण्डलमन्यलक्षणैर्विधाय तस्मिन् कलशं प्रपूर्य च।।
यथोक्तमार्गेण समर्च्य साष्टकं सहस्रसंख्यं प्रजपेन्मनुं ततः।
त्रिरुच्चरन्मन्त्रमथाऽभिषेचयेद्‌यमेष मृत्योः प्रतिमुच्यते मुखात्।।

(वही, २५/१५-१६)

बरस रहे तीन नेत्रों से सुशोभित, विद्युत्प्रवाह से अभिद्योतित सटाओं अर्थात् केसरों से भीषणाकार बने , लेकिन दीप्तिमान आभूषणों से शोभायमान, अनेक बाहुओं के तीखे नखों से दैत्येश्वर हिरण्यकशिपु के शरीर को विदीर्ण कर रहे तत्त्वतः निराकार, किन्तु शत्रु-विनाश के समय नरसिंहरूपधारी भगवान् नरसिंह को प्रणाम करना चाहिये।

उद्यद्भास्वत्सहस्रप्रभमशनिनिभं त्रीक्षणं विक्षरन्तं
वह्नीनह्नाय विद्युत्ततिविततसटाभीषणं भूषणैश्च।
दिव्यैरादीप्तदेहं निशितनखलसद्बाहुदण्डैरनेकैः,
सम्भिन्नं भिन्नदैत्येश्वरतनुमतनुं नारसिंहं नमामि।। (वही, २५/८)

आवरण-पूजा

भगवान् नृसिंह के मन्त्र की साधना में मण्डपादि निर्माण के बाद साधक को चाहिये कि वह नृसिंह भगवान् का आवाहन कर मानसिक नमस्कार, अर्घ्य-पाद्य, आचमन, धूप, दीप, नैवेद्य, नृत्य-गीतादि से मानस पूजा सम्पन्न करने के बाद वैष्णव पीठ पर उनकी बाह्य पूजा करे। वैष्णव पीठ पर भगवान् नृसिंह का आवाहन कर उनकी पूजा करनी चाहिये। वैष्णवपीठ पर निर्मित अष्टदल कमल के मध्य भगवान् नरसिंह, केसरों वाले प्रथम आवरण में अंगपूजा, आठ दलों वाले द्वितीय आवरण में पूर्व के दल में पक्षिराज गरुड़, पश्चिम के दल में अनन्त, दक्षिण के दल में शंकर, उत्तर के दल में ब्रह्मा, आग्नेय कोण में श्री, नैर्ऋत्य में ह्री, वायव्य में धृति तथा ईशान में पुष्टि तथा दलों के बाहर तृतीय आवरण में इन्द्रादि दिक्पालों की षोडशोपचार पूजा करे।

नरसिंहममुं धियैव पूर्वं प्रणिपातार्घ्यकपाद्यसाचमाद्यैः।
प्रयजेत्सहगन्धपुष्पधूपादिभिरेवं प्रवरैश्च नृत्यगीतैः।।
सुविशदमतिरथ बहिरपि सम्यक् सम्पूज्य वैष्णवं पीठम्।
तत्रावाह्य च नरहरिमुपचारैः सम्यगर्चयेत्प्रवरैः।।
अंगैः प्रथमावृत्तिरपि पक्षीन्द्रानन्तशर्वकमलभवैः।
सहश्रीह्रीधृतिपुष्टिभिरपरोक्ता लोकपालकैरन्या।।
प्राक्प्रत्यग्यमशशिनां दिगाश्रिता मूर्तयोऽनलादिषु च।
स्युः शक्तय इत्येवं भक्त्या परया युतोऽर्चयेद् देवम्।।
(वही, २५/९-१२)

दक्षबाहु, वामबाहु, दक्षबाहुकूर्पर, वामबाहुकूर्पर
दक्षबाहु-अंगुल्यग्र, वामबाहु-अंगुल्यग्र,
दक्षपाद, वामपाद, दक्षपदजानु, वामपदजानु,
दक्षपद-अंगुल्यग्र, वामपद-अंगुल्यग्र,
हृदय, दक्षस्तन, वामस्तन, दक्षकुक्षि, वामकुक्षि,
गल, दक्षपार्श्व, वामपार्श्व, ककुद तथा पीठ।
शारदातिलक में नृसिंह मन्त्र के दशधा न्यास का उल्लेख किया गया है।

ध्यान

भगवान् नृसिंह की उपासना में उनका ध्यान उद्देश्य के अनुसार प्रसन्न और क्रूर दो रूपों में किया जाता है। नरसिंह की प्रसन्नमूर्ति का ध्यान उपासना, अर्चनादि में किया जाता है, जबकि मारण-मोहनादि प्रयोगों में क्रूर मूर्ति का ध्यान किया जाता है।

प्रतिपत्तिरस्य चोक्ता प्रसन्नताक्रूरताविशेषेण।
द्विविधा प्रसन्नया स्यात् साधनपूजाऽन्यया प्रयोगविधिः।।
(वही, २५/६)

प्रसन्न स्वरूप का ध्यान

केश-कलाप से संस्पृष्ट और द्युतिमान नखों से सुशोभित जानुओं पर स्थित दो बाहें, अन्य दो बाहों में सुशोभित हो रहे चक्र एवं शंख धारण किये, तेजस् की ज्वालाओं से घिरे सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि के समान तेजस्वी तीन नेत्रों वाले, अग्नि से समान नेत्रों से दैत्य हिरण्यकशिपु को देख रहे, लपलपाती हुई आरक्त जिह्वा से युक्त, उग्र दाढ़ें, बिखरी हुईं केसरों एवं विकराल मुख वाले भगवान् नरसिंह का ध्यान करते हुए उनसे प्रार्थना करनी चाहिये कि वे हम सब की रक्षा करें।

जान्वोरासक्ततीक्ष्णस्वनखरुचिलसद्बाहुसंस्पृष्टकेश-
श्चक्रं खड्गं च दोर्भ्यां दधदनलसमज्योतिषा ग्रस्तदैत्यः।
ज्वालामालापरीतं रविशशिदहनत्रीक्षणं दीप्तजिह्वं,
दंष्ट्रोग्रं धूतकेशं वदनमपि वहन् पातु वो नारसिंहः।। (वही, २५/७)

क्रूर प्रयोगों में ध्यान

नरसिंह मन्त्र के प्रयोग के समय सबसे पहले उगते हुए हजारों सूर्यों की आभा वाले, विद्युत के समान तीक्ष्ण प्रकाश से युक्त और तेजी से अग्नि-सी

ऋष्यादिन्यास

ब्रह्मणे (प्रजापतये) (नारदाय) ऋषये नमः शिरसि,
अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे,
श्रीनृसिंहमहाविष्णुदेवतायै नमः हृदि,
हं बीजाय नमः गुह्ये, ईं शक्तये नमः पादयोः।

षडंगन्यास

३२ अक्षरात्मक उक्त नृसिंह मन्त्र की साधना में मन्त्र के क्रमशः चार अक्षरों से हृदय, चार अक्षरों से शिरस्, आठ अक्षरों से शिखा, छह अक्षरों से वर्म, छह अक्षरों से नेत्र तथा चार अक्षरों से अस्त्रन्यास किया जाता है।

वर्णैश्चतुर्भिरुदितं हृदयं शिरश्च
तावद्भिरष्टभिरथाऽस्य शिखा प्रदिष्टा।
षड्भिश्च वर्म नयनं च चतुर्भिरस्त्रं
प्रोक्तं क्रमेण मनुनाऽक्षरशः षडंगम्।। (वही, २५/४)

इस प्रकार षडंगन्यास का स्वरूप निम्नांकित होगा—
उग्रं वीरं हृदयाय नमः, महाविष्णुं शिरसे स्वाहा,
ज्वलन्तं सर्वतोमुखं शिखायै वषट्,
नृसिंहं भीषणं कवचाय हुं,
भद्रं मृत्युमृत्युं नेत्रत्रयाय वौषट्,
नमाम्यहम् अस्त्राय फट्।

अक्षरन्यास

नृसिंहमन्त्र के ३२ अक्षरों के न्यास के सन्दर्भ में ज्ञातव्य है कि उपलब्ध प्रपंचसारतन्त्र के उक्त श्लोक से कुछ भ्रम उत्पन्न होता है। इसमें जिन अंगों का उल्लेख है, उनसे ३२ अंग पूरे नहीं होते। इसके अलावा दृग् तथा बाहु का दो-दो बार उल्लेख है।

सशिरोललाटदृग्युगमुखकरपत्सन्धिकेषु साग्रेषु।
उदरदृग्दोर्गलपार्श्वेष्वपरे ककुदि क्रमान्न्येद्वर्णान्।। (वही, २५/५)

फिर भी यहां मन्त्र के ३२ अक्षरों का न्यास निम्नांकित रूप में किया जा सकता है—

सिर, ललाट, भ्रूमध्य, दक्षनेत्र, वामनेत्र, मुख,
(दक्षकर्ण, वामकर्ण, दक्षनासा, वामनासा)

नृसिंह मन्त्र-साधना

नृसिंह मन्त्र

उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं विश्वतोमुखम्।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्।।

भगवान् नृसिंह के इस अनुष्टुब् मन्त्र के विधिपूर्वक जप, आहुति और अर्चना से साधक की समस्त कामनाएं परिपूर्ण होती हैं।

नृसिंह मन्त्र का उद्धार करते हुए शंका ने कहा है कि पहले उग्रं वीरं सहित महा अन्तवाला पद महाविष्णुं, फिर ज्वलन्तं पद, तदनन्तर सर्वतोमुखं फिर नृसिंहं तथा भीषणं तदनन्तर भद्रं पद, फिर मृत्युमृत्युं पद, तदनन्तर नमामि और अन्त में अहम् पद अर्थात्—

उग्रं वीरमहाविष्णुं ज्वलन्तं विश्वतोमुखम्।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्।।

नृसिंह मन्त्र है।

अथ प्रवक्ष्यामि नसिंहमन्त्रस्याऽनुष्टुभः संग्रहतो विधानम्।
सांगं सजापं सहुतक्रमं च सार्चाविधानं निजवांछिताप्त्यै।।
उग्रं वीरयुतं महान्तिकमथो विष्णुं ज्वलन्तान्वितं
सम्प्रोक्त्वाऽथ च सर्वतोमुखनृसिंहार्णांस्तथा भीषणं।
भद्रं मृत्युयुतं च मृत्युमपि तच्चोक्त्वा नमाम्या युतं
भूयोऽहम्पदमुच्चरेत् मनुमिमं मन्त्री समस्तार्थदम्।।

(प्रपंचसारतन्त्र, २५/१-२)

नृसिंह मन्त्र के ऋष्यादि तथा न्यास

उक्त नृसिंह मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा या प्रजापति, छन्दस् अनुष्टुब्, देवता नृसिंह, बीज हं तथा शक्ति ईं है।

ब्रह्मा प्रजापतिर्वा प्रोक्त ऋषिर्नारदश्च विद्वद्भिः।
छन्दोऽनुष्टबुदाहृतमथ विष्णुर्देवता नृसिंहाख्यः।। (वही, २५/३)

हं बीजं। ईं शक्तिः। (इति विवरणे)

अभिमन्त्रित कर जप की दशांश आहुति देने के बाद हवनाग्नि में घृत के सम्पात से यन्त्र को सिक्त करना चाहिये। तदनन्तर साधक साध्य की जिस भूमि को चाहता है, उस पर जाकर स्वयं को वराह रूप मानते हुए उस भूमि के स्थिर राशिस्थान* में वराह और उनके चारों ओर अंगदेवताओं की पूजा करके यन्त्र को वहीं गाड़ देना चाहिये। इस प्रयोग के फलस्वरूप उक्त भूमि का स्वामित्व साधक को प्राप्त हो जायगा। रोग, ग्रह-विकार, जंगली जानवरों तथा शत्रुओं से रक्षा के लिये भी यन्त्र को वराह मन्त्र के जप से अभिमन्त्रित कर पूर्ववत् आहुतियां देकर सिर पर बांधना चाहिये। इस यन्त्र को धारण करने से रोगी व्यक्ति औषधि-प्रयोग के बिना ही नीरोग हो जाता है।

मन्त्री समास्थाय वराहरूपं साध्यप्रदेशे निखनेच्च यन्त्रम्।
स्थिराख्यराशावभिवाह्य कोलमंगानि दिक्षु क्षिपतां यथावत्।।
यन्त्रममुं रक्षायै रोगग्रहवैकृतेषु जन्तूनाम्।
संयज्य शिरसि बध्यात् स तु नीरोगस्त्वयत्नतो भवति।।

(वही, २४/४६-४७)

जो साधक वराह मन्त्र के जप-हवनादि द्वारा भगवान् वराह की उपासना करता है, वह इस संसार में समस्त भौतिक समृद्धियां प्राप्त करता है तथा शरीरान्त होने के बाद विष्णु के परम धाम को जाता है।

इत्येवं प्रणिगदितो वराहमन्त्रो यस्त्वेनं प्रभजति नित्यशो जपाद्यैः
स प्राप्नोत्यखिलमहीसमृद्धिमस्मिन् देहान्ते व्रजति हरेः परं पदं तत्।।

(वही, २४/४८)



* स्थिर राशिस्थान की जानकारी के लिये पृष्ठ ४०४ देखें।

तद्बाह्ये मनुवर्णैर्विदर्भिताभिश्च साध्यपदलिपिभिः।
क्ष्माबिम्बचतुष्कोणे गर्भगसाध्याक्षरं भूबीजम्।।
अष्टसु शूलेषु तथा वाराहं वायुयेन संयुक्तम्। (वही, २४/३८-४४)

यन्त्रलेखन-सामगी

लाक्षा, कुंकुम, चन्दन, लघु तथा कर्पूर को गाय के गोबर के पानी में घोल कर बनाई गई मसि अर्थात् स्याही से स्वर्ण से निर्मित कलम के द्वारा उक्त वराह यन्त्र का आलेखन अपनी कामना के अनुरूप स्वर्ण, रजत, ताम्र, भुजपत्र, सूक्ष्मवस्त्र तथा पिचु वृक्ष की लकड़ी से निर्मित किसी एक फलक पर किसी शुभ दिन में करके यन्त्र का पूजन करना चाहिये।

स्वर्णादि भिन्न-भिन्न फलकों पर यन्त्र के आलेखन के फल भी भिन्न-भिन्न होते हैं। जैसे, स्वर्ण से निर्मित लेखनी से स्वर्णपत्र पर यन्त्र के आलेखन से राज्याधिकार की प्राप्ति, रजत-फलक पर आलेखन से ग्रामाधिकार, ताम्रपत्र पर आलेखन से स्वर्णमुद्राओं की प्राप्ति, भुजपत्र पर लिखने से विश्वयात्रा, क्षौम (क्षुमा अतसी या अलसी को कहते हैं। अलसी के रेशे से बने महीन वस्त्र को क्षौम कहा जाता है) वस्त्र पर यन्त्र बनाने से भूमि की प्राप्ति तथा पिचु वृक्ष के फलक पर बनाने से इष्टकार्य की पूर्ति होती है। इस विधि से वराह यन्त्र का आलेखन करने के पश्चात् साधक को चाहिये कि वह पूर्वोक्त विधि से वराह मन्त्र का जप और उक्त हवन द्रव्यों से हवन करे और होमाग्नि में घृत का सम्पात करते हुए वराह यन्त्र को उससे सिक्त करे। इस प्रकार वराह मन्त्र से अभिमन्त्रित और घृतसम्पात से उर्जावान् बना वराह यन्त्र धारण करने से साधक की समस्त अभिलाषाएं पूर्ण होती हैं।

लाक्षाकुंकुमचन्दनलघुकर्पूरैः सरोचनैर्विलिखेत्।
गोशकृदम्भोयुक्तैर्लेखन्या हैमया दिने प्रवरे।।
सौवर्णे राज्यसिद्धिं रजतजफलके ग्रामसिद्धिंच ताम्रे।
साहस्रस्वर्णसिद्धिं भुजदललिखितं चाशु संसारयात्राम्।
क्षौमे लाभं धरायाः पिचुतरुफलके कार्यसिद्धिं निजेष्टाम्।।
मन्त्रं संजप्तमेतद्घृतहुतकृतसम्पातपातं करोति।। (वही, २४/४४-४५)

वराह यन्त्र स्थापना

वराह यन्त्र का निर्माण कर इस यन्त्र को वराह मन्त्र के जप से

फिर, षट्कोण के छहों कोणों में 'ओं स ह स्रा र फट्' इस चक्रमन्त्र का एक-एक अक्षर, षट्कोणों के अन्तरालों में वराह मन्त्र के अंगमन्त्र लिखने चाहिये। फिर चतुर्दल कमल के चारों दलों के मूल और केसरों की सन्धि में पूर्वादि क्रम से वैष्णव अष्टाक्षर मन्त्र 'ओं नमो नारायणाय' के दो-दो अक्षर लिखने चाहिये। इन दलों के मध्य में पूर्वोक्त ३२ अक्षरों वाले वराह मन्त्र के आठ-आठ अक्षर लिखकर शेष बचे ३३वें अक्षर को भी चतुर्थ दल में ही लिखना चाहिये। इसके बाद अष्ट दलों के मूल में दो-दो करके सोलह स्वर, फिर सात दलों के मध्य में वराह मन्त्र के चार-चार और आठवें में शेष पांच अक्षर लिखने चाहिये। इसके बाद अन्तिम सोलह दलों वाले कमलदलों में से पन्द्रह दलों के मूल-केसरों में क्रमशः दो-दो व्यंजन तथा सोलवें में 'ष स ह ळ क्ष' ये पांच व्यंजन लिखे जाने चाहिये। फिर इन षोडश दलों में से प्रत्येक के मध्य में वराह मन्त्र के दो-दो अक्षर लिखकर शेष एक अक्षर को अष्टम दल में लिखना चाहिये।

बाहर बने वृत्त के भीतर तार 'ओं' भूबीज 'ग्लौं' तथा वराहबीज 'हूं' से पुटित साध्य के नामाक्षरों से यन्त्र को (पहले ओं , फिर साध्य के नाम का प्रथम अक्षर, फिर ग्लौं, फिर साध्य के नाम का द्वितीय अक्षर, तब हूं फिर ओं तब साध्य के नाम का तृतीय अक्षर आदि के क्रम से) घेर देना चाहिये। इसके बाद यन्त्र के बाहर एक चतुष्कोण बनाकर उसके चारों कोणों में साध्य के नाम के आदि और अन्त में भूबीज 'ग्लौं' और प्रत्येक कोण में वसुधा बीज ग्लौं से युक्त वाराह बीज 'हूं' लिखकर पुनः चारों कोणों में दो-दो करके आठ त्रिशूल बनाकर यन्त्र को पूर्ण कर इसका विधिवत् पूजन करना चाहिये।

तारेऽमुमपि लिखित्वा तद्बाह्येऽनलपुरं समापुटितम्।
तद्बाह्यके चतुर्दलमब्जं स्यात्तद्बहिश्चाऽष्टदलम्।।
बाह्ये षोडशपत्रं मण्डलमाखण्डलीयमपि बाह्यम्।
शूकरबीजे साध्यक्षेत्राख्यं चक्रमन्त्रमस्रिषु च।।
रन्ध्रेष्वंगमनूनपि दलमूलेऽष्टार्णकेसराणि लिखेत्।
अष्टावष्टौ दलमनु शूकरमन्त्रस्य चाक्षरान् क्रमशः।।
अन्तेऽवशिष्टमक्षरमथाष्टपत्रे स्वराख्यकिंजल्के।
वर्णांश्चतुरश्चतुरपि तथाऽष्टमे पंच चालिखेत्पत्रे।।
व्यंजनकिंजल्केऽन्त्ये द्वौ द्वौ त्रयमन्त्यके दले विलिखेत्।
तारमहीकोलार्णैः प्रवेष्टयेत्साध्यवर्णपरिपुटितैः।।

अष्टोर्ध्वशतं मन्त्री दिनशो यो वा जुहोति शालीभिः।
स तु वत्सरेण मन्त्री विराजते व्रीहिपुंजपूर्णगृहः।। (वही, २४/३५)

विभिन्न अभिलाषाओं की पूर्ति के लिये

जो साधक उक्त वराह मन्त्र से घृत का दस हजार हवन करता है, उसे एक ही बार के हवन से स्वर्ण की प्राप्ति होती है। त्रिमधुरयुक्त अंजलिनी के १ हजार पुष्पों के हवन करने से बहुमूल्य वस्त्र प्राप्त होते हैं। मधुसहित लाजा का हवन करने से अभीप्सित कन्या और बहुमूल्य रत्नों की तथा त्रिमधुरयुक्त लाजा का हवन करने समग्र लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

मन्त्रेणाऽनेन सर्पिर्जुहुत दशशतं मण्डलात् स्वर्णसिद्धिः।
स्वाद्वक्तेनांजलिन्या अपि कुसुमसहस्रेण वा वाससांच।
लाजानां कन्यकाया अपि च मधुयुजां होमतो वांछितायाः
सिद्धी रत्नोत्पलानामपि मधुरयुजां स्याद्धुताच्छीः समग्रा।।
(वही, २४/३६)

एकाक्षर वराह मन्त्र

व्योम (ह्) पर आसीन दण्डी (दण्ड अर्थात् अनुस्वार वाला) अर्घीश (ऊं) 'हूं' वराह मन्त्र कहा जाता है। इस मन्त्र की विधिपूर्वक साधना से अनुपम सिद्धि की प्राप्ति होती है।

दण्ड्यार्घीशो व्योमासनस्तु वाराहमुच्यते बीजम्।
अमुना तु साधितेन प्राप्स्यन्ति नराः सिद्धिमतुलतराम्।। (वही, २४/३७)

वराह मन्त्र-साधना-विधि

एकाक्षर वराह मन्त्र 'हूं' की साधना वराह यन्त्र में की जाती है। वराह यन्त्र बनाने के लिये पहले 'ओं' लिखकर उसके भीतर वराह मन्त्र 'हूं' लिखना चाहिये। फिर ओं के बाहर षट्कोण बनाकर उसके बाहर चतुर्दल कमल, उसके बाहर अष्टदल कमल और उसके बाहर षोडश दल कमल बनाना चाहिये। षोडशदल कमल के बाहर एक वृत्त बनाकर उसके बाहर चतुरस्र बनाना चाहिये। इस प्रकार यन्त्र के रेखांकन के अनन्तर ओंकार के भीतर स्थित वराह बीज 'हूं' के भीतर साध्य के क्षेत्र का नाम (लिखकर उसे आगे 'एतत् क्षेत्रपत्तिवं मे देहि' लिखना चाहिये। यदि क्षेत्र का नाम ज्ञात न हो तो साध्य का नाम लिखकर उसके आगे 'एतत् भूपतित्वं मे देहि' लिखना चाहिये)।

आराध्य चाऽष्टोर्ध्वशतं प्रमाणं साज्येन मन्त्री हविषाऽथ तेन।
सप्तारवारं जुहुयाद् यथावत् क्षेत्रोत्थितापत्प्रशमं प्रयाति।।

(वही, २४/२६-३०)

भू-विवाद एवं भूतादि जनित बाधा की निवृत्ति

शुक्रवार को प्रातःकाल उक्त प्रकार से मिट्टी लाकर उससे हवि तैयार कर पूर्वोक्त विधि से हवन कर प्रेत, वेताल, पिशाच तथा डाकिनी आदि भू-विरोधियों को उस हवि से ही बलि प्रदान करे। इस प्रकार सात शुक्रवारों को उक्त विधि से हवन करने से उक्त भू-विरोधियों द्वारा उत्पन्न भूमिविवाद समाप्त हो जाते हैं।

भृगुवारे च मुखेऽह्नः संगृह्य मृदं हविः सुसम्पाद्य।
जुहुयादीरितविधिना बलिमपि दद्यान्महीविरोधेषु।।
हुतक्रियैवं दिवसैश्च सप्तभिः प्रणाशयेद्भूमिविवादसंकटम्।
परेतवेतालपिशाचडाकिनीसमुत्थितांचाविकृतिं विधिस्त्वयम्।।

(वही, २४/३१-३२)

बहुमूल्य भूमि की प्राप्ति

उपर्युक्त प्रकार से दो स्थलों से लायी गई मिट्टियों को दूध में मिलाकर हवि तैयार करके घृत के साथ १००८ हवन करने से केवल दो बार के हवन से ही बहुमूल्य भूमि साधक के अधिकार में आ जाती है।

विलोड्य तामेव मृदं च दुग्धे हुनेद्घृतेनाऽष्टयुतं सहस्रम्।
द्विमण्डलादेव मही महार्घ्या स्यान्मत्रिणोऽस्यैव तु निःसपत्ना।।

(वही, २४/३३)

गृहस्थ-जीवन की सफलता के लिये

जो साधक वराह मन्त्र से अमलताश की १० हजार समिधाओं का हवन करता है, उसकी गृहस्थी सफलता के साथ चलती है और धीरे-धीरे उसकी भू-समृद्धि में भी वृद्धि होती जाती है।

नृपतरुसमिधामयुतं मन्त्रेणाऽनेन यो हुनेन्मन्त्री।
गृहयात्राऽस्य न सीदेत् क्षेत्रादिकमपि वर्धते क्रमशः।। (वही,२४/३४)

अन्न-समृद्धि के लिये

जो साधक वराह मन्त्र से प्रतिदिन शाली का १०८ हवन करता है, वर्ष भर के भीतर ही उसका घर शाल्यादि अन्नों से भर जाता है।

ध्यातः सन् भूगृहेऽसौ भुवमतुलतरां वारुणे शान्तिमुच्चै-
राग्नेये वश्यकृत्या (कीर्त्या)दिकमनिलपुरस्थोऽयमुच्चाटनादीन्।
रक्षां व्योम्नोऽरिभूतग्रहविषदुरितेभ्योऽनिलाग्न्योश्च पीडां
युद्धे वह्नीरयोर्वै जयमपि सुतरां संविधत्ते वराहः।।

(वही,२४/२७)

क्षेत्रविवाद की शान्ति

सूर्य के सिंह राशि में (१७ अगस्त से १६ सितम्बर तक) आने पर शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथि को साधक स्वयं को वराहरूप मानता हुआ दस पल के बराबर (४० तोला) पंचगव्य, बिल्व आदि से बने किसी पवित्र पात्र में रखकर उस पात्र को एक श्वेत वर्ण की शिला पर स्थापित कर पूर्व की ओर मुख करके उक्त वराह मन्त्र के १० हजार जप से शिला को अभिमन्त्रित करके विवादित भूमि में गाड़ दे। इससे शत्रु द्वारा उत्पन्न विवाद शान्त हो जाता है।

हरिस्थेऽर्केऽष्टम्यामथ सितरुचौ कोलवपुषा
सितां गव्यैः सर्वैर्युतमयुतजप्तामपि शिलाम्।
उदग्वक्त्रो मन्त्री मनुजपरतः स्थापयतु ता-
मयत्नं क्षेत्रेषु द्रुतमरिनिरोधं शमयति।। (वही, २४/२८)

एक अन्य प्रयोग

साधक स्वयं को वराह मानता हुआ किसी मंगलवार को सूर्योदय के तुरत बाद वराह मन्त्र का जप करता हुआ मृत्तिका का एक भाग जप वाली जगह से तथा एक भाग शत्रु द्वारा बलात् छीनी गई भूमि से लेकर उन दोनों को मिलाकर उसके तीन बराबर भाग करे। तदनन्तर एक भाग से चूल्हे को लीपे, दूसरे से पकाने वाले पात्र को और तीसरा भाग पानी में घोलकर उसे दूध में पकाकर हवि बनाये। तदनन्तर उस हवि को घृत के साथ मंगलवार को सुसंस्कृत अग्नि में १०८ हवन करें। इस प्रकार ७ मंगलवारों तक हवन करने से भूमि से सम्बन्धित समस्त विवाद समाप्त हो जाते हैं।

भौमे वारेऽथ भानूदयमनु जपवान् सन् गृहीत्वा मृदंशं
कोलात्मा वैरिरुद्धादपि च कुतलतस्तं च कृत्वा गुणांशम्।
एकं जातौ विलिम्प्यात्पुनरपरतरं पाकपात्रे तथाऽन्य-
तोये तस्मिन् सुदुग्धे प्रतिपचतु हविः संस्कृते हव्यवाहे।।

दंष्ट्रायां वसुधा सशैलनगराण्यापगा हुंकृतौ
वागीशी श्वसितेऽनिलो रविविधू बाह्वोश्च दक्षान्ययोः।
कुक्षौ स्युर्वसवो दिशः श्रुतिपथे दस्रौ दृशो पादयोः
पद्मोत्थो हृदये हरिः पृथगमी पूज्या मुखे शंकरः।। (वही, २४/२४)

जप-हवनादि तथा प्रयोग

भूसमृद्धि की प्राप्ति

वराह मन्त्र की सिद्धि के लिये साधक को चाहिये कि वह विधिवत् गुरु से दीक्षा ग्रहण कर वराह मन्त्र का तीन लाख जप पूर्ण करके घृत-पायसादि हव्य द्रव्यों का ३० हजार हवन करे। पूजा तथा जप हवनादि से प्रसन्न वराह साधक को अतुल भू-सम्पत्ति प्रदान करते हैं।

एवं काले कोलमभ्यर्चयित्वा जप्यो मन्त्रोऽसौ पुनर्लक्षसंख्यम्।
होमं कृत्वा तद्दशांशैश्च पद्मै स्त्रिस्वाद्वक्तैः प्राप्नुयाद्भूसमृद्धिम्।।
(वही, २४/२५)

धन-धरा तथा इन्दिरा-प्राप्ति

भगवान् वराह का ध्यान करने भर से ध्याता को धन की प्राप्ति होती है और यदि वराह मन्त्र का जप किया जाय तो भूमिहीन व्यक्ति भी भूमि प्राप्त करता है। लेकिन यदि वराह का ध्यान, अर्चना, उनके मन्त्र का जप और मन्त्र से आहुति दी जाय तो साधक को धन, धरा और इन्दिरा की भी शीघ्र ही प्राप्ति होती है।

ध्यानादपि धनसिद्धिर्मन्त्रजपाच्चाऽधरो भवेत् सधरः।
जपपूजाहुतिविधिभिर्मंक्षु नरो धनधरेन्दिरावान् स्यात्।। (वही, २४/२६)

भू-मण्डलादि में ध्यान के फल

भूगृह अर्थात् चतुरस्र (मूलाधार) में स्थित वराह का ध्यान करने से प्रभूत भूसम्पत्ति, अर्धचन्द्राकार जलमण्डल (स्वाधिष्ठान) में ध्यान से शान्ति, त्रिकोणाकार अग्निमण्डल (मणिपूर) में ध्यान से वशीकरण की शक्ति या कीर्ति, षट्कोणाकार वायुमण्डल (अनाहत) में ध्यान से उच्चाटन-शक्ति, वृत्ताकार व्योम-मण्डल (विशुद्ध) में ध्यान से शत्रु-ग्रहादि भय तथा पापों से रक्षा, त्रिकोणाकार अग्निमण्डल के भीतर षट्कोणाकार वायुमण्डल के भीतर त्रिकोणाकार अग्नि-मण्डल में ध्यान से शत्रुओं को पीड़ा तथा त्रिकोण के भीतर षट्कोणात्मक वायुमण्डल में ध्यान करने से युद्ध में विजय प्राप्त होती है।

नमो भगवते हृदयाय नमः, वराहरूपाय शिरसे स्वाहा, भूर्भुवःस्वःपतये शिखायै वषट्, भूपतित्वं मे कवचाय हुं तथा आग्नेयादि उप दिशाओं वाले दलों में क्रमशः 'देहि द दापय स्वाहा अस्त्राय फट्' अंग मन्त्र लिखकर इनसे अंगपूजा करनी चाहिये। तदनन्तर दलों के अग्रभाग में वराह के चक्र, शंख, कृपाण, खेट, गदा, शक्ति, वरद एवं अभय मुद्रांकित आयुधों की तथा दलों के बाहर दशों दिशाओं में इन्द्रादि लोकपालों और उनके आयुधों की गन्धाक्षत, धूपदीपादि से षोडशोपचार पूजा करनी चाहिये।

अष्टपत्रमथ पद्ममुल्लसत्कर्णिकं विधिवदारचय्य च।
मण्डलं रविसहस्रनिभं शूकरं यजतु तत्र सिद्धये।।
प्राग्दक्षिणप्रत्यगुदग्दिशासु चत्वारि चांऽगानि यजेत्क्रमेण।
अस्त्रं विदिक्षूर्ध्वमधश्च चक्राद्यस्त्राणि पूज्यानि वराहमूर्तेः।।
अरिशंखकृपाणखेटकसंज्ञान् सगदाशक्तिवराभयाह्वयांश्च।
अभिपूज्य दिशाधिपान् यथावद्वरगन्धाक्षतपुष्पधूपदीपैः।।

(वही, २४/२१-२३)

वराह यन्त्र निर्माण-विधि

शंकर ने भगवान् वराह की पूजा के प्रयुक्त यन्त्र के निर्माण की विधि को और भी स्पष्ट करते हुए लिखा है कि अष्टदल कमल की कर्णिका में वराह बीज 'हूं', बीज के चारों ओर वराह मन्त्र के ही अंगमन्त्र, केसरों में चार-चार करके सोलह स्वर, आठों दलों के मध्य वराह मन्त्र के चार-चार वर्ण, तैंतीसवां वर्ण कर्णिका के मध्य वराह बीज के पार्श्व में, दलों के बाहर के वृत्त में व्यंजन वर्ण, वृत्त के बाहर वराह के आयुध और इनके बाहर इन्द्रादि लोकपाल पूजे जाने चाहिये। फिर इस यन्त्र के बाहर एक चतुरस्र निर्मित कर उसके कोणों में वराह बीज 'हूं' अंकित किया जाय।

सर्वदेवमय भगवान् वराह के दांत पर नगर, पर्वत तथा नदियों सहित धरती, हुंकार में सरस्वती, श्वासों में वायु, दाईं और बाईं बाहों में क्रमशः सूर्य और चन्द, कुक्षि में अष्ट वसु, कर्णछिद्रों में दशों दिशाएं, आंखों में अश्विनी कुमार, चरणों में ब्रह्मा, हृदय में विष्णु और मुख में शंकर का वास है। अतः वराह की पूजा में उनके शरीर के इन अंगों में उक्त देवों की भी अलग-अलग अर्चना की जानी चाहिये।

और शीर्ष से लेकर ललाटपर्यन्त आकाश की भांति द्युतिमान अपनी आठ भुजाओं में से छह में क्रमशः चक्र, शंख, असि, खेटक, गदा तथा शक्ति नामक आयुध तथा शेष दो में वर तथा अभयमुद्राधारी एवं एक दांत पर धरती को धारण किये भगवान् वराह का ध्यान करना चाहिये।

जान्वोरापादमुद्यत्कनकमिव हिमप्रख्यमाजानु नाभेः
कण्ठादानाभि वह्निप्रभमथ शिरसश्चागलं नीलवर्णम्।
मौलेर्व्योमाभमाकं करलसदरिशंखासिखेटं गदाश-
क्त्याष्टाभीतिहस्तं प्रणमत वसुधोल्लासिदंष्ट्रं वराहम्।। (वही, २४/१८)

यदि साधक की रुचि हो तो वह सजल बादलों की भांति फैली श्यामाभ भुजाओं वाले, पर्वत के समान विशाल शरीर, श्वेतदन्त पर धरा को धारण किये हुए भगवान् वराह का ध्यान कर सकता है।

सजलाम्बुवाहनिभमुद्यद्दोःपरिघं धराधरसमानतनुम्।
सितदंष्ट्रिकाधृतभुवं त्वथवा परिचिन्तये त्सपदि कोलममुम्।।
(वही, २४/१६)

साधक अपने मूलाधारस्थ चतुरस्र पृथिवी मण्डल में स्थित स्वर्णाभ, अर्धचन्द्राकार जलमण्डलीय स्वाधिष्ठान में हिमाभ, त्रिकोणाकार आग्नेय मण्डलस्थ नाभि के मणिपूर में अग्निवर्णी, षट्कोणाकार हृदयवर्ती, अनाहत में कृष्णवर्णी, वृत्ताकार आकाश मण्डलस्थ कण्ठवर्ती, विशुद्धचक्र में नीलाभ और मनोमण्डल के आज्ञाचक्रस्थ सत्य लोक में सत्, चिद् और आनन्द के रूप में वराह का ध्यान करे। तात्पर्य यह कि साधक को चाहिये कि वह भगवान् वराह का ध्यान करते समय अपने समस्त भौतिक शरीर को भी ब्रह्माण्ड का प्रतिरूप मानकर अपने शरीर के पार्थिवादि मण्डलों में उल्लिखित आभा वाले भगवान् वराह का चिन्तन करे।

हेमप्रख्यं पार्थिवे मण्डले वा नीहाराभं नीरजेऽग्नेस्तदाभम्।
वायोः कृष्णं द्युप्रभं वा दिविष्ठं क्रोडं व्याप्तं सत्यसंस्थं यजेद्वा।।
(वही, २४/२०)

आवरण-पूजा

वराह की आवरण-पूजा के लिये अष्टदल कमल का निर्माण कर उसकी कर्णिका के मध्य वराह बीज 'हूं', पूर्वादि मुख्य दिशाओं के दलों में क्रमशः 'ओं

ऋषिस्तु भार्गवः प्रोक्तोऽनुष्टुप् छन्द उदीरितम्।
वराहो देवता चाऽस्य कथ्यन्तेंऽगान्यतः परम् (वही, २४/१५)

षडंगन्यास

इसका अंगन्यास एकशृंग, व्योमोल्काय, तेजोधिपति, विश्वरूप तथा महादंष्ट्र से अथवा मन्त्र के क्रमशः सात, छह, सात, पांच तथा आठ वर्णों से किया जाता है।

अस्यैकशृंगो हृदयं शिरोऽपि व्योमोल्कतेजोऽधिपतौ शिखा च।
स्याद् विश्वरूपः कवचं महादिदंष्ट्रोऽस्त्रमुक्तं स्वयमेव चाऽंगम्।।
ससप्तभिः पुनः षड्भिः सप्तभिश्चाथ पंचभिः।
अष्टभिर्मूलमन्त्रार्णैर्विदध्यादंगकल्पनाम्।। (वही, २४/१६ १७)

उक्तानुसार न्यासादि निम्न प्रकार से किये जायँगे—

ऋष्यादिन्यास

भार्गवर्षये नमः शिरसि, अनुष्टुब् छन्दसे नमः मुखे,
वराहदेवतायै नमः हृदि, हुं बीजायनमः गुह्ये,
स्वाहा शक्तये नमः पादयोः।

षडंगन्यास

एकशृंगाय हृदयाय नमः हृदि,
व्योमोल्काय शिरसे स्वाहा शिरसि,
अधिपतये शिखायै वषट्, विश्वरूपाय कवचाय हुं,
महादंष्ट्राय अस्त्राय फट्।

अथवा

ओं नमो भगवते हृदयाय नमः, वराहरूपाय शिरसे स्वाहा,
भूर्भुवःस्वःपतये शिखायै वषट्, भूपतित्वं मे कवचाय हुं,
देहि द दायप स्वाहा अस्त्राय फट्।

ध्यान

न्यासादि विधि के पश्चात् जानु से पादतलपर्यन्त निखरे हुए स्वर्ण की आभा, जानु से नाभिपर्यन्त हिम की भाँति पारदर्शी श्वेत, कण्ठ से नाभिपर्यन्त अग्नि की भांति प्रखर तेजस्वी, सिर से लेकर गले की केसरों तक नीलवर्ण वाले

**एवं प्रोक्तैः प्रतिजपहुतार्चादिभिर्मन्त्रमेनं
भक्त्या यो वा भजति मनुजो नित्यशः सोऽचिरेण।
इष्टैः पुत्रैर्धनधरणिधान्यादिभिर्हृष्टचेताः
स्यादप्यन्ते परमपरिशुद्धं परं धाम विष्णोः।।** (वही, २४/१२)

वराह मन्त्र-साधना

'ओं नमो भगवते वराहरूपाय भूर्भुवःस्वःपतये भूपतित्वं मे देहि द दापय स्वाहा' ३३ अक्षरों वाले इस मन्त्र को वराह मन्त्र कहा जाता है।

प्रपंचसारसार में टिप्पणी में कहा गया है कि **'ददधातोरपि अनिटि सेटि वा ददापय इति रूपसिद्धिः चिन्तनीया। अतः देहि दापय इत्येव पाठो युक्तः इति भाति।'** किन्तु, टिप्पणीकार का कथन ही त्रुटिपूर्ण है। यदि 'देहि दापय' माना जायगा तो यह वराह मन्त्र ३३ अक्षरों का नहीं रह जायगा, ३२ अक्षरों वाला हो जायगा। टिप्पणीकार ने इसके लिये एक सरल उपाय अपना लिया है। उन्होंने 'मे' शब्द को दुहराकर ३३ की संख्या पूर्ति कर ली है। लेकिन, आचार्य शंकर का अभिप्रेत यह नहीं है। उन्होंने **'देहीत्याभाष्य दान्तं सुमतिरथ दापयस्वेति हान्तम्'** लिखा है। इसका सीधा अर्थ है 'सुमति को चाहिये कि वह 'द' अन्त वाला 'देहि' बोल कर दापय स्वाहा' बोले।' इस प्रकार मन्त्र का रूप होगा 'देहि द दापय'। यहां 'द' दापय का अंग नहीं है, जैसा टिप्पणीकार ने समझा है। वास्तव में, 'द' सम्बोधन पद है, जो दाता या देने वाले के अर्थ में (ददानि इति द) प्रयुक्त हुआ है। 'देहि द दापय' का सीधा-सा अर्थ है—हे दाता ! तुम दो और दिलाओ। टिप्पणीकार ने अनवधानवश 'द' को दापय का ही अंश समझ लिया है।

**अथ कथयामि विधानं महावाराहाभिधानमन्त्रस्य।
सांऽगं सजपं सहुताराधनमपि मन्त्रिणामभीष्टाप्त्यै।।
वाक्यं प्रोक्त्वा हृदाख्यं तदनु भगवतेयुग्वराहं च रूपा-
येत्युक्त्वा व्याहृतीनामुपरि च पतये भूपतित्वं च मेऽन्ते।
देहीत्याभाष्य दान्तं सुमतिरथ पुनर्दापयस्वेति हान्तं,
प्रोक्त्वा तारादिकं प्रोद्धरतु मनुवरं तं त्रयस्त्रिंशदर्णम्।।**
(वही, २४/१३-१४)

वराह मन्त्र के ऋष्यादि

इस वराह मन्त्र के ऋषि भार्गव, छन्दस् अनुष्टुब्, देवता वराह, बीज हूं तथा शक्ति स्वाहा है।

आराध्य चैवं विधिनाऽथ विष्णुं मन्त्री पुनर्होमविधिं करोतु।
श्रीवृक्षदुग्धोत्थसमिद्भिरब्जैः साज्येन दौग्धेन च सर्पिषा च।।
पृथगष्टशतं क्रमेण हुत्वा कनकाद्यैरपि तर्पिते गुरौ च।
अभिषिच्य तथाऽभिपूज्य विप्रान् मनुमेनं प्रजपेदथाष्टलक्षम्।।
द्रव्यैस्तैः प्रतिजुहुयाद्दशांशमानैराचार्यं पुनरपिपूजयेज्जपान्ते।
स प्राप्नोत्यपरिमितां श्रियं च कीर्तिं कान्तिं चाऽचिरमनुरज्यते च लोकैः।।
(वही, २४/५-८)

श्रीकर मन्त्र के विभिन्न प्रयोग

अकालमृत्यु तथा रोग से मुक्ति

जो साधक घृतसिक्त दूर्वा, आज्य और दुग्धान्न आदि हवि से १० हजार हवन कर बचे हुए हवन द्रव्य का भक्षण करके यथाशक्ति गुरु को दक्षिणा तथा हवन में भाग ले रहे ब्राह्मणों को साधना के दिनों में भोजन कराता है, वह अकाल मृत्यु, विभिन्न रोग तथा शारीरिक-मानसिक पापों पर विजय प्राप्त कर लेता है।

दूर्वां घृतप्रसिक्तां जुहुयादयुतं नरस्तु हुतशिष्टैः।
आज्यैश्चरुमुपयुञ्ज्याद् दद्याद् गुरवे च दक्षिणं शक्त्या।
परिभोजयेच्च विप्रांस्तेषु दिनेषु स्वशक्तितो भक्त्या।
अपमृत्युरोगपापान् विजित्य स तु दीर्घमायुराप्नोति।।(वही, २४/९-१०)

अन्नसमृद्धि के लिये

जो साधक प्रतिदिन सूर्य की ओर मुख करके अपनी दोनों बाहों को उठाये श्रीकर मन्त्र का जप करता है, उसके घर में अतिशीघ्र प्रभूत अन्न-समृद्धि प्राप्त होती है।

अनुदिनमादित्याभिमुखः प्रजपेदूर्ध्वीकृतस्वबाहुयुगः।
तस्य गृहेऽन्नसमृद्धिश्चिराय संजायते सुष्ठुतरा।। (वही, २४/११)

इष्टमित्रादि समृद्धि

जो व्यक्ति उपयुक्त विधि से श्रीकर मन्त्र का जप, अर्चन तथा इससे हवन करता है, वह इस जीवन में इष्ट, मित्र, पुत्र, धन-धान्य से समृद्ध रहता है तथा मृत्यु के अनन्तर वह भगवान् विष्णु के परम धाम को प्राप्त होता है।

ध्यान

श्रीकर मन्त्र की साधना में उक्त न्यासोपरान्त दुग्ध के सागर के बीच सुशोभित द्वीप में कल्पवृक्ष की छाया में गरुड़ की पीठ पर स्थित कमलासन पर विराजमान, हाथों में शंख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किये, विभिन्न प्रकार के रत्न-जटित मुकुट से सुशोभित स्वर्णवर्णी भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुए प्रार्थना करनी चाहिये कि वे हमारे-आपके लिये कल्याणकारी हों।

दुग्धाब्धिद्वीपवर्यप्रविलसत्सुरोद्यानकल्पद्रुमाधो-
भद्राम्भोजन्मपीठोपरिगतविनतानन्दनस्कन्धसंस्थः।
दोर्भिर्बिभ्रद्रथांऽगं सदरमथि गदापंकजे स्वर्णवर्णी-
भास्वन्मौलिर्विचित्राभरणपरिगतः स्याच्छ्रिये वो मुकुन्दः।।

(वही, २४/४)

आवरण-पूजा

वैष्णव पीठ पर निर्मित अष्टदल कमल की कर्णिका में भगवान् गोविन्द का आवाहन कर कर्णिका में अंगमन्त्र, दल की पूर्वादि मुख्य दिशाओं में क्रमशः श्री, रति, धृति तथा कान्ति, उप दिशाओं में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध, गोविन्द के दक्षिण-वाम में क्रमशः शंखनिधि, पद्मनिधि, बाएं पार्श्व में ही विष्वक्सेन तथा दल के बाहर इन्द्रादि दिक्पालों की षोडशोपचार अर्चना करनी चाहिये। आवरण-पूजा समाप्त करके श्रीकर मन्त्र से बिल्व अश्वत्थादि वृक्ष की समिधाओं, कमल, घृतयुक्त पायस और घी से अगल-अलग १०८-१०८ बार हवन करना चाहिये।

यह लघु हवन-विधि पूर्ण होने के बाद गुरु को पर्याप्त स्वर्णादि दक्षिणा देकर यज्ञ में भाग ले रहे ब्राह्मणों को भी दक्षिणादि से सन्तुष्ट करना चाहिये। इस प्रथम हवन के बाद साधक को चाहिये कि वह श्रीकर मन्त्र का आठ लाख जप पूर्ण करके उक्त हवन द्रव्यों से ८० हजार हवन करे। इस हवन-विधि की समाप्ति के अनन्तर साधक को चाहिये कि वह आचार्य गुरु को दक्षिणादि देकर पुनः सम्मानित करे। इस विधि से श्रीकर मन्त्र सिद्ध हो जाता है। सिद्ध श्रीकर मन्त्र अपने साधक को लक्ष्मी, कीर्ति, कान्ति तथा दीर्घायु प्रदान करता है।

दिक्पत्रेषु श्रीरतिधृतिकान्तीः कोणगतेषु मूर्तीश्च।
इष्ट्वाऽभितो निधीशौ विष्वक्सेनं च दिक्पतीन् प्रयजेत्।।

ऋष्यादिन्यास

वामदेवर्षये नमः शिरसि, पंक्तिच्छन्दसे नमः मुखे,
हरिदेवतायै नमः हृदये, श्रीं बीजाय नमः गुह्ये,
स्वाहा शक्तये नमः पादयोः।

अंगन्यास

भीषय भीषय हुं हृदयाय नमः,
त्रासय त्रासय हुं शिरसे स्वाहा,
प्रमर्दय प्रमर्दय हुं शिखायै वषट्,
प्रध्वंसय प्रध्वंसय हुं कवचाय हुं,
रक्ष रक्ष हुं अस्त्राय फट्।

अक्षरन्यास

श्रीकर मन्त्र के आठ अक्षरों का न्यास क्रमशः मूर्धा, नेत्रद्वय, कण्ठ, हृदय, उदर, उरुद्वय, जानुद्वय तथा पादद्वय में करने के बाद इस मन्त्र के प्रथम चार अक्षरों का न्यास ब्राह्मणादि चार वर्णों के साथ क्रमशः मुख, बाहु, उरु और चरणों में करने के बाद शेष चार अक्षरों का न्यास अपने को चतुर्भुज विष्णु मानते हुए अपनी चारों भुजाओं में चक्रादिकों के साथ करना चाहिये।

मूर्धाक्षिकण्ठहृदयोदरसोरुजानुपादद्वयेषु लिपिशो न्यसन्तु स्वदेहे।
विप्रादिकान्मुखकरोरुपदेषु वर्णांश्चक्रादिकानपि करेषु ततस्तदस्त्रान्।।

(वही, २४/३)

अक्षरन्यास

उं नमः मूर्धनि, त्तिं नमः नेत्रयोः, ष्ठं नमः कण्ठे,
श्रीं नमः हृदये, कं नमः उदरे, रं नमः उर्वोः,
स्वां नमः जानौ, हां नमः पादयोः ।

ब्राह्मणादिन्यास

उं ब्राह्मणेभ्यो नमः मुखे, त्तिं क्षत्रियेभ्यो नमः बाह्वोः,
ष्ठं वैश्येभ्यः नमः उरौ, श्रीं शूद्रभ्यो नमः पादयोः,
कं चक्राय नमः उर्ध्वदक्षबाहौ, रं शंखाय नमः अधोदक्षबाहौ,
स्वां गदायै नमः ऊर्ध्ववामबाहौ,
हां पद्माय नमः अधोवामबाहौ।

सर्गादर्कः क्षतो विंशतियुगमियुतं शान्तगं चन्द्रबिम्बं।
श्रीबाहुः शुक्रमेदोहरिशयनहकारा मनुः श्रीकराख्यः।।

उपरिलिखित श्लोक में श्रीकर मन्त्र का उद्धार किया गया है। इस श्लोक में पठित सर्ग का अर्थ विसर्ग है। इस विसर्ग से विपरीत क्रम में बारहवां वर्ण 'उ' है। अन्तिम अक्षर क्ष से विपरीत क्रम में बीसवां इ युक्त युगल वर्ण अक्षर 'त्ति' है। शान्तचन्द्रबिम्बं का तात्पर्य श वर्ण के अन्त वाले वर्ण 'ष्' से युक्त चन्द्रबिम्ब नामक वर्ण 'ठ' अर्थात् 'ष्ठ' । इस प्रकार मन्त्र का एक अंश 'उत्तिष्ठ' शब्द निष्पन्न हुआ। इसके पश्चात् है 'श्रीबाहु'। बाहु का पर्याय है कर। अतः श्रीबाहु का अर्थ हुआ 'श्रीकर', अब मन्त्रांश बना 'उत्तिष्ठ श्रीकर'। फिर शुक्र वर्ण (स्), मेद वर्ण (व्), हरिशयन अर्थात् शेषनाग वर्ण (आ), स्वा और अन्त में दीर्घ हकार (हा) 'स्वाहा' मिलने से 'उत्तिष्ठ श्रीकर स्वाहा' रूप श्रीकर नामक अष्टाक्षर मन्त्र निष्पन्न हुआ। 'उत्तिष्ठ श्रीकर स्वाहा' मन्त्र अत्यन्त प्रभावशाली माना जाता है। इस मन्त्र के जप, अर्चना और यथाविहित हवन से साधक को सर्वार्थसिद्धि प्राप्त होती है।

अथोच्यते श्रीकरनामधेयमष्टाक्षरं लोकहिताय तावत्।
येन प्रजप्तेन समर्चितेन हुतेन सिद्धिं समुपैति मन्त्री।।
सर्गादर्कः क्षतो विंशतियुगमियुतं शान्तगं चन्द्रबिम्बं
श्रीबाहुः शुक्रमेदोहरिशयनहकारा मनुः श्रीकराख्यः।

(प्रपंचसारतन्त्र, २४/१-२)

श्रीकर मन्त्र के ऋष्यादि एवं न्यास

श्रीकर मन्त्र के ऋषि वामदेव, छन्दस् पंक्ति, देवता हरि, बीज श्रीं और शक्ति स्वाहा है। इसमें भीष, त्रास, प्रमर्द, प्रध्वंस तथा रक्ष शब्दों में प्रत्येक के आगे 'य' जोड़ने के बाद उनका दो-दो बार (भीषय भीषय, त्रासय त्रासय, प्रमर्दय प्रमर्दय, रक्ष रक्ष) प्रयोग करके क्रमशः अंगन्यास किया जाता है।

ऋष्याद्या वामपंक्ती हरिरपि पुनरंगानि यान्तैर्हुमन्तै-
र्भीषत्रासप्रमर्दप्रसहितगदितध्वंसरक्षैर्द्विरुक्तैः।। (वही, २४/२)

इति सिद्धमुनीन्द्रयक्षविद्याधरगन्धर्वसमहाप्सरसोरगाद्यैः।
प्रतिसेवितमुत्तमं विधानं गदितं तत् पुरुषोत्तमस्यविष्णोः।।
इति जपहुतपूजाध्यानकैः श्रीधरं यो
भजति स तु समग्रां सम्पदैश्वर्यलक्ष्मीम्।
अधरकृतविपक्षां प्राप्य लोकैकवन्द्यो
व्रजति पदमनन्तं लोकवन्द्यस्य विष्णोः।। (वही, २३/७१-७२)



राजीश्चाष्टोऽत्तरशतं जप्त्वा शत्रुगृहे खनेत्।
हयारिकुसुमं वापि पक्षे शुक्लेऽसिते क्रमात्।।
शुक्लं रक्तं वेष्टितं च केशैश्चाऽटनकृद्विपोः।
नित्यं नेत्रसमिद्भिस्तु चाष्टोऽत्तरसहस्रकम्।।
षण्मासन्तु ततस्तेजोवत्यास्तैलं सहस्रकम्।
जुह्वतो म्रियते शत्रुर्द्वेष्टा मासचतुष्टयात्।।
अनेन विधिना वाऽथ स्तम्भनं स्यात्तथैव च।
तथैवाज्याक्तदूर्वाणां होमतो मुच्यते भयात्।। (वही, २३/६४-६७)

अद्भुत गुलिका की प्राप्ति

यदि कोई साधक केवल स्वल्प दुग्धाहार लेता हुआ तीन महीने तक प्रतिदिन अंकोल के घृत से एक हजार आठ हवन पूर्ण कर ले और यह हवन आगे भी जारी रखे, तो किसी दिन ठीक मध्याह्न के समय उसे चन्द्रमा और सूर्य की प्रतिच्छबियां दिखाई देने के साथ ही उसे एक सुदीप्त गुलिका मिलती है। यदि साधक उस गुलिका को अभिमन्त्रित करके धारण करे तो उसे अन्य देवताओं के साथ ही पुरुषोत्तम के भी दर्शन मिलते हैं। इसके अलावा उसे वडवामुख तथा पुष्करयानादि अनेक अद्भुत वस्तुओं के दर्शन होते हैं।

पयोव्रतोऽर्चाजपतत्परश्च त्रिमासमंकोलघृतं सहस्रम्।
नित्यं हुनेच्चैव ततस्त्रिमासे पूर्णे हुताशेऽपि च हूयमाने।।
प्राप्ते च मध्ये दिवसस्य वह्नेः पार्श्वे शशांकप्रतिमा सुदीप्ता।
संदृश्यते वै गुलिका सभानुः सहस्रमष्टोत्तरमेव मन्त्रम्।।
प्रतिमन्त्र्य च तां वहतो गुलिकाममरैरपि दर्शनमस्य भवेत्।
इह सिद्धिरथाऽस्य भवत्यखिला वडवामुखपुष्करयानमुखा।।
(वही, २३/६८-७०)

वास्तव में, आचार्य शंकर ने जिस पुरुषोत्तम विधान का उल्लेख किया है, उसके अत्यन्त प्रभावी और महत्त्वपूर्ण होने के कारण ही इसकी साधना सिद्ध, मुनि, यक्ष, गन्धर्व, अप्सराएं, नागराज आदि सभी करते हैं। जो मानव उक्त विधान के अनुसार भगवान् पुरुषोत्तम के उक्त त्रैलोक्यमोहन मन्त्र का जप-हवन करता है, उसे समग्र ऐश्वर्य लक्ष्मी प्राप्त होती है। वह अपने शत्रुओं को पराजित करता हुआ लोगों की प्रियता प्राप्त करता है और मृत्यु के पश्चात् भगवान् पुरुषोत्तम के परमधाम को जाता है।

यां प्रमदामभिकांक्षति तस्या नामयुतं प्रजपेन्मनुमेतम्।
पक्षमहर्वदनेऽष्टसहस्त्रं सा वशमेति न तत्र विचारः।। (वही, २३/६१)

शासक का वशीकरण

कनेर के पुष्पों से भगवान् पुरुषोत्तम की अर्चना करने के बाद जो व्यक्ति १ हजार आठ कुमुद-पुष्पों का हवन करता है, एक महीने के भीतर उद्धत शासक भी उसका सेवक बन जाता है।

हयारिकुसुमैर्हरिं समभिपूज्य चाऽष्टोत्तरं
सहस्रमपि जुहृवतः शशिभवप्रसूनैः शुभैः।
भवन्त्यवशगा नृपास्त्रिदशभिर्दिनैः किंकराः। (वही, २३/६२)

अपहृत धन की पुनः प्राप्ति

दूसरे के द्वारा चुरायी या छीनी गई संम्पत्ति पुनः प्राप्त करने के लिये कटु (नीम) के तेल अथवा पीपल की समिधा का १ हजार हवन करने से अथवा पुरुषोत्तम मन्त्र का तीन महीने तक प्रतिदिन १ हजार जप करने से धन का अपहर्ता स्वयं साधक को प्रणतिपूर्वक उसका धन वापस सौंप देने के साथ ही विभिन्न उपहारों से साधक को प्रसन्न भी करता है।

परैर्हृतधनस्तथा कटुभवेन तैलेन वा।।
समिद्भिरथ बोधिजैर्दशशतं तथाऽष्टोत्तरं
त्रिमासमथवा जपेद्दशशतं तथा नित्यशः।
स एव पुनरेत्य तद्वसु समाहृतं मन्त्रिणं
प्रणम्य पुनरर्पयेत्समभितोष्य चोपायनैः।। (वही, २३/६२-६३)

मारण-प्रयोग

एक मुट्ठी राई को पुरुषोत्तम मन्त्र के १०८ जप से अभिमन्त्रित कर अथवा कनेर के लाल और सफेद पुष्पों को कुत्ते के बालों (अटनकृद् रिपोः केशैः?) से लपेट कर क्रमश शुक्ल और कृष्णपक्ष में शत्रु के घर के भीतर गाड़ देने, अथवा नेत्र लता की समिधाओं के १ हजार आठ हवन करने से छह मास के भीतर और तेजोवती के तेल से १ हजार हवन करने से चार मास के भीतर ही शत्रु की मृत्यु हो जाती है। इसी प्रकार तेजोवती के तैल से १ हजार हवन करने से शत्रु का स्तम्भन होता है और यदि तेजोवती के तैल से सिक्त तीन-तीन दूर्वादलों का हवन किया जाय तो साधक समस्त भयों से मुक्त हो जाता है।

करनी चाहिये। जो साधक इस प्रकार से भगवान् पुरुषोत्तम की सावरण अर्चना करता है उसे देवताओं के लिये भी दुर्लभ राज्यलक्ष्मी प्राप्त होती है।

अंगानि कर्णिकायामग्न्यादिदलेषु चाऽष्ट लक्ष्म्याद्याः।
ताश्च स्युर्लसरप्रीकीकातुष्वाद्याः सुदर्शने ज्ञेयाः।।
दरचक्रगदामुसलाः पूर्वाद्याशासु चाऽथ कोणेषु।
वह्न्यादिषु शार्ङ्गखड्गांकुशपाशा दिशाधिपाः पूज्याः।।
अंगानि देववर्णानि मदविवशाः शक्तयोऽष्ट लक्ष्म्याद्याः।
चामरहस्ताः सर्वाः स्वलंकृताश्चाऽथ सुन्दर्यः।।
योऽर्चयेत्सकृदप्येवं पुरुषः पुरुषोत्तमम्।
प्राप्य राज्येप्सितां लक्ष्मीं प्राप्नोत्यमरवन्दिताम्।। (वही, २३/५५-५८)

त्रैलोक्यमोहन मन्त्र के विभिन्न प्रयोग

सौन्दर्य-प्राप्ति और रोगमुक्ति

दीप्तिमत् से उत्पन्न (सूर्यमुखी?) के तैल से आठ हजार हवन करने से अत्यन्त कुरूप व्यक्ति भी अत्यन्त रूपवान् और व्याधि-पीड़ित व्यक्ति व्याधिमुक्त हो जाता है।

दुर्भगो वसुसहस्रहुतेन स्यादतीव सुभगश्च मनोज्ञः।
दीप्तिमत्प्रभवतैलवरेण व्याधिमोक्षणपरस्तु तथैव।। (वही, २३/५९)

निर्धनता से मुक्ति के लिये

बिल्व के फलों अथवा कमलों से १२ हजार हवन करने से अकिंचन व्यक्ति भी कुबेर के समान धनवान् हो जाता है तथा १० हजार हवन वह समस्त मानसिक पीड़ाओं से भी मुक्त हो जाता है।

श्रीफलैः प्रजुहुयात्कमलैर्वाऽकिंचनोऽपि रविसहस्रमतोऽसौ।
स्याद्धनाधिपसमोऽयुतसंख्यं जप्तुराधिमुपयाति विनाशम्।।
(वही, २३/६०)

स्त्री-वशीकरण

साधक जिस स्त्री को चाहता है उसके नाम को मन्त्र के साथ पूर्वोक्त रीति से संयोजित कर प्रातःकाल आठ हजार जप करने से वह अवश्य वश में हो जाती है।

ध्यात्वा लक्षार्धसंख्यं जपतु मनुमिमं प्राप्तमन्त्रा (दीक्षोऽ) भिषिक्ताः
द्रव्यैरेतैश्च जुहूवन् भवति मनुवरस्याऽधिकारी क्रियासु।।
शतं दधि घृतं पयः पृथगथऽयुतं साज्यहविषा
शृतेन पयसा हुनेद्रविमितं तथा साक्षततिलैः।
तथा दशदशो (शतो)न्मितं त्रिमधुभिर्वरैश्चार्त्तवफलैः
पलाशसमिधां शतं समभितोषयेत्स्वं गुरुम्।। (वही, २३/५०-५१)

इस विधि से मन्त्र के प्रयोग का अधिकार और गुरु की अनुमति प्राप्त करके साधक को चाहिये कि वह पुनः मन्त्र का ३ लाख जप करे और जप पूर्ण होने के पश्चात् प्रपंचसारतन्त्र के पंचम पटल में लिखित विधि के अनुसार अर्धचन्द्राकार कुण्ड का निर्माण करके कमल, जातिपुष्प और यव से जप संख्या का दशांश हवन करे। इसके बाद यज्ञ में भाग ले रहे ब्राह्मणों को दक्षिणादि प्रदान कर संतुष्ट करे। इस विधि से पुरुषोत्तम की साधना करने से साधक को समस्त सिद्धियां प्राप्त होती हैं। मन्त्र सदा प्रभावशाली और जाग्रत् रहे इसके लिये आवश्यक है कि साधक प्रतिदिन वैष्णव पीठ पर यथाशक्ति भगवान् पुरुषोत्तम की अर्चना करता रहे।

ततो लक्षत्रयं जप्त्वा कुण्डे चाऽर्धेन्दुसन्निभे।
हुनेदम्भोरुहैर्जातिकुसुमैश्च यवैरपि।
दशांशं वैष्णवे वह्नौ ब्राह्मणांश्चैव तोषयेत्।।
अम्भोधारा सदा भिन्ने सेतौ संसिद्धयोऽखिलाः।
यथाऽम्भोनिधिमायान्ति तथा यान्ति निरन्तरम्।।
मन्त्रिणः कृतकृत्यत्वं कांक्षमाणाः पुनः पुनः।
पीठे तु वैष्णवे नित्यं पूजयेत्पुरुषोत्तमम्।। (वही, २३/५२-५४)

पुरुषोत्तम की आवरण-पूजा

भगवान् पुरुषोत्तम की आवरण-पूजा के लिये पहले अष्टदल पद्मचक्र का निर्माण करना चाहिये। पद्म-केसरों के मध्य पुरुषोत्तम, केसरों में अंगदेवता, आग्नेय से लेकर ईशान दिशा के आठ दलों के मूल में क्रमशः मदोन्मत्त, अपने-अपने वस्त्राभूषणों से सुसज्जित, हाथों में चामर लिये लक्ष्मी, सरस्वती, रति, प्रीति, कीर्ति, कान्ति, तुष्टि तथा पुष्टि, पूर्वादि मुख्यदिशाओं के दलों में क्रमशः शंख, चक्र, गदा तथा मुसल तथा आग्नेयादि उपदिशाओं वाले चार दलों में शार्ङ्ग, खड्ग, अंकुश तथा पाश एवं पद्मदलों के बाहर दिक्पालों की पूजा

रही हैं, लेकिन भगवान् की आंखों के लावण्य का सहारा पाकर पुनः-पुनः उठ कर उन्हीं की ओर जा रही हैं। यह भी भावना करनी चाहिये कि भगवान् पुरुषोत्तम के चारों ओर सांसारिक एवं स्वर्गिक भोग की आकांक्षा वाले भोगेच्छु भक्त तथा मोक्ष की कामना वाले महामुनियों का समूह भी बद्धांजलि उपस्थित है।

ऐसी अश्रुसिक्त नयनों वाली, हाथों में कमल-पुष्प लिये और कमल के आकार में अंजलियां बांधे भगवान् के चरण-कमलों को पूजती हुई हजारों सुन्दरियां भरे हुए गले से प्रार्थना कर रही हैं कि 'हे परमेश्वर ! आप हमारे पति बनें।'

विष्वग्बहुप्रकारानेकैः सपरिच्छदैश्च देवगणैः।।
गन्धर्वदैत्यरक्षोयक्षपन्नगैर्मुनीन्द्रैश्च।
संसेवितं पुरंध्रीवृन्दैश्चाऽनंगबाणसंतप्तैः।।
भावहावमधुरस्मितवक्त्रप्रेक्षणस्खलितभाषणजातैः।
स्पष्टकक्षजघनस्तनभारैः स्रस्तवस्त्रचिकुरैर्मदलोलैः।।
क्षरितमदनवारिस्वेदकम्रैर्विवस्त्रैर्मदनविगतलज्जैः स्पन्दमानाधरोष्ठैः।
मृदुतरकरपद्माक्लृप्तनत्यंजलीकैः शिरसि मुषितधैर्यैः कम्पिताशेषगात्रैः।।
ज्वरार्त्तैः श्वसद्भिः पतद्भिः शरीरैः शरैर्दारितैर्मन्मथस्यातिघोरैः।
समाप्यायितैस्तस्य लावण्यदृष्ट्या समुत्थाय विष्णोस्तमेवाभियातैः।।
करतलकल्पितकोकनदैस्तत्पदयुगलं च पुनः परिपूज्य।
नयनजलैः सगद्गदवाक्यैर्भव परमेश्वर पतिः शरणं नः।।
इत्थं सम्प्रार्थितं तं सकलसुरवरस्त्रीसहस्रैरजस्रम्।
दिव्यैर्भोगार्थिभिश्चाऽप्यखिलमुनिवरैर्भक्तितोमुक्तिकामैः।

(वही, २३/४४-४६)

मन्त्र के प्रयोग का अधिकार

भगवान् पुरुषोत्तम के उपर्युक्त स्वरूप का ध्यान करते हुए दीक्षित साधक उक्त मन्त्र का ५० हजार जप पूर्ण करके घृत, दधि तथा दुग्ध का अलग-अलग सौ-सौ अथवा घृतयुक्त खीर का १० हजार अथवा पकाये गये दुग्ध या तिलमिश्रित अक्षतों का १२-१२ हजार या त्रिमधुरयुक्त ऋतुजन्य श्रेष्ठ फलों का १ हजार या पलाश की समिधाओं का १०० हवन कर लेने के पश्चात् अपने गुरु को वस्त्राभूषणादि दक्षिणा से सन्तुष्ट कर लेने के बाद ही साधक पुरुषोत्तम मन्त्र के प्रयोग का अधिकारी हो सकता है।

पुरुषोत्तम का ध्यान

मन्त्र की साधना में कल्पना करनी चाहिये कि भगवान् पुरुषोत्तम की बाईं जंघा पर विराजमान भगवती श्री विष्णु का आलिंगन कर रही हैं। श्री के नेत्रों की पुतलियां पुरुषोत्तम के मुखारविन्द के मदिर रस-पान से कमल के रसपान से मत्त भ्रमरियों की भांति घूम रही हैं। भगवान् का आलिंगन कर रहीं अत्यन्त प्रसन्न और अनुपम सुन्दरी भगवती श्री के बायें हाथ में कमल सुशोभित हो रहा है तथा उनके शरीर पर तपाये हुए शुद्ध स्वर्ण के आभूषण विभूषित हो रहे हैं। अपने प्रिय पुरुषोत्तम के आलिंगन से उत्पन्न रोमांच और हर्ष के कारण मोतियों की भांति झलक रहे प्रस्वेद कणों से श्री का शरीर अलंकृत हो रहा है।

औदार्यकान्तिसौरभलावण्यसुधारसैर्जगत् सकलम्।
सिंचन्तमिव समस्तानुग्रहिणं श्रीमुखाब्जसक्तसुदृशम्।।
यामोरुजंघगतयाऽऽलिंगितदेहं श्रिया मदोत्कटया।
तद्वक्त्राम्बुरुहासवपिपासितभ्रान्तनेत्रषट्पदया।।
रोमांचहर्षनिर्गतजलमुक्तालंकृतांगया सततम्।
वामकरस्थाम्बुजया प्रतप्तकनकाभयातिसुन्दर्या।।
अनुपमसौन्दर्येण च सर्वाभरणैरुपेतयाऽतिमुदा। (वही, २३/४१-४४)

सुरसुन्दरियों आदि का ध्यान

साधना के समय स्मरण करते रहना चाहिये कि भगवान् पुरुषोत्तम देवताओं, गन्धर्वों, दैत्यों, यक्षों, राक्षसों, सर्पराजों, मुनियों से घिरे हुए हैं तथा उनके चारों ओर हाव-भाव, स्मितयुक्त मुख, किंचित् वक्र दृष्टिपात, मदाविष्ट होने के कारण स्खलित हो रही वाणी वाली, खुले हुए कक्ष, जघन तथा पृथुल उरोजों के भार से जिनके वस्त्र और केश-कलाप स्खलित हो रहे हैं।

पुरुषोत्तम के ध्यान में साधक को भावना करनी चाहिये कि भगवान् के प्रति कामभाव के कारण उन देवादि सुन्दरियों के शरीर से प्रस्रवित हो रहे मदजल से उनके शरीर आर्द्र हो रहे हैं, वे विवस्त्र-सी हो रही हैं। कामोद्दीपन की अधिकता के कारण उनमें सामान्य लज्जाभाव नहीं रह गया है, उनके ओंठ कांप रहे हैं, उनकी कमल की आकृति वाली अंजलियां उनके माथे पर जा लगी हैं, उनका धैर्य समाप्त हो गया है, वे कामज्वर से लम्बी-लम्बी श्वासें ले रही हैं, कामदेव के भयंकर बाणों की मार से उनका हृदय विदीर्ण हो गया है, वे लड़खड़ा

देवी-मन्त्र

त्रैलोक्यमोहन मन्त्र की साधना में लक्ष्मी, सरस्वती, रति, प्रीति, कीर्ति, कान्ति, तुष्टि तथा पुष्टि नामक आठ शक्तियों की भी पूजा की जाती है। इनमें से श्री देवी के मन्त्र का उद्धार करते हुए शंकर बताते हैं कि 'भृगु (स्) तथा बिन्दुयुक्त खड्गीश (व) अर्थात् 'स्वं' श्री मन्त्र है। इन लक्ष्म्यादि आठ देवियों की पूजा में क्रमशः प्रत्येक के नाम के आगे इस देवी बीज 'स्वं' के अन्त में सूक्ष्मा (इ), अमर (उ) तथा महासेन (अः) संज्ञक तथा नपुंसक संज्ञक ऋ ॠ ऌ ॡ स्वरों को छोड़कर शेष आठ स्वरों से (सुदर्शनोक्त २२/३० विधि के अनुसार) करना चाहिये।

> भृगुः सबिन्दुः खड्गीशो देव्या मन्त्र उदाहृतः।।
> सूक्ष्मामरमहासेनक्लीबहीनैः स्वरैरसौ।
> लक्ष्म्यादीनां तु शक्तीनां मन्त्राः पूजाविधौ स्मृताः।। (वही, २३/३६)

ध्यान

त्रैलोक्यमोहन मन्त्र की साधना में उदीयमान सूर्य और चन्द्र, घिरते हुए मेघवृन्द, गुनगुनाते हुए भ्रमर-मण्डल, कूजती हुई कोकिलाओं और मुकुलित हो रहे पुष्पों से सुशोभित मनोहर कल्पवृक्षों की वनराजि में, रक्त कमल की कर्णिका के मध्य पक्षिराज गरुड़ पर विराजमान, उदय हो रहे करोड़ों सूर्यों की द्युति लिये, सिन्दूर और नव-विकसित जवापुष्प की आभावाले, हाथों में शंख, धनु, मुसल, पाश, चक्र, खड्ग, गदा तथा अंकुश धारण किये, यौवन की ओर कदम बढ़ा रहे कैशोर्य के अनुपम सुकुमार सौन्दर्य से युक्त अपनी उदारता, कान्ति, आमोद, कीर्ति तथा लावण्य से समस्त जगत् तथा भक्तों को सिक्त कर रहे-से भगवान् पुरुषोत्तम का ध्यान करना चाहिये।

> उद्यद्दिनेन्दुपयोदभ्रमरपिकारावकुसुमसौरभ्ये।
> सुमनोहरे च कल्पकवृक्षोद्याने रमापतिं ध्यायेत्।।
> अरुणारविन्दकर्णिकामध्यगरुडोपरि स्थितं देवम्।
> उद्यद्दिनकरकोटिप्रतिमं सिन्दूरनवजयाकान्तिम्।।
> दरचापमुसलपाशान् चक्रासिगदांकुशान्भुजैर्दधानम्।
> अतिहृद्ययौवनोन्मुखसौन्दर्यातिशयसाम्यनिर्मुक्तम्।
> अतिविह्वलं स्मरस्य शरैरतिरुचिरा...। (वही, २३/३७-४०)

छिन्द छिन्द विदारय विदारय परमन्त्रान् ग्रस ग्रस
भक्षय भक्षय भूतानि त्रासय त्रासय हुं फट् चक्राय नमः।
शंखमन्त्र—जलचराय स्वाहा
गदामन्त्र—महाकौमोदकि बले सर्वासुरान्तकि प्रसीद हुं फट् स्वाहा।
मुसलमन्त्र—संवर्तक मुसल पोथय पोथय हुं फट् स्वाहा।
शाङ्‌र्गमन्त्र—महाशाङ्‌र्गाय सशराय नमः
खड्गमन्त्र—खड्गतीक्ष्ण छिन्द छिन्द महाखड्गाय नमः
अंकुशमन्त्र—महांकुश घट्ट घट्ट महांकुशाय नमः
पाशमन्त्र—महापाश बन्ध बन्ध आकर्षय आकर्षय स्वाहा
पक्षिराजमन्त्र—महापक्षिराजाय स्वाहा।

सुदर्शन महाचक्रराजेत्युक्त्वा धमद्वयम्।
सर्वदुष्टभयान्ते तु कुरुच्छिन्दयुगन्ततः।।
विदारयद्वयान्ते तु परमन्त्रान् ग्रस ग्रस।
भक्षयद्वयभूतानि त्रासयद्वयवर्मफट्।।
चक्राय नम इत्येष चक्रमन्त्रः प्रकीर्तितः।
शंखमन्त्रो जलचराय स्वाहेति परिकीर्तितः।।
कौमोदकि महान्ते तु बले सर्वासुरान्तकि।
प्रसीद हुंफट् स्वाहेति गदामन्त्र उदाहृतः।।
संवर्तकान्ते मुसल पोथयद्वितयं ततः।
हुंफट् स्वाहा मौसलकः शाङ्‌र्गाय सशराय च।।
शाङ्‌र्गस्य खड्गतीक्ष्णान्ते छिन्दयुक् खड्गमन्त्रकः।
अंकुशाद्यं घट्टयुगं चाऽङ्कुशस्य समीरितः।।
सानन्तलोहितवकौ बन्धाकर्षयवीप्सकौ।
वह्निजाया च पाशस्य स्वमुद्राभिर्न्यसेदिमान्।।
स्वाहान्तः पक्षिराजाय तस्य मन्त्रः प्रकीर्तितः।
त्रैलोक्यमोहनायाऽन्ते विद्महे तु समुच्चरन्।।
स्मराय धीमहीत्युक्त्वा तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।
गायत्र्येषा तयाऽर्चासु स्थानद्रव्याणि शोधयेत्।
व्यस्तैर्द्वादशभिर्मन्त्रैर्नमोन्तश्चाऽर्च्यते हरिः। (वही, २३/२६-३५)

पुरुषोत्तम त्रिभुवनमनोन्ममादकरेति च।
हृदयं सकलान्ते च जगत्क्षोभण इत्यपि ।।
सलक्ष्मीदयितेत्येवं शिरोमन्त्र उदाहृतः।
मन्मथोत्तमशब्दान्ते अंगजे कामदीपिनि।।
शिखा सुभगशब्दन्तु परमाद्यन्तदन्ततः।
सर्वसौभाग्य इत्यन्ते करमप्रतिरूपकम्।।
केशवस्मरवर्णान्ते जातिं च कवचं विदुः।
सुरासुरहृदयोर्मध्ये मनुजसुन्दरी।।
विदारणपदं तस्मात् सर्वप्रहरणेति च।
थरसर्वपदान्ते तु कामिकं हनयुग्मकम्।।
हृदयान्ते बन्धनानीत्यथाऽऽकर्षयं वीप्सयेत्।
ततो महाबलेत्येतदस्त्रमन्त्रमुदीरितम्।।
त्रिभुवनेश्वरसर्वान्ते जनेत्युक्त्वा मनांसि च।
हनदारययोर्युग्मं पृथङ्मे वशमानय।।
नेत्रं तारादिकाः सर्वे हुंफडन्ता नमोन्तिकाः। (वही, २३/१६-२३)

पूजा-मन्त्र

न्यासोपरान्त पुरुषोत्तम की अर्चना के अवसर पर पूजा के स्थान तथा पूजा में प्रयुक्त किये जाने वाले द्रव्यों का शोधन विष्णु गायत्री "त्रैलोक्यमोहन विद्महे स्मराय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्" से करने के अनन्तर भगवान् पुरुषोत्तम और उनके अष्टायुधों का ध्यान करते हुए निम्नांकित मन्त्रों से उनकी षोडशोपचार पूजा करनी चाहिये—

त्रैलोक्यमोहनान्ते तु हृषीकेशाप्रतीति च।।
रूपमन्मथ सर्वस्त्रीहृदयाकर्षणेति च।
आगच्छाऽऽगच्छ च नमो मन्त्रः स्याद्व्यापकाह्वयः।।
आवाहनादिविसर्गान्तेषूक्तोऽयं चापि सूरिभिः।। (वही, २३/२३-२५)

पुरुषोत्तम पूजन-मन्त्र

त्रैलोक्यमोहन हृषीकेश अप्रतिरूप मन्मथ
सर्वस्त्रीहृदयाकर्षण आगच्छ आगच्छ नमः

चक्र मन्त्र

सुदर्शन महाचक्रराज धम धम सर्वदुष्टभयं कुरु कुरु

भी 'ओं ह्रीं क्लीं श्रीं तथा नमः' पुरुषोत्तम के पश्चात् साध्य के नाम का प्रयोग और तदनन्तर 'सुरासुरमनुजसुन्दरीजनमनांसि' के बाद दीपय, शोषय, द्रावय आदि आज्ञा पदों का दो-दो बार प्रयोग करने के पश्चात् 'हुं फट् तुरु तुरु' आदि का प्रयोग करना चाहिये। पद्मपाद के अनुसार आज्ञा मन्त्रों का प्रयोग वश्यादि की क्रिया में पुष्पांजलि देने समय किया जाता है। पद्मपाद यह भी बताते हैं कि कुछ मान्त्रिकों के अनुसार घट्टन, ताडन, भेदन, हनन तथा मारण क्रिया में इन मन्त्रों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिये। (वही, द्रष्टव्य विवरण)

न्यासादि

त्रैलौक्यमोहन मन्त्र के ऋषि जैमिनि, छन्दस् जगती, देवता पुरुषोत्तम हैं, बीज ओं तथा शक्ति हुं है।

ऋषिस्तु जैमिनिः प्रोक्तश्छन्दश्च जगतीष्यते।
सर्वलोकशरण्योसौ देवता पुरुषोत्तमः।। (वही, २३/१५)
(शारदातिलक, १७/१२)

ऋष्यादिन्यास

जैमिनि ऋषये नमः शिरसि,
जगतीछन्दसे नमः मुखे, पुरुषोत्तमदेवतायै नमः हृदये,
ओं बीजाय नमः गुह्ये, हुं शक्तये नमः पादयोः।

षडंगन्यास

इस मन्त्र की साधना में षडंगन्यास निम्नांकित रूप से किया जाता है—

ओं पुरुषोत्तम त्रिभुवन मनोन्मादकर हुं फट् नमः हृदयाय नमः,
ओं सकलजगत्क्षोभण लक्ष्मीदयित हुं फट् नमः शिरसे स्वाहा,
ओं मन्मथोत्तम अंगजे कामदीपनि हुं फट् नमः शिखायै वषट्,
ओं परमसुभगद सर्वसौभाग्यकर केशव स्मर हुं फट् नमः कवचाय हुं,
ओं सुरासुरमनुजसुन्दरीहृदयविदारण सर्वप्रहरणधर कामिकं
हन हन हृदयं बन्धय बन्धय आकर्षय आकर्षय
महाबल हुं फट् नमः अस्त्राय फट्।
त्रिभुवनेश्वर सर्वजनमनांसि हन हन दारय दारय मे वशमानय
हुं फट् नेत्राभ्यां वौषट्।

"अवशिष्टं मन्त्रांशमाह—परे सतीति। संबुद्ध्यन्तपदानामुपरि चतुर्थ्यन्ते परपदे च सतीत्यर्थः। चशब्देन मन्त्राणामादिभूत प्रणवोपरि मन्त्रमध्यगतनमःपदयोगः सूचितः। आज्ञापदेष्वपि बीजत्रययोगं वदन् तेषामादौ पुरुषोत्तमपदसंयोगमाह—मध्यनरान्ते च परे इति। मध्य-नरस्य मध्यमपुरुषस्यान्ते उत्तमपुरुषे पुरुषोत्तमे सति परे अन्ये आज्ञामन्त्राः स्युरित्यर्थः"। (वही, विवरण)

द्वादशांगन्यास

उपर्युक्त द्वादशांग मन्त्र के प्रयोग-क्रम का उल्लेख पद्मपाद ने निम्नरूप में किया है—

'ओं नमो ह्रीं पराय पुरुषात्मने हृदयाय नमः।
ओं नमः क्लीं पराय सत्यात्मने शिरसे स्वाहा।
ओं नमः श्रीं पराय अच्युतात्मने शिखायै वषट्।
ओं नमः पुरुषोत्तमपराय वासुदेवात्मने कवचाय हुं।
ओं नमः अप्रतिरूपपराय संकर्षणात्मने नेत्राभ्यां वौषट्।
ओं नमो लक्ष्मीनिवासपराय प्रद्युम्नात्मने अस्त्राय फट्।
ओं नमः सकलजगत्क्षोभणपराय अनिरुद्धात्मने उदराय नमः।
ओं नमः सर्वस्त्रीहृदयविदारणपराय नारायणात्मने पृष्ठाय नमः।
ओं नमः त्रिभुवनमनोन्मादकपराय ब्रह्मणे बाहुभ्यां नमः।
ओं नमः समस्तपरमसुभगपराय विष्ण्वात्मने ऊरुभ्यां नमः।
ओं नमः सर्वसौभाग्यकरपराय नृसिंहात्मने जानुभ्यां नमः।
ओं नमः सर्वकामप्रदपराय वराहात्मने पादाभ्यां नमः। (द्रष्टव्य, वही)

उपर्युक्त रीति से मन्त्र के सम्बोधनान्त पदों के प्रयोग की प्रक्रिया के उल्लेख के अनन्तर पद्मपाद ने आज्ञापदों के प्रयोग की रीति का भी उल्लेख किया है। जैसे—

"ओं ह्रीं क्लीं श्रीं नमः पुरुषोत्तम अमुष्य (साध्य का नाम) सुरासुरमनुजसुन्दरीजनमनांसि तापय तापय हुं फट् तुरु तुरु किं तिष्ठसि तावत् यावत् समीहितं मे सिद्धं भवति हुं फण्नमः"

इसी प्रकार दीपन, शोषण, स्तम्भन, द्रावण तथा आकर्षण आदि प्रयोगों में

का योग करना ही आचार्य शंकर के कथन का तात्पर्य है—'शक्तिश्रीबीजयोग उक्तः'। वास्तव में, साधक अपनी कामना के अनुरूप शक्ति, श्री, काम एवं तार बीजों में से किसी एक अथवा अनेक का योग कर सकता है।

आचार्य शंकर के अनुसार इस मन्त्र में (पुरुषोत्तम ! अप्रतिरूप ! आदि) सम्बोधनान्त मन्त्रपद १२ हैं तथा इतने ही पद आज्ञावाचक (तापय, दीपय आदि) हैं। इस मन्त्र की साधना में अंगन्यासादि में सम्बोधनान्त १२ शब्दों के अन्त में क्रमशः पुरुष, सत्य, अच्युत, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, ब्रह्म, विष्णु, नरसिंह तथा वराह का प्रयोग करना चाहिये। इसी प्रकार आज्ञावाचक शब्दों के अन्त में 'हुं फट्' का प्रयोग करना चाहिये। मन्त्र में प्रयुक्त होने वाले तार, श्री तथा क्लीं बीजों के प्रयोग के क्रम का उल्लेख करते हुए शंकर ने बताया है कि नर बीज अर्थात् काम बीज 'क्लीं' का प्रयोग ह्रीं और क्लीं बीजों के मध्य में करके सम्बोधनान्त पदों के पश्चात् पुरुष-सत्यादि का प्रयोग किया जाना चाहिये।

मन्त्रपदानि द्वादश विद्यादाज्ञापदानि तावन्ति।
संबुद्ध्यन्ता हुंफट्पदान्विताश्चेमे मन्त्राः स्युः।
मध्यनरान्ते च परे गदिता मुनिभिर्मनोरमुष्य पुनः।।

(वही, २३/१४)

उपरिलिखित श्लोक के 'मध्यनरान्ते च परे गदिता' में निहित आचार्य शंकर के तात्पर्य को स्पष्ट करते हुए पद्मपाद कहते हैं कि 'पूर्वोक्त 'ह्रीं क्लीं श्रीं' इन तीनों बीजों में से ह्रीं तथा श्रीं प्रकृति बीज या नारी बीज है। मध्य बीज 'क्लीं' पुरुष बीज है। द्वादशांग न्यासादि के समय इस नरबीज 'क्लीं' का प्रयोग बीच में करना चाहिये। इसी प्रकार सभी मन्त्रों के आदि में प्रयुक्त होने वाले 'ओं' और मन्त्र के शेष अक्षरों के मध्य में 'नमः' पद का प्रयोग होना चाहिये। सम्बोधन पदों की भांति ही आज्ञावाचक 'तापय' आदि पदों के प्रयोग के प्रसंग में भी 'ओं ह्रीं क्लीं श्रीं नमः' के प्रयोग के अनन्तर पुरुषोत्तमादि पदों का प्रयोग करके आज्ञा-वाचक पदों का प्रयोग करना चाहिये।

"बीजत्रितये मध्यस्थो नरः पुरुषः पुरुषोत्तमः कामबीजरूपी मध्य-नरः तस्याऽन्ते पार्श्वे सति पार्श्वद्वयगतशक्तिश्रीबीजद्वये सतीत्यर्थः। अनेन बीजानां प्रयोगक्रमः उक्तः। आमन्त्रणपदानां बीजत्रयेण सार्धं द्वादशसंख्या च पूरिता"।

तापय तापय दीपय दीपय शोषय शोषय मारय मारय स्तम्भय स्तम्भय मोहय मोहय द्रावय द्रावय आकर्षय आकर्षय समस्त-परमसुभग सौभाग्यकर सर्वप्रद सर्वकाम अमुकं हन हन चक्रेण गदया खड्गेन सर्वबाणैः भिन्नय भिन्दय पाशेन घट्टय घट्टय अंकुशेन ताडय ताडय तुरु तुरु किं तिष्ठसि तावद् यावत् समीहितं मे सिद्धं भवतु हुं फट् नमः"।

हृदयपुरुषोत्तमान्ते त्यप्रतिरूपेति चापि संभाष्य।
लक्ष्मीनिवासपरतो जगदादौ सकल इत्युदाहृत्य।।
क्षोभण सर्वपदान्ते स्त्रीहृदयविदारण त्रिभुवनेति।
समनोन्मादकरेति च सुरासुरान्ते वदेन्मनुजपदम्।।
भूयश्च सुन्दरीजनमनांस्यथो तापयादिकान् वीप्सा।
तापय दीपय शोषय मारय मृगुकामिकालवान्ते तु।।
निद्रां बालिनमाभाष्य ब्रूयादपि ततः परम्।
मोहय द्रावयेति च भूयश्चाकर्षयेदित्युदीर्यान्तः।।
समस्तपरमसुभगं सर्वप्रदयोस्तु मध्यतः प्रवदेत्।
सौभाग्यसृष्टिवह्नीन् ससर्वादिकं कामशब्दंच।।
तन्त्री श्रीकण्ठाद्यं सश्रवणं कं हनद्वयंच वदेत्।
चक्रेण वाऽथ गदया खड्गेन च सर्वबाणैश्च।।
भिन्दद्वयं च पाशेनाऽन्ते घट्टयद्वयं समाभाष्य ।
भूयोऽङ्कुशेन ताडय तु(कु)रुयुग्मकं च किंच प्रवदेत्।।
तिष्ठसि तावद्यावत् समीहितं मे समाभाष्य।
सिद्धं भवतु हुं फट् नमोऽन्तिकं मन्त्रमुद्धरेन्मन्त्री।
मन्मथबीजोपेतं ताराद्यं सर्वसिद्धिदं भवति।। (वही, २३/६-१३)

इस मन्त्र के प्रयोग के समय 'अमुकं' पद के स्थान पर साध्य का नाम प्रयुक्त करना चाहिये—'अमुकशब्दं परित्यज्य तत्स्थाने साध्यनामयोग उक्तः।' इति पद्मपादः।

यदि इस मन्त्र के आरम्भ में तार और मन्मथ बीज क्लीं का योग कर दिया जाय तो इसका जप सर्वसिद्धिदायक हो जाता है। सामान्यतया तार का अर्थ 'ओं' है। लेकिन शक्ति-साधना में शक्ति बीज 'ह्रीं' को भी तार ही कहा जाता है। पद्मपाद के अनुसार इस मन्त्र में ओं के साथ शक्तिबीज 'ह्रीं' तथा श्रीबीज 'श्रीं'

त्रैलोक्यमोहन मन्त्र-साधना

त्रैलोक्यमोहन मन्त्र वैष्णव मन्त्रों में सर्वाधिक प्रभावशाली एवं गोपनीय है। इसकी साधना स्त्री-पुरुष दोनों कर सकते हैं। यह परम मन्त्र दुर्भाग्य, व्याधि, दरिद्रता, वार्धक्य, शोक आदि से पीड़ित व्यक्ति को इनसे मुक्ति दिलाने के साथ ही स्वामी-शासकों के अत्याचार से भी छुटकारा दिलाता है। इसकी विधिपूर्वक साधना से सत्पुत्र-स्त्री आदि की प्राप्ति होती है तथा युद्ध में विजय मिलती है। इस मन्त्र के प्रभाव से भूतादि और भौतिक धनादि का कष्ट दूर होता है। स्वयं को दूसरों की नजरों से गोपनीय बनाये रखने, जीवन-यात्रा को सुचारु रूप से चलाये रखने और संसार में सबके साथ प्रिय सम्बन्ध बनाये रखने के लिये त्रैलोक्यमोहन मन्त्र की साधना बहुत फलदायी है। शत्रु और बाधाओं से पीड़ित व्यक्ति इस मन्त्र की साधना करके उनसे मुक्त हो जाते हैं तथा मारण, मोहन, उच्चाटन, द्वेषण तथा आकर्षण की शक्ति-प्राप्ति के इच्छुक साधक त्रैलोक्यमोहन मन्त्र की साधना सें अपनी आकांक्षा पूर्ण कर सकते हैं।

धर्मवित्तसुखमोक्षफलाप्तौ योषितामपि नृणां प्रवरं यत्।
मन्त्ररत्नमतिगुह्यमिदानीं वक्ष्यते मतिमतामपि रम्यम्।।
दौर्भाग्यव्याधिदारिद्र्यजराशोकभयातुराः।
भर्तृराजाभिभूताश्च स्त्रीविघ्नार्तास्तदीप्सवः।।
पुत्रभृत्यार्थिनो युद्धजयकामान्यवंचिताः।
भूतार्थाक्लिष्टसंसारवश्यसंवननार्थिनः।।
बलिसिद्ध्यर्थिनश्चैव अन्तर्धानाभिकांक्षिणः।
शत्रुभिः परिभूताश्च सर्वविघ्नैरुपद्रुताः।।
मारणोच्चाटनद्वेषस्तम्भाकर्षणकांक्षिणः।
भजेयुः सर्वथैवेनं मन्त्रं त्रैलोक्यमोहनम्।। (प्रपंचसारतन्त्र, २३/१-५)

त्रैलोक्यमोहन मन्त्र

आचार्य शंकर के अनुसार त्रैलोक्यमोहन मन्त्र निम्न है—

"नमः पुरुषोत्तम अप्रतिरूप लक्ष्मीनिवास सकलजगत्क्षोभण सर्व-स्त्रीहृदयविदारण त्रिभुवनमनोन्मादकर सुरासुरमनुजसुन्दरीजनमनांसि

"रेखाष्टकं लिखित्वा एकान्तरितमुभयतो बद्ध्वा अष्टाक्षराक्षर-द्वयान्तरितगीतात्रिष्टुप्पादचतुष्कयुतकोष्ठचतुष्कं कुर्यात्। प्रथमं पाद-द्वयमूर्ध्वभागस्थकोष्ठद्वये अपरद्वयमधोभागस्थकोष्ठद्वये मध्यकोष्ठो-भयभागस्थकोष्ठद्वययोः सुदर्शनं मध्यकोष्ठगप्रणवे साध्यादिकं लिखे-दिति यन्त्ररचनाप्रकारः"। (इति विवरणे द्रष्टव्यम्)

सप्तकोष्ठक यन्त्र की रचना भोजपत्र, कौशेय वस्त्र, अथवा पतले-चिकने कपड़े पर करके उसे गोली की तरह लपेट कर लाख के ताबीज में बन्द कर देना चाहिये। तदनन्तर उक्त भस्मादि होम कर होमाग्नि में घृतसम्पात के घृत से यन्त्र को लिप्त करना चाहिये। घृतसम्पात के घृत से अभिलिप्त होने से यह यन्त्र शक्ति से सम्पन्न हो जाता है। इसके बाद सुदर्शन मन्त्र से अभिमन्त्रित कर इस यन्त्र को धारण करने से ग्रहादि जनित सभी प्रकार के विकार नष्ट हो जाते हैं।

भूर्जे वा क्षौमपट्टे तनुमसृणतरे कर्पटे वाऽस्य यन्त्रं
मन्त्री सम्यग्लिखित्वा पुनरपि गुलिकीकृत्य लाक्षाभिवीतम्।
कृत्वा भस्मादिहोमप्रविहितघृतसम्पातपातात्तशक्ति
जप्तं सम्यग्विदध्यात् प्रतिशममुपयान्त्येव सर्वे विकाराः।।

(वही, २२/५७)

उपर्युक्त सुदर्शन मन्त्र का विधिपूर्वक जप, पूजन तथा हवनादि से साधक को इहलोक में समस्त भोग सरलता से ही प्राप्त होते रहते हैं और मृत्यु के पश्चात् उसे मुक्ति भी प्राप्त होती है।

इति जपहुतार्चनाभिर्यन्त्रविशेषैश्च साधु मन्त्रमिमम्।
भजते योऽसौ मन्त्री लभते भुक्तिं सुखेन मुक्तिं च।। (वही, २२/५८)



रक्षाकारक अन्य यन्त्र

गीतोक्त 'स्थाने हृषीकेश...' तथा अष्टाक्षर मन्त्र से विदर्भित या पुटित सुदर्शन मन्त्र 'सहस्रार हुं फट्' का जप और इन तीनों मन्त्रों के संयोजन से रचित यन्त्र विकृत ग्रहादि से साधक की निरन्तर रक्षा करता है।

स्थाने हृषीकेशविदर्भितं च साष्टाक्षरंचाप्यभिजप्तमेतत्।
रक्षां ग्रहादेः सततं विधत्ते यन्त्रं सुक्लृप्तं च मनुत्रयेण।।

(वही, २२/५५)

सप्तकोष्ठक यन्त्र

सप्तकोष्ठक यन्त्र बनाने के लिये उत्तर से दक्षिण की ओर आठ रेखाएं खींच कर सात कोष्ठ निर्मित करना चाहिये। उपर वाले प्रथम कोष्ठ में अष्टाक्षर मन्त्र के प्रथम वर्ण ओं लिखकर गीतोक्त (११/३६) मन्त्र का प्रथम पाद 'स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या' लिख इसके बाद अष्टाक्षर मन्त्र का द्वितीय अक्षर 'न' लिखा जाय। तदनन्तर द्वितीय कोष्ठ में अष्टाक्षर मन्त्र का तृतीय अक्षर 'मो' लिखकर गीतोक्त मन्त्र की द्वितीय पाद 'जगत्प्रहृष्यत्नुरज्यते च' लिखकर इसके अन्त में अष्टाक्षर मन्त्र का चतुर्थ वर्ण 'ना' लिखा जाय। नीचे से द्वितीय यानी छठे कोष्ठ में अष्टाक्षर मन्त्र का पंचम वर्ण 'रा' लिखकर गीतोक्त मन्त्र का तृतीय पाद 'रक्षांसि भीतानि च दिशो द्रवन्ति' के बाद अष्टाक्षर मन्त्र का छठा वर्ण 'य' लिखा जाय। तदनन्तर नीचे से द्वितीय कोष्ठ में पहले अष्टाक्षर मन्त्र का सातवां वर्ण 'णा' लिखकर गीतोक्त मन्त्र का चतुर्थ पाद 'सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः' लिखकर अष्टाक्षर मन्त्र का आठवां वर्ण 'य' लिखा जाय। तदनन्तर ऊपर और नीचे की तीसरी रेखाओं से बंधे बीच के तीन कोष्ठों में साध्य का नाम और सुदर्शन मन्त्र लिखे जायं।

पद्मपाद के अनुसार बीच के उक्त तीनों कोष्ठों में से ऊपर और नीचे वाले कोष्ठों में सुदर्शन मन्त्र और बीच वाले कोष्ठ में ओं के बीच साध्य का नाम लिखा जाना चाहिये।

अष्टाक्षरान्तरितपादचतुष्ककोष्ठं कोष्ठत्रयोल्लिखितसाध्यसुदर्शनं च।
रेखाभिरप्युभयतः श्रुतिशः प्रबद्धं तत्सप्तकोष्ठमिति यन्त्रमिदं प्रशस्तम्।।

(वही, २२/५६)

उच्चाटन-मारण प्रयोग

सोलह स्वरों और 'याहि' पद से घिरे हुए 'सं' अक्षर का जिसके सिर पर चिन्तन जाय, उसका दस दिनों के भीतर ही उच्चाटन होता है और वह महीने भर में मर जाता है।

कलावृतं याहिपदाऽभिवेष्टितं समक्षरं यच्छिरसि स्मरेत् सदा।
दशाहतोऽसौ प्रतिचाट्यते रिपुर्मृतिं तथा मण्डलतः प्रयाति।।

(वही, २२/५१)

उच्चाटन तथा मारण का अन्य प्रयोग

कौए की भांति काले रंग के 'स' अक्षर को जिसके भी सिर पर स्थित चिन्तन किया जाय, सप्ताह भर के अन्दर ही उसका उच्चाटन होता है और वह मर जाता है।

सार्णं (न्तं) वायसवर्णं शत्रोः शिरसि स्मरेच्च सप्ताहम्।
उच्चाटयति क्षिप्रं मारयति वा धियोऽस्य नैशित्यात्।। (वही, २२/५२)

मारण-प्रयोग से बचने के लिये

अमृत की वर्षा कर रही ज्योत्स्ना की छटा वाले 'सं' अक्षर का चिन्तन जिसके भी सिर पर किया जाय वह समस्त बाधाओं से मुक्त होकर दीर्घायु होता है।

स्रवत्सुधावर्षिणमिन्दुसप्रभं समक्षरं यच्छिरसि प्रचिन्तयेत्।
क्षणात्समाप्यायितसर्वविग्रहो भवेत् स मर्त्यः सुचिरं च जीवति।।

(वही, २२/५३)

रक्षाकारक यन्त्र

एक षट्कोण निर्मित कर उसके बीच में 'ओं' तथा छहों कोणों में क्रमशः मन्त्र के छह वर्ण 'स ह स्रा र हुं फट्' स्वर्ण, रजत, ताम्र अथवा पाषाण पर लिख कर इस यन्त्र की विधिवत् अर्चना करके इसे जहां भी स्थापित कर दिया जाय, वहां चोर, दुष्ट ग्रह, शत्रुओं आदि का भय नहीं रह जाता। यह यन्त्र प्रबल रक्षाकारक है।

मध्ये तारं तदनु च मनुं वर्णशः कोणषट्के
बाह्ये चांगं लिखतु कनके रूप्यके चाऽथ ताम्रे।
पाषाणे वा विधिवदभिजप्याऽथ संस्थापितं त-
च्चक्रं चोरग्रहरिपुभयध्वंसि रक्षाकरं च।। (वही, २२/५४)

का, मेधा के लिये पलाश की समिधाओं, वस्त्र की प्राप्ति के लिये श्वेत कमलों, पशुधन की प्राप्ति हेतु घृत, पुत्रप्राप्ति के लिये उदुम्बर तथा मुक्ति के लिये अश्वत्थ की १००८ समिधाओं का हवन करना चाहिये।

आज्याक्तैर्जुहुयाच्छ्रियै सरसिजैर्दूर्वाभिरप्यायुषे
मेधायै द्विजभूरुहैश्च कुमुदैः श्वेतैस्तथा वाससे।
शुद्धाज्यैः पशवेऽप्युदुम्बरभवैः पुत्राय चाऽश्वत्थजै-
रेकाब्दं विधिवत् सहस्रसमितैरष्टोत्तरं मुक्तये।। (वही, २२/४७)

युद्ध में विजय के लिये

युद्धभूमि में युद्ध करता हुआ सैनिक यदि अपने को सुदर्शन चक्र की नेमि में स्थित मानता हुआ युद्ध करे, तो वह अकेला होता हुआ भी अनेकों योद्धाओं से पराजित नहीं होता।

चक्रस्य नाभिसंस्थं स्मृत्वाऽऽत्मानं जपेन्मनुं मन्त्री।
स्वयमेकोऽपि न युद्धे मर्त्यैर्बहुभिः पराजितो भवति।। (वही, २२/४८)

आविष्ट भूत-ग्रहादि से मुक्ति

मन्त्र का प्रयोग करने वाला व्यक्ति यदि ज्वरग्रहादि से पीड़ित व्यक्ति को चक्र पर घुमाया जाता हुआ चिन्तन करे, तो रोगी के शरीर में आविष्ट ग्रहादि स्वयं को चक्र की नाभि से उत्पन्न अग्नि से जलता हुआ महसूसते हुए उसे छोड़कर भाग जाते हैं।

मन्त्री सुनियतचित्तश्चक्रस्थं भाव (भ्राम)येद्धिया ग्रस्तम्।
आविश्य सकलं मुक्त्वा मुंचति दग्धोऽग्निनाऽऽशु नाभिभुवा।।
(वही, २२/४६)

पर मारण प्रयोग

मन्त्र-प्रयोगकर्ता यदि अपने शत्रु के सिर पर अग्नि के समान प्रज्ज्वलित भयंकर सुदर्शन चक्र का चिन्तन करे तो, सात दिनों के भीतर शत्रु को अग्नि के समान जलाने वाला ज्वर हो जाता है और प्रयोग जारी रखने पर वह तीस दिनों के भीतर ही मर जाता है।

दीप्तं करालदहनप्रतिमं च चक्रं यस्य स्मरेच्छिरसि कस्यचिदप्रियस्य।
सप्ताहतोऽस्य दहनप्रतिमो ज्वरः स्यात् त्रिंशद्दिनैश्च स परेतपुरं प्रयाति।।
(वही, २२/५०)

अपामार्ग, राजी, तिल, तुलसी, कृष्ण तुलसी, क्रान्ति, दूर्वा, जवा, अर्क, लक्ष्मी, देवी, कुश, गाय का गोबर, कमल, वचा, रोचना तथा पंचगव्य को एक कुम्भ में रख कर विधिवत् पूजित अग्नि के ऊपर उसे रख कर धीमी-धीमी आंच में जलाकर भस्म बनानी चाहिये। इस भस्म को ललाट पर लगाने, भक्षण करने आदि से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है। इस भस्म के प्रयोग से लक्ष्मी तथा दीर्घायु की प्राप्ति होती है तथा भूत-पिशाचादि एवं अपस्मारादि रोग भी शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। वास्तव में, उक्त विपत्तियों से मुक्ति के लिये इस भस्म-प्रयोग से उत्तम कोई अन्य उपाय नहीं है।

विप्रक्षीरद्रुमत्वङ्मलयजपुरकाश्मीरकुष्ठत्रियामा-
बिल्वापामार्गराजीतिलतुलसियुगक्रान्तिदूर्वाजवार्कैः।
लक्ष्मीदेवीकुशागोमयकमलवचारोचनापंचगव्यैः
सिद्धेऽग्नौ कुम्भसिद्धं मनुजपसहितं भस्म सर्वार्थदायी।।
लक्ष्म्यायुष्करमतुलं पिशाचभूतापस्मारादिकमचिरेण नाशयेच्च।
क्षुद्रादीनपि विविधांस्तथोपसर्गानितस्मान्न परतरा समास्ति रक्षा।।

(वही, २२/४३-४४)

चक्रमन्त्र के विभिन्न प्रयोग

समस्त उपद्रवों की शान्ति

गुग्गुलु की १००८ गुलिकाओं का मन्त्रोच्चारण के साथ तीन-चार दिन हवन करने से सभी प्रकार के उपद्रव नष्ट हो जाते हैं।

जुहुयात् गुग्गुलुगुलिकासहस्रकं साष्टकं च मन्त्रितमः।
त्रिदिनं चतुर्दिनं वा सर्वोपद्रवनिवारणं भवति।। (वही, २२/४५)

ज्वर, विस्मृति-अपस्मृत्यादि से मुक्ति

अपामार्ग की १० हजार समिधाओं का हवन करने से ज्वर, भूतादि के आवेश से उत्पन्न रोग तथा अपस्मृति आदि समाप्त हो जाते हैं।

खरमंजर्याः समिधामयुतं वा मन्त्रवित्तमो जुहुयात्।
ज्वरभूतामयविस्मृत्यपस्मृतीः शमयितुं नियतचित्तः।। (वही, २२/४६)

समृद्धि तथा दीर्घायु आदि के लिये

समृद्धि के लिये घृतसिक्त कमलों का, आयुष्य के लिये घृतसिक्त दूर्वादलों

अग्न्यादिकमपि सर्वं क्षिपेदथ घटस्य दक्षिणे भागे।
हुतशेषान्नेन च बलिं मन्त्रेणाऽनेन मन्त्रवित्कुर्यात्।।
हृदयान्ते विष्णुपदं प्रोक्त्वाऽथ गणेभ्य उच्चरेत् पूर्वम्।
शान्तिकरेभ्यश्च बलिं गृह्णान्त्विति शान्तये नमोऽन्तः स्यात्।।
ज्वरादिकां रोगपरंपरां वा विस्मृत्यपस्मारभवां रुजं च।
रक्षःपिशाचग्रहवैकृतं वा विधिस्त्वयं मंक्षु हरेद्विकारम्।।
(वही, २२/३७-४०)

अष्टम राशि

इस हवन-विधि में कहा गया है कि हवन से अवशिष्ट द्रव्यादिसहित कुम्भ को साध्य की आठवीं राशि के पास फेंक देना चाहिये। यह आठवीं राशि कौन है, इसकी जानकारी आवश्यक है। वास्तव में १२ राशियों के अपने-अपने स्थायी स्थान भी हैं। पूर्व दिशा मेष और वृष का, आग्नेय मिथुन का, दक्षिण कर्कट और सिंह का नैर्ऋत्य कन्या का, पश्चिम तुला और वृश्चिक का, वायव्य धनु का, उत्तर मकर और कुम्भ का तथा ईशान मीन राशि का स्थायी निवास-स्थान है। पीड़ित व्यक्ति की जो भी अपनी राशि हो उससे आठवीं राशि में उक्त कुम्भादि फेंकने चाहिये।

महाचक्र होम

पलाश, अश्वत्थ, वट, उदुम्बर और प्लक्ष में से किसी एक की लकड़ी से एक पात्र बनाकर उसमें पंचगव्य भरना चाहिये। फिर इस पात्र को सुदर्शनचक्र यन्त्र पर स्थापित करके वहां विष्णु का आवाहन-पूजनादि सम्पन्न करना चाहिये। इसके बाद इस यन्त्र की पूर्वादि दिशाओं में आठ ब्राह्मण बैठ कर सुदर्शन मन्त्र का जप करते हुए पूर्वोक्त संख्या में हवन सम्पन्न करना चाहिये। तत्पश्चात् साधक को चाहिये कि वह ब्राह्मणों को उचित दक्षिणादि देकर उन्हें विसर्जित करे। इस महाचक्र होम से साध्य सभी रोगों से मुक्त हो जाता है।

पालाशैर्वा स्तनजद्रुमैर्वा पंजरे कृते फलकैः।
सम्पूर्य पंचगव्यैस्तत्र तु संस्थाप्य शुद्धमपि गदिनम्।।
पूर्वोद्दिष्टैर्दिक्षु च सजपं जुहुयुः पृथग्द्विजा वशिनः।
द्रव्यैः सदक्षिणं तानभ्यर्च्य च मुच्यते रुजो जन्तुः।। (वही, २२/४१-४२)

सर्वार्थप्रद भस्म

'ओं नमो भगवते महासुदर्शनाय हुं फट्' मन्त्र का जप करते हुए पलाश, अश्वत्थ, वट, उदुम्बर, प्लक्ष, मलय चन्दन, पुर, केशर, कुष्ठ, हरिद्रा, बिल्व,

हवन-विधि

साधक को चाहिये कि वह हवन के लिये निर्धारित कुण्ड में विधिवत् अग्नि प्रज्ज्वलित करके घृत, अपामार्ग, इध्म, अक्षत, राजी, तिल, पायस तथा पंचगव्यों को एकत्र मिलाकर उक्त चक्रमन्त्र 'ओं नमो भगवते महासुदर्शनाय हुं फट्' मन्त्र से १२६ बार हवन करके पुनः इन अष्टद्रव्यों में से क्रमशः प्रत्येक का १२६-१२६ बार हवन करे। फिर हवन से बचे द्रव्यों के दशांश को 'सुदर्शनाय विद्महे महाज्वालाय धीमहि तन्नश्चक्रः प्रचोदयात् वषट्' मन्त्र का उच्चारण करते हुए कलश में डाल दे। इसके बाद आधे प्रस्थ आटे का एक पिण्ड बनाकर उसे भी इसी विधि से कलश में डाल दे।

षड्विंशच्छतसम्मितैरथ घृतापामार्गकेध्माक्षतैः।
सद्राजीतिलपायसैश्च सकलैर्गव्यैर्घृताक्तैः क्रमात्।
हुत्वा तद्हुतशिष्टमत्र विधिवत् क्षिप्त्वा प्रतिद्रव्यकं
प्रस्थार्धान्नकृतं च पिण्डममलं कुम्भोदके मन्त्रविद्।। (वही, २२/३६)

तदनन्तर इस कुम्भ और हवन-स्थान के बीच रोगादि से पीड़ित व्यक्ति को बैठा कर इस कुम्भ से निम्नांकित रक्षोघ्न मन्त्र बोलते हुए आरती करनी चाहिये—

"ओं ह्रीं स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या सह नमो
जगत् प्रहृष्यत्यनुरज्यते च स्रारनारा
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति हुं फट् यणा
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः य ओम्"

नीराजन के पश्चात् इस हवन-द्रव्यों और पिण्डसहित घट को साध्य की राशि की आठवीं राशि में फेंक कर हवन की अग्निसहित हवन में प्रयुक्त अन्य वस्तुओं को भी फेंके गये घट के दक्षिण की ओर फेंक देना चाहिये। इसके बाद बचे हुए हवन-द्रव्य से 'नमो विष्णुगणेभ्यः शान्तिकरेभ्यो बलिं गृह्णातु शान्तये नमः' मन्त्र से भगवान् विष्णु के गणों को बलि प्रदान करनी चाहिये। यह हवन-क्रिया ज्वरादि, विस्मृति और अपस्मार से उत्पन्न रोग राक्षस, पिशाच तथा विपरीत ग्रहों के द्वारा उत्पन्न सभी विकारों को नष्ट कर देती है।

संस्थाप्य दक्षिणस्यां साध्यं कुम्भेन तेन नीराज्य।
तमथ घटं सद्रव्यं बहिराराद‌ष्टमे क्षिपेद्राशौ।।

प्रकार उक्त संख्या में जप तथा उक्त द्रव्यों से जप संख्या का दशांश हवन करने के बाद ही अपने अथवा दूसरों के हित के लिये चक्रमन्त्र का प्रयोग किया जाना चाहिये।

सम्पूज्य चैवं विधिना हरिंतु शिष्यं गुरुः प्रीततमोऽभिषिंचेत्।
भक्त्या स्वशक्त्या विभवैर्द्विजातीन् संतर्प्य भूयो गुरुणाऽनुशिष्टः।।
एकाग्रचित्तो रविलक्ष्यसंख्यं जपेन्मनुं नित्यकृताऽभिपूजः।
तावत्सहस्रं तिलसर्षपाब्जबिल्वाज्यदोग्धानि जुहोतु सम्यक्।।
समुद्रतीरेऽप्यथवाद्रिशृंगे समुद्रगानां सरितां च तीरे।
जपेद्विविक्ते निज एव गेहे विष्णोर्गृहे वा पुरुषो मनस्वी।।
यथोक्तसंख्यं विधिवत्प्रजप्ते मन्त्रे यथोक्तैश्च हुते हुताशे।
द्रव्यैरथ स्वार्थपरार्थहेतोः कुयात्प्रयोगान् विधिना यथावत्।।

(वही, २२/३१-३४)

चक्रहोम यन्त्र

पहले एक वृत्त बनाकर वृत्त के बाहर अष्टदल की रचना करनी चाहिये। फिर इन दलों के बाहर दो वृत्त बनाने चाहिये। इन दोनों वृत्तों के अन्तराल को नेमि कहा जाता है। नेमि के बाहर एक अन्य वृत्त बनाकर इसके बाहर अग्नि की ज्वालाओं को प्रदर्शित करने वाली रेखाओं वाला एक और वृत्त बनाना चाहिये। फिर, इस समस्त यन्त्र को एक चतुरस्र से घेर देना चाहिये। तदनन्तर कर्णिका वाले भाग में हल्दी आदि का पीला चूर्ण, दलों में लाल चूर्ण, दो-दो दलों के बीच के अन्तरालों में श्याम वर्ण का चूर्ण और नेमि में श्वेत वर्ण का चूर्ण भर देना चाहिये। इस प्रकार के दो चक्रयन्त्र बनाकर एक को हवनकुण्ड के उत्तर तथा दूसरा दक्षिण की ओर स्थापित कर उत्तर वाले चक्र पर रक्तवर्ण के जल से भरा कुम्भ रखकर दक्षिण वाले चक्र पर होमकर्म करना चाहिये। यह विधि मारण प्रयोग में अपनायी जाती है। शान्ति कर्म के लिये कलश को दक्षिण की ओर रखकर उत्तर वाले चक्र पर हवन किया जाता है।

पीताभा कर्णिका स्यादरुणतरमरं श्यामलंचाऽन्तरालं
नेमिः श्वेता च बाह्ये विरचितशिखरेखाकुलं पार्थिवान्तम्।
चक्रद्वन्द्वं लिखित्वा विशदमतिरथो सौम्ययाम्यं च मन्त्री
कुम्भं सम्पूर्य सौम्ये प्रचयतु तथा दक्षिणे होमकर्म।।

(वही, २२/३५)

ततो नाम्नः प्रथममक्षरम्। ततः पाशः ततो नामद्वितीयाक्षरम्।
ततोऽङ्कुशमिति रचनाप्रकारः।" (वही, पद्मपाद)

प्रणवहृदभगवद्युतङे महादिकरथांगचतुर्थी हुमस्त्रकैः।
निगदितस्त्विति षोडशवर्णको मनुवरो मुनिभिर्विहितादरः।।

(वही, २२/२६)

इस प्रकार के चक्रयन्त्र-मण्डल का निर्माण कर उस पर दूधवाले पूर्वोक्त वृक्षों की त्वचा से निर्मित क्वाथ, गव्य, गो-दुग्ध अथवा गोमूत्र से भरे कलश की स्थापना कर उस कलश पर वैष्णव पीठ की पूजा करके अष्टदलों के मध्य में चक्रविष्णु का आवाहनादि षोडशोचार पूजन करके प्रथम आवरण में अंगमन्त्र सहित पूर्ववत् दिग्बन्ध करके, द्वितीय आवरण में पीतवर्ण के चक्र-पद्म, रक्तवर्ण के मुसल-अंकुश, श्वेतवर्ण के शंख-गदा एवं श्यामवर्ण के धनुष-पाशायुगल की अर्चना करनी चाहिये। तृतीय आवरण में लक्ष्मी, सरस्वती, रति, प्रीति, कीर्ति, कान्ति, तुष्टि और पुष्टि की तथा चतुर्थ आवरण में इन्द्रादि लोकपालों की पूजा करनी चाहिये।

क्वाथैः पयोभूरुहचर्मसिद्धैर्दुग्धेन गव्यैरपि पंचभिर्वा।
मूत्रैः पशोर्वा प्रतिपूर्य कुम्भं समर्चयेच्चक्रहरिं क्रमेण।।
अंगैः प्रथमावृतिरपि च पूज्या चक्रादिभिर्द्वितीया च।
लक्ष्म्यादिभिस्तृतीया क्रमात् तथेन्द्रादिभिश्चतुर्थी स्यात्।।
चक्रशंखगदापद्ममुसला धनुरेव च।
पाशांकुशौ पीतरक्तसितश्यामत्विषस्त्विमाः।
लक्ष्मीः सरस्वती चाथ रतिः प्रीत्याह्वया ततः।
कीर्त्तिः कान्तिस्तुष्टिपुष्टी क्रमेणैव तु शक्तयः।। (वही, २२/२७-३०)

जप-हवनादि एवं मन्त्रदान

उक्त प्रकार से आवरण-पूजा सम्पन्न करने के बाद गुरु को चाहिये कि वह शिष्य का कलश जल से अभिषिंचन करके मन्त्रदान करे। शिष्य अपने गुरु तथा ब्राह्मणों को यथाशक्ति दक्षिणा देकर समुद्र के शान्त किनारे, पर्वत की चोटी, समुद्रगामिनी किसी नदी के तट पर, विष्णु-मन्दिर अथवा अपने ही घर के किसी एकान्त स्थान में बैठ कर चक्रमन्त्र का १२ लाख जप सम्पन्न करके तिल, सर्षप, कमल, बिल्व, आज्य और पायस का १२ हजार हवन करे। इस

सौदर्शनीयं गायत्री जप्तव्या जप्तुमिच्छता।
सान्निध्यकारिणीं मुद्रां दर्शयेदनया सुधीः।।
नमो भगवते प्रोक्त्वा महासुदर्शनाय च।
महाचक्राय च तथा महाज्वालाय चेत्यपि।।
दीप्तरूपाय चेत्युक्त्वा सर्वतो रक्ष रक्ष माम्।
महाबलाय स्वाहेति प्रोक्तस्तारादिको मनुः।
रक्षाकरः प्रसिद्धोऽयं क्रियमाणेषु कर्मसु। (वही, २२/२१-२४)

चक्रयन्त्र

भगवान् सुदर्शन चक्र की आवरण-पूजा चक्रयन्त्र में की जाती है। इसके निर्माण के लिये पहले एक षट्कोण में साध्यादि का नाम और कर्म लिखकर षट्कोण के छहों कोणों में सुदर्शन मन्त्र 'ओं सहस्रार फट्' के एक-एक अक्षर, दो कोणों की सन्धियों में षडंग, छठे अंग के पास ही षडंगों के मध्य में "सर्वा दिशश्चक्रेण बध्नामि नमो ज्वालाचक्राय स्वाहा अस्त्राय फट्" दिग्बन्धमन्त्र लिखना चाहिये।

इसके बाद उक्त षट्कोण के बाहर अष्टकमलदल अंकित कर दलों के मूल में दो-दो स्वर लिख कर दलों के मध्य अष्टाक्षर मन्त्र 'ओं नमो नारायणाय' का एक-एक अक्षर लिखना चाहिये। पुनः इन अष्टदलों के बाहर सोलह कमलदलों का अंकन करके उसकी कर्णिका में क से लेकर स तक के ३२ अक्षर दो-दो करके लिखकर दलों के मध्य "ओं नमो भगवते महासुदर्शनाय हुं फट्" मन्त्र के एक-एक अक्षर लिखने चाहिये। फिर इसके बाहर तीन वृत्त बनाकर प्रथम वृत्त को हं हं, द्वितीय को क्षं क्षं से आवृत कर तृतीय वृत्त में पहले 'ओं' , फिर अपने नाम का पहला अक्षर, तब पाशाक्षर 'आ' फिर अपने नाम का द्वितीय अक्षर तब अंकुश बीज 'क्रों' क्रम से लिखना चाहिये।

षट्कोणान्तःस्थतारं विवरलिखितमन्त्राक्षरं सन्धिराजत्,
स्वांगं बाह्ये कलाकेसरमुदरगताऽष्टाक्षरंचाऽष्टपत्रम्।
पद्मं वर्णैर्विराजत् विकृतदललसत्षोडशाऽर्णं त्रिवीतं,
व्योमाऽन्त्यार्णं स्वनाम्ना विरचितगुणपाशांकुशं चक्रयन्त्रम्।।
(वही, २२/२५)

"व्योमान्त्यार्णं व्योमार्णं हकारः, अन्त्यार्णं क्षकारः। तद् बाह्ये स्वनाम्ना सह विरचितगुणपाशांकुशम्। गुणः प्रणवः। प्रथमं प्रणवः

मन्त्राक्षरन्यास

ऋष्यादिन्यास, षडंगन्यास तथा दिग्बन्ध के उपरान्त मन्त्राक्षरन्यास किया जाना चाहिये। सुदर्शन मन्त्र का प्रथम वर्ण 'ओं' श्वेतवर्णी अकार, अरुणवर्णी उकार और कृष्णवर्णी मकार का संयुक्त रूप है। इसका न्यास इसी रूप में स्मरण करते हुए मूर्धा में करना चाहिये। तदनन्तर सकार का न्यास भ्रूमध्य में, हकार का मुख में, स्रा का हृदय में, रकार का लिंग में, हुं का जानु में तथा फट् का पद-सन्धियों में करना चाहिये।

तारन्तु मूर्धन्यथ सितारुणकृष्णवर्णं,
मध्ये भ्रुवोश्च समथो वदने हकारम्।
हृद्गुह्यजानुपदसन्धिषु चाऽवशिष्टान्
वर्णान्न्यसेदिति मनोः (तनौ)पुनरग्निवर्णान्।। (वही, २२/१६)

ध्यान

न्यास-विधि सम्पन्न करने के बाद सूर्य के समान आभा से समस्त दिशाओं को प्रकाशित कर रहे, संक्रुद्ध भयजनक आंखों और अट्टहास से चमक रहे दांतों से प्रदीप्त मुख वाले, हाथों में चक्र, शंख, गदा, पद्म, मुसल, खड्ग, पाश और अंकुश धारण किये, पिंगलवर्णी केशों से सुशोभित सुदर्शन चक्र नामक हरि का ध्यान करना चाहिये।

अव्याद्भास्करसप्रभाभिरखिलाभाभिर्दिशो भासयन्,
भीमाक्षः स्फुरदट्टहासविकसद् दंष्ट्राग्रदीप्ताननः।
दोर्भिश्चक्रदरो गदाब्जमुसलप्रासांश्च पाशांकुशौ,
बिभ्रत् पिंगशिरोरुहोऽथ भवतश्चक्राऽभिधानो हरिः।। (वही, २२/२०)

ध्यानोपरान्त मूल सुदर्शन मन्त्र के जप से पूर्व (बंधी अथवा खुली हुई अंजलिरूपी) सान्निध्यकारिणी सुदर्शन मुद्रा का प्रदर्शन करते हुए यथेच्छ संख्या में सुदर्शन गायत्री "सुदर्शनाय विद्महे महाज्वालाय धीमहि तन्नश्चक्रः प्रचोदयात्" का जप करके साधना की निर्विघ्न सफलता और रक्षा के लिये "ओं नमो भगवते महासुदर्शनाय महाचक्राय महाज्वालाय दीप्तिरूपाय सर्वतो रक्ष रक्ष मां महाबलाय स्वाहा" इस रक्षामन्त्र का उच्चारण करना चाहिये।

प्रोक्त्वा सुदर्शनायेति विद्महेऽन्ते महापदम्।
ज्वालाय धीमहि प्रोक्त्वा तन्नश्चक्रः प्रचोदयात्।।

समिधामथ दुग्धवृक्षजानां जुहुयादर्कसहस्रकं सदुग्धम्।
मनसः परिशुद्धये मनस्वी सघृतेनापि पयोऽन्धसा सितेन।।
द्वादशाक्षरजपं तु सार्चनं यो भजेन्नियमतो दिने दिने।
ऐहिकं समुपलभ्य वांछितं प्रेत्य याति पदमक्षयं हरेः।।
(वही,२२/११-१३)

(२) सुदर्शन मन्त्र विधान

आरम्भ में तार 'ओं' तदनन्तर अन्त्य अर्थात् वर्णमाला के अन्तिम अक्षर क्ष से तुरीय अर्थात् चतुर्थ अक्षर 'स', इस स का अगला अक्षर 'ह', इसके बाद भृगु संज्ञक अक्षर 'स्', दहनाक्षर 'र', अनन्त, 'त' फिर वह्नि अक्षर 'र', तदनन्तर वर्म संज्ञक वर्ण 'हुं' और अन्त में अस्त्र अर्थात् 'फट्' मिलाने से निर्मित 'ओं सहस्रार हुं फट्' यह सुदर्शन मन्त्र है। सुदर्शन मन्त्र के ऋषि अहिर्बुध्न्य, छन्दस् अनुष्टुब्, देवता श्री सुदर्शन महाविष्णु, बीज रं तथा शक्ति हुं है।

अन्त्यतुरीयतदादिकभृगुदहनानन्तवह्निवर्मास्त्रैः।
तारादिर्मनुरुक्तः स्यादभिमतसिद्धिदो रथांगाख्यः।।
ऋषिरस्याऽहिर्बुध्न्यश्छन्दोऽनुष्टुब् देवता च विष्णुः।
(वही, २२/१५-१६)

षडंगन्यास

इस मन्त्र की साधना में 'आचक्राय स्वाहा' से हृदय, 'विचक्राय स्वाहा' से शिरः, 'सुचक्राय स्वाहा' से शिखा, 'धीचक्राय स्वाहा' से कवच, 'संचक्राय स्वाहा' से नेत्र तथा 'ज्वालाचक्राय स्वाहा' से अस्त्रन्यास किया जाता है। अस्त्रन्यास के उपरान्त अस्त्रन्यास के स्थान पर ही 'ऐन्द्रीं दिशं चक्रेण बध्नामि नमः चक्राय स्वाहा, आग्नेयीं दिशं चक्रेण बध्नामि नमः चक्राय स्वाहा..' आदि मन्त्रों से क्रम से दशों दिशाओं में दिग्बन्ध करके अग्निप्राकार मन्त्र 'ओं त्रैलोक्यं रक्ष रक्ष हुं फट्' से अपने चारों ओर अग्नि के प्राकार अर्थात् घेरे की भावना करनी चाहिये।

चक्रपदैराविसुधीसंज्वालाद्यैः शिरोऽन्वितैरंगम्।।
ऐन्द्रीं समारभ्य दिशन्त्वधस्तादन्तं समुक्त्वा क्रमशो दशानाम्।
चक्रेण बध्नामि नमस्तथोक्त्वा चक्राय शीर्षं च दिशां प्रबन्धः।।
त्रैलोक्यं रक्ष रक्षेति हुं फट् स्वाहेति चोदितः।
तारादिकोऽयं मन्त्र स्यादग्निप्राकारसंज्ञकः।। (वही, २२/१६-१८)

करकण्ठास्यदृङ्मस्तशिखामूर्धसु विन्यसेत्।।
संहृतेर्दोषसंहारः सृष्टेश्च शुभपुष्टयः।
स्थितेस्तु शान्तिविन्यासस्तस्मात्कार्यस्त्रिधा मतः।। (वही, २२/५-८)

ध्यान एवं जप-हवन

न्यासों के उपरान्त प्रकाशमान् चक्र, शंख, गदा एवं पद्म, वलय, अंगद, हार, किरीटधारी, नव विकसित कुन्दपुष्प की कान्ति वाले भगवान् विष्णु का ध्यान करना चाहिये। ध्यान के पश्चात् साधक को चाहिये कि वह गुरु की विधिवत् दीक्षा से प्राप्त द्वादशाक्षर मन्त्र का १२ लाख जप पूर्ण करके शुद्ध तिलों से १२ हजार हवन करे। तदनन्तर वैष्णव पीठ पर आवरण-पूजा सम्पन्न करे।

हरिमुज्ज्वलचक्रदराब्जगदाकुलदोःपरिघं सितपद्मगतम्।
वलयांगदहारकिरीटधरं नवकुन्दरुचं प्रणमामि सदा।।
विधिवदथ विहितदीक्षो जपेन्मनुं वर्णलक्षमानममुम्।
शुद्धैश्च तिलैर्जुहुयाद्द्वादशसाहस्रसंख्यकं मन्त्री।। (वही, २२/९-१०)

आवरण-पूजा

वैष्णवपीठ की पूर्वोक्त प्रकार से पूजा करके अष्टदल कमल की कर्णिका में भगवान् वासुदेव का आवाहन कर उनकी षोडशोपचार पूजा के बाद कर्णिका के प्रथम आवरण में अंगमन्त्र, कमल दलों के मूल वाले द्वितीय आवरण में पूर्वादि मुख्य दिशाओं में क्रमशः वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध और आग्नेयादि उप दिशाओं के दलमूलों में लक्ष्मी, सरस्वती, प्रीति तथा पुष्टि की, दलमध्य के तृतीय आवरण में मुख्यदिशाओं में क्रमशः केशव, माधव, गोविन्द तथा विष्णु की पूजा सम्पन्न करके दलों के बाहर इन्द्रादि दिक्पालों की पूजा करनी चाहिये। आवरण-पूजा के पश्चात् अपने मनस् को शुद्ध और पवित्र बनाये रखने के लिये दुग्ध से सिक्त अश्वत्थ, वट, उदुम्बर तथा प्लक्ष की १२ हजार समिधाओं का हवन द्वादशाक्षर मन्त्र से करना चाहिये। जो साधक नियमपूर्वक प्रतिदिन विधानानुसार द्वादशाक्षर मन्त्र का जप, विष्णु की अर्चना तथा हवनादि सम्पन्न करता है, वह इहलोक में समस्त इच्छाओं की पूर्ति के साथ ही मृत्यु के उपरान्त विष्णु के अक्षय लोक को भी प्राप्त करता है।

पीठे हरेरथांगैः सशक्तिभिर्मूर्तिभिस्तदनु यजेत्।
केशवसुरनाथाद्यैरपि देवं भक्तिसंयुतो विद्वान्।।

द्वादशाक्षर मन्त्र-साधना-विधि

(१) द्वादशाक्षर मन्त्र

'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' द्वादश अक्षरात्मक इस मन्त्र के ऋषि प्रजापति, छन्दस् गायत्री, देवता विष्णु, बीज अं और शक्ति नमः हैं। इस मन्त्र के ओं से हृदय, नमः से शिरस्, भगवते से शिखा, वासुदेवाय से कवच और पूरे मन्त्र से अस्त्रन्यास किया जाता है।

तारं सहृदयं मध्ये गवते स्युर्भवार्णयोः।
सुययोश्च तथा देवा मन्त्रोऽयं द्वादशाक्षरः।।
ऋषिः प्रजापतिश्छन्दो गायत्री विष्णुरुच्यते।
देवता हृद्ध्रुवेण स्यान्नमसा शिर उच्यते।।
चतुर्भिश्च शिखा वर्णैः पंचभिः कवचं भवेत्।
प्रोक्तमस्त्रं समस्तेन पंचांगविधिरीदृशः।। (प्रपंचसारतन्त्र, २२/२)

इस मन्त्र की साधना में मन्त्र के अक्षरों का न्यास तीन प्रकार से किया जाता है—संहारन्यास, सृष्टिन्यास तथा स्थितिन्यास। संहारन्यास में मन्त्राक्षरों का न्यास क्रमशः पाद, जानु, लिंग, नाभि, उदर, हृदय, बाहु, गल, आस्य, नेत्र, ललाट तथा शिखा में किया जाता है।

सृष्टिन्यास में मन्त्राक्षरों का न्यास क्रमशः शिखा, ललाट, नेत्र, आस्य, गल, बाहु, हृदय, कुक्षि, नाभि, लिंग, जानु तथा पैरों में किया जाता है।

स्थितिन्यास में हृदय, उदर, नाभि, लिंग, जानु, पाद, हस्त, कण्ठ, आस्य, नेत्र, ललाट तथा शिखा में मन्त्राक्षरों का न्यास किया जाता है।

संहारन्यास करने से दोषों का निवारण, सृष्टिन्यास से शुभ और पुष्टि तथा स्थितिन्यास से शान्ति की उपलब्धि होती है।

सपादजानुयुगललिंगनाभ्युदरेषु च।
हृद्दोर्गलास्यदृङ्मस्तशिखस्वक्षरतो न्यसेत्।।
शिखाललाटनेत्रास्यगलदोर्हृदयेष्वपि।
सकुक्षिनाभिलिंगाख्यजानुपादेषु विन्यसेत्।।
हृत्कुक्षिनाभिषु तथा गुह्यजानुपदेष्वथ।

देवेश कर्म सर्वं मे भवेदाराधनं तव।
विषयेष्वपि संगो मे हुतं विष्णो तवाऽच्युत।।६६।। (वही, २१/५४-६६)

हे देवेश ! मनसा, वाचा, कर्मणा किये गये मेरे समस्त कर्म आपकी आराधना बनें। हे अच्युत ! विषयों के प्रति मेरी आसक्ति आपके लिये सम्पन्न हो रहा आहुति कर्म बने।१६।

मेषादि मासयन्त्रों में पूजन का फल

मासयन्त्र में उपर्युक्त विधि से हवन, जप तथा अर्चना की विभिन्न विधियों से जो व्यक्ति हृदय से भगवान् विष्णु की पूजा में निरत रहता है, वह इस जीवन में अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त करके प्रसन्नात्मा बना रहता है तथा मृत्यु होने पर वह जनन-मरणरूपी संसार के बन्धन से मुक्त होकर उत्तमोत्तम मोक्ष को प्राप्त करता है।

इति हवनजपार्चाभेदतो विष्णुपूजा-
निरतहृदयकर्मा यस्तु मन्त्री चिराय।
स खलु सकलकामान् प्राप्य हृष्टान्तरात्मा
जननमृतिवियुक्तामुत्तमां मुक्तिमेति।। (वही, २१/७०)



छिपा देने वाले भगवन् ! आपकी जय हो। नरकासुर के शत्रु ! आपको मेरा नमन। मधु नामक राक्षण के विनाशक ! आपको मेरा नमन। ६।

नमस्ते नलिनापांग नमस्ते नयनांजन।
नमः पापहरेशान नमः सर्वभयापह।।६३।।

हे कमलनयन ! आपको मेरा नमन। हे नयनों के रंजक ! आपको मेरा नमन। हे पापहर ! सभी भयों को दूर करने वाले हे ईशान ! आपको नमस्कार है।

नमः संहृतसर्वात्मन् नमः सम्भृतकौस्तुभ।
नमस्ते नयनातीत नमोऽतिक्रान्तवाक्पथ।।६४।।

सभी प्राणियों को अपने भीतर समा लेने वाले कौस्तुभधारिन् ! आपको मेरा नमस्कार हो। हे नयनातीत ! हे वाचातीत ! आपको मेरा प्रणाम।११।

नमो विभिन्नज्ञेयांश नमः स्मृतिपथातिग।
नमस्त्रिमूर्तिभेदेन सर्गस्थित्यन्तहेतवे।।६५।।

हे ज्ञेयभिन्न ! हे स्मरण सीमा से परे ! आपको मेरा नमन । हे सृष्टि, स्थिति तथा लय के हेतु ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्ररूप मूर्तित्रयधारिन् ! आपको मेरा नमन।१२।

विष्णवे त्रिदशारातिजिष्णवे परमात्मने।
चक्रभिन्नारिचक्राय चक्रिणे चक्रबन्धवे।।६६।।
विश्वाय विश्ववन्द्याय विश्वभूतात्मने नमः।
नमोऽस्तु योगिध्येयाय नमोऽस्त्वध्यात्मरूपिणे।।६७।।

देवताओं के शत्रुओं को जीतने वाले को, परमात्मा को, चक्र से शत्रुकों को विदीर्ण करने वाले चक्रधारी को, चक्रबन्धु को, विश्वरूप को, विश्ववंन्द्य को, विश्वात्मा को, योगियों के ध्येयस्वरूप को, अध्यात्मरूप सर्वव्यापक विष्णु को मेरा नमस्कार हो।

भुक्तिप्रदाय भक्तानां नमस्ते मुक्तिदायिने।
मनोवाक्कायचेष्टाः स्युर्ध्यानस्तुतिनमस्क्रियाः।।६८।।

मेरी मन, वाणी और देह की समस्त क्रियाएं भक्तों को मोक्ष देने वाले मुक्तिदाता भगवान् विष्णु का ध्यान, स्तुति तथा नमस्कार रूप हों।१५।

हे स्वसंवेद्यस्वरूप ! हे आत्मरूप ! हे आनन्दात्मन् ! हे अनामय ! हे अचिन्त्यसार ! हे विश्वात्मन् ! हे ईश ! हे निरंजन ! आप मुझ पर प्रसन्न हों।३।

प्रसीद तुंग तुंगानां प्रसीद शिव शोभन।
प्रसीद स्पष्ट गम्भीर गम्भीराणां महाद्युते।।५७।।

उच्चों से भी उच्च ! गम्भीरों से भी गम्भीर ! कल्याणमय ! सुन्दर ! सुस्पष्ट समुज्ज्वल ! महाद्युतिमान् ! हे परमेश्वर ! आप मुझपर प्रसन्न हों।४।

प्रसीदाऽव्यक्त विस्तीर्ण विस्तीर्णानामणोरणो।
प्रसीदार्द्रार्द्रजातीनां प्रसीदाऽन्तान्तयायिनाम्।।५८।।

हे अव्यक्त ! विस्तीर्णों में भी सबसे विस्तीर्ण ! सूक्ष्मों में सबसे सूक्ष्म ! आर्द्रों से भी आर्द्र ! हे अनन्त ! हे अन्तर्यामिन् ! आप मुझपर प्रसन्न हों। हे अन्तकों के भी अन्तक ! आप मुझ पर प्रसन्न हों।५।

गुरोर्गरीयः सर्वेश प्रसीदाऽनन्त(न्य) देहिनाम्।
जय माधव मायात्मन् जय शाश्वत शंखभृत्।।५९।।

हे गुरुओं के भी गुरु ! हे सर्वेश ! हे अनन्त ! हे माधव ! हे मायास्वरूप ! हे शाश्वत ! हे शंखधारिन् ! आपकी जय हो।६।

जय सुन्दर सौम्यात्मन् जय केशव केशिहन्।
जय शार्गंधर श्रीमन् जय नन्दकनन्दन।।६०।।

हे सुन्दर ! आपकी जय हो ! सौम्यात्मन् ! आपकी जय हो ! केशव ! आपकी जय हो ! केशिहन्ता ! आपकी जय हो। शार्गंधर ! आपकी जय हो। हे श्रीमन् ! आपकी जय हो ! नन्दक को आनन्दित करने वाले ! आपकी जय हो !

जय चक्रगदापाणे जयाऽजय्य जनार्दन।
जय रत्नोत्कराबद्धकिरीटाक्रान्तमस्तक।।६१।।

हे चक्रपाणे ! हे गदापाणे ! हे अजय्य ! हे जनार्दन ! हे अपरिमेय द्युतिमान् तनु वाले ! हे उत्कृष्ट रत्नों से जटित मुकुट को धारण करने वाले भगवन् ! आपकी जय हो।८।

जयपक्षिपतिच्छायानिरुद्धार्ककराकर।
नमस्ते नरकाराते नमस्ते मधुसूदन।।६२।।

पक्षिराज गरुड़ के विशाल पक्षों की छाया से सूर्य की प्रखर किरणों को

दीक्षा विधान के समय एक कर्ष भार अथवा एक कर्ष के तिहाई भाग के स्वर्णपत्र पर उपर्युक्त यन्त्रों में से कामनानुसार किसी भी यन्त्र का आलेखन करके उसे दीक्षा के लिये स्थापित कषायादि से भरे कलश में डाल देना चाहिये। दीक्षा समाप्ति के पश्चात् उस यन्त्र कलश के जल से शिष्य की अभिषिंचन क्रिया समाप्त करने के बाद कलश सहित उस यन्त्र को गुरु को प्रदान करने से पापों का नाश होता है तथा कान्ति, यश, लक्ष्मी और सद्बुद्धि की प्राप्ति होती है।

कर्षोन्मिते च हाटकपट्टे यन्त्रं विलिख्य चतुरस्रे।
तद्द्वित्र्यंशकृते वा कलशेषु विनिक्षिपेच्च दीक्षासु।।
अभिषिच्य यन्त्रकलशं गुरवे प्रददातु संयतमतिः सुमतिः।।
दुरितापनोदविधये द्युतये यशसे श्रिये च मतिसंयतये।।
(वही, २१/५१-५२)

इस प्रकार राश्यात्मक किसी भी मासयन्त्र में दीक्षादि याग विधि सम्पन्न हो जाने के उपरान्त साधक को चाहिये कि वह वासुदेवादि विभिन्न मूर्तियों की प्रसन्नता के लिये भगवान् विष्णु की निम्नांकित स्तोत्र से स्तुति करे—

एषां यागविधीनामेकेन तु पूजयंस्तदवसाने।
तत्तन्मूर्तिप्रीत्यै संस्तोतव्योऽनया हरिः स्तुत्या।। (वही, २१/५३)

विष्णुस्तोत्र

प्रसीदभगवन्मह्यमज्ञानात्कुण्ठितात्मने।
तवांऽघ्रिपंकजरजोरागिणीं भक्तिमुत्तमाम्।।५४।।

हे भगवन्! अज्ञान के कारण कुण्ठितात्मा बने मुझ पर आप प्रसन्न हों और अपने चरणकमल के रज के प्रति अनुराग उत्पन्न करने वाली उत्तम भक्ति प्रदान करें।१।

अज प्रसीद भगवन्नमितद्युतिपंजर।
अप्रमेय प्रसीदाऽस्मद् दुःखहन् पुरुषोत्तम।।५५।।

हे अज ! हे भगवन् ! आप मुझ पर प्रसन्न हों। हे असीम प्रकाशस्वरूप ! हे अप्रमेय ! हे दुःखविनाशक ! आप मुझ पर प्रसन्न हों। हे पुरुषोत्तम ! आप मुझ पर प्रसन्न हों।२।

स्वसंवेद्यस्वरूपात्मन्नानन्दात्मन्ननामय।
अचिन्त्यसार विश्वात्मन् प्रसीदेश निरंजन।।५६।।

मीनयन्त्र में आवरण-पूजा

इस यन्त्र के तृतीयावरण में हृष्टि, व्युष्टि, तुष्टि, इष्टा, पुष्टि, कान्ति, मेधा, मंगला, वामा, दुर्गा, प्रज्ञा तथा भारती नामक बारह शक्तियों की अर्चना की जाती है। पद्मपाद के अनुसार आवरण-पूजा का क्रम अंग, वासुदेवादि, हृषीकेषादि, केशवादि, ध्वजादि, इन्द्रादि तथा वज्रादि क्रम से सात आवरणों वाली होती है।

हृष्टि व्युष्टि स्तुष्टिरिष्टा सपुष्टिः कान्तिर्मेधा मंगला वामसंज्ञा।
दुर्गा प्रज्ञा भारती मध्यसंस्था वाक्सामर्थ्यश्रीकरं स्याविधानम्।।

(वही, २१/४७)

"अंगवासुदेव हृषीकेश केशव केत्विन्द्र वज्रादिभिः सप्तावरणा मीनयन्त्रपूजा"।। (वही, विवरण)

मेषादियन्त्र-विधान का फल

मेषादियन्त्र विधान से जो पुण्यशाली व्यक्ति धरणी आदि व्रत तथा दीक्षादि विधि सम्पादित करते हैं, वे समस्त सम्पदाओं को प्राप्त कर पुत्र-कलत्रादिसहित सुखी बने रहते हैं।

एभिर्विधानैर्धरणीव्रतादिदीक्षाविधीन् ये विधिना प्रकुर्युः।
ते पुण्यभाजो नितरां समृद्ध्या सपुत्रदाराः सुखिनो भवन्ति।।

(वही, २१/४८)

इस प्रकार से साधना करने वाले व्यक्ति दीर्घायु होते हैं, उनकी समस्त इन्द्रियां प्रभावशालिनी कार्यक्षम होती हैं, वे असामान्य तेजस् वाले होते हैं तथा शरीरान्त होने पर वे भगवान् विष्णु के परम धाम को प्राप्त होते हैं।

दीर्घायुषो मुख्यतरेन्द्रियाश्च महाप्रभावास्त्वसमानवीर्याः।
कलेवरान्ते विगताधयस्ते विष्णोरनन्यं पदमाप्नुवन्ति।। (वही, २१/४६)

विभिन्न प्रकार की साधनाओं में मेषादि मासयन्त्रों में जो व्यक्ति कलश-स्थापना करके याग सम्पादित करते हैं, उनके समस्त मनोरथ पूर्ण होते हैं तथा इससे उन्हें भक्ति और मुक्ति की भी प्राप्ति होती है।

एभिर्विधेया कलशाश्च तत्तन्मासोक्तयन्त्रेषु नरैर्यथावत्।
निजेप्सितं प्राप्य मनोरथन्ते भक्तेश्च मुक्तेरनुभावकाः स्युः।।

(वही, २१/५०)

विश्वतनु-विमला, हरि-भद्रा, सूक्ष्म-सरस्वती तथा नन्दन-सन्ध्या की अर्चना की जानी चाहिये। पद्मपाद के अनुसार कुम्भ-विधान में अंग, वासुदेवादि, अच्युतादि, अनन्तादि, केशवादि, मत्स्यादि, केत्वादि, इन्द्रादि तथा वज्रादि की क्रमिक अर्चनात्मक नवावरण पूजा की जाती है।

अच्युतकामिनिभानुमनोज्ञा विश्वतनुर्विमला हरिभद्रे।
सूक्ष्मसरस्वतिनन्दनसन्ध्या स्यादिति मध्यगता वृतिरेषा।।(वही, २१/४४)

"अंगवासुदेवाच्युतानन्त केशव मत्स्य केत्विन्द्र वज्रादिभिर्नवावरणा कुम्भपूजा"।। (वही, विवरण)

उपर्युक्त विधि से की गई कुम्भयन्त्र की अर्चना से साधक को धन, धरा, पुत्र, पशु आदि सम्पदाएं, पितृसुख और स्वान्तः चेतना की उपलब्धि होती है।

अवनिपशुपुत्रसम्पदमपि पितृसौख्यंच हृत्प्रबोधंच।
कुरुते विधानमेतत् प्रयोक्तुरन्ते च निर्वृतिं परमाम्।। (वही, २१/४५)

मीनराशि-यन्त्र

मीन राशि द्विस्वभावक राशि मानी जाती है। अतः इसका स्वरूप षड्गुणित होता है। षड्गुणित यन्त्र के मध्य में महाबीज, इसके चारों ओर अं आं ओं ई ऐं ऊं लृं ॠं ऋं लृ लॄं उं ऐं इं ओं अं अः क्रम से ह्रस्व और दीर्घ स्वरों का वलय, यन्त्र के छहों कोणों में क्रमशः 'सौः क्लीं श्रीं ह्रीं ग्लौं प्रों ' बीज, तदनन्तर क से लेकर ष तक व्यंजन वर्णों का वलय बनाकर परस्पर पुटित दो चतुरस्र बनाने चाहिये। इसके बाद इन चतुरस्रों के आठ कोणों में 'हंसं' लिखना चाहिये। इस प्रकार से निर्मित मीनयन्त्र की अर्चना साधक की सभी कामनाएं पूर्ण करती है।

व्यन्वेष्यद्ध्रस्वदीर्घा समभिवृतमहाबीजमस्रेषु षट्सु
द्योतत्सौर्मारलक्ष्मीगिरिदुहितृधराबीजकं प्रोंसमेतम्।
वीतं काद्यैः कषान्तैर्बहिरपि च कुकोणाष्टकोल्लासिहंसं।
सर्वार्थान्साधकेभ्यो वितरति विधिवत्कल्पितं मीनयन्त्रम्।।
(वही, २१/४६)

"व्यन्येष्यद्ध्रस्वेति। अं आं ओं ई ऐं ऊं लृं ॠं ऋं लृं लॄं उं ऐं इं ओं अं अः इति क्रमेणावृतिः कार्येत्यर्थः"।

विधिवत्कल्पितमिति। यन्त्रहृदादिकं सूचयति। (वही, विवरण)

स्वक्षेत्रवर्तिनः स्युर्ग्रहा क्रमात् केशवादिभिः सहिताः।
अर्चयितॄणामेतद्धनधान्यसमृद्धिदं विधानं स्यात्।। (वही, २१/४१-४२)

"स्वक्षेत्रवर्तिन इत्युक्तं ग्रहावरणं सर्वत्र समानमिति केचित्। सर्वथापि तन्न पृथग्गणनार्हम्। केशवाद्यावरण एवाऽन्तर्भूतत्वादित्य-वगन्तव्यम्। अंग वासुदेवमेधा केशव केत्विन्द्र वज्रादिभिः सप्तावरणा मकरयन्त्रपूजा"।। (वही, विवरण, ४०-४२)

कुम्भराशि-यन्त्र

कुम्भ राशि की गणना स्थिर राशियों में होती है। अतः कुम्भराशि यन्त्र का मूलाधार द्वादशगुणित यन्त्र है। पहले द्वादशगुणित यन्त्र का निर्माण कर इसकी कर्णिका में शक्तिबीज 'ह्रीं' लिखकर इसे शक्तिबीज 'ह्रीं, श्रीं क्लीं' से पुटित हरि, हर तथा ब्रह्मा शब्दों से 'ह्रीं हरिः श्रीं हरः क्लीं ब्रह्मा' क्रम से वेष्टित करना चाहिये। तदनन्तर यन्त्र के बारहों कोणों में नृसिंह बीज 'क्ष्रौं' लिखकर यन्त्र को अ से क्ष तक के वर्णों से वेष्टित कर देना चाहिये। इसके बाद यन्त्र को बाहर से दो चतुरस्रों से आवृत्त कर चतुरस्रों के आठों कोणों में पूर्वादि क्रम से काम, श्री, शक्ति तथा धरा बीज और उपदिशाओं में चिन्तामणि बीज लिखना चाहिये। इस प्रकार से रचित कुम्भयन्त्र श्रीकर अर्थात् लक्ष्मीप्रद होता है।

शक्तिश्रीकामबीजैः पुटितहरिहरब्रह्मभिश्चावृतान्त-
र्बीजं कोणद्विषट्कस्फुरितनृहरिबीजप्रतिद्योतितंच।
आदिक्षान्तैश्च वर्णैर्वृतमवनिगृहद्वन्द्वकोणान्तकाम-
श्रीशक्तिक्ष्मार्णचिन्तामणिमनु तदिदं श्रीकरं कुम्भयन्त्रम्।।
(वही, २१/४३)

इस यन्त्र के निर्माण की स्पष्ट विधि विवरण की निम्नांकित पंक्तियां पठनीय हैं—

"शक्तिश्रीति। ह्रीं हरिः श्रीं हरः क्लीं ब्रह्मेति क्रमेणावृतः कार्येत्यर्थः। आदिक्षान्तैरिति। शक्तिबाह्ये। अवनिगृहेति। दिग्गतकोणेषु कामादयो लेख्याः। कोणगतकोणेषु चिन्तामणिमनुभिरिति विभागः"।

कुम्भयन्त्र की आवरण-पूजा

कुम्भयन्त्र की आवरण-पूजा में मध्य में महाबीज की पूजा के बाद द्वितीय आवरण में अंग-पूजा तथा तृतीय में अच्युत-कामिनी, भानु-मनोज्ञा,

नाम के आदि अक्षर लिखे जाते हैं। इसके बाहर भी एक और वृत्त बनाकर इस वृत्त के बाहर षोडशार्ण सुदर्शन मन्त्र 'ओं नमो भगवते महासुदर्शनाय हुं फट्' के एक-एक अक्षर अंकित किये जाते हैं। तदनन्तर इस यन्त्र को परस्पर सम्पृक्त दो चतुरस्रों से आवृत्त कर इनके आठों कोणों में 'सोऽहं हंसः' मन्त्र के 'सं अः अं हं हं अं सं अः' आठ अक्षर अथवा अष्टाक्षर मन्त्र 'ओं ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा' के आठ वर्ण क्रमशः लिखे जाते हैं।

मध्यस्थायाः परीतो विलसदनुपरात्तस्वरप्राक्परार्धं
सिंहार्णान्तास्त्रिगण्डस्फुरितहरिहरार्णं ग्रहार्णावृतंच।
तद्बाह्ये षोडषार्णाक्षरवृतमुभकुद्योतितं कोणराजत्।
सोऽहं हंसाक्षराढ्यं मकरभवमिदं यन्त्रमिष्टार्थदायी।। (वही, २१/४०)

पद्मपाद ने शंकर के द्वारा निर्दिष्ट मकर-यन्त्र की निर्माण की उक्त प्रक्रिया का स्पष्टीकरण निम्नांकित रूप से किया है—

"अनुपरात्तस्वरप्राक्परार्धमिति। अं अः आं अं इं औमित्यादि-क्रमेणेत्यर्थः। सिंहार्णान्तास्त्रीति क्ष्रौंकारविशिष्टकोणत्रयमित्यर्थः। ग्रहार्णावृतिः हरिहरबाह्ये। षोडशार्णावृतिश्च तत्रैव। षोडशार्णः सुदर्शने वक्ष्यमाणो ग्राह्यः। अत्र षोडशार्णाक्षराभ्यां वृतमिति। शक्तिवेष्टनात्-बहिर्मातृकावृतिरपि उक्ता"। (वही, विवरण)

मकरयन्त्र में आवरण-पूजा

शंकर एवं पद्मपाद के अनुसार मकर-विधान में आवरण-पूजा के संदर्भ में तीसरे आवरण में 'मेधा, हर्षा, श्रद्धा, कृपा, रति, वाक्, सरस्वती, प्रीति तथा वाणी की पूजा की जानी चाहिये।

पद्मपाद का स्पष्टीकरण है कि इस आवरण-पूजा विधान में मकर यन्त्र में अंग, वासुदेवादि, मेधादि, केशवादि, ध्वजादि, इन्द्रादि तथा वज्रादि क्रम से सप्तावरण पूजा होती है। इस यन्त्र में ग्रहों की अर्चना अपने-अपने क्रम और स्थान केशवादि के साथ ही की जाती है, अलग से नहीं।

उपयुक्त विधानानुसार मकर यन्त्र की आराधना करने से साधक को धन-धान्य-समृद्धि की प्राप्ति होती है।

मेधा हर्षा श्रद्धा कृपा रतिर्वाक् सरस्वती प्रीतिः।
वाणी चेति तृतीयावृतिरुक्ता मकरजे विधानेऽस्मिन्।।

लृं एं ऋं ऐं उं ओं इं औं अं अं इति क्रमेण वेष्टयेदित्यिर्थः। अस्रिष्विति। षट्कोणेष्वित्यर्थः। आं ईं ऊं ॠं लूं अः इत्येते शिष्टाः स्वराः। उपरि लसच्छूलप्राप्त वर्गमिति। षट्कोणाग्रान्निर्गच्छत्सु शूलेषु प्राप्त क च ट त प य वर्गमित्यर्थः। यदुजहुलवकं कामबीजहुमित्यर्थः।

(वही, विवरण,२१/३८)

धनुयन्त्र में आवरण-पूजा

धनुयन्त्र की रचना करके यन्त्र के मध्यवर्ती शक्ति की अर्चना के अनन्तर प्रथम आवरण में अंग, द्वितीय में हर्षा, सुनदा, अरुणा, गगना, घोरा, रमा, द्राविणी, वीरा, वीरिणि, हारिणी, हरिणी तथा मदनिका नामक द्वादश शक्तियों की अर्चना करनी चाहिये। पद्मपाद के अनुसार चापयन्त्र की आवरण-पूजा में क्रमशः अंग, वासुदेव, हृषीकेश, केशव, केतु, इन्द्र तथा वज्रादि की सप्तावरण पूजा सम्पन्न की जाती है। इस प्रकार से चापयन्त्र की अर्चना करने वाले साधक को लक्ष्मी, सन्तति, बुद्धि, वशीकरण की कला, कान्ति तथा शुद्ध भक्ति की प्राप्ति होती है।

हर्षाह्वा सुनदारुणा सगगना घोरा रमा द्राविणी
वीरा वीरिणि हारिणी सहरिणी मन्दारिका द्वादश।
प्रोक्तेयंच समावृतिः पुनरिदं सम्पूजयन् प्राप्नुया-
ल्लक्ष्मीसन्ततिबुद्धिवश्यपटुतां कान्तिंच भक्तिं शुभाम्।।

(वही, २१/३६)

"अंग वासुदेव हृषीकेशकेशव केत्विन्द्र वजादिभिः सप्तावरणा चापपूजा"।। (वही, विवरण)

मकरराशि यन्त्र

मकर राशि चर संज्ञक है। अतः इस राशि के यन्त्र की रचना त्रिगुणित यन्त्र के अन्तर्गत की जाती है। इसमें त्रिकोण के मध्य महाबीज लिखकर इसे अनुलोम क्रम में लिखे अकारादि ॠकारान्त आठ स्वरों में से प्रत्येक के आगे विलोम क्रम में लिखे विसर्ग से लेकर लृ तक के स्वर वर्णों से 'अं अः आं अं इं औं ईं ओं उं ऐं ऊं एं ऋं लॄं ॠं लृं' के क्रम से वेष्टित कर दिया जाता है।

फिर त्रिकोण के तीनों कोणों में सिंहार्ण 'क्ष्रौं' लिखकर इसके कपोलों में 'हरि हर' वर्ण लिखकर त्रिकोण को एक वृत्त से वेष्टित कर उसके बाहर ग्रहों के

केशवादि, मत्स्यादि, ध्वजादि, इन्द्रादि तथा वज्रादि क्रम से नवावरण पूजन किया जाना चाहिये।

चिद्रूपा चिन्मया चिन्तामणिः श्रीः क्षोणिसंज्ञका।
रतिश्च पावनी धारा धरिणी तारिणी तथा।।
द्राविणी मोहिनी चेयं तृतीयेयं समावृतिः।
अन्वयाप्तिं धर्मरतिं प्राप्नुयादस्य चाऽर्चनात्।। (वही, २१/३६-३७)

"अंग वासुदेव चिद्रूपानन्त केशव मत्स्य केत्विन्द्रवज्रादिभिर्नवावरणा वृश्चिकपूजा"। (वही, विवरण)

धनुराशि यन्त्र

एक षट्कोण निर्मित कर उसके मध्य में महाबीज अंकित करना चाहिये। तत्पश्चात् षट्कोणों के मध्य वाले धनुषाकार स्थानों नरसिंह बीज 'क्ष्रौं' लिखना। फिर षट्कोण बनाने वाली पंक्तियों के सन्धिस्थल पर शक्तिबीज ह्रीं लिखकर षट्कोणों के भीतर लघु-पंचक अर्थात् अ इ उ ऋ लृ तथा इसके बाद सन्धिपंचक अर्थात् ए ऐ ओ औ अं के एक-एक वर्ण को क्रमशः विलोम-अनुलोम क्रम में 'लृं एं, ऋं ऐं, उं, ओं, इं औं अं अं' क्रम से लिख कर शेष स्वरों अर्थात् 'आं ईं ऊं ॠं ॡं तथा अः' को षट्कोणों के भीतर लिखकर षट्कोणों के अग्रभाग को त्रिशूलाकार बना देना चाहिये तथा प्रत्येक शूलाग्र भाग में क च ट तप और यवर्ग के अक्षर लिख देने चाहिये। इसके बाद इस यन्त्र को परस्पर सम्बन्ध दो चतुरस्रों से वेष्टित कर चतुरस्रों के आठों कोणों में 'यदुजहुलवक' अर्थात् कामबीज 'क्लीं' एवं 'हुम्' लिखने चाहिये।

षट्कोणाबद्धबाणासनविवरलसन्नारसिंहं तदन्तः
शक्तेर्बाह्ये परानुप्रचितलघुसन्ध्यर्णयुक्पंचकाढ्यम्।
अस्रिष्वाबद्धशिष्टस्वरमुपरिलसच्छूलकं प्राप्तवर्गं
भूमेरष्टास्रिकोद्यद्यदुजहुलवकं चापयन्त्रं तदेतत्।। (वही, २१/३८)

विवरण में उक्त विधि का उल्लेख निम्नांकित रूप में किया गया है—

बाणासनशब्देन धनुराकारं षट्कोणान्तरालमुच्यते। तदन्तरिति षट्कोणमध्य इत्यर्थः। युक्पंचकाढ्यं पंचकद्वयाढ्यं किं तत्पंचकद्वयमिति। तदाह—लघुसन्ध्यर्णेति। अ इ उ ऋ लृ इत्येतल्लघुपंचकम्। ए ऐ ओ औ अं इत्येत् सन्धिपंचकम्। वेष्टनक्रममाह—परानुप्रचितेति।

वृश्चिकराशि यन्त्र

वृश्चिक यन्त्र की संरचना में द्वादशगुणित यन्त्र को आधार के रूप में ग्रहण किया जाता है। द्वादशगुणित यन्त्र के मध्य में स्थित हृल्लेखा बीज 'ह्रीं' को नपुंसक स्वर वर्णों को छोड़कर शेष बारह वर्णों के भीतर द्वादशाक्षर मन्त्र 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' से 'अं ओं, आं नं, इं मों, ईं भं, उं गं, ऊं वं, एं तें, ऐं वां, ओं सुं, औं दें, अं वां, अः यं' के रूप में वेष्टित कर दिया जाता है। फिर यन्त्र के बारह कोणों में से आठ में अष्टाक्षर मन्त्र तथा शेष चार में ऊष्म वर्ण श ष स तथा ह लिखे जाते हैं। तत्पश्चात् इन्हें क से लेकर व तक तथा ळ एवं क्ष लिपियों से वेष्टित कर दिया जाता है। तदनन्तर चन्द्रमण्डल बनाकर उसके भीतर चतुरस्र पृथ्वीमण्डल बनाकर उसके चारों कोणों में नपुंसक वर्ण 'ऋ ॠ ऌ ॡ' लिखे जाते हैं।

अक्लीबद्वादशाग्द्वादशलिपिवृतहृल्लेखमस्रिद्विषट्क-
प्रोल्लास्यष्टाक्षरोष्मार्णकमपि लिपिभिः कादिभिश्चाऽभिवीतम्।
तद्बाह्ये चन्द्रबिम्बप्रतिपुटितवसुधामण्डलास्रिप्रराजत्-
क्लीबार्णं वृश्चिकोत्थं प्रवरतरफलप्राप्तिदं यन्त्रमेतत्।। (वही, २१/३५)

पद्मपाद ने इसे निम्नांकित रूप से स्पष्ट किया है—

"अक्लीबीति। द्वादशलिपिर्द्वादशाक्षरम्। अं ओं आं नं उं मों इत्यादिप्रकारेण वेष्टनमवगन्तव्यम्। अस्रिद्विषट्केति। अष्टाक्षराक्षर-द्वन्द्वं कोणद्वये लिखित्वा ऊष्मार्णानामेकैकं तृतीयकोणे विलिख्याऽव-शिष्टकोणेष्वप्येवं क्रमेण लिखेदित्यर्थः। लिपिभिः कादिभिरिति। शक्तिवेष्टनबाह्ये। चन्द्रबिम्बप्रपुटितकेति। चन्द्रमण्डलं लिखित्वा तन्म-ध्ये भूमण्डलं विरच्य तत्कोणेषु नपुंसकाक्षराणि लिखेदित्यर्थः"।

वृश्चिक राशि यन्त्र में आवरण-पूजा

शंकर के अनुसार वृश्चिक यन्त्र के आवरण-पूजन में महाबीज के अनन्तर प्रथम आवरण में अंगपूजा के अनन्तर द्वितीय आवरण में वासुदेवादि मूर्तियों और उनके समनन्तर तृतीय आवरण में चिद्रूपा, चिन्मया, चिन्तामणि, श्री, क्षोणि, रति, पावनी, धारा, धरिणी, तारिणी, द्राविणी तथा मोहिनी की अर्चना करनी चाहिये। इस अर्चना से सन्तान की प्राप्ति तथा धर्म के प्रति रुचि उत्पन्न होती है।

विवरण के अनुसार आवरण-पूजा में अंग, वासुदेव, चिद्रूपादि, अनन्तादि,

अं, केतो अः' वेष्टित कर देना चाहिये। पुनः त्रिकोण के तीनों कोणों में 'हुं फट्' लिखना चाहिये। फिर त्रिकोण के तीनों कोणों में शक्ति बीज 'ह्रीं' लिखकर उसके बाहर पाशबीज आं तथा अंकुश बीज क्रों लिखना चाहिये। तदनन्तर त्रिकोण के तीनों कोणों में केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु तथा मधुसूदन नामक स्वरोत्पन्न छह मूर्तियों के नामाक्षरों कं , नं, मां, गं, वं, मं अथवा 'अ आ इ ई उ ऊ' में से प्रत्येक कोण में क्रम से दो-दो अक्षरों की एक आवृत्ति, इसके बाहर प्रतिलोम तथा अनुलोम क्रम में मातृकावर्णों की दो आवृत्तियां और अन्त में यन्त्र को 'ह रि ह र ह रि ह र ह रि ह र' वर्णों से संवेष्टित करना चाहिये। तदनन्तर यन्त्र को एक चतुरस्र से आवृत करके इसके चारों कोणों में नृसिंह बीज 'क्ष्रौं' लिखना चाहिये।

आद्यैराबीतवीजं ग्रहवलययुतं हुंफडा युक्तकोणं
बाह्ये पाशांकुशार्णावृतमथ युगषण्मूर्तिनामार्णमर्णैः।
प्रत्यन्वेष्यद्भिरुद्यद्धरियुतहरवर्णैश्च वीतं धरायाः
कोणेषूद्यन्नृसिंहाक्षरमिति कथितं स्यात्तुलायन्त्रमेतत्।।
प्राक् प्रोक्तैश्चक्राद्यैरुक्तास्य समावृतिस्तृतीया स्यात्।

(वही, २१/३३-३४)

विवरण में तुलायन्त्र के निर्माण की विधि और आवरण-पूजा को अधिक स्पष्ट किया गया है—

"आद्यैरावीतमिति ग्रहवलययुतं यथा भवति तथाद्यैः आवीतमध्य-बीजमित्यर्थः। सूर्य अंआं सोम इंईं अंगारक उंऊं शुक्र ऋंॠं बुध लृं लॄं वृहस्पत एं ऐं शनैश्चर ओं औं राहो अं केतो अः इति वेष्टनप्रकारः। हुंफडायुक्तकोणमिति। हुंफड्युक्तकोणमित्यर्थः। बाह्ये इति। शक्तिवेष्टनाद् बाह्ये इत्यर्थः। युगषण्मूर्तयः केशवाद्या तेषां नामार्णैरेकावृतिः तद् बहिःप्रत्यन्वेषदिभः मातृकावर्णैः आवृतिद्वयं, तद् बहिः हरिहरवर्णैः। अंगवासुदेवकेशवकेत्विन्द्रवज्रादिभिः सप्तावरणा तुलापूजा"। (वही, २१/३३-३४ पर विवरण)

उपर्युक्त विधि से निर्मित तुलायन्त्र में आवरण-पूजा से वाणिज्य-व्यापार में लाभ एवं पोतादि की उपलब्धि होती है।

पोतोपलब्धिमेतत्करोति वाणिज्यलाभंच।। (वही, २१/३४)

सर्गाद्यान्ताद्यमन्तैरभिवृतहृदयं दण्डिभिश्चाथ हाही-
हूहैहौहोभिरात्तास्त्रिकमथ तु शिखाद्योतिवर्गान्त्यवर्णम्।
वर्णैः प्रत्यन्वितै प्रावृतमवनिपुरास्त्रोल्लसत्कामबीजं
क्लिन्नेस्वाहार्णयुक्तं महिततरफलं कन्यकोत्थंच यन्त्रम्।

(वही, २१/३१)

विवरण में कन्याराशि-यन्त्र के निर्माण की उक्त विधि स्पष्ट की गई है।

"सर्गाद्यान्ताद्यमन्तैरिति। विसर्गाद्यकारान्तैरकाराद्यमन्तैश्च वेष्टयेत्। अः अं अं औं उं इं ओं ईं इत्यादिप्रकारेण आत्तास्त्रिकमित्यस्त्रिशब्देन षट्कोणकोणान्युच्यन्ते। शिखाशब्देन षट्कोणाग्राणि। वर्गान्त्यः क्षकारः। वर्णैः प्रत्यन्वितैरिति। शक्तिवेष्टनबाह्ये अवनिपुरकोणेषु एव क्लीं-क्लिन्नेस्वाहार्णाः। अंग वासुदेव हृषीकेश मत्स्य केशव केत्विन्द्र वज्रादि-भिरष्टावरणा कन्यका पूजा"। (वही, ३१-३२ पर विवरण)

कन्यायन्त्र में आवरण-पूजा

कन्या-यन्त्र के मध्य में लिखित महाबीज के स्थान पर मधुसूदन की अर्चना के पश्चात् इसके प्रथम आवरण में अंग, द्वितीय में हृषीकेश-मोहिनी, वैकुण्ठ-विरजा, हरि-सरसिजा, शार्ंगी-तमोहारिणी, ब्रध्न-कमलावती तथा मुकुन्द-रमा आदि युगलों की क्रम से अर्चना करके मत्स्यादि की पूजा करनी चाहिये। पद्मपाद के अनुसार अंगपूजा के बाद वासुदेवादि, हृषीकेशादि, मत्स्यादि, केशवादि, केत्वादि, इन्द्रादि तथा वज्रादि क्रम से कन्या यन्त्र की अष्टावरण पूजा करनी चाहिये।

अत्राऽर्च्यो मधुसूदनस्त्वथ हृषीकेशाह्वयो मोहिनी
वैकुण्ठो विरजा हरिः सरसिजा शार्ंगी तमोहारिणी।
ब्रध्नाख्यः कमलावती च समुकुन्दाख्यो रमेति क्रमा-
न्मत्स्याद्यैश्च सुताश्वगोमहिषसौभाग्यप्रदं पावनम्।। (वही, २१/३२)

तुलाराशि यन्त्र

तुला यन्त्र का मूल आधार त्रिगुणित यन्त्र है। इसकी संरचना के लिये त्रिगुणित यन्त्र के मध्य महाबीज ह्रीं आदि के भीतर 'अं' का आलेखन करके इसे सूर्यादि नौ ग्रहों से वलयित अकारादि द्वन्द्व से 'सूर्य अं आं, सोम इं ईं, अंगारक उं ऊं, शुक्र ऋं ॠं, बुध लृं लॄं, वृहस्पते एं ऐं, शनैश्चर ओं औं, राहो

वर्णानामेकैकं चतुर्विंशतिगण्डेषु लिखेदित्यर्थः। सिंहानुष्टुबिति। शक्तिवेष्टनाद् बहिः उं ग्रं अं वीं रं आं इत्यादिप्रकारेण वेष्टनम्। वह्निप्राणेति। पृथिवीमण्डलस्य अग्निवाय्वीशाननिर्ऋतिकोणेषु कच-टतवर्गान् पयशलवर्गांश्च लिखेदित्यर्थः। त्वक्शब्देन यवर्ग उक्तः। अंग वासुदेव पुष्टि कृष्णानन्त केशव मत्स्य केत्विन्द्र वज्रादिभिर्दशा-वरणा सिंहपूजा"।। (वही, २८ पर विवरण)

सिंहयन्त्र की आवरण-पूजा

सिंहयन्त्र की आवरण-पूजा में प्रथमावरण में अंग, द्वितीयावरण में वासुदेवादि, तृतीयावरण में पुष्टि, तुष्टि, धृति, कृति, शान्ति, कान्ति, प्रमोदा, मेधा, हर्षा, स्मृति, अभिमता तथा क्षान्ति, चतुर्थ आवरण में कृष्ण, सत्य, नृहरि, वरद, विश्वमूर्ति, वरेण्य, शौरि, शूर, नर, मुरजित, विष्णु तथा जिष्णु, पंचम में अनन्तादि, षष्ठ में केशवादि, सप्तम में मत्स्यादि, अष्टम में ध्वजादि, नवम में इन्द्रादि तथा दशम आवरण में वज्रादि पूजे जाने चाहिये। सिंहयन्त्र की अर्चना से साधक को अपने शत्रुओं पर नियन्त्रण, तेजस्, यश तथा धनादि की प्राप्ति होती है।

पुष्टिस्तुष्टिर्धृतिरपि कृतिः शान्तिकान्ती प्रमोदा
मेधा हर्षा स्मृतिरभिमता क्षान्तिका स्यात्तृतीया।
कृष्णः सत्यो नृहरियरदौ विश्वमूर्तिर्वरेण्यः,
शौरिः शूरो नरमुरजितौ विष्णुजिष्णू चतुर्थी।।
विपक्षनिग्रहं तेजो यशश्च धनसंगमम्।
करोत्यर्चयितॄणां च विधानमिति सिंहजम्।। (वही, २१/२६-३०)

कन्याराशि यन्त्र

कन्याराशि की पूजा षड्गुणित यन्त्र में की जाती है। इसके मध्य में महाबीज लिखकर इसे विलोम, अनुलोम क्रम में विसर्ग से लेकर अकार तक और अकार से लेकर अं तक के स्वर वर्णों से 'अः अं, अं आं, औं इं, ओं ईं, ऐं उं, एं ऊं, लॄं ऋं, लृं ॠं, ॠं लृं, ऋं लॄं, ऊं एं, उ ऐं, ईं ओं, इं औं, आं अं, अं अः' के रूप में वेष्टित करना चाहिये। तदनन्तर षट्कोण के छहों कोणों के भीतर क्रमशः 'हां हीं हूं हैं हौं हः' वर्ण लिखकर षट्कोणों के शीर्ष पर अन्त्यवर्ण 'क्ष' लिखना चाहिये। तदनन्तर इस यन्त्र को शक्तिबीज ह्रीं से वेष्टित कर इसके बाहर चतुरस्र बनाकर इसके कोणों में 'क्लीं क्लिन्ने स्वाहा' लिखना चाहिये।

सिंह-यन्त्र

सिंहराशि यन्त्र द्वादशगुणितात्मक होता है। इसके मध्य में महाबीज लिखना चाहिये, फिर महाबीज को अनुलोम-विलोम क्रम में शं षं सं तथा हं इन ऊष्म वर्णों से वेष्टित वैष्णव अष्टाक्षर महामन्त्र 'ओं नमो नारायणाय' के एक-एक अक्षर 'शं ओं, षं नं, सं मों हं नां हं रां सं यं षं णां शं यं' के क्रम से वेष्टित करना चाहिये। फिर द्वादशगुणित यन्त्र के बारह कोणों में 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' इस द्वादशार्ण मन्त्र के एक-एक वर्ण लिखने चाहिये। तदनन्तर द्वादशगुणित यन्त्र के २४ गण्डों में क्रमगत आत्माष्टाक्षर मन्त्र 'ओं ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा' के दो-दो वर्णों के बाद 'य र ल व' इन अन्तःस्थ वर्णों में से एक-एक वर्ण लिखकर पुनः आत्माष्टाक्षर मन्त्र के दो-दो वर्णों को विपरीत क्रम में लिखते हुए उनके मध्य क्रमगत एक-एक अन्तःस्थ वर्ण लिखने चाहिये।

फिर ३२ अक्षरात्मक इस नृसिंह मन्त्र—

'उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्।।'

—के दो-दो अक्षरों के मध्य क्रमशः एक-एक कलावर्ण 'उंग्रं अं, वींरं आं, मंहां इं, विंष्णुं उं...... आदि प्रकार से यन्त्र को वेष्टित कर देना चाहिये। तदनन्तर इस द्वादशगुणित यन्त्र के बारह कोणों में शक्तिबीज 'ह्रीं' लिखकर उसके बाहर पृथ्वीमण्डल अर्थात् चतुरस्र का निर्माण करके उसके पूर्वादि मुख्य दिशाओं में आग्नेय कोण में कवर्ग, वायव्य में चवर्ग, ईशान में टवर्ग तथा नैर्ऋत्य में तवर्ग तथा पूर्वादि मुख्य दिशाओं में पवर्ग, त्वक् अर्थात् यवर्ग, शवर्ग तथा ळवर्ग के अक्षर लिखने चाहिये।

ऊष्मार्णाष्टाक्षरावेष्टितहृदयमथो द्वादशार्णात्तकोणं
सान्तःस्थात्माष्टवर्णैः क्रमगतविगतैरुल्लसत्तत्त्वगण्डम्।
सिंहानुष्टुब्द्वयार्णान्तरितवृतकलालंकृतं चाथ वह्नि-
प्राणेशानक्षपाटास्रिगकचटतपत्वक्शलं सिंहयन्त्रम्।। (वही, २१/२८)

"ऊष्मार्णेति। अत्रानुविगता ऊष्मार्णा ग्राह्याः। शं ओं षं नं सं मों हं नां हं रां सं यं षं णां शं यं इति वेष्टनप्रकारः। द्वादशार्णं प्रसिद्धम्। सान्तस्थेति क्रमगतात्माष्टाक्षरवर्णद्वयान्तरं क्रमगतान्तस्थ-वर्णानामेकैकं लिखित्वा विगतात्माष्टाक्षरवर्णद्वन्द्वान्तरं विगतान्तस्थ-

महाबीज 'क्लीं' आदि, त्रिकोण के तीनों कोणों में क्रमशः 'ओं ह्रीं श्रौं' त्रिकोण से बाहर 'कामिनि रंजनि स्वाहा' मन्त्र से 'का हरि मि हर नि हरि रं हर..' आदि के रूप में पुटित वृत्त और इस वर्ण वृत्त से बाहर प्रतिलोम तथा अनुलोम क्रम से वर्णों की दो आवृत्तियां तथा अन्त में इस समस्त यन्त्र के बाहर वायुमण्डल का निर्माण करके कर्क यन्त्र बनाया जाता है। इस यन्त्र की निर्माण-विधि के बारे में विवरण भी द्रष्टव्य है।

> **पाशाद्यष्टाक्षरार्णप्रतिपुटितमहाष्टाक्षरार्णावृतान्त-**
> **र्बीजं शाखान्तरूढेगगननृहरिबीजात्तकोणं बहिश्च।**
> **कामिन्यष्टाक्षराद्यन्तगहरिहरबीजावृतं प्रत्यनूद्य-**
> **द्वर्णाढ्यं वायुगेहे स्थितमिति गदितं कर्कटोत्थंच यन्त्रम्।।**

(वही, २१/२५)

"पाशाद्यष्टार्णेति। वैष्णवाष्टाक्षरम्। शाखान्तरूढं गगनेति। शाखान्तं प्रणवः तस्मिन् रूढं ई शाखान्तरूढे गगनं हकारः नृहरि श्रौं एतैरात्तकोणमित्यर्थः। बहिश्च। त्रिकोणाद् बहिरित्यर्थः। का ह रि मि हर नि हरि इत्यादिक्रमेण वेष्टनम्। प्रत्यनूद्यद्वर्णाढ्यमिति। शक्ति-वेष्टन बाह्ये"।।२५।। (वही, विवरण)

कर्क-यन्त्र की अष्टावरण पूजा

कर्क यन्त्र की अष्टावरण पूजा में मध्यवृत्त में महाबीज, अंग, फिर रक्ता, रमा, कराली, कमला, चण्डा, इन्दिरा, महोच्छुष्मा तथा श्री, तदनन्तर वासुदेवादि अष्ट मूर्तियां, फिर भूति, विभूति, उन्नति, नति, धृति, रति, संयति तथा द्युति, तदनन्तर केशवादि अष्टमूर्तियां, पुनः ध्वजादि, इन्द्रादि और अन्त में वज्रादि अर्चित किये जाने चाहिये।

> **रक्ता रमा कराली कमला चण्डेन्दिरा महोच्छुष्मा।**
> **श्रीरिति मूर्तियुगलयोर्मध्यगता चावृतिरियंचापि।।**
> **भूतिर्विभूतिरुन्नतिर्नतिधृतिरतिसंयतिद्युतयः।**
> **आवृतिरेषा प्रोक्ता श्रीवश्यकरं विधानमिति गदितम्।।**

(वही, २१/२६-२७)

"अंगवासुदेव रक्ताभूति केशव केत्विन्द्र वज्रादिभिः अष्टावरणा कर्कटकपूजा"। (वही, २१/२७ पर विवरण)

डं' क्रम से लिखना चाहिये। अन्त में इस यन्त्र को वायुमण्डल से आवृत कर इस मण्डल के छहों बिन्दुओं के अन्तरालों में 'मं यं, रं, लं, वं, हं' वर्ण लिखने चाहिये।

प्रागच्छन्मात्रभिख्यालिपिभिरभिवृतं तत्स्वरायुक्तवृत्तं
शाद्यैः क्षान्तैस्तदाद्यैरपि परिवृतगण्डन्तदस्रात्तजूंसम्।
काद्यैर्भान्तैः प्रवीतं मयरलवहयुग्बिन्दुकं वायुगेहा-
वीतं वांछाप्रदानप्रसवगुणयुतं युग्मजं यन्त्रमेतत्।।
इन्द्राणी कौमारिका ब्रह्मजाया वाराह्याख्या वैष्णवी चाथ लक्ष्मीः।
चामुण्डा माहेश्वरी स्यात्तृतीया रक्षा प्रज्ञाश्रीप्रदं स्याद्विधानम्।।

(वही, २१/२३-२४)

मिथुन-यन्त्र की आवरण-पूजा

मिथुन-यन्त्र की आवरण-पूजा में मध्यवर्ती बीज क्लीं श्रीं आदि के पश्चात् प्रथम आवरण में अंग, द्वितीय में वासुदेवादि मूर्ति, तृतीय में इन्द्राणी आदि शक्तियां, चतुर्थ में केशवादि, पंचम में ध्वजादि, षष्ठ में इन्द्रादि तथा सप्तम आवरण में वज्रादि आयुध पूजे जाने चाहिये।

"प्रागच्छदिति। प्रातिलोम्येनागच्छद्भिः ब्रह्माण्यादिमातृणामभि-ख्यालिपिभिः नामाक्षरैःरभिवृतमध्यबीजमित्यर्थः। यदेवंभूतं यन्त्रं तद्-युग्मजमित्युत्तरत्र यच्छब्दस्यान्वयः। मातृकाक्षरावृत्तिं विशिनष्टि स्वरायुक्तवृत्तमिति। अः अं महालक्ष्मी औं ओं चण्डिके ऐं एं इन्द्राणीत्यादिक्रमेण वेष्टनमवगन्तव्यम्। शाद्यैः क्षान्तैरिति। षड्गुणि-तस्य गण्डद्वादशकं भवति। तेषु शादिक्षान्तं क्षादिशान्तं व लिखेदि-त्यर्थः। तत्र दक्षिणभागगण्डेषु क्षादिकं वामेषु शादिकमित्यवगन्तव्यम्। तदस्रात्ते तिकाद्यैर्भान्तैरिति।

षट्स्वस्रेषु जूं स इति लिखेदित्यर्थः। शक्तिवेष्टनाद् बहिः कं भं खं बं गं फमित्यादि क्रमेण च लेखनीयम्। म य र ल व ह युग्बिन्दुकमिति। वायुमण्डलबिन्दुष्वेतानि लिखेदित्यर्थः। अंगवासु-देवेन्द्राणी केशवकेत्विन्द्र वज्रादिभिः सतावरणा मिथुनयन्त्रपूजा"।

(वही, २१/२३-२४ पर विवरण)

कर्कट-यन्त्र

पाशादि अष्टाक्षर मन्त्र 'आं श्रीं ह्रीं क्लीं क्लीं ह्रीं श्रीं आं' ह्रीं आं स्वाहा' अक्षरों से पुटित वैष्णव महाष्टाक्षर मन्त्र 'ओं नमो नारायणाय' से आवृत

अन्नमध्यराजदिति। महाबीजवेष्टनाचां मध्येराजदि्भः पान्तक्षद्यक्ष-रैराढ्यमित्यर्थः। 'अं क्षं आं ळं इं हं इत्यादि क्रमेण वेष्टयेन्मध्य-बीजमित्यर्थः। नाद्यैः कान्तैरिति। शक्तिवेष्टनाद् बाह्ये' नं कं घं खं दं गमित्यादिक्रमेण वेष्टनमवगन्तव्यम्। (वही, विवरण)

वृषयन्त्र में आवरण-पूजा

वृषयन्त्र की पूजा में महाबीज के अनन्तर क्रमशः अंग, वासुदेवादि मूर्तियों, नित्या, नन्दा, व्यापिनी, व्योमरूपा, शान्ति, विद्यारूपिणी, प्रतिष्ठा, कल्पा, अमोघा, चण्डिका तथा दीर्घजिह्वा नामक शक्तियों, केशवादि मूर्तियों, मत्यादि, शेषादि, ध्वजादि, इन्द्रादि तथा वज्रादि के रूप में नवावरण पूजा सम्पन्न की जाती है।

नित्यानन्दा(न्ता) व्यापिनी व्योमरूपा शान्तिर्विद्यारूपिणी च प्रतिष्ठा।
कल्पामोघा चण्डिका दीर्घजिह्वेत्येवं प्रोक्ता ह्यावृतिः स्यात्तृतीया।।
(वही, २१/२१)

वृषयन्त्र पूजन के इस विधान को सम्पन्न करने वाले साधक को गो, अश्व, महिष, दास, दासी, आभूषण, वस्त्र आदि पर्याप्त रूप में प्राप्त होने की सिद्धि प्राप्त होती है तथा शरीरान्त होने के पश्चात् उसे परम सत् अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है।

सुरभिहयमहिषदासीदासाभरणांशुकादिसिद्धिकरम्।
वृषजं विधानमेतद्देहान्ते सिद्धिकृत् परस्य सतः।। (वही, २१/२२)

मिथुन-यन्त्र

मिथुन यन्त्र षड्गुणात्मक होता है। इसके मध्य में अभिलषित महाबीज, इसके चारों ओर अंगमन्त्र, फिर वासुदेवादि, तृतीय आवरण में प्रतिलोम क्रम से स्वरयुगलों से युक्त वृत्त में इन्द्राणी आदि अष्टमाताओं के नाम 'अः अं इन्द्राणी औं ओं कौमारिका ऐं एं ब्रह्माणी लॄं लृं वाराही ॠं ऋं वैष्णवी ऊं उं लक्ष्मी ईं इं चामुण्डा आं अं 'माहेश्वरी' लिखकर षड्गुणित यन्त्र के बारह कपोलों में से दायीं ओर के कपोलों में विपरीत क्रम में क्ष, ळ, ह, स, श क्षादि शान्त तथा वामभाग के कपोलों में शादि क्षान्त वर्ण 'श, स, ह, ळ तथा क्ष' लिखने चाहिये। फिर षट्कोण के छहों कोणों में 'जूंसः' लिखना चाहिये।

तदनन्तर इन्द्राणी आदि शक्तियों वाले वृत्त के बाहर क से भ तक के वर्ण 'कं भं, खं बं, गं फं, घं पं, ङं नं, चं धं, छं दं, जं थं, झं तं, ञं णं, टं ढं तथा ठं

प्रकार के पूजन से साधक को अश्व-गजादि पशु-सम्पत्ति, रथादि वाहनों, दासी-दासादि सेवकों की प्राप्ति के अतिरिक्त शौर्य, तेजस् तथा कीर्ति का विस्तार होता है और उसके शत्रुओं की पराजय होती है।

गौरीन्दिरा रतिधृती वसुधा तुष्टिपुष्टिक्षमासरस्वत्यः।
मूर्त्योश्च मध्यमावृतराशेशात् प्राक्ध्वजादिभिरपि कथिता।।
हयगजरथभृत्यादीनरिपरिभवशौर्यादिसिद्धिंच।
तेजो यशश्च विपुलं पूजयितुर्वितनुते विधानमिदम्।।

(वही, २१/१८-१६)

वृषयन्त्रम्

वृषभ यन्त्र के निर्माण के लिये पहले एक द्वादशगुणित यन्त्र निर्मित कर इसके भीतर एक त्रिकोण बनाकर इसके मध्य में 'ह्रीं क्लीं श्रीं' इन तीन महाबीजों में से कामनानुसार किसी एक का अंकन त्रिकोण के मध्य में करके इस महाबीज के मध्य 'अं ' लिखा जाना चाहिये। फिर इस महाबीज को 'आ से लेकर 'अं' तक तक के १५ स्वरों के बीच में 'आं क्षं इं ळं ई हं उं सं ऊं शं आदि क्रम से क्ष से लेकर प तक के १५ व्यंजनाक्षरों से वेष्टित किया जाना चाहिये।

तदनन्तर कार्तिकेय के नेत्रों की कोण संख्या (१२) वाले द्वादश गुणित यन्त्र के १० कपोलों में क्रमशः पवर्ग और चवर्ग के अक्षर लिखे जाने चाहिये, अथवा उक्त दस कलोलों में पवर्ग, तवर्ग, टवर्ग तथा चवर्ग के बीस अक्षरों को दो-दो की संख्या में लिखना चाहिये।

तदनन्तर त्रिकोण के बीच अंकित शक्ति अर्थात् ही, क्लीं तथा श्री बीज के आं क्षं इं ळं.. आदि वेष्टन के बाहर नाद्य कान्त अर्थात् 'नं कं थं खं दं गं... आदि एवं कादि नान्त अर्थात् 'कं नं खं धं आदि क्रम से और नं कं आदि क्रम न से लेकर क तथा क से लेकर न तक की लिपियों के दो वृत्तों से वेष्टित कर देना चाहिये।

वर्णैराद्यैरमन्तैः समभिवृतमहाबीजमध्यमध्यराजत्-
पान्तक्षाद्यक्षराढ्यं गुहनयनहुताशास्त्रिराजन्मथार्णम्।
अस्त्रेर्गण्डद्वयोद्यत्पचलिपिपरिवीतंच नाद्यैश्च कान्तैः
काद्यैर्नान्तैश्च यन्त्रं बहुविधफलदं पूजितं स्याद्वृषोत्थम्।।

(वही, २१/२०)

वज्रादि आवरण-पूजन के पहले मत्स्यादि आवरण की तथा केशवादि मूर्तियों के पूजन में पहले शेषादि आवरणों की पूजा करनी चाहिये। सभी प्रकार के मास-यन्त्र की पूजाओं में केशवादि आवरणों की अर्चना होनी स्वतः सिद्ध है।

आदौ विधानेषु समेतमूर्तीः शक्तीश्चतस्रोऽभिजयेद्यथावत्।
राशिष्वथो भानुयुताश्च मूर्तीः प्रवक्ष्यमाणं च निरूप्य मन्त्री।।
वृषहरिवृश्चिककलशात्मकेष्वथो केतुकेशवाद्यैश्च।
मत्स्यादिकशेषाद्यैः समभियजेदन्तरा समावरणम्।। (वही, २१/१५-१६)

राशि-यन्त्र

मेषराशि-यन्त्र

मेषराशि यन्त्र त्रिगुणात्मक होता है। इसके मध्य में कामना के अनुसार क्लीं श्रीं ह्रीं आदि बीजों में से कोई एक रखा जाता है जिसे महाबीज कहा जाता है। इस महाबीज को ॠकार आदि आठ स्वरों से प्रतिलोम तथा ऌकारादि आठ स्वरों से अनुलोम क्रम से दो वृत्तों से वेष्टित किया जाता है। तदनन्तर उक्त त्रिकोण के तीनों कोणों के भीतर क्रमशः शक्ति, श्री तथा काम बीज 'ह्रीं श्रीं क्लीं' अंकित करने चाहिये। फिर त्रिकोण को नृसिंहान्वित वराह मन्त्र के 'हूं उं हूं ग्रं हूं वीं हूं रं हूं मं हूं हा हूं विं हूं ष्णुं हूं ज्वं हूं लं न्तं ... क्रम में दो वृत्तों से वेष्टित कर देना चाहिये। तदनन्तर इस यन्त्र को वायुबिम्ब से आवृत कर वायुबिम्ब के छह बिन्दुओं के अन्तरालों में कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग तथा यवर्ग रूप वर्गाक्षर लिखने चाहिये।

प्रानुप्रोद्यत्स्वराष्टद्वितयवृतमहाबीजकं शक्तिलक्ष्मी-
कामैरात्ताग्निकोणं बहिरपि वृतसिंहान्वितक्रोडमन्त्रम्।
बिन्दूनामन्तरालेष्वपि च विलिखितैः कादिवर्गैश्च युक्तं
षड्भिर्वायव्यगेहावृतमभिमतकामप्रदं मेषयन्त्रम्।। (वही, २१/१७)

आवरण-पूजा

इस विधि से निर्मित मेषयन्त्र के मध्य स्थित महाबीज के प्रथम आवरण में अंगपूजा, द्वितीय आवरण में गौरी, इन्दिरा, रति, धृति, वसुधा, तुष्टि, पुष्टि, क्षमा तथा सरस्वती नामक नौ शक्तियों, तृतीय आवरण में वासुदेवादि तथा चतुर्थ आवरण में केशवादि आठ मूर्तियों, पंचम आवरण में ध्वजादि, षष्ठ आवरण में इन्द्रादि तथा सप्तम आवरण में वज्रादि आयुधों की अर्चना की जानी चाहिये। इस

ओं विष्ण्वीश्वराय विद्महे देवश्रेष्ठाय धीमहि तन्नो व्यापी प्रचोदयात्।
ओं मधुसूदनाय विद्महे लोकपालाय धीमहि तन्नो धीरः प्रचोदयात्।
ओं वामनेशाय विद्महे मायारूपाय धीमहि तन्नश्चित्तं प्रचोदयात्।
ओं श्रीधरेशाय विद्महे लक्ष्मीधराय धीमहि तन्नोः जातः प्रचोदयात्।
ओं त्रिविक्रमाय विद्महे महाम्बुजाय धीमहि तन्नो जीवः प्रचोदयात्।
ओं हृषीकेशाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नः साध्यः प्रचोदयात्।
ओं पद्मनाभाय विद्महे आकर्षज्ञानाय धीमहि तन्नो ब्रह्मा प्रचोदयात्।
ओं दामोदराय विद्महे स्तवप्रियाय धीमहि तन्नो दिव्यः प्रचोदयात्।

केशवादि द्वादशमूर्ति एवं धात्रादि द्वादश आदित्य

केशवादि १२ मूर्तियों के साथ उक्त १२ आदित्यों की पूजा में इनके योग का क्रम केशव-धाता, नारायण-अर्यमा, माधव-मित्र, गोविन्द-वरुण, विष्णु-अंशु, मधुसूदन-भग, त्रिविक्रम-विवस्वान्, वामन-इन्द्र, श्रीधर-पौष्ण, हृषीकेश-पार्जन्य, पद्मनाभ-त्वष्टा तथा दामोदर-विष्णु होगा। केशवादि स्वरज मूर्तियों के पूजा मन्त्र में पहले मूर्ति से सम्बन्धित स्वर, पुनः मूर्ति के नाम का प्रथम अक्षर, तदनन्तर मूर्तिनाम फिर सम्बन्धित आदित्य का जैसे-ओं अं कं केशवाय धात्रे नमः ओं आं नां नारायणाय अर्यमणे नमः, ओं इं मां माधवाय मित्राय नमः आदि के रूप में होगा।

प्रथमं केशवधातृकमितरन्नारायणार्यमाख्यंच।
अन्यन्माधवमैत्रं परमपि गोविन्दवारुणं प्रोक्तम्।।
पंचममपि विष्ण्वशुं मधुसूदनभगंच षष्ठमपि।
त्रिविक्रमविवस्वदाख्यं सप्तमन्यच्च वामनेन्द्रमपि।।
श्रीधरपौष्णं नवमं दशमं च हृषीकेशपार्जन्यम्।
अम्बुजनाभं त्वाष्ट्रं दामोदरवैष्णवं विधानमिति।। (वही, २१/१२-१४)

आवरण-पूजा

आवरण-पूजा में भी सबसे पहले यन्त्र के बीच में अभीष्ट मूर्ति तथा अंग-पूजन तत्पश्चात् वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध नामक मूर्तियों और लक्ष्मी, सरस्वती, प्रीति तथा सरस्वती नामक शक्तियों की अर्चना करनी चाहिये। इसी प्रकार राशियों के पूजन में द्वादश आदित्य युक्त द्वादश स्वर मूर्तियों की अर्चना करनी चाहिये। राशियों में वृष, सिंह तथा वृश्चिक कलशात्मक पूजा में

शंखचक्रगदापद्मैः हृषीकेशादयः क्रमात्।।
उत्तराधरभेदेन दक्षवामक्रमात् तथा।।
इत्युक्तक्रमेणेत्यर्थः।। (वही, २१/६-१०-११ पर विवरण)

द्वादश स्वरयुक्त द्वादशाक्षर मन्त्र

द्वादश स्वरयुक्त द्वादशाक्षर मन्त्र 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' के द्वादशवर्ण सहित केशवादि द्वादशमूर्तियों के मन्त्र निम्नांकित हैं—

ओं अं केशवाय धात्रे नमः, ओं नं आं नारायणाय अर्यमणे नमः..... आदि।

द्वादशाक्षरमन्त्र द्वादशस्वरमूर्त्यादि के नमः युक्त मूल मन्त्र

ओं ग्रौं नमो भगवते केशवाय ओं ग्रौं ओं नमः ।
ओं ह्रीं नमो भगवते नारायणाय ओं ह्रीं ओं नमः।
ओं ह्स्रौं (हस्रैः) नमो भगवते माधवाय ओं ह्स्रौं (हस्रैः) ओं नमः।
ओं ह्यों (ह्यैं) नमो भगवते गोविन्दाय ओं ह्योंः (ह्यैंः) ओं नमः।
ओं म्र्यौं मधुसूदनाय ओं म्र्यौं ओं नमः।
ओं ह्रीं त्रिविक्रमाय ओं ह्रीं ओं नमः।
ओं प्रौं वटुवामनाय ओं प्रौं ओं नमः।
ओं क्लीं श्रीं क्लीं नमः श्रीधराय ओं क्लीं श्रीं क्लीं ओं नमः।
ओं ऐं द्रों द्रां हृषीकेशाय विष्णवे ओं ऐं द्रों द्रां ओं नमः।
ओं हुं ओ नमः पद्मनाभाय ओं हुं ओं नमः।
ओं ट्रं ओं नमो दामोदराय ओं ट्रं ओं नमः ।

इन मूलमन्त्रों को अष्टाक्षर मन्त्र 'ओं नमो नारायणाय' में जोड़कर पूजनादि करना चाहिये।

केशवादिमूर्तियों के गायत्री मन्त्र

ओं केशवाय विद्महे जलधराय धीमहि तन्नो भुवः प्रचोदयात्।
ओं नारायणाय विद्महे भवोद्वाय धीमहि तन्नो विश्वः प्रचोदयात्।
ओं माधवाय विद्महे लक्ष्मीधराय धीमहि तन्नो विश्वः प्रचोदयात्।
ओं गोविन्दाय विद्महे विश्वेश्वराय धीमहि तन्नो विश्वः प्रचोदयात्।

पद्मं चरोभस्थिरसंज्ञकेषु रक्तप्रपीताच्छदलादिवर्णम्।
मासेषु यन्त्रोदरक्लृप्ततत्तन्मासाभिधामूर्त्यभिधाक्षराढ्यम्।।(वही, २१/७)

केशवादि मूर्तियों तथा मेषादि राशियों के जो दीर्घवर्ण हैं, वे उक्त यन्त्रों के वेष्टन या आकार के बाहर लिखे जाते हैं।

केशवमेषादीनां ये दीर्घा मूर्तिराशिवर्णानाम्।
ते वृत्तानि भवन्ति च निगदितमिति यन्त्रक्लृप्तिसामान्यम्।।
(वही, २१/८)

केशवादि द्वादश मूर्तियों के वर्ण क्रमशः स्वर्ण, गोदुग्ध, जवापुष्प, मनःशिला, हरिताल, पीत, नीलम, अरुण, कैरव पुष्प, केशर, मेघ तथा अंजन जैसे हैं।

सुवर्णगोक्षीरजवाशिलालपीतेन्द्रनीलारुणकैरवाभाः।
काश्मीरमेघांजनरोचिषश्च क्रमेण वर्णैरपि केशवाद्याः।। (वही, २१/९)

केशवादि सभी द्वादश मूर्तियां मुकुट, हार, केयूर, पीताम्बर, चक्र, शंख, गदा तथा पद्म धारण करने वाली हैं। इनका पूजन जिन बारह आदित्यों के साथ किया जाता है, उनके नाम क्रमश धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, इन्द्र, पूषा, पर्जन्य, त्वष्टा तथा विष्णु हैं।

इतीरिताश्चापि किरीटहारकेयूरपीताम्बरकादितुल्याः।
सचक्रशंखाः सगदाम्बुजाश्च सम्पूजनीयास्तपनैः क्रमेण।।
धात्रर्यममित्राख्यावरुणांशुभगा विवस्वदिन्द्रयुताः।
पूषाह्वयपर्जन्यौ त्वष्टा विष्णुश्च भानवः प्रोक्ताः।। (वही, २१/१०-११)

केशवादि मूर्तियों के स्वरूप, केशव-धात्रादि के पूजा-विधान में प्रयुक्त होने वाले पुष्पांजलि तथा न्यासादि मन्त्र निम्नांकित हैं—

केशवादि मूर्तियों के स्वरूप

पद्मारिगदया शंखपद्मशंखगदारिभिः।
गदारिशंखपद्मैश्च केशवाद्यास्त्रयोऽकिताः।।
गदाचक्राब्जशंखैश्च गदाशंखारिपंकजैः।
शंखचक्राब्जगदया गोविन्दादय अंकिताः।।
गदाब्जचक्रशंखैश्च चक्रशंखगदाम्बुजैः।
चक्राम्बुजगदाशंखैः त्रिविक्रमपुरःसराः।।
चक्रशैलाब्जशंखैश्च पद्मशैलारिशंखकैः।

मेषादि राशियों के यन्त्र

मेषादि द्वादश राशियों में से चर राशियों के मास-यन्त्र त्रिगुणात्मक, स्थिर राशियों के द्वादशगुणित तथा उभयात्मक राशियों के मासों के यन्त्र षड्गुणित होते हैं।

मेषादिकेषु त्रिगुणात्मकानि चराणि भास्वद्गुणितात्मकानि।
स्थिराण्यथो षड्गुणितानि तज्ज्ञैरुक्तानि यन्त्राण्युभयात्मकानि।।
(वही, २१/४)

चर, स्थिर तथा उभयात्मक राशियां

धनु, मत्स्य, मिथुन तथा कन्या नामक पीतवर्णी राशियां उभयात्मक, तुला, मकर, मेष तथा कर्क रक्तवर्ण राशियां चर तथा वृष, सिंह, वृश्चिक तथा कुम्भ नामक श्वेतवर्ण वाली राशियां स्थिर मानी गई हैं।

चापो नीरगयुक्कन्याः पीताः स्युरुभयास्त्वमी।
वणिङ्मकरमेषाह्वयकुलीरा रक्तरोचिषः।
चरा वशिष्टाश्चत्वारः स्थिराः श्वेताः पृथङ्मताः।। (वही, ४/३९-४०)

ये मेषादि मास-यन्त्र त्रिगुणित, षड्गुणित तथा द्वादशगुणितादि यन्त्रों के पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त, अपने-अपने नाम तथा रूप के अनुरूप भिन्न-भिन्न एवं बाह्यवेष्टन बिम्ब से युक्त होने चाहिये।

तानि त्रिषड्द्वादशकात्मकोक्तैः स्युर्लक्षणैरप्यभिलक्षितानि।
स्वैः स्वैश्च नामप्रविभक्तरूपभेदैर्बहिर्वेष्टितबिम्बकानि।। (वही, २१/५)

त्रिगुणित यन्त्र अष्ट कमलदल से, षड्गुणित द्वादश दलों एवं स्थिर राशियों वाले यन्त्र सोलह अथवा द्वादश पद्मदलों से आवृत्त होने चाहिये।

त्रिगुणितमपि यन्त्रमष्टपत्रावृतमथ षड्गुणितं द्विषड्दलाख्यम्।
स्थिरगतमपि चाष्टयुग्मपत्रं तदपि षड्युगपत्रशोभितं वा।।
(वही, २१/६)

उक्त चर, उभय तथा स्थिर राशियों वाले मासों के त्रिगुणितादि यन्त्रों के बाह्य आवरण में आलिखित पद्मदलों के वर्ण पूर्वोक्त रूप में रक्त, पीत तथा श्वेत होने चाहिये तथा यन्त्रों के मध्य अंकित केशवादि मूर्तियों के नाम उनके नाम के आदि अक्षरों से युक्त होने चाहिये।

मेषादि मासयन्त्र-विधान

भगवान् विष्णु के अष्टाक्षर मन्त्र 'ओं नमो नारायणाय' के प्रसंग में ही मेषादि मासों के भेद से विभिन्न रेखाओं और वर्णों से सुशोभित उन त्रिगुणित, षड्गुणितादि यन्त्रों का निरूपण किया जाता है, जिनके द्वारा वैष्णव विधान सम्पन्न किये जाते हैं।

अथ प्रवक्ष्यामि च मासभेदभिन्नानि यन्त्राण्यपि संग्रहेण।
रेखाक्रमधुन्ति विचित्रवर्णलसन्ति विष्णोश्च विधानभांजि।।

(प्रपंचसारतन्त्र, २१/१)

मासयन्त्र वे यन्त्र हैं, जिनके माध्यम से श्रेष्ठ साधक वर्ग अपने अभिलषित लक्ष्य की प्राप्ति के लिये कल्पवृक्ष की भांति सतत फल प्रदान करने वाले धरणी तथा अनन्तादि विशिष्ट व्रतों को सम्पादित करते हैं।

यैः कुर्युरिष्टाप्तिनिविष्टचेष्टा धरण्यनन्तादिकसंज्ञकानि।
व्रतान्यभीष्टार्थदकल्पवृक्षैरनारतेनैव च साधकेशाः।। (वही, २१/२)

मेष, वृषभ, मिथुन तथा कर्क इन चार आरम्भिक राशियों के मासयन्त्र वायुगृह से आवृत होने चाहिये। सिंह, कन्या, तुला तथा वृश्चिक मासों के यन्त्र भूगृह से वेष्टित एवं धनु, मकर, कुम्भ तथा मत्स्य राशियों के मासयन्त्र परस्पर सम्बद्ध दो पार्थिव-गृहों से आवृत होने चाहिये।

मेषादिकं यच्च चतुष्कमादौ मासेषु तद्वायुगृहावृतं स्यात्।
सिंहादिकं भूगृहसंवृतंच चापादिकं पार्थिवयुग्मवीतम्।। (वही, २१/३)

यहां वायुगृह का तात्पर्य वृत्त के भीतर छह बिन्दुओं वाले मण्डल से है। आचार्य शंकर ने आकाशादि पंचभूतों के मण्डलों का उल्लेख करते हुए कहा है कि व्योम का चिह्न या मण्डल वृत्त, वायु का छह बिन्दुओं से युक्त वृत्त, अग्नि का स्वस्तिकयुक्त त्रिकोण, जल का कमलयुक्त अर्धचन्द्र तथा धरा का वज्रयुक्त चतुरस्र है।

वृत्तं व्योम्नो बिन्दुषट्कान्वितं तद्वायोरग्नेः स्वस्तिकोद्यत्त्रिकोणम्।
अब्जोपेताद्र्धेन्दुमद्विम्बमाप्यं स्याद्वज्रोद्यच्चातुरस्रं धरायाः।।

(वही, १/४६)

यजमूर्ति पूजा-विधान

अष्टाक्षर मन्त्र के अन्तिम वर्ण यकार से उत्पन्न मूर्ति की पूजा में प्रथम आवरण में अंगपूजा, द्वितीय में शक्तिसहित वासुदेवादि मूर्तियों, तृतीय में शक्ति-सहित केशवादि मूर्तियों, चतुर्थ में ध्वजादि, पंचम में मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण तथा कल्कि की, छठे आवरण में निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या तथा शान्ति नामक शक्तियोंसहित आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा तथा ज्ञानात्मा की, सातवें आवरण में शेष आदि आठ नागों की, आठवें आवरण में इन्द्रादि लोकपालों की उनके आयुधों के साथ पूजा की जानी चाहिये। इसके अलावा पहले आवरण-पूजा के प्रसंग में जो कुछ कहा गया है और यहां उसका उल्लेख नहीं है, उसे भी पूजा में प्रयुक्त किया जाना चाहिये।

......विधानेऽन्त्ये।।
अंगैः प्रथमावरणं मूर्तिभिरपि शक्तिभिर्द्वितीयमपि।
अन्ये केशवकेत्यादिभ्यां स्यात्पंचमं च मत्स्याद्यैः।।
मत्स्यः कूर्मवराहौ नृसिंहकुब्जत्रिरामकृष्णाश्च।
कल्किः सानन्तात्मा पुनरमृतात्मा च षष्ठमहिपाद्यैः।।
सप्तममपि लोकेशैरष्टममपि तदायुधैश्च संप्रोक्तम्।
प्रागुक्तेषु विधानेष्वालक्ष्यं नोक्तमत्र यत्तदपि।। (वही, २०/५८-६०)

पद्मपाद के अनुसार उपर्युक्त सभी अर्चना-विधियों में अंगपूजा के पश्चात् द्वितीय और तृतीय आवृत्तियों में सशक्तिक वासुदेवादिक तथा केशवादिकमूर्तियों की अर्चना की जानी चाहिये।

सर्वत्र चांऽगानन्तरं मूर्त्यावृतिद्वयं द्रष्टव्यम्।' (वही, विवरण)

उपर्युक्त चार आवरणों वाले अष्टाक्षर विधान तथा अष्टाक्षरों से उत्पन्न आठ मूर्तियों के पूजन की जिन विधियों का उल्लेख किया गया है, उनके अनुसार पूजन करने वाला और विधिपूर्वक अष्टाक्षर मन्त्र का जप करने वाला साधक बिना किसी विशेष प्रयास के ही अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।

अष्टाक्षराक्षरविधानचतुष्कयुग्मं
प्रोक्तक्रमेण विधिनाऽभियजेद् य एनम्।
भक्त्या मुकुन्दमनुजापरतो नराग्र्यः
प्राप्नोति वांछितमयत्नत एव कामम्।। (वही, २०/६१)



नाजमूर्ति पूजा-विधान

ना अक्षर से उत्पन्न मूर्ति की पूजा में प्रथम आवरण में अंगपूजा, द्वितीय में शक्तिसहित मूर्तियों और तृतीय आवरण में लोकपालों की पूजा की जाती है।

नाकारजेंऽगतोन्ते प्रपूजयेन्मूर्तिशक्तिलोकेशान्। (वही, २०/५४)

राजमूर्ति की पूजाविधि

रा वर्ण से उत्पन्न मूर्ति की पूजा में प्रथम आवरण में अंगपूजा, द्वितीय में मुख्य दिशाओं में वासुदेवादि चार मूर्तियों के साथ श्री, भूमि, माया तथा मनोन्मथनी की, तृतीय आवरण में ह्री, श्री, रति, पुष्टि, मोहनी, माया, महायोगा तथा महामाया की तथा चतुर्थ आवरण में पूर्ववत् इन्द्रादि लोकपालों की पूजा करनी चाहिये।

रावर्णजे मूर्तीः श्रीभूमायामनोन्मथनीश्च यजेत्।।
ह्रीः श्रीः रतिः सपुष्टिर्मोहनिमाये महादियोगाद्ये।
माये च तृतीयावृतिरन्यदशेषं पुरैव निर्दिष्टम्।। (वही, २०/५४-५५)

यजमूर्ति पूजा-विधि

यकार से उत्पन्न मूर्ति की पूजा में प्रथम आवरण में अंगपूजा, द्वितीय में शक्तिसहित वासुदेवादि मूर्तियों, तृतीय में चक्र, शंख, गदा, हल, शार्ङ्ग, मुसल, खड्ग तथा त्रिशूल (चतुर्थ में दिक्पालों) की पूजा की जानी चाहिये।

यकारजेऽरिशंखौ च सगदाहलशार्ङ्गकाः।
मुसलः खड्गशूलौ च तृतीया ... (वही, २०/५६)

णाजमूर्ति पूजा-विधान

अष्टाक्षर मन्त्र के ण अक्षर से उत्पन्न मूर्ति की पूजा-विधि में प्रथम आवरण में अंगपूजा, द्वितीय में शक्तिमूर्ती, तृतीय में क्रमशः शेष, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंखपाल तथा कुलिक नामक अष्टनागों की पूजा तथा इनके पश्चात् इन्द्रादि की पूजा करनी चाहिये।

.....णाक्षरोद्भवे।
शेषोवासुकितक्षककर्कोटकपंकजमहापद्माः।
दरपालकुलिकाख्यौ तृतीयमन्यत् समं ...।। (वही, २०/५७)

पूजाविधि का निर्वचन प्रणव साधना-विधि में किया जा चुका है। शेष सात मूर्तियों की साधना अष्टदल कमल चक्र का निर्माण करके उसमें अलग-अलग विधियों से की जाती है। प्रणवज मूर्ति की पूजा-विधि प्रणव विधान में बताई जा चुकी है, जिसके प्रथम आवरण में क्रमशः क्लीबवर्णरहित ह्रस्व और दीर्घ स्वरों के बीच में ओंकार को रखकर अंगपूजा, द्वितीय में शक्तियोंसहित वासुदेवादि-पूजा, तृतीय में निवृत्यादि शक्तियोंसहित आत्मादि मूर्तियों की, चतुर्थ आवरण में इन्द्रादि एवं पंचम आवरण में वज्रादि आयुधों की पूजा की जाती है। किन्तु, अष्टाक्षरज मूर्तियों के पूजा-विधान में प्रणवज मूर्ति की पूजा में अंगपूजा 'क्रुद्धोल्कादि से की जाती है। इसके बाद अक्षरज मूर्तिपूजा और तब वासुदेवादि मूर्तियों की पूजा की जाती है।

इयमेवावृतिरधिका ध्रुवजे ध्रुवजात्पुरा समुद्दिष्टात्।
भवति विधानादिति पुनरेषां प्रथमविधानमुद्दिष्टम्।। (वही, २०/५१)

नकारजमूर्ति का पूजा-विधान

नकार से उत्पन्न मूर्ति की पूजा के लिये निर्मित अष्टदल कमल के मध्य में उक्त मूर्ति, प्रथम आवरण में अंगपूजा, द्वितीय में वर्णाष्टक मूर्तियों, तृतीय में शक्तिसहित वासुदेवादि मूर्तियों, चतुर्थ आवरण में ध्वजादि अष्टकों, पंचम में इन्द्रादि लोकपालों की पूजा की जाती है।

अथ द्वितीयाक्षरजेऽंगतोऽन्ते वर्णाष्टकमूर्तिरपि मूर्तिशक्तीः।
यजेद्विधाने च सकेतुलोकपालादिकानन्यदथ च प्रवक्ष्ये।।
(वही, २०/५२)

मोकारजमूर्ति पूजा-विधान

मोकारज मूर्तिपूजा में प्रथम आवरण में अंगपूजा, द्वितीय में रति, धृति, कान्ति, तुष्टि, पुष्टि, स्मृति, दीप्ति तथा कीर्ति की, तृतीय आवरण में ध्वजादि तथा चतुर्थ आवरण में इन्द्रादि की पूजा जाती है।

मोकारजे रतिधृती च सकान्तितुष्टि-
पुष्टिस्मृतीरपि च दीप्त्यभिधांच कीर्तिम्।
केत्वादिकं च सशतक्रतुपूर्वकं च
सम्पूजयेद्विमलधीः पुनरंगतोऽन्ते।। (वही, २०/५३)

यष्टव्याः स्युर्वासुदेवादिरादौ चक्राद्या केत्वादिकाः केशवाद्याः।
इन्द्राद्याश्चेत्येवमेव प्रदिष्टं पुष्ट्यायुःश्रीकीर्त्तिसिद्ध्यैर्विधानम्।।
सवासुदेवादिकमर्चयित्वा भूयो ध्वजादींश्च पुरन्दरादीन्।
क्रमेण विद्वान् विधिनाऽर्चयीतेत्ययं क्रमश्च त्रिदशाभिपूज्यः।।
इत्युक्तविधिचतुष्के पूजयितुरथैकमपि यथाशक्ति।
अचिरेण भवति लक्ष्मीर्हस्तगता सकलवर्गसिद्धिकरी।।

(वही, २०/४३-४६)

अष्टाक्षरजमूर्ति पूजा-विधान

अष्टाक्षर मन्त्र-विधान के निर्वचन के बाद अष्टाक्षर मन्त्र 'ओं नमो नारायणाय' के आठ अक्षरों से उत्पन्न मूर्तियों की पूजाविधि का निरूपण भी आचार्य शंकर ने किया है। **'ओं न मो ना रा य णा य'** अष्टाक्षरों से उत्पन्न आठ मूर्तियां क्रमशः सिन्दूर, कुन्द, करविन्द, बन्धुजीव, कुंकुम, पद्म-मकरन्द, नीलम तथा रक्तकमल की आभा वाली हैं। इनमें से **न** तथा **मो** से उत्पन्न मूर्तियों के हाथों में (चारों हाथों में से क्रमशः ऊपर वाले दाएं हाथ से लेकर प्रदक्षिणा क्रम से) चक्र, शंख, गदा तथा पद्म हैं, शेष अक्षर मूर्तियों के हाथों में शंख, चक्र, गदा तथा पद्म हैं। अंग तथा वस्त्राभूषणादि सभी मूर्तियों के समान ही हैं। इनमें से जिस भी मूर्ति की अर्चना की जाती है, शेष मूर्तियां उनके परिवार की भांति ही पूजी जाती हैं।

अष्टाक्षराष्टकमूर्तिविधानानि भेदभिन्नानि।
वक्ष्याम्यर्चयितॄणां वांछितसकलार्थसिद्धिदानि सदा।।
सिन्दूरकुन्दकरविन्दकबन्धुजीव-
काश्मीरपद्ममकरन्दरुचः क्रमेण।
नीलोत्पलाम्बुरुहरागसमानरूपाः
स्युर्मूर्तयोऽष्ट कथिता मनुवर्णजाताः।।
अरिदरगदाब्जहस्ताः सर्वास्तु नकारमोऽर्णयोर्मूर्ती।
शंखरिगदाब्जकरे लक्षणमन्यत् समानरूपं स्यात्।।
या मूर्तिरर्च्यतेऽस्य व्रजन्ति परिवारतां तदवशिष्टाः।
अविशिष्टेऽन्तेऽप्यंशे स्वयं च परिवारतां प्रयाति तदा।।

(वही, २०/४७-५०)

प्रणवजमूर्ति पूजा-विधान

'ओं नमो नारायणाय' मन्त्र में प्रथम पठित 'ओं' अर्थात् प्रणव मूर्ति की

को चाहिये कि वह एकाएक जप-हवनादि साधना को समाप्त न करके इनकी संख्या में धीरे-धीरे कमी करे। लेकिन, नित्य किया जाने वाला जप, पूजन एवं हवन निरन्तर करते रहना चाहिये। उक्त विधि से जो अष्टाक्षर मन्त्र की साधना करता है, उसे इस लोक में समस्त सिद्धियां तो प्राप्त होती ही हैं, मृत्यु के बाद वह विष्णु के परम धाम में स्थान पाता है।

रत्नांशुकप्रवरकांचनगोमहीभि
र्धान्यैर्यथाविभवतः प्रयजेद् गुरूंश्च।।
विप्रान् प्रतर्प्य विभवैरथ मन्त्रजापी
संह्रासयेज्जपविधिं च ततः क्रमेण।
नित्यार्चना च विहिता विधिनाऽमुनैव
प्रोक्तक्रमेण विदधात्वथ चात्मपूजाम्।।
इति जपहुतार्चनाद्यैर्मन्त्री योऽष्टाक्षरं समभ्यसेत्।
स लौहिकीं च सिद्धिं सम्प्रवाप्यन्ते प्रयाति परमं पदम्।।

(वही, २०/४०-४२)

उपर्युक्त पूजाविधान के निरूपण के अनन्तर आचार्य शंकर ने तीन प्रकार के अन्य पूजाविधानों का भी वर्णन किया। इन विधानों में केवल आवरणों में ही अन्तर है, शेष विधान लगभग वही हैं, जो उक्त पंचावरण पूजाविधान में कहे गये हैं। इनमें से एक चतुरावरण पूजा-विधान है, जिसके प्रथम आवरण में अंगपूजा, द्वितीय में शक्तियोंसहित वासुदेवादि की पूजा, तृतीय आवरण में शक्तियोंसहित केशवादि की तथा चतुर्थ आवरण में इन्द्रादि लोकपालों की पूजा की जाती है। द्वितीय विधि में आवरण तो पांच ही होते हैं, लेकिन आवरण देवताओं में अन्तर है। इस विधि में प्रथम आवरण में शक्तिसहित वासुदेवादिक की, द्वितीय आवरण में चक्रादि आयुधों, तृतीय में ध्वजादि की, चतुर्थ में शक्तिसहित केशवादि तथा पंचम आवरण में इन्द्रादि लोकपालों की पूजा की जाती है। तृतीय विधि में प्रथम आवरण में शक्तियों सहित वासुदेवादि की, द्वितीय आवरण में ध्वजादि एवं तृतीय आवरण में इन्द्रादि लोकपालों की अर्चना की जाती है। आचार्य शंकर के अनुसार इन चार विधियों में से किसी भी एक से अष्टाक्षर मन्त्र की उपासना करने वाले साधक को शीघ्र ही धर्मादि चतुर्वर्गों की प्राप्ति कराने वाली लक्ष्मी प्राप्त होती है।

अंगानि पूर्वं त्वथ मूर्तिशक्तीः सकेशवादींश्च पुरन्दरादीन्।
समर्चयेद्यस्तु विधानमेतन्नरोऽचिरात् कांक्षितमेति कामम्।।

जप-हवन

उपर्युक्त विधि से आवरण-पूजन के अनन्तर सप्तम पटल में वर्णित ब्रह्मयाग के लिये निर्मित कुण्ड में अश्वत्थ, उडुम्बर, प्लक्ष, न्यग्रोध नामक वृक्ष की समिधाएं तथा तिल, सर्षप, खीर एवं घृत नामक अष्टद्रव्यों में से प्रत्येक का अष्टाक्षर मन्त्र से अलग-अलग १०८-१०८ बार हवन करके भूत, पितृ, यक्ष, नाग, ब्रह्मा तथा विष्णु को बलि (५/२५) प्रदान करना चाहिये। इसके बाद गुरु को चाहिये कि वह कलश-जल से शिष्य का अभिसिंचन करके विधानानुसार (६/१२१-१२२) उसे अष्टाक्षर मन्त्र प्रदान करे। गुरु से मन्त्र प्राप्त करने के बाद शिष्य को चाहिये कि वह अपने आचार-विचार शुद्ध रखते हुए रुद्राक्ष की माला अथवा अपनी अंगुलियों से न तो अधिक शीघ्रता और ना ही अधिक विलम्ब से अर्थात् सामान्य गति से मन्त्र का ३२ अथवा १६ लाख जप कर पूर्ण करे। जप के समय पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठना चाहिये तथा जप में तर्जनी अंगुलि का प्रयोग नहीं करना चाहिये। जप के दिनों में साधक को चाहिये कि वह व्यर्थ के वाद-विवाद एवं प्रलाप से अलग रहे। उक्त संख्या में जप पूर्ण कर लेने के बाद अष्टद्रव्यों अथवा मधुरत्रययुक्त कमलों से जप का दशांश हवन सम्पन्न करना चाहिये।

एवमभ्यर्चिते विष्णावुपचारैस्तु पूर्ववत्।
अग्निमाधाय कुण्डे तु ब्रह्मयागसमीरितैः।।
जुहुयादष्टभिर्द्रव्यैर्मनुनाऽष्टाक्षरेण तु।
पृथगष्टशतावृत्त्या हुत्वा दत्त्वा बलिं ततः।।
अभिषिच्य गुरुः शिष्यं प्रवदेत्पूर्ववन्मनुम्।
द्वात्रिंशल्लक्षमानेन स तु मन्त्रं जपेत् ततः।।
तदर्धसंख्यकं वापि शुद्धाचारो जितेन्द्रियः।।
पद्मासनः प्राग्वदनोऽप्रलापी तन्मानसस्तर्जनिवर्जिताभिः।
अक्षस्रजा वांऽगुलिभिर्जपेत्तं नातिद्रुतं नातिविलम्बितं च।।
प्रागीरितैरथ जुहोतु दशांशकं वा द्रव्यैः शुभैः सरसिजैर्मधुराप्लुतैर्वा।
(वही, २०/३६-४०)

जप तथा हवन-विधि पूर्ण हो जाने पर रत्न, वस्त्राभूषण गो तथा भूमि आदि दक्षिणा के रूप में गुरु को प्रदान करे तथा हवन में भाग ले रहे ब्राह्मणों को भी धन-विभवादि देकर सम्मानित करे। पूजा-विधान समाप्त करने के बाद साधक

स्वाहा हृदयाय नमः' आदि अंगमन्त्रों से अंगदेवताओं का, द्वितीय आवरण में पूर्वादि मुख्य दिशाओं वाले दलों के मध्य में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध तथा आग्नेयादि उप दिशाओं में उनकी शक्तियों शान्ती, श्री, सरस्वती तथा रति की पूजा करनी चाहिये। इसके बाद दलों के बाहर तृतीय आवरण में पूर्वादि क्रम से भगवान् विष्णु के क्रमशः रक्त, श्वेत, पीत, स्वर्ण, श्यामल, कृष्ण, आकाश तथा श्वेत कान्ति वाले चक्र, शंख, गदा, पद्म, कौस्तुभ, मुसल, खड्ग एवं वनमाला नामक आयुधों की अर्चना करनी चाहिये। चतुर्थ आवरण में पूर्वादि मुख्य दिशाओं में क्रमशः कृष्ण, रक्त, शुक्ल तथा अरुण प्रभा वाले ध्वज, गरुण, शंख तथा पद्म और उपदिशाओं में क्रमशः अरुण, श्यामल, श्याम तथा पीतवर्णी विघ्न, आर्यक, दुर्गा तथा विष्वक्सेन का पूजन करना चाहिये। इनके बाद वाले अन्तिम पांचवें आवरण में पूर्वादि क्रम में ही इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा (ऊर्ध्व दिशा) में तथा अनन्त (अधो दिशा) में नामक दस दिक्पालों का पूजन करना चाहिये।

कृत्वा त्रिगुणितादीनामेकं मण्डलमुज्ज्वलम्।
आत्मार्चनोक्तविधिना शक्तिभिः पीठमर्चयेत्।।
विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगेति शक्तयः।
प्रह्वी सत्या तथेशानाऽनुग्रहा नवमी स्मृता।।
निधाय कलशं तत्र पंचगव्येन पूरयेत्।
पयोभिर्वा गवां प्रोक्तैः क्वाथैर्वा साष्टगन्धकैः।।
अष्टाक्षरांगैरष्टार्णयुगैरष्टाक्षरान्वितैः।
दलमूले यजेद्भूयो वासुदेवादिकान् क्रमात्।।
सशक्तिकांस्ततो बाह्ये सम्पूज्याः हरिहेतयः।।
चक्रशंखगदाम्बुजकौस्तुभमुसलाः सखड्गवनमालाः।
रक्ताच्छपीतकनकश्यामलकृष्णद्युशुक्लभासः स्युः।।
ध्वजश्च वैनतेयश्च शंखपद्मौ दिशो गताः।
विघ्नार्यकौ तथा दुर्गा विष्वक्सेनो विदिग्गताः।।
ध्वजः श्यामो विपो रक्तो निधी शुक्लारुणप्रभौ।
अरुणश्यामलश्यामपीता विघ्नादयो मताः।।
इन्द्रादयस्तद्बहिश्च पूज्याः पूर्वादिभिः क्रमात्।
इति विष्णोर्विधानं तु पंचावरणमुच्यते।। (वही, २०/२८-३५)

"ओं किरीटकेयूरहारमकरकुण्डलशंखचक्रगदाब्जहस्त पीताम्बरधर श्रीवत्सलांछितवक्षस्थल श्रीभूमिस्वात्मज्योतिःदीप्तिकराय सहस्रादित्य-तेजसे नमः"।

इस प्रकार न्यास की विधि पूर्ण करके अपने शरीर को ही पीठ के रूप में कल्पित करके पूर्वोक्त प्रकार से आसनादि पर बैठ द्वादशाक्षर मन्त्रसहित अष्टाक्षर मन्त्र की किरीट मन्त्र से पूजा कर अपने शरीर में स्थित आत्मतत्त्व को पांच अथवा तीन बार पुष्पांजलि अर्पित कर पूजन समाप्त करना चाहिये।

उपर्युक्त पूजनादि-विधि उन साधकों के लिये है, जिन्होंने पहले ही दीक्षा प्राप्त कर ली है। दीक्षा प्राप्त करने के इच्छुक साधकों के लिये दीक्षा-विधि का निरूपण भी आचार्य शंकर ने किया है।

कृत्वा स्थण्डिलमस्मिन्निःक्षिप्य निजासिकां समुपविश्य।
पीठादिकं निजांऽगे प्रपूज्य गन्धादिभिः सुशुद्धमनाः।।
सद्वादशाक्षरान्तं प्रपूज्य विधिवत् किरीटमन्त्रेण।
कुर्यात्पुष्पांजलिमपि निजदेहे पंचशोऽथवा त्रिशः।।
इति दीक्षितविहितविधिः सम्प्रोक्तोऽष्टाक्षरस्य मन्त्रस्य।
शुद्धानां विमलधियां दीक्षा प्रतिवक्ष्यतेऽत्र संक्षेपात्।।

(वही, २०/२५-२७)

दीक्षा के लिये पंचावरण विष्णुपूजा-विधान

सबसे पहले उक्त आत्मार्चन विधान के अनुसार पूर्वोक्त रीति से अपने शरीर में पीठ न्यास तथा गन्धादि पदार्थों से पीठ-पूजन के पश्चात् त्रिगुणित-षड्गुणितादि में से किसी एक मण्डल की रचना करके उसमें एक अष्टदल कमल बनाकर उसके दलों में पूर्वादि क्रम से वैष्णव पीठ की विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या तथा ईशाना एवं कर्णिका के मध्य में अनुग्रहा नामक नौ शक्तियों की पूजा करनी चाहिये। इसके बाद अष्टदलों और कर्णिका में पंचगव्य, गाय के दूध अथवा पूर्वोक्त क्वाथ से भरे नौ कलश स्थापित करने चाहिये। तदनन्तर 'सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नमः' मन्त्र से पीठपूजन कर उसमें भगवान् विष्णु का आवाहन कर उनकी षोडशोपचार अर्चना करनी चाहिये।

तत्पश्चात् कमल दलों के मूल के प्रथम आवरण में पूर्वोक्त 'क्रुद्धोल्काय

इन द्वादश मूर्तियों का प्रतिलोम न्यास क्रमशः चरण, गुह्य, हृदय, वदन, सिर में एक-एक, पुनः हृदय में दो वर्ण और एक वर्ण का सर्वांग में न्यास निम्नवत् होगा—

ओं यं पराय पृथिव्यात्मने नमः, ओं णां पराय अबात्मने नमः,
ओं यं पराय तेजसात्मने नमः, ओं रां पराय वायुवात्मने नमः,
ओं नां पराय आकाशात्मने नमः, ओं मो पराय अहंकारात्मने नमः,
ओं नं पराय महदात्मने नमः, ओं ओं पराय प्रकृत्यात्मने नमः।

इन अष्ट प्रकृतियों के न्यास के उपरान्त आत्मरूप चार प्रकृतियों का व्यापक न्यास सर्वांग में किया जाना चाहिये—

ओं बिन्द्वात्मने नमः, ओं नादात्मने नमः,
ओं शक्त्यात्मने नमः ओं शान्तात्मने नमः।

मूर्तिन्यास

प्रणव तथा अनुस्वारयुक्त क्रमशः अकारादि बारह स्वरों को धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंशु, भग, विवस्वान्, इन्द्र, पूषा, पर्जन्य, त्वष्टा तथा विष्णु नामक द्वादश आदित्यों के साथ क्रमशः केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ तथा दामोदर नामक द्वादश मूर्तियों का न्यास क्रमशः ललाट, दायीं कुक्षि, हृदय, कण्ठ, दायें पार्श्व, दायें कन्धे, गले, बाईं कुक्षि, बायें पार्श्व, बाएं कन्धे, पीठ तथा गर्दन में करना चाहिये। तदनन्तर द्वादशाक्षर मन्त्र का न्यास मूर्धा में करना चाहिये। मूर्धा में वासुदेव का चिन्तन साधक के समस्त शरीर को मन्त्रार्थ से व्याप्त कर देता है।

आदित्या द्वादश प्रोक्ता युक्ता द्वादशमूर्तिभिः।।
केशवादिप्रदिष्टानां मूर्तीनां द्वादशादितः।
आदिस्वरयुता न्यसेत्ताः स्युर्द्वादश मूर्तयः।।
ललाटोदरहृत्कण्ठदक्षपार्श्वांसके गले।
तथा वामत्रये पृष्ठककुदोश्च यथाक्रमम्।।
द्वादशाक्षरमन्त्रं च मन्त्रविन्मूर्ध्नि विन्यसेत्।
मूर्धस्थो वासुदेवस्तु व्याप्नोति सकलां तनुम्। (वही, २०/१७-२०)

उक्त न्यासोपरान्त मन्त्र की सिद्धि के लिये निम्नांकित किरीट मन्त्र का जप करना चाहिये—

अष्टमावृत्ति—त्वक्, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र और प्राण अर्थात् ओजस् में एक-एक वर्ण अपने हृदय में ही,

नवममावृत्ति—मूर्धा, वामनेत्र, दक्षनेत्र, मुख, हृदय, उदर, वाम उरु, दक्ष उरु में एक-एक वर्ण,

दशमावृत्ति—वाम जंघा, दक्ष जंघा, वाम पद तथा दक्ष पद में क्रमशः एक-एक वर्ण का न्यास करके शेष चार वर्णों का न्यास चक्र, शंख, गदा तथा पद्म के साथ योजित कर 'रां चक्रात्मने नमः, यं शंखात्मने नमः, णां गदात्मने नमः, यं पद्मात्मने नमः' के रूप में दोनों कपोलों, दोनों कन्धों, दोनों उरुओं तथा दोनों चरणों में करना चाहिये।

आधारहृद्वदनदोःपदमूलनाभौ कण्ठे सनाभिहृदयस्तनपार्श्वपृष्ठे।
कास्येक्षणश्रवणगन्धवहे च दोःपत्सन्ध्यंगुलीषु हृदि धातुषु सानिलेषु।।
मूर्धेक्षणास्यहृदयोदरसोरुजंघापादद्वयेषु लिपिशो न्यसतु क्रमेण।।
गण्डांसकोरुचरणेषु रथांगशंखश्रीमद्गदाम्बुजपदेषु समाहितात्मा।।
(वही, २०/१३-१४)

अष्टाक्षर मन्त्र यद्यपि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार, महत् तथा प्रकृतिरूप अष्ट प्रकृत्यात्मक हैं और इसीलिये जड़बुद्धि वालों के लिये इनमें जड़ता की ही प्रतीति होती है। लेकिन बिन्दु, नाद, शक्ति और शान्ति नामक आत्मतत्त्ववाचक चार तत्त्वों से युक्त होने के कारण 'ओं नमो नारायणाय' मन्त्र स्वतः द्वादशाक्षर मन्त्र की मूर्तियों-शक्तियों आदि का वाचक बन जाता है। वास्तव में, उक्त आठ प्रकृतियों और बिन्दुनादादि चार आत्मतत्त्वों का संयोग ही 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' द्वादशाक्षर मन्त्र है। अतः अष्टाक्षर मन्त्र की साधना के समय इसकी पूर्णता के लिये अष्टप्रकृति स्वरूप आठ अक्षरों के न्यास के साथ ही आत्मस्वरूप इन चार मूर्तियों का न्यास भी अपने शरीर में अलग से करना चाहिये।

ततोऽष्टाक्षरपूर्त्यर्थं स्मर्तव्यो द्वादशाक्षरः।
मन्त्रो द्वादश मूर्तीस्तु तत्प्रभिन्नास्तनौ न्यसेत्।।
अष्टप्रकृत्यात्मकश्च सम्प्रोक्तोऽष्टाक्षरो मनुः।
अष्टानां प्रकृतीनां च चतुर्णामात्मनामपि।।
द्वादशानान्तु संयोगो मन्त्रः स्याद्द्वादशाक्षरः। (वही, २०/१५-१७)

पीठपूजा के पश्चात् अस्त्र मन्त्र 'चक्राय फट्' से दिग्बन्ध सम्पादित करके मन्त्र के अष्टाक्षरों से शरीर के अंगों में ही दस आवृतियों वाला विभूतिन्यास करना चाहिये। अष्टाक्षर मन्त्र के वर्णों का अपने शरीर के अंगों में न्यास करने से साधक स्वयं मन्त्रवर्णस्वरूप विष्णु हो जाता है।

अस्त्रमन्त्रप्रबद्धवाशो मन्त्रवर्णांस्तनौ न्यसेत्।
विन्यस्तैर्यैर्भवेन्मन्त्री मन्त्रवर्णात्मको हरिः।। (वही, २०/१२)

आचार्य शंकर ने मूलाधार आदि जिन अंगों में अष्टाक्षर मन्त्र के वर्णों का न्यास करने का उल्लेख किया है, उसे विभूतिन्यास कहा जाता है। यह विभूति-न्यास दस प्रकार का होता है और इसका न्यास निम्नांकित अंगों में निम्नरूप में किया जाता है—

दशावृति रूप न्यास

प्रथमावृत्ति—मूलाधार, हृदय, वदन, वामहस्त, दक्षहस्त, वामपाद, दक्षपाद तथा नाभि में एक-एक वर्ण,

द्वितीयावृत्ति—कण्ठ, नाभि, हृदय, वाम स्तन, दक्ष स्तन, वाम पार्श्व, दक्ष पार्श्व तथा पीठ में एक-एक वर्ण,

तृतीयावृत्ति—सिर, मुख, वाम नेत्र, दक्ष नेत्र, वाम कर्ण, दक्ष कर्ण, वाम नासिका तथा दक्ष नासिका में एक-एक वर्ण,

चतुर्थ आवृत्ति—वाम हस्तमूल, दक्ष हस्तमूल, वाम कूर्पर, दक्ष कूर्पर, वाम मणिबन्ध, दक्ष मणिबन्ध, वाम अंगुलिसन्धि, दक्ष अंगुलिसन्धि,

पंचमावृत्ति—वामपाद मूल, दक्षपादमूल, वामपाद जानु, दक्षपाद जानु, वामपाद स्फिक्, दक्षपाद स्फिक्, वामपाद अंगुलिसंधि, दक्षपाद अंगुलिसंधि में एक-एक वर्ण,

षष्ठावृत्ति—वामहस्त तर्जनी, दक्षहस्त तर्जनी, वामहस्त मध्यमा, दक्षहस्त मध्यमा, वामहस्त अनामिका, दक्षहस्त अनामिका, वामहस्त कनिष्ठिका, दक्षहस्त कनिष्ठिका,

सप्तमावृत्ति—वामपद प्रथमांगुलि, दक्षपद प्रथमांगुलि, वामपद द्वितीयांगुलि, दक्षपदद्वितीयांगुलि, वामपद तृतीयांगुलि, दक्षपद तृतीयांगुलि, वामपद चतुर्थांगुलि, दक्षपद चतुर्थांगुलि,

अष्टाक्षरेण व्यस्तेन कुर्यादष्टांगकं सुधीः।
सहृच्छिरःशिखावर्मनेत्रास्त्रोदरपृष्ठके।। (वही, २०/६)

ध्यान

अष्टाक्षर मन्त्र की साधना में सहस्रों सूर्यों के समान द्युतिमान्, मुकुट, कुण्डल, केयूर और कौस्तुभ मणि की विविधवर्णी आभा से प्रकाशित हार एवं पीताम्बर धारण किये, अनेक प्रकार के रत्नों से जटित शतशः आभूषणों वाले, पार्श्व में बैठीं पृथिवी और श्री से युक्त, हाथों में चक्र, कमल, शंख तथा गदाधारी विश्ववन्द्य भगवान् विष्णु का ध्यान करना चाहिये।

अर्कौघाभं किरीटान्वितमकरलसत्कुण्डलं दीप्तिराज-
त्केयूरं कौस्तुभाभाशबलरुचिरहारं सपीताम्बरं च।
नानारत्नांशुभिन्नाभरणशतयुतं श्रीधराश्लिष्टपार्श्वं
वन्दे दोःसक्तचक्राम्बुरुहदरगदं विश्ववन्द्यं मुकुन्दम्।। (वही, २०/७)

योगपीठ

अष्टाक्षर मन्त्र की साधना में अपने शरीर को ही योगपीठ के रूप में कल्पित करके 'गुं गुरुभ्यो नमः', 'गं गणपतये नमः' तथा 'ओं नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नमः' मन्त्र से स्व-शरीररूपी पीठ की पूजा करके अपने कन्धे, दोनों उरुओं, पद, आनन, नाभिमूल तथा दोनों पार्श्वों में मन्त्र के क्रमशः आठों अक्षरों का एक-एक करके न्यास करके मध्य अर्थात् हृदय में अनन्तादि तथा ज्ञानात्मादि का पूजन करना चाहिये।

संदीक्षितो मनुमिमं प्रतिजप्तुमिच्छन्
कुर्यान्निजेन वपुषैव तु योगपीठम्।
अंसोरुयुग्मपदसाननानाभिमूल-
पार्श्वद्वयैर्विहितगात्रसमुज्ज्वलं च।।
मध्येऽनन्ताद्यैरपि संज्ञानात्मान्तिकैर्यजेन्मन्त्री।
पीठाख्यमन्त्रपश्चिममथ गन्धाद्यैश्च सम्यगुपचारैः।।
प्रणवं हृदयं चैव प्रोक्त्वा भगवते पदम्।
विष्णवे च समाभाष्य सर्वभूतात्मनेपदम्।।
वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगपदमुच्चरेत्।
योगपद्मपदे चोक्त्वा ततः पीठात्मने नमः।। (वही, २०/८-११)

महा, वीर, द्यु तथा सहस्र शब्द के आदि में उल्क शब्द के साथ क्रमशः नमः आदि जाति पदों से किया जाता है।

ऋषिरस्य मनोः साध्यनारायण इतीरितः।
छन्दश्च देवी गायत्री परमात्मा च देवता।।
अथ क्रुद्धमहावीरद्युसहस्रपदादिकैः।
उल्कैर्जातियुतैः कुर्यात्पंचांगानि मनोः क्रमात्।। (वही, २०/४-५)

पद्मपाद ने शंकर के तात्पर्य को स्पष्ट किया है कि 'उल्काय' शब्द के अन्त में 'स्वाहा' शब्द जोड़ कर नमः आदि जातियों का प्रयोग किया जाना चाहिये।

"मनोः क्रमादित्युल्कान्ते स्वाहापदं प्रयोज्य पश्चाज्जातिः प्रयोक्तव्येति सूचितम्"। (वही २०/५ पर विवरण)

तदनुसार न्यास के रूप निम्नांकित होंगे—

ऋष्यादिन्यास

साध्यनारायणाय ऋषये नमः (शिरसि),
देवीगायत्री छन्दसे नमः (मुखे),
परमात्मने देवतायै नमः (हृदये),
अं बीजाय नमः (गुह्ये),
आय शक्तये नमः (पादयोः)।

पंचांगन्यास

क्रुद्धोल्काय स्वाहा हृदयाय नमः (हृदि),
महोल्काय स्वाहा शिरसे स्वाहा (शिरसि),
वीरोल्काय स्वाहा शिखायै वषट् (शिखा),
द्यूल्काय स्वाहा कवचाय हुं,
सहस्रोल्काय स्वाहा अस्त्राय फट् (अस्त्रे)।

अष्टांगन्यास

उक्त अष्टाक्षर मन्त्र के एक-एक अक्षर से क्रमशः हृदय, सिर, शिखा, वर्म, नेत्र, अस्त्र, उदर तथा पीठ में न्यास करके अष्टांगन्यास सम्पन्न करना चाहिये। पद्मपाद के अनुसार यह अष्टांगविनियोग केवल न्यास में ही प्रयोग में आता है, पूजन में नहीं।

वैष्णव-साधना

30

अष्टाक्षर मन्त्र-साधना

आचार्य शंकर वैष्णव मन्त्रों की तान्त्रिक साधना के निर्वचन का आरम्भ सर्वप्रथम अष्टाक्षर मन्त्र के उद्धार से करते हैं। उनके अनुसार 'प्रणव (ओं), हृदय (नमः), नारा अक्षर और इनके अन्त में यणा वर्ण, तदनन्तर म वर्ण से आगे का वर्ण (य) मिलकर 'ओं नमो नारायणाय' यह अष्टाक्षर मन्त्र निर्मित होता है, जो समस्त पाप-ताप और अज्ञान को नष्ट करने वाला है।

अथ पुनरभिवक्ष्ये मन्त्रमष्टाक्षराख्यं
सकलदुरितदुःखध्वान्तसम्भेदभानुम्।
प्रणवहृदयनारावर्णतोऽन्ते यणार्णौ
मपर इति समुद्दिष्टोऽयमिष्टार्थदायी।। (प्रपंचसारतन्त्र, २०/१)

इस अष्टाक्षर मन्त्र के प्रत्येक वर्ण में निहित अर्थ को स्पष्ट करते हुए शंकर बताते हैं कि मन्त्र का प्रथम अक्षर 'ओं' शक्ति से उत्पन्न परमात्म मन्त्र अजपा 'सोऽहं' का सार है। इसका 'न' वर्ण निषेधात्मक है अर्थात् श्रुतियों में 'नेति नेति' कह कर जिस तत्त्व की ओर संकेत किया गया है, उसका वाचक है। 'मो' वर्ण 'अयम्' अर्थ का द्योतक है। मन्त्र के 'ना रा य और ण' अक्षर क्रमशः जल, अग्नि, पवन और पृथ्वी के वाचक हैं। अन्तिम वर्ण 'य' विभक्त्यर्थक या भिन्नार्थक है अर्थात् य वर्ण 'तत्' है और इसका अर्थ यह है कि यह अष्टाक्षर मन्त्र जिस तत्त्व की ओर संकेत करता है, वह आकाशादि पांचभौतिक जगत् से निर्लिप्त अलग ही है।

तारः शक्त्युत्थतया निर्दिष्टः सोऽहमर्थकः पूर्वम्।
नार्णः प्रतिषेधार्थो मोकारश्चायमर्थको भवति।।
सलिलानलपवनधराः क्रमेण नारायणाक्षराः प्रोक्ताः।
चरमो यस्तु विभक्तिव्यक्त्यर्थं दर्शितस्तदर्थार्थे।। (वही, २०/२-३)

ऋष्यादि तथा न्यास

'ओं नमो नारायणाय' मन्त्र के ऋषि साध्यनारायण, छन्दस् देवी गायत्री, देवता परमात्मा, बीज अं तथा शक्ति आय है। इस मन्त्र का पंचांग न्यास क्रुद्ध,

त्रैकाल्यज्ञानोद्यौ मनोज्ञताच्छन्दतो मरुद्रोधः।
नाडीसंक्रमणविधिर्वाक्सिद्धिर्देहतश्च देहाप्तिः।।
ज्योतिःप्रकाशनं चेत्यष्टौ स्युः प्रत्यया युजः सिद्धेः।।
अणिमा महिमा च तथा गरिमा लघिमेशिता वशित्वं च।
प्राप्तिः प्राकाम्यं चेत्यष्टैश्वर्याणि योगयुक्तस्य।। (वही, १६/६०-६२)

उपर्युक्त ओंकार-योग की साधना करने वाला योगी अणिमादि आठ ऐश्वर्यों को तो प्राप्त करता ही है, साथ ही वह जीवन्मुक्त भी हो जाता है और मृत्यु के अनन्तर विष्णु के परम पद को प्राप्त करता है।

अष्टैश्वर्यसमेतो जीवनमुक्तः प्रवक्ष्यते योगी।
योगानुभवमहामृतरसपानानन्दनिर्भरः सततम्।।
इत्येवं प्रणवविधिः समीरितोऽयं भक्त्या तं प्रभजति यो जपादिभेदैः।
स प्राप्नोत्यनुततनित्यशुद्धबुद्धं तद्विष्णोः परमतरं पदं नराग्र्यः।।
(वही, १६/६३-६४)



शक्तियों का आत्मन् के साथ संयोग करने से इन तत्त्वों पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

कण्ठे भ्रूमध्ये हृदि नाभौ सर्वांगके स्मरेत् क्रमशः।
लवरसमीरहवर्णैरनिलममा कालवंचनेयं स्यात्।।
अवनिजलानलमारुतविहायसां शक्तिभिश्च तद्बीजैः।
सारूप्यमात्मनश्च प्रतिनीत्वा तत्तदाशु जयति सुधीः।।

(वही, १६/५६-५७)

आचार्य शंकर के अनुसार ओंकार-साधना की उपर्युक्त विधियों का आयोजन करने-कराने वालों को शीघ्र ही समस्त संसार से मुक्त करने वाली सिद्धि प्राप्त होती है तथा इस योगमार्ग के विभिन्न भेदों का आश्रय ग्रहण करने वाले साधकों को मोक्षपुरी के प्रवेशद्वाररूपी सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

एवं प्रोक्तैर्योगैरायोजयतोऽन्वहं तथाऽऽत्मानम्।
अचिरेण भवति सिद्धिः समस्तसंसारमोचिनी नित्या।।
इति योगमार्गभेदैः प्रतिदिनमारूढयोगयुक्तधिया।
सिद्धय उपलभ्यन्ते मुक्तिपुरीसंप्रवेशनद्वाराः।। (वही, १६/५८-५६)

योगसिद्धि के सूचक तत्त्व

साधना के समय शरीर में कम्पन, रोमांच, आनन्द, मनस् की निर्मलता, स्थिरता, लघुता (शरीर में हलकापन), तेजोमय प्रकाश और यथार्थ का ज्ञान ये योगसिद्धिसूचक आठ अवस्थाएं हैं।

त्रिकालज्ञता, ऊहा, प्रकल्पना-शक्ति या तर्क-शक्ति, मनोज्ञता, इच्छानुसार श्वासों को रोकने की शक्ति, एक नाड़ी से दूसरी नाड़ी में प्राणों को ले जाने की विधि का ज्ञान, वाक्सिद्धि, एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने की शक्ति तथा ज्योति का दर्शन ये आठ योगसिद्धि के प्रमाण हैं। अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, ईशिता, वशित्व, प्राप्ति तथा प्राकाम्य ये आठ योगी के योगैश्वर्य या सिद्धियां हैं।

इस प्रकार की योग-साधना से प्राप्त अनुभवामृत के पान से आनन्दित एवं उक्त आठ प्रकार की सिद्धियों से युक्त योगी जीवन्मुक्त हो जाता है।

कम्पः पुलकानन्दौ वैमल्यस्थैर्यलाघवानि तथा।
सकलप्रकाशवित्ते इत्यष्टावस्थाः प्रसूचिकाः सिद्धेः।।

का लय जाग्रत् अवस्था में, बिन्दु का स्वप्नावस्था में, नाद का सुषुप्ति में, शक्ति का तुरीय में और शान्त का लय आत्मा में कर दे। आत्मा की जाग्रदादि पांच अवस्थाएं और ओंकार की पंच मात्राएं परस्पर सम्बद्ध हैं।

अथवा सूक्ष्माख्यायां पश्यन्त्यां मध्यमाख्यवैखर्योः।।
ससुषुम्नाग्रगयोरपि युंज्याद् जाग्रदादिभिः पवनम्।।
बीजोच्चारो जाग्रद्‌बिन्दुः स्वप्नः सुषुप्तिरपि नादः।।
शक्त्यात्मकं तुरीयं शान्ते लय आत्मनस्तुरीयान्तम्।।

(वही, १६/५०-५२)

उत्क्रान्ति (परकाया-प्रवेश) विधि

वायुधारणा द्वारा अपने शरीर को छोड़कर दूसरे के शरीर में प्रवेश करने की अनुपम विधि का निरूपण करते हुए आचार्य शंकर ने बताया है कि पैर के अंगूठे, गुल्फ, जंघाएं, गुदा, सीवनी, लिंग, नाभि, हृदय, ग्रीवा, लम्बिकाग्र, नासिका, भ्रूमध्य, ललाटाग्र तथा द्वादशान्त में आत्मा और मनस् के समीकरण या एकीकरण के अभ्यास द्वारा वायु की धारणा करके अपने शरीर को छोड़ कर अन्य शरीर में प्रवेश और उस काया को छोड़कर अपनी काया में प्रवेश की सिद्धि अल्पकाल में ही प्राप्त की जा सकती है।

अंगुष्ठगुल्फजानुद्वितयं च गुदं च सीवनी मेढ्रं।।
नाभिर्हृदयं ग्रीवा सलम्बिकाग्रं तथैव नासा च।
भ्रूमध्यललाटाग्रं सुषुम्नाग्रं द्वादशान्तमित्येवम्।।
उत्क्रान्तौ परकायाप्रवेशने चाऽऽगतौ च पुनः स्वतनौ।
स्थानानि धारणायाः प्रोक्तानि मरुत्प्रयोगविधिनिपुणैः।।
स्थानेष्वेष्वात्ममनःसंयोगसमीकरकर्मणोऽभ्यासात्।
अचिरेणोत्क्रान्त्याद्या भवन्ति संसिद्धयः प्रसिद्धतराः।।

(वही, १६/५२-५५)

कालवंचना योग

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के क्रमशः वाचक वर्ण ल व र य तथा ह के साथ 'अम्' अर्थात् अनुस्वार जोड़कर लं, वं, रं, यं तथा हं बीजों के रूप में इनका क्रमशः कण्ठ, भ्रूमध्य, हृदय, नाभि तथा समस्त अंगों में प्राण की धारणा करने का नाम 'कालवंचना' योग है। इस योग के अभ्यास से योगी काल पर विजय प्राप्त कर सकता है। पृथिव्यादि पंचतत्त्वों के इन बीजों के साथ इनकी

उसे स्वप्नावस्था कहा जाता है। आत्मन् और मनस् के निरुद्ध या संकल्परहित हो जाने पर जो एक प्रकार की निराकुल स्थिति का अनुभव होता है, उसे सुषुप्ति कहा जाता है। जिस अवस्था में तमस्रहित चित्त द्वारा परतत्त्व का साक्षात्कार होता है, उसे तुरीयावस्था और जिस अवस्था में साधक आत्मन् और परमात्मन् में अभेदावस्था का अनुभव करता है, उसे तुर्यातीत अवस्था कहा जाता है। इस तुरीयावस्था में पहुंचे योगी की मुक्ति सन्निकट होती है।

अथवा योगोपेताः पंचावस्थाः क्रमेण विज्ञाय।
ताभिर्युंजीत सदा योगी सद्यः प्रसिद्धये मुक्तेः।।
जाग्रत् स्वप्नसुषुप्ती तुरीयतदतीतके च तास्तासु।
स्वैरिन्द्रियैर्यदात्मा भुंक्ते भोगान् स जागरो भवति।।
संज्ञारहितैरपि तैरस्याऽनुभवो भवेत्पुनः स्वप्नः।
आत्मनिरुद्युक्ततया नैराकुल्यं भवेत्सुषुप्तिरपि।।
पश्यति परं यदात्मा निस्तमसा चेतसा तुरीयं तत्।
आत्मपरमात्मपदयोरभेदतो व्याप्नुयाद्यदा योगी।
तच्च तुरीयातीतं तस्यापि भवेन्न दूरतो मुक्तिः ।।

(वही, १६/४६-५०)

सातवीं विधि के अनुसार 'ओं' का उच्चारण करते समय 'ओं' ध्वनि को क्रमशः मूलाधार में अपनी ही महिमा में स्थित निश्चल शान्त 'सूक्ष्मा वाक्', मूलाधार में ही स्थित किंचित् स्पन्दमयी 'परावाक्', नाभिस्थ सामान्य ज्ञानरूपिणी 'पश्यन्ती वाक्, सुषुम्ना के अग्रभागवर्तिनी हृदय में स्थित विशेष ज्ञान रूपा 'मध्यमा वाक्' के रूप में अभिव्यक्ति देते हुए मुख में स्थित शब्दरूपा 'वैखरी वाक्' में व्यक्त किया जाना चाहिये। तात्पर्य यह है कि 'ओंकार' के उच्चारण के समय ओं ध्वनि का आविर्भाव क्रमशः सूक्ष्मा वाक् से वैखरी रूप में स्पष्ट उच्चारण तक की प्रक्रिया की भावनात्मक अनुभूति योगी को करनी चाहिये।

वैखरी के रूप में ओंकार के उच्चारण के अनन्तर योगी को चाहिये कि वह ओं ध्वनि को अपने भ्रूमध्य, मूर्धा, द्वादशान्त और षोडशान्त तक ले जाय और षोडशान्त में कुछ देर ठहर कर विलोम क्रम से षोडशान्त से द्वादशान्त, वहां से मूर्धा, मूर्धा से भ्रूमध्य, भ्रूमध्य से वैखरी के रूप में मुख तक लाकर, वैखरी को मध्यमा में, मध्यमा को पश्यन्ती में, पश्यन्ती को परा में और परा को सूक्ष्मा वाक् में लय कर दे। इसके साथ ही ओं का उच्चारण करते समय ओंकार के अ उ म्

वदनामृतकरबिम्बस्यूता ध्याताऽमृतम्बुलयलुलिता।
स्थावरजंगमविषहृद्योगोऽयं नात्रसन्देहः।। (वही, १६/३६-४०)

चतुर्थ विधि के अनुसार मूलाधार स्थित तीन वलयों से मण्डित बिन्दु में स्थित, लूता (मकड़ी) द्वारा निर्मित सूक्ष्म तन्तु के समान सूक्ष्म पीताभ तेजोरेखा (कुण्डलिनी) को ओंकार के उच्चारण के साथ सुषुम्ना के मार्ग से ऊपर द्वादशान्त तक ले जाया जाय और उसमें अपनी चित्तवृत्ति को लगाकर सहस्रार में स्थित परात्पर परमात्मा में लय कर दिया जाय। इस योग के अभ्यास से साधक पुनरावृत्तिरहित मोक्ष को प्राप्त करता है।

अथवा त्रिवलयबिन्दुगधाम प्रणवेन समुन्नयेदूर्ध्वम्।
पीतोर्णातन्तुनिभं सौषुम्नेनैव वर्त्मना योगी।।
तस्मिन्निधाय चित्तं विलयं गमयेद् दिनेशसंख्याते।
पुनरावृत्तिविहीनं निर्वाणपदं व्रजेत् समभ्यासात्।। (वही, १६/४१-४२)

पंचम विधि के अनुसार ओंकार के आदि बीज अ को 'उ' में, उ को 'म' में, म को 'बिन्दु' में, बिन्दु को 'नाद' में, नाद को शक्ति में और शक्ति को 'शान्त' नामक अनन्य, निर्द्वन्द्व, निष्कल, सर्वानन्दरूप, सूक्ष्म, सर्वत्र मुख-कर-चरण-नयनादि वाले सर्वमय, अलक्ष्य, तेजस् में विलीन कर दिया जाय। इस प्रकार समस्त इन्द्रिय-करणादि से सम्बद्ध समस्त प्रकार के ज्ञानों से मुक्त परमात्मा के साथ अभेदभाव प्राप्त करके योगी समस्त पाप-पुण्यों से रहित होकर ब्रह्मरूप ही हो जाता है।

अथवादिबीजमौ पुनरुमपि विषे तमपि संहरेद् बिन्दौ।
बिन्दुं नादे तमपि शक्तौ शक्तिं तथैव शान्ताख्ये।।
तेजस्यनन्यगे चिति निर्द्वन्द्वे निष्कले सदानन्दे।
सूक्ष्मे च सर्वतो मुखकरपदनयनादिलक्षणेऽलक्ष्ये।।
स्वामिनि संहृत्यैवं करणेन्द्रियवर्गनिर्गमापेतः।
विलीनपुण्यपापो निरुच्छ्वसन् ब्रह्मभूत एव स्यात्।। (वही, १६/४३-४५)

ओंकार-साधना की छठी विधि के अनुसार आत्मन् की जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय तथा तुरीयातीत नामक पांच अवस्थाओं को जानने पर योगी को सद्यःमुक्ति मिल जाती है। आत्मन् की पंचावस्थाओं में पहली अवस्था जाग्रत् है। इसमें आत्मा विभिन्न इन्द्रियों के माध्यम से विभिन्न विषयों का अनुभव करता है। जिस अवस्था में इन्द्रियों के बिना भी केवल मनस् से आत्मा भोगों को भोगता है,

तृतीयाक्षर 'म' सामवेदरूप है। इसी प्रकार लोक और वेद में ओंकार के अनेक नाम प्रसिद्ध हैं।

ॐकारो गुणबीजं प्रणवस्तारो ध्रुवश्च वेदादिः।
आदिरुमध्यो मपरो नामान्यस्य त्रिमात्रकश्च तथा।।
अस्य तु वेदादित्वात् सर्वमनूनां प्रयुज्यतेऽयादौ।
योनिश्च सर्वदेहे भवति च स च ब्रह्म सर्वसंवादः।।
ऋक् च तदाद्यादिः स्यात्तन्मध्यान्तं यजुश्च मान्तादिः।
सामापि तस्य भेदा बहवः प्रोक्ता हि वेदलोकेषु।। (वही, १६/३४-३६)

ओंकार-साधना की सात विधियां

आचार्य शंकर ने सर्वात्म रूप ओंकार की उपासना के कई गोपनीय और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विधियों का निर्वचन किया है। उनके अनुसार प्रथम विधि यह है कि 'अकार, उकार, मकार, बिन्दु एवं नाद से युक्त' ओंकार का बार-बार उच्चारण करते हुए उसे भावना से द्वादशान्त (सहस्रार) तक ले जाने का अभ्यास तब तक करना चाहिये, जब तक कि उसमें मन का लय न हो जाय।

उच्चार्योच्चार्य च तं क्रमान्नयेदुपरि षड्द्वयान्तान्तम्।
मनसा स्मृते यदाऽस्मिन्मनो लयं याति तावदभ्यस्येत्।।(वही, १६/३७)

दूसरी विधि यह है कि सहस्रार में तीन वर्तुल आभा-आवर्तों एवं सूर्यबिम्ब से युक्त अमृत रस प्रस्रवित कर रहे ओंकार के तेजःस्वरूप बिन्दु के ध्यान का अभ्यास किया जाय। इस ओंकार साधना योग से अति शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त होती है और इससे अपमृत्यु, रोगों एवं पापों पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

अथवा बिन्दुं वर्तुलमावर्तैस्त्रिभिरुपेतमेवमिव।
प्रोतं रविबिम्बेन च समभ्यसेत् स्रुतसुधामयं तेजः।।
अपमृत्युरोगपाप्मजिदचिरेण नृणां सिद्धिदो योगः। (वही, १६/३८-३९)

ओंकार-साधना की तीसरी विधि यह है कि मूलाधार से उठती हुई, चन्द्रामृत से प्रस्रवित अमृतमय जलकणों से सिक्त कमलनाल में स्थित सूक्ष्म तन्तु के समान अत्यन्त सूक्ष्म एक तेजोराशि प्रभा (कुण्डलिनी) का चिन्तन किया जाय। इस प्रकार के योग का अवलम्बन करने वाला साधक निःसन्देह स्थावर-जंगम समस्त प्रकार के विषों को हरण करने की शक्ति प्राप्त कर लेता है।

अथवा मूलाधारोत्थिता प्रभा बिसविभेदतन्तुनिभा।।

होनी चाहिये। योग की साधना के समय अधिक सर्दी-गर्मी आदि से रहित अच्छे साफ-सुथरे घर में वस्त्र, मृगचर्म, रेशम या ऊन से बने सुकोमल आसन के ऊपर कुशनिर्मित आसन बिछाकर उस पर आंखों को बन्द कर पूर्वाभिमुख बैठ, अपने बाएं हाथ को फैलाकर उसे अपनी गोद में रख, फिर दाएं हाथ को इसी प्रकार बाएं हाथ के ऊपर रख, प्रसन्न मन, शान्त इन्द्रिय होकर, अपनी पीठ को सीधी करके मूलाधार में मन को संयमित कर आत्मचिन्तन करना चाहिये। योग-साधक को चाहिये कि वह क्रमशः मूलाधार में प्रणव (ओम्), प्रणव में स्थित बिन्दु और बिन्दु में स्थित नाद का चिन्तन करते हुए ओंकार का उच्चारण करके ओम् (ध्वनि) को सुषुम्ना में प्रविष्ट करे। फिर सुषुम्ना के भीतर अति सूक्ष्म तन्तु के समान समस्त संसार के मूल शुद्ध शब्दब्रह्मरूपी ओंकार के तेजस् का चिन्तन करे।

सुजीर्णमितभोजनः सुखसमाप्तनिद्रादिकः।
सुशुद्धतलसद्गृहे विरहिते च शीतादिभिः।।
पटाजिनकुशोत्तरे सुविशदे च मृद्वासने।
निमीलितविलोचनः प्रतिविशेत्सुखं प्राङ्मुखः।।
प्रसारित वामकरं निजांऽके निधाय तस्योपरि दक्षिणं च ।
ऋजुः प्रसन्नोऽवहितेन्द्रियः सन्नाधारमत्यन्तसमं स्मरेत् स्वम्।।
तन्मध्यगतं प्रणवं प्रणवस्थं बिन्दुमपि च बिन्दुगतम्।
नादं विचिन्त्य तारं यथावदुच्चार्य तन्नयेत् सुषुम्नान्तम्।।
तन्मध्यगतं शुद्धं शब्दब्रह्माऽतिसूक्ष्मतन्तुनिभम्।
तेजः स्मरेच्च तारात्मकमपि मूलं चराचरस्य सदा।।

(वही, १६/३०-३३)

ओंकार के दस नाम

आचार्य शंकर ने प्रणव के ओंकार, गुणबीज, प्रणव, तार, ध्रुव, वेदादि, अ-आदि, उ-मध्य, म-पर तथा त्रिमात्रक इन दस नामों का उल्लेख किया है। शंकर के अनुसार ओंकार वेद का आदि होने के कारण यह समस्त मन्त्रों में सर्वप्रथम प्रयुक्त होता है। सभी देहों की योनि (उत्पत्ति-स्थान या कारण) होने के कारण इसे सर्वयोनि और सबका आश्रय होने से इसे सर्वाश्रय कहा जाता है। सबसे सम्बन्धित होने के कारण इसे 'सर्वसंवाद' कहा जाता है। ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र 'अग्निमीळे पुरोहितम्' में सबसे पहले ओम् के अकार का प्रयोग है, अतः इसे वेदादि कहा जाता है। ओंकार का द्वितीय अक्षर 'उ' यजुर्वेदरूप तथा

षोडशमात्रमित्यर्थः।...तत्त्वसंख्यायमनात् तत्त्वानि च विधृतानि भवन्तीत सूचितम्। तत्त्वधारणायां पृथिव्यादिसम्बन्धतत्त्वसंख्यानु-सारेण अकारादिकमावर्तनीय"मिति विवरणे।

शोषण, दाहन तथा प्लावन की विधि निरूपित करते हुए शंकर ने बताया है कि पहले इडा नाड़ी के मुख पर धुएं के रंग वाले अनिल बीज 'यं' का चिन्तन करते हुए उससे वायु को नाभि में स्थित वायुमण्डल में ले जाकर अन्दर-बाहर अपनी देह को भावना से शोषित करना चाहिये। फिर पिंगला द्वारा प्राण को हृदय-प्रदेश में स्थित अग्निमण्डल में ले जाकर नव कार्शा (कांसा) की कान्ति वाले 'रं' बीज का चिन्तन करते हुए अग्नितत्त्व से अपने शरीर के पंचभूतों का भावना से ही दहन करना चाहिये। इसके बाद सुशीतल अमृतमय चन्द्र बीज 'वं' का चिन्तन करते हुए दग्ध शरीर का अमृत रूप वं से प्लावन करना चाहिये। इसी प्रकार कुक्षि में स्थित पांच अंगों वाले महापातक, पातक, उपपातक, कृष्णवर्ण के पापपुरुष के साथ ही अपने शरीर को शोषित, दग्ध तथा प्लावित करके भावना से ही नये शुद्ध शरीर का निर्माण करना चाहिये।

पूर्वमिडाया वदने विचिन्तयेद्धूम्रमानिलं बीजम्।
तेनागतेन देहं प्रशोषयेत् सान्तराधिकरचरणम्।।
पिंगलया प्रतिमुंचेत् तथैव कार्शानवेन रक्तरुचा।
प्रतिदह्य पूर्वविधिना मुंचेन्नैशाकरेण सुसितेन।।
संपूरयेत् सुधामयजलशीकरवर्षिणा तनुं सकलाम्।
निर्माय मानसेन च परिपूर्णमनाश्चिरं भूयात्।। (वही, १६/२७-२६)

प्लावन की विधि को स्पष्ट करते हुए पद्मपाद ने बताया है कि इडा नाड़ी द्वारा पूरक करते समय द्वादशान्त (सहस्रार) स्थित अमृतमण्डल और 'वं' बीज में ऐक्य की भावना करते हुए कुम्भक के समय प्लावन की क्रिया करनी चाहिये।

"...इडामार्गेण द्वादशान्तस्थामृतमण्डलेन पूरककाले बीजस्य मण्डलस्य वं बीजस्यैक्यं संचिन्त्य कुम्भककाले प्लावयेदित्यर्थः"।

(वही, १६/२८-२६ पर विवरण)

योग-साधना की विधि

आचार्य शंकर के अनुसार योग-साधना-काल में साधक को चाहिये कि वह शीघ्र पचने वाला स्वल्पाहार ले। निद्रा आदि की दिनचर्या संयमित और सुखद

प्राणायाम से भूतसिद्धि

प्राणायामों से भूतशुद्धि होती है। लेकिन भूतशुद्धि के लिये प्राणायाम के साथ एक अन्य विधि का भी उपयोग किया जा सकता है। वह है शोषण, दाहन तथा प्लावन की विधि। आचार्य शंकर का कहना है कि शोषणादि की इस विधि में भी प्राणायाम की आवश्यकता होती है। किन्तु इस विधि में सोलह, बत्तीस आदि मात्राओं के स्थान पर ओंकार की पचास कलाओं का उपयोग किया जाता है। ओंकार की पचास कलाओं के माध्यम से प्राणायाम की विधि में ओंकार के **'अ'** से उत्पन्न सृष्टि, ऋद्धि, स्मृति, मेधा, कान्ति, लक्ष्मी, धृति, स्थिरा, स्थिति तथा सिद्धि, **'उ'** से उत्पन्न जरा, पालिनी, शान्ति, ऐश्वरी, रति, कामिका, वरदा, ह्लादिनी, प्रीति तथा दीर्घा, **'म'** से उत्पन्न तीक्षा, रौद्री, भया, निद्रा, तन्द्रा, क्षुत्, क्रोधिनी, क्रिया, उत्कारी तथा मृत्यु नामक दस-दस कलाओं, **'बिन्दु'** से उत्पन्न पीता, श्वेता, अरुणा तथा असिता एवं **'नाद'** से उत्पन्न निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, इन्धिका, दीपिका, रेचिका, मोचिका, परा, सूक्ष्मा, सूक्ष्मामृता, ज्ञानामृता, आप्यायनी, व्यापिनी, व्योमरूपा तथा अनन्ता नामक सोलह कलाओं का ग्रहण किया जाता है।

> पूर्वोक्तप्राणायामेनापि भूतशुद्धिर्भवति।
> तत्स्थरेचकादीनां सृष्टिसंहारस्वात्मस्थितिरूपत्त्वात्। (वही, विवरण)
>
> **अथवा शोषणदाहनप्लावनभेदेन शोधिते देहे।**
> **पंचाशद्भिर्मात्राभेदैर्विधिवत् समायमेत्प्राणान्।।**
> **पंचाशदात्मकोऽपि च कलाप्रभेदेन तार उद्दिष्टः।**
> **तावन्मात्रायमनात्कलाश्च विधृता भवन्ति तत्त्वविदा ।।**
>
> (वही, १६/२५-२६)

पद्मपाद के अनुसार ओंकार की कलाओं के माध्यम से प्राणायाम किये जाने पर अ, उ, म् में से प्रत्येक की दस-दस मात्राएं, बिन्दु की चार मात्राएं तथा नाद की सोलह मात्राएं हैं। इन पचास मात्राओं से प्राणों की धारणा करने से शरीर के विभिन्न अवयवों में स्थित पचास मातृकाओं, इन मातृकाओं से सम्बन्धित पंचभूतों और समस्त पंचभौतिक ब्रह्माण्ड का संयमन या धारणा हो जाती है।

"अकारादित्रयं प्रत्येकं दशमात्रं धारयेत्। बिन्दु चतुर्मात्रम्। नादं

नासिका में स्थित पिंगला नाड़ी से अपने अन्दर की वायु को बाहर निकालने की विधि को रेचक, वाम नासिका में स्थित इडा नामक नाड़ी से बाहर की वायु को अपने भीतर खींचने की क्रिया को पूरक तथा पिंगला और इडा के बीच स्थित सुषुम्ना नामक नाड़ी में खींची गयी वायु को भीतर रोकने की क्रिया को कुम्भक कहा जाता है। प्राणों अर्थात् वायु को बाहर निकालने के लिये विशेष विधि अपनायी जाती है। इसके अन्तर्गत प्राणों को भीतर लाने में १६, निकालने में ३२ तथा भीतर रोके रखने में चौसठ मात्राओं वाले समय का उपयोग करना होता है। जितना समय एक ह्रस्व वर्ण के उच्चारण में लगता है, उसे '१ मात्राकाल' कहा जाता है। सामान्यतया श्वासों को बाहर निकालने में जितना समय लगता है, उससे दुगुना समय श्वासों को भीतर लाने में लगाना चाहिये और उससे दुगुने समय तक श्वासों को अपने अन्दर रोके रखना चाहिये।

रेचकपूरककुम्भकभेदात्त्रिविधः प्रभंजनायामः।
मुंचेद्दक्षिणयाऽनिलमथानयेद्वामया च मध्यगया।।
संस्थापयेच्च नाड्येत्येवं प्रोक्तानि रेचकादीनि।
षोडशतद्द्विगुणचतुःषष्टिमात्रकाणि तानि क्रमशः।। (वही, १६/१६-२०)

प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि

शंकर के अनुसार इन्द्रियों के अपने-अपने विषयों से खींच कर चित्त, आत्म और प्राण में एकरूपता स्थापित करने के प्रयास का नाम प्रत्याहार है। चैतन्यसहित प्राण को किसी एक ध्येय में स्थिर कर देना धारणा तथा साधक द्वारा अपने साध्य या ध्येय में चित्त की एकतानता या निरन्तरता का नाम ध्यान है। नित्य, शुद्ध, निरंजन, सत्ता मात्र जो परमेश्वर है, उसमें चित्त का विलय समाधि है।

चित्तात्मैक्यधृतस्य प्राणस्य स्यात् संहृतिः स्यानात्।
प्रत्याहारो ज्ञेयश्चैतन्ययुतस्य सम्यगनिलस्य।।
स्थानस्थापनकर्म प्रोक्ता स्याद्धारणेति तत्त्वज्ञैः।
यो मनसि देवताया भावः स्यादस्य मन्त्रिणः सम्यग्।।
संस्थापयेच्च तत्रेत्येवं ध्यानं विदन्ति तत्त्वविदः।
सत्तामात्रं शुद्धं नित्यमपि निरंजनं च यत्प्रोक्तम्।।
तत्प्रविचिन्त्य च तस्मिंश्चित्तलयः स्यात् समाधिरुद्दिष्टः।
अष्टांगैरिति कथितैः पुनराशु निगृह्यतेऽरिरात्मविदा।।

(वही, १६/२१-२४)

सत्यमहिंसा समता धृतिरस्तेयं क्षमाऽऽर्जवं च तथा।
वैराग्यमिति यमः स्यात् स्वाध्यायतपोऽर्चना व्रतानि तथा।।
सन्तोषश्च सशौचो नियमः स्यादासनं च पंचविधम्।।
पद्मस्वस्तिकभद्रकवज्रवीराह्वयाः क्रमात्तदपि।। (वही, १६/१४-१७)

योगासन

पद्मपाद ने आचार्य शंकर द्वारा उल्लिखित उक्त पांच आसनों को लगाने की विधि का वर्णन किया है। उनके अनुसार दोनों जांघों पर दोनों चरणतलों को विपरीत क्रम से एक-दूसरे पर रखकर दोनों हाथों से विपरीत क्रम से ही दोनों पैरों के अंगूठों को बांधना या पकड़ कर बैठना ही पद्मासन है। दोनों घुटनों और जांघों के बीच में दोनों चरणतलों को रख सीधे तनकर बैठने को स्वस्तिकासन कहा जाता है। सीवनी के दोनों ओर दोनों एड़ियों को स्थिर रूप से रखकर अण्डकोश के नीचे दोनों चरणतलों को हाथ से पकड़ कर रखना भद्रासन है। दोनों जांघों पर क्रम से दोनों पैरों को रखकर दोनों घुटनों पर विपरीत क्रम (उलट कर) वाली अंगुलियों वाले हाथों को रखना वज्रासन कहा जाता है। एक पैर को नीचे रखकर दूसरे को जांघ पर रखकर सीधे बैठने की विधि को वीरासन कहा जाता है।

ऊर्वोरुपरि विन्यस्य सम्यक् पादतले उभे।
अंगुष्टौ च निबध्नीयाद्धस्ताभ्यां व्युत्क्रमेण तु।। इदं पद्मासनम्।
जानूर्वोरन्तरा सम्यक् कृत्वा पादतले उभे।
ऋजुकायो विशेदेतदासनं स्वस्तिकं विदुः।।
सीवन्याः पार्श्वयोर्न्यस्येद् गुल्फयुग्मं सुनिश्चलम्।
वृषणाधः पार्श्वपादौ पाणिभ्यां परिबन्धयेत्।। इदं भद्रासनम्।
ऊर्वोः पादौ क्रमान्न्यस्येत् जान्वोः प्रत्यङ्मुखांगुलिः।
करौ निदध्यादाख्यातं वज्रासनमनुत्तमम्।। इदं वज्रासनम्।
एकं पादमधः कृत्वा विन्यस्यौरौ तथेतरम्।
ऋजुकायो विशेद्योगी वीरासनमुदाहृतम्।। इदं वीरासनम्।
(वही, १६/१८-१६ पर विवरण)

प्राणायाम

प्राणायाम रेचक, पूरक तथा कुम्भक नामक तीन प्रकार के होते हैं। दक्षिण

सशान्ती श्रीसरस्वत्यौ रतिश्चास्त्रिदलाश्रिताः।
अच्छपद्मरजोदुग्धदूर्वावर्णाः स्वलंकृताः।।
आत्मान्तरात्मपरमज्ञानात्मानस्तु मूर्तयः।
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिश्च शक्तयः।।
ज्वलज्ज्वालारुचः प्रोक्ता आत्माद्या मूर्तिशक्तयः।
इति पंचावरणकं विधानं प्रणवोद्भवम्।। (वही, १६/७-१२)

(२) प्रणव-साधना और योग

योग की परिभाषा और अंग

आचार्य शंकर ने तार (प्रणव) मन्त्र के जप, हवन तथा उपासना में लगे हुए साधक के लिये योगाभ्यास की आवश्यकता बताते हुए योग की प्रणव-साधनोचित परिभाषा भी दी है। उनके अनुसार 'कर, चरण, मुख आदि से रहित निराकार निर्विकार, दृश्य पदार्थों से असम्पृक्त, अनन्य 'आत्मा' नामक तत्त्व को जिस साधन के माध्यम से साधक अपनी आत्मा में आत्मरूप से देखता है, उस माध्यम को योग कहते हैं।

काम, क्रोध, लोभ, प्रमोह, मद तथा मत्सर ये छह तत्त्व योग की साधना में बाधक हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहृति, धारणा, ध्यान तथा समाधि नामक योग के आठ अंगों के अभ्यास द्वारा योगी उक्त बाधक कामादि शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकता है। यम का तात्पर्य सत्य, अहिंसा, समता, धृति, अस्तेय, क्षमा, आर्जव तथा वैराग्य नामक आठ तत्त्वों से है। स्वाध्याय, तप, अर्चना, व्रत, सन्तोष तथा शौच इन छह तत्त्वों को नियम कहा जाता है। योगोपयोगी आसन पांच हैं—पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, वज्रासन तथा वीरासन। प्रभंजनायाम अर्थात् प्राणायाम तीन प्रकार का होता है—रेचक, पूरक तथा कुम्भक।

करपादमुखादिविहीनमनारतदृश्यमनन्यगमात्मपदम्।
यमिहात्मनि पश्यति तत्त्वविदस्तमिमं किल योगमिति ब्रुवते।।
योगाप्तिदूषणपरं त्वथ कामकोपलोभप्रमोहमदमत्सरतेति षट्कम्।
वैरं जयेत्सपदि योगविदेनमंगैर्योगस्य धीरमतिरष्टभिरिष्टदैश्च।।
यमनियमासनपवनायामाः प्रत्याहृतिश्च धारणया।
ध्यानं चापि समाधिः प्रोक्तान्यंगानि योगयोग्यानि।।

दीक्षितो मनुमिमं शतलक्षं प्रजपेत् प्रतिहुनेच्च दशांशम्।
पायसैर्घृतयुतैश्च तदन्ते विप्रभूरुहभवाः समिधो वा।।
सर्पिःपायसशालीतिलसमिदाज्यैरनेन यो जुहुयात्।
ऐहिकपारत्रिकमपि स तु लभते वांछितं फलं न चिरात्।।

(वही, १६/५-६)

प्रणव की पंचावरण-पूजा

प्रणव की उपासना में आवरण-पूजा के लिये पंचावरणीय वैष्णव पीठ का उपयोग किया जाता है। सर्वप्रथम अष्टदलकमल का निर्माण किया जाता है। फिर उसकी कर्णिका में भगवान् विष्णु का आवाहन किया जाता है। इसके बाद कर्णिका के भीतर ही प्रथम आवरण में अंगमन्त्रों, द्वितीय आवरण के अष्टदलकमल की पूर्वादि दिशावर्ती चार पंखुड़ियों में शंख, चक्र, गदा, पद्म, किरीट, केयूर तथा पीताम्बरधारी एवं क्रमशः स्फटिक, स्वर्ण, दूर्वा एवं नीलम की कान्ति वाली वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध नामक चार वैष्णव मूर्तियों की अर्चना करनी चाहिये। उपदिशावर्ती पंखुड़ियों में क्रमशः श्वेत (गौरांगी), कमल-पराग, दुग्ध तथा दूर्वा की आभा वाली शान्ती, श्री, सरस्वती तथा रति नामक चार शक्तियों की अर्चना की जाती है। तृतीय आवरण में पूर्वादि मुख्य दिशावर्ती पंखुड़ियों के अग्रभाग में आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा तथा ज्ञानात्मा नामक चार मूर्तियों एवं उपदिशावर्ती पंखुड़ियों के अग्रभाग में निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या तथा शान्ति नामक चार शक्तियों की अर्चना करनी चाहिये। आत्मादि मूर्तियां और निवृत्ति आदि शक्तियां प्रज्ज्वलित अग्नि की कान्ति वाली हैं। कमल की पंखुड़ियों के बाहर चतुर्थ आवरण में इन्द्र आदि दश दिग्पालों और अन्तिम पंचम आवरण में दिग्पालों के अस्त्रों की अर्चना पूर्वादि क्रम से की जानी चाहिये।

अभ्यर्च्य वैष्णवमथो विधिनैव पीठ-
मावाह्य तत्र सकलार्थकरं मुकुन्दम्।
अंगैः समूर्तियुगशक्तियुगैः सुरेन्द्र-
वज्रादिकैर्यजतु मन्त्रितमः क्रमेण।।
वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नश्चाऽनिरुद्धकः।
स्फटिकस्वर्णदूर्वेन्द्रनीलाकाराश्च वर्णतः।।
चतुर्भुजाश्चक्रशंखगदापंकजधारिणः।
किरीटकेयूरिणश्च नीलाम्बरधरा अपि।।

आचार्यपाद के इस निर्देश के अनुसार प्रणव मन्त्र के अंगन्यास के स्वरूप निम्न होंगे—

अं ओं आं हृदयाय नमः, इं ओं ईं शिरसे स्वाहा,
उं ओं ऊं शिखायै वषट्, एं ओं ऐं कवचाय हुं,
ओं ओं औं नेत्रत्रयाय वौषट्, अं ओं अः अस्त्राय फट्।

अथवा

ओं भूः हृदयाय नमः, ओं भुवः शिरसे स्वाहा,
ओं स्वः शिखायै वषट्, ओं जनः कवचाय हुं,
ओं महः नेत्रत्रयाय वौषट्, ओं तपः अस्त्राय फट्।

प्रणव-साधना में ध्यान

प्रणव की साधना में सिर पर मुकुट, भुजबन्ध और कंकणों से सुशोभित हाथ, उदरपर्यन्त लम्बित हार, नूपुरादि विभूषित चरण, कांची-मण्डित कटि, वक्ष पर कौस्तुभ मणि, कन्धों को कुछ-कुछ स्पर्श करते हुए मकराकृति कुण्डल, हाथों में चक्र, शंख, कमल तथा गदा और पीत कौशेय वस्त्र धारण किये, उदयकालीन सूर्य की भांति तेजस्वी, पद्मासन पर विराजमान भगवान् विष्णु का ध्यान करना चाहिये।

विष्णुं भास्वत्किरीटांगदवलययुगाकल्पहारोदराङ्घ्रि-
श्रोणीभूषं सवक्षोमणिमकरमहाकुण्डलामण्डितांसम्।
हस्तोद्यच्चक्रशंखाम्बुजगदममलं पीतकौशेयमाशा-
विद्योतद्भासमुद्यद्दिनकरसदृशं पद्मसंस्थं नमामि।। (वही, १६/४)

जप, हवन एवं हवन द्रव्य

प्रणव मन्त्र के साधक को चाहिये कि वह विधिपूर्वक दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् निर्धारित संख्या में जप पूर्ण करे। प्रणव मन्त्र की साधना में मन्त्र की जप संख्या सौ लाख अर्थात् १ करोड़ तथा आहुति संख्या १० लाख निर्धारित की गई है। हवन में पलाश अथवा तिल की समिधाओं से प्रज्ज्वलित अग्नि में घृत, दुग्ध, शाली तथा तिल से निर्मित हवि का उपयोग किया जाना चाहिये। इन सामग्रियों का प्रणव मन्त्र से हवन करने वाले साधक की इहलौकिक तथा पारलौकिक समस्त कामनाएं पूर्ण होती हैं।

में अ, उ, म्, बिन्दु, नाद, शक्ति और शान्त नामक ७ मात्राएं होती हैं। अतः इस 'बिन्दु' के विषय में पद्मपाद ने कहा है कि यहां 'बिन्दु' ओंकार की चौथी मात्रा बिन्दु का वाचक है। इसके साथ ही यह ओंकार की पांचवीं मात्रा 'नाद' का भी उपलक्षण है। वास्तव में शंकर का 'बिन्दुयुतः' पद सप्तमात्रक ओंकार की शक्ति और शान्त नामक दो अन्य मात्राओं की ओर भी इंगित करता है।

बिन्दुयुत इति। नादादेरपि उपलक्षणार्थः। (इति विवरणे)

प्रणव मन्त्र के ऋष्यादि

आचार्य शंकर के अनुसार प्रणव मन्त्र ओंकार के ऋषि प्रजापति, छन्दस् आदिगायत्री तथा देवता स्वयं परमात्मा हैं। आचार्य पद्मपाद ने प्रणव मन्त्र का बीज 'अं' तथा शक्ति 'उं' बताया है।

मन्त्रस्यास्य मुनिः प्रजापतिरथ छन्दश्च देव्यादिका
गायत्री गदिता जगत्सु परमात्माख्यस्तथा देवता। (वही, १६/३)

अं बीजम्। उं शक्तिः। (इति विवरणे)

शंकर और पद्मपाद द्वारा निर्दिष्ट प्रणव मन्त्र के ऋष्यादिन्यास का स्वरूप निम्नांकित होगा—

प्रजापतये ऋषये नमः (शिरसि),
आदिगायत्रीछन्दसे नमः (मुखे),
परमात्मने देवतायै नमः (हृदि),
अं बीजाय नमः (गुह्ये),
उं शक्तये नमः (पादयोः)।

अंगन्यास

आचार्य शंकर के अनुसार प्रणव मन्त्र का अंगन्यास क्लीब (ऋ ॠ ऌ ॡ) रहित, ह्रस्व और दीर्घ स्वरों के बीच ध्रुव अर्थात् ओंकार को रख 'हृदयाय नमः' आदि जातियों से करना चाहिये। इसके अतिरिक्त सप्तव्याहृतियों में से अन्तिम व्याहृति 'सत्य' को छोड़ क्रमशः शेष छह व्याहृतियों से भी प्रणव मन्त्र का अंगन्यास किया जा सकता है।

अक्लीबैर्युगमध्यगध्रुवयुतैरंगानि कुर्यात् स्वरै-
र्मन्त्री जातियुतैश्च सत्यरहितैर्वा व्याहृतीभिः क्रमात्।। (वही,१६/३)

29

प्रणव (ओम्) साधना

(१) प्रणव मन्त्र का स्वरूप

यद्यपि मन्त्र अनगिनत हैं और इनकी साधना से धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है, लेकिन, भिन्न-भिन्न मन्त्रों में भिन्न-भिन्न उद्देश्यों की प्रधानता होती है। सामान्यतया समस्त मन्त्र काम या कामना-प्रधान हैं, लेकिन 'प्रणव' मन्त्र मोक्ष-प्रधान है। महर्षि पतंजलि के अनुसार प्रणव परब्रह्म का वाचक मन्त्र है।

'तस्य वाचकः प्रणवः'। (योगदर्शन)

आचार्य शंकर ने प्रणव को 'परंमन्त्र' माना है। उनके अनुसार प्रणव मन्त्र समस्त पापों का निवारक, विभिन्न कामनाओं की पूर्ति के लिये कल्पद्रुम के समान और मुक्तिरूपी परम फल का देने वाला है। शंकर ने प्रणव मन्त्र के स्वरूप का उद्घाटन करते हुए बताया है कि 'अमर एवं बिन्दुयुक्त 'ध' से सातवें वर्ण के साथ तीन मात्राओं वाला आद्य स्वर प्रणव मन्त्र कहा जाता है। इस त्रिमात्रक 'ओं' में समस्त मन्त्र समाहित हैं और यह ओं सभी मन्त्रों में अनुगत है।

अथ प्रणवसंज्ञकं प्रतिवदामि मन्त्रं परं
सजापमपि सार्चनं सहुतक्लृप्ति सोपानकम्।
अशेषदुरितापहं विविधकामकल्पद्रुमम्।
विमुक्तिफलसिद्धिदं विमलयोगिसंसेवितम्।।
आद्यः स्वरः समेतोऽमरेण सधसप्तमार्णबिन्दुयुतः।
प्रोक्तः स्यात्प्रणवमनुस्त्रिमात्रकः सर्वमन्त्रसमवायी।।

(प्रपंचसारतन्त्र, १६/१-२)

शंकरोक्त 'आद्य स्वर' शब्द का तात्पर्य 'अ' से है। 'अमरेश' का अर्थ 'उ' तथा 'सधसप्तमार्ण' का अर्थ 'ध' वर्ण से सातवां वर्ण 'म्' है। इस प्रकार 'अ उ म्' इन तीनों वर्णों के मिलने से 'त्रिमात्रक' प्रणव मन्त्र 'ओं' बनता है। लेकिन, इस म् को शंकर ने 'बिन्दुयुतः' अर्थात् बिन्दुवाला होना बताया है। इस प्रकार 'म्' के बिन्दुसहित होने से 'ओंकार' चार मात्राओं वाला हो जाता है, त्रिमात्रक नहीं रह जाता। यह एक समस्या है। किन्तु, इसका समाधान है। वास्तव में, प्रणव मन्त्र

ग्रामं गच्छन्नगरमपि वा मन्त्रजापी मनुष्यो
देवेशं तं मुखमनु मुहुस्तर्पयेद्दुग्धबुद्ध्या।
शुद्धै स्तोयैः स तु बहुरसोपेतमाहारजातं
दद्यान्नित्यं प्रचुरधनधान्यांशुकाद्यैर्मुकुन्दः।। (वही, १८/५१)

एवं देवं पूजयन्मन्त्रमेनं जप्यान्मन्त्री सर्वलोकप्रियः स्यात्।
इष्टान् कामान् प्राप्य सम्पन्नवृत्तिर्नित्यं शुद्धं तत्परं धाम भूयात्।।
(वही, १८/५४)



मध्याह्न में देवताओं द्वारा वन्दित, विकसित अरविन्द की आभा वाले, कमलनयन, गायों तथा गोप-गोपियों से घिरे, शत्रुसमूह को पराजित करने वाले, कुन्द तथा पारिजात के पुष्पों की सुषमा से युक्त मधुर स्मित वाले, नीलग्रीवा वाले मयूर के पंखों के अग्र भाग से चुम्बित केशराशि वाले, पीताम्बरधारी, द्युतिमान देवकीपुत्र कृष्ण की अर्चना की जानी चाहिये।

वन्द्यं देवैर्मुकुन्दं विकसितकरविन्दाभमिन्दीवराक्षं
गोगोपीवृन्दवीतं जितरिपुनिवहं कुन्दमन्दारहासम्।
नीलग्रीवाग्रपिच्छाकलनसुविलसत्कुन्तलं भानुमन्तं
देवं पीताम्बराढ्यं यजतु च दिनशो मध्यमेऽह्नो रमायै।। (वही, १८/४८)

आध्यात्मिक ज्ञानप्राप्ति के लिये सायंकालीन कृष्णोपासना में अपने पराक्रम से शत्रुओं के दल को ध्वस्त करने वाले, अजेय पराक्रमी, धरती के भार को दूर करने वाले, परम तत्व के निर्णयार्थ आगत नारदादि मुनियों से घिरे हुए, निर्मल, निरुपम, अजर, नीली आभा वाले भगवान् कृष्ण के स्वरूप की अर्चना करनी चाहिये।

विक्रान्त्या ध्वस्तवैरिव्रजमजितमपास्तावनीभारमाद्यै-
रावीतं नारदाद्यैर्मुनिभिरनुदिनं तत्त्वनिर्णीतिहेतोः।
सायाह्ने निर्मलं तं निरुपममजरं पूजयेन्नीलभासं
मन्त्री विश्वोदयस्थित्यपहरणपरं मुक्तिदं वासुदेवम्।। (वही, १८/४६)

जो व्यक्ति भगवान् कृष्ण की उक्त विधि से त्रिकालीय उपासना करता है वह अपने जीवन में धर्म, अर्थ, सुख और परालक्ष्मी के साथ ही मोक्ष भी प्राप्त करता है।

त्रिकालमेवं परिचिन्त्य शार्ङ्गिणं प्रपूजयेद्यो मनुजो महामनाः।
स धर्ममर्थं ससुखं श्रियं परामवाप्य देहापदि मुक्तिमाप्नुयात्।।
(वही, १८/५०)

कृष्णमन्त्र के विविध प्रयोग

गांव-नगर आदि में आते-जाते, किसी भी अवस्था में कोई भी काम करते हुए जो भी साधक मानस कल्पित दुग्ध, शुद्ध जल आदि भगवान् कृष्ण को अर्पित करता है, उससे सन्तुष्ट होकर वे उस साधक को षड्रस युक्त आहार, धन-धान्य तथा वस्त्रादि समस्त वस्तुएं प्रदान करते हुए उसके योगक्षेम का निर्वहन करते हैं।

अव्यान्मीलत्कलापद्युतिरहिरिपुपिच्छोल्लसत्केशजालो
गोपीनेत्रोत्पलाराधितललितवपुर्गोपगोवृन्दवीतः।
श्रीमद्वक्त्रारविन्दप्रतिहसितशशांकाकृतिः पीतवासा
देवोऽसौ वेणुवाद्यक्षपितजनधृतिर्देवकी नन्दनो वः।। (वही, १८/४३)

जप एवं हवनादि

कृष्ण की उपासना में उक्त मन्त्र का २० हजार जप पूर्ण करने के बाद विष्णुपीठ पर अंगमन्त्रादि तथा लोकपालों के साथ गोविन्द की षोडशोपचार अर्चना करने के अनन्तर लाल कमल के पुष्पों की दो हजार आहुतियां प्रतिदिन देनी चाहिये। भगवान् श्रीकृष्ण को नवनीत, कदली फल, दही आदि नैवेद्य अर्पित करने के बाद उक्त मन्त्र से दुग्धनिर्मित हवि (खीर) में घी तथा मिश्री मिलाकर हवन करना चाहिये। इस प्रकार की अर्चना से सन्तुष्ट भगवान् गोविन्द साधक को इच्छित धन-सम्पत्ति प्रदान करते हैं।

अयुतद्वितयावधिर्जपः स्यादरुणैरम्बुरुहैर्हुनेद् दशांशम्।
मुरजिद्विहिते तु पीठवर्ये दिनशो नन्दसुतः समर्चनीयः।।
अंगाशेड्वज्राद्यैः परिपूज्य पायसेन सुसितेन।
हैयंगवीनकदलीफलदधिभिः प्रीणयेच्च गोविन्दम्।।
जुहुयाद्दुग्धहविर्भिर्विमलैः सर्पिः सितोपलोपेतैः।
इष्टां तुष्टो लक्ष्मीं समावहेत् सद्य एव गोविन्दः।। (वही, १८/४४-४६)

आचार्य शंकर ने कृष्ण की प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकालीन पूजा का विशेष विधान किया है। इस त्रिकालीय पूजा में प्रातःकाल नवमणियों (सूर्यादि नवग्रहों से सम्बन्धित माणिक्य आदि मणियों से जटित), क्षुद्र घंटिकाओं के समूह से युक्त, मधुर-मधुर ध्वनि करने वाले, जंघाओं तक लम्बायमान कटिसूत्र को धारण किये, विशाल रुरु (विशेष जाति के मृग) के नखों से जटित कण्ठहार धारण किये, खिले हुए कमल की आभा से युक्त मुखारविन्द वाले, शकटासुर एवं पूतना जैसे असुरों के संहारक, इन्द्र आदि देवताओं से वन्दित, नील मेघों के समान कान्ति वाले शिशुरूप कृष्ण की पूजा करनी चाहिये।

बालं नीलाम्बुदाभं नवमणिविरणत्किंकिणीजालबद्ध-
श्रोणीजंघान्तयुग्मं विपुलरुरुनखप्रोल्लसत्कण्ठभूषम्।
फुल्लाम्भोजाभवक्त्रं हतशकटपतत्पूतनाद्यं प्रसन्नं
गोविन्दं वन्दितेन्द्राद्यमरवरमजं पूजयेद् वासरादौ।। (वही, १८/४७)

'न्दा' के बीच 'ष्णाय गो वि' इनके बाद 'य' और 'ल्ल' के बीच 'गोपीजनव', तदनन्तर 'भाय' तथा 'स्वाहा' वर्णों को मिलाने से (क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) कृष्णमन्त्र बनता है। कृष्णमन्त्र के ऋषि नारद, छन्दस् गायत्री, देवता कृष्ण, बीज क्लीं तथा शक्ति स्वाहा हैं। कृष्णमन्त्र की साधना में मूल कृष्णमन्त्र के अठारह अक्षरों में से ४, ४, ४, ४, तथा २ अक्षरों से हृदय, सिर, शिखा, कवच तथा अस्त्रन्यास किये जाते हैं।

> कृन्दामध्यगताःष्णायगोव्यर्णा यल्लमध्यगाः।
> गोपीजनवकाराः स्युर्भाय स्वाहा स्मरादिकाः।।
> ऋषिश्च नारदोऽस्यस्याद्गायत्रं छन्द उच्यते।
> मन्त्रस्य देवता कृष्ण स्तदंगविधिरुच्यते।।
> मूलमन्त्रचतुर्वर्णचतुष्केण द्विकेन च।
> प्रोक्तान्यंगानि भूयोऽमुं चिन्तयेद्देवकीसुतम्।। (वही, १८/४०-४२)

इस उल्लेख के अनुसार कृष्णमन्त्र की साधना में मन्त्र के न्यासादिकों का रूप निम्न होगा—

ऋष्यादिन्यास

नारदाय ऋषये नमः (शिरसि), गायत्र्यै छन्दसे नमः (मुखे),
कृष्णाय देवतायै नमः (हृदये), क्लीं बीजाय नमः (लिंगे),
स्वाहा शक्तये नमः (पादयोः)।

षडंगन्यास

क्लीं कृष्णाय हृदयाय नमः, गोविन्दाय शिरसे स्वाहा,
गोपीजन शिखायै वषट्, वल्लभाय कवचाय हुम्,
स्वाहा अस्त्राय फट्।

कृष्ण का ध्यान

कृष्णमन्त्र की साधना में उदित (मीलत्) होते हुए चन्द्रमा की कान्ति, सर्पों के शत्रु मयूर के पंखों से सुशोभित केशराशि, गोपियों के कमल की पंखुड़ियों की भांति सुन्दर नेत्रों द्वारा अभिलषित सुन्दर देह, गोप-गो समूहों से घिरे, सुषमासम्पन्न मुखारविन्द से चन्द्रमा की सुन्दरता को भी पराजित करने वाले, पीताम्बर, बासुरी की ध्वनि से लोगों का धैर्य छुड़ा देने वाले, सब के रक्षक देवकी के पुत्र श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिये।

यदि कोई नारी तार अर्थात् शक्तिवर्ण 'ईं' से पुटित काममन्त्र (ईं क्लीं) से घृत का हवन करने के बाद शेष घृत को भोजन में मिला कर अपने पति को खिलावे, तो उसका पति अत्यन्त प्रसन्न और तृप्त होता है।

हंसारूढो मदनस्त्रैलोक्यक्षोभको भवेदाशु।
द्यु (ह)युतो रंजनकृत् स्याज्जीवोपेतस्तथाऽऽयुषे शस्तः।।
तारयुजा त्वमुनाऽग्नौ हुत्वा सम्पातितेन चाज्येन।
सम्भोजयेत् पतिं स्वं वनिता स नितान्तरंजितो भवति।।

(वही, १८/३५-३६)

काममन्त्र से दही और लाजा (खील) का हवन करने से वर या कन्या जिसे भी चाहते हैं, वह उसे पत्नी या पति के रूप में प्राप्त होता है। दधियुक्त अशोक के पुष्पों के हवन से व्यक्ति जिस भी कन्या को चाहता है, उसके साथ उसका विवाह हो जाता है।

दध्यक्ताभिर्जुहुयाल्लाजाभिः कन्यकां समाकाङ्क्षन्
कन्याऽपि वरं लभते विधिना नित्यानुरक्तममुनैव।।
अभिनवैः सुमनोभिरशोकजैर्दधियुतैर्विहिता हवनक्रिया।
परमवश्यकरी परिकांक्षितामभिवहेदचिरादिव कन्यकाम्।।

(वही, १८/३७-३८)

आचार्य शंकर का विचार है कि कामदेव स्वभाव से ही स्मरण करने मात्र से अभीष्ट के देने वाले हैं, और यदि इन्हें जप एवं अर्चना आदि से प्रसन्न कर लिया जाय, तब तो वे विशेष रूप से इच्छित वस्तु प्रदान करते हैं। इन सबके साथ ही कामदेव की कृपा से समस्त संसार चिरकाल के लिये साधक के वश में हो जाता है।

अभीष्टदायी स्मरणादपि स्मरस्तथा जपादर्चनया विशेषतः।
प्रसादतोऽस्याखिललोकवर्तिनश्चिराय वश्याश्च भवन्ति मन्त्रिणः।।

(वही, १८/३९)

(४) कृष्णमन्त्र की साधना

भगवान् कृष्ण कामदेव (प्रद्युम्न) के जनक हैं। आचार्य शंकर ने कामोपासना के सन्दर्भ में ही कृष्णोपासना का निरूपण किया है। शंकर ने कृष्ण के मन्त्र का उद्धार करते हुए बताया कि 'आरम्भ में स्मर मन्त्र, फिर 'कृ' एवं

ऊर्ध्वरेतस् साधना

शंकर ने कामकेलि के निर्वचन के प्रसंग में ऊर्ध्वरेतस् साधना की ओर इंगित किया है। नर या नारी योगियों द्वारा नारी या नर के साथ रमण के समय उनके स्खलित वीर्य या रजस् को ऊर्ध्वगति वाले वायु की सहायता से अपने शरीर में खींच लिया जाता है। योगी-योगिनियों द्वारा ऊपर खीचा गया रजस् एवं वीर्य शरीर में जाकर 'ओजस्' के रूप में परिणत हो जाता है । रजस् एवं वीर्य को इस प्रकार आकर्षित करने की क्रिया को सामान्यतया 'वज्रोली' कहा जाता है। ऐसे योगियों को ऊर्ध्वरेता कहा जाता है। वज्रोली का एक अन्यरूप 'अमरोली' है। रति के समय यदि सारे रजस् या वीर्य को आकर्षित करने में योगी सफल नहीं हो पाता, तो वह शेष अंश मूत्र द्वारा बाहर निकाल सकता है। इसे भी किसी विधि से अपने अन्दर ले लेना चाहिये। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर शंकर ने कहा है कि योगी को जीवहत्या नहीं करनी चाहिये—'हानिं न कुर्याज्जीवस्य।' ऊर्ध्वाकर्षण से बचे हुए रजोवीर्य को मूत्र द्वारा बाहर निकाल कर योगी उसे पी लेते हैं। इस प्रकार रजोवीर्य से मिश्रित मूत्र को 'अमरी' कहा जाता है। मध्यकालीन शाक्त योगियों ने अमरी को अत्यन्त महत्त्व दिया है।

नारी की योनि के प्रस्खलित रजस् को जिह्वा द्वारा आकर्षित करने तथा अमरी पान की क्रियाएं सामान्यतया गर्हित लग सकती है लेकिन, ऐसा है नहीं। आहत अंगुलियों से बह रहे रक्त को लोग मुख में रख लेते हैं। सोचने की बात है कि जब रक्त चूसा जा सकता है, तब वीर्य या रज क्यों नहीं ? आखिर, वीर्य और रजः रक्त से भी सूक्ष्म और सात्विक तत्त्व होते हैं । लोग ऐसा नहीं कर पाते, इसका कारण सामाजिक संस्कार और जानकारी का अभाव है।

कामसाधना की अन्य विधियां

शंकर के अनुसार हंस अर्थात् 'स्' से पुटित काममन्त्र(स्क्लीं) तीनों लोकों को क्षुभित करने में समर्थ है। तात्पर्य यह कि 'स्क्लीं' मन्त्र की साधना करने से साधक किसी के मन में भी कामात्मक विक्षोभ या व्याकुलता उत्पन्न कर सकता है।

काममन्त्र 'क्लीं' में 'द्यु' अर्थात् 'ह्' लगा कर (ह्क्लीं) के रूप में साधित किया जाय तो यह हृदय को आह्लादित करता है।

जीव अर्थात् (जूं सः) से पुटित काममन्त्र आयुष्य के लिये प्रशस्त है।

प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र से उसमें प्राणप्रतिष्ठा करने के बाद उस ताम्बूल पत्र को साधक साध्या को खिला दे, तो वह तुरन्त साध्य के वश में हो जायगी।

साध्याख्याकामवर्णैःप्रतिपुटितलसत्कर्णिकं पत्रराज-
तारत्विक्पक्षजाष्टादशसमिदृतुगण्डान्तगान्ताक्षराढ्यम्।
आशाशूलांकितं तद्विपतिरिपुदले सम्यगालिख्य सेरं
मारं जप्त्वाऽस्य यामाशयति वशगता सा भवेत्सद्य एव।। (वही, १८/३४)

"तारः ईकारः। ऋत्विक् षोडशस्वरः। पक्षः पंचदशस्वरः। जाष्टादश मकारः। समिदेकविंशवर्णः ङकारः। ऋतुः षष्ठस्वरः। गण्डान्तः एकारः। गान्तो घकारः। एतान् पत्रेषु लिखेत्। आशा-शूलांकितमिति। पत्राग्रेषु त्रिशूलान् रचयेदित्यर्थः"।। (वही, विवरण)

वाग्बीजयुक्त कामयन्त्र

प्रपंचसारतन्त्र के उपर्युक्त श्लोक में 'सेरं' (इरा सहितं सेरम्) का तात्पर्य वाक्बीज 'ऐं' से भी हो सकता है। इरा वाक् को कहा जाता है—(इराभूवाक्सु-राप्सु स्यात् इति अमरे)। इसी प्रकार 'विपतिरिपुदले' का तात्पर्य कमल दलों से है। 'विपतिरिपु' शब्द से शंकर का तात्पर्य विपदि अर्थात् दरिद्रता की शत्रु कमला (लक्ष्मी) से है। 'कमला' से शंकर ने कमल का सम्बन्ध जोड़ कर ही 'विपतिरिपुदले' लिखा है।

इस अर्थ में प्रमदाओं के वशीकरण के लिये वाक्बीज 'ऐं' सहित काममन्त्र 'क्लीं' के जप, आहुति और आवरण-पूजा की विधि का निरूपण किया है। मार-साधना की इस विधि में इरा अर्थात् वाक् बीज (ऐं) सहित काममन्त्र (ऐं क्लीं) का उपर्युक्त निर्धारित संख्या में जप तथा हवनादि क्रिया समाप्त कर कामयन्त्र में कामदेव की आवरणसहित अर्चना करनी चाहिये। इसके बाद कमलचक्र की आठों पंखुड़ियों में पूर्वादि क्रम से तार अर्थात् 'ईकार', ऋत्विक् अर्थात् सोलहवां स्वर 'अः', पक्ष (पन्द्रहवां) स्वर 'अं', जकार से अठारहवां वर्ण 'म', समित् अर्थात् इक्कीसवां वर्ण 'ङ', ऋतुसंख्यक (छठा) वर्ण 'ऊ', गण्डान्त-वर्ण 'ए' तथा ग वर्ण के अन्त वाला वर्ण 'घ' लिखना चाहिये। इसके अनन्तर प्रत्येक कमल दल (विपतिरिपुदले) के अग्र भाग को त्रिशूल से अंकित करना चाहिये। इस प्रकार वाक्बीजसहित काममन्त्र की उल्लिखित विधि से अर्चना करने वाला साधक जिस नारी को चाहता है, वह अतिशीघ्र उसके वश में हो जाती है।

आत्मानं मदनं ध्यायेदाशुशुक्षणिरूपकम्।
तद्बीजाग्रं शिवज्वालातनुं तन्वीतनुं तथा।।
सुधामयीं च तद्योनिं नवनीतमयीं स्मरेत्।
संगच्छेच्च शिवज्वालालीढं तद् हृदयादिकम्।।
आलिंगेदग्निसंस्पर्शद्रुतं तद्रूपकामृतम्।
रसनाशिखयाकर्षेत् तद् दन्तरसनामृतम्।
कुसुमास्त्रधिया बाहौ स्पृशेत् कररुहैरपि।। (वही, १८/२६-३१)

आचार्य शंकर के अनुसार काम की साधना में लगे योगी को चाहिये कि वह नारी के साथ रमण करते समय जीवहानि न करे। पद्मपाद के अनुसार शंकर के इस कथन का कि 'जीवहानि न करे' का तात्पर्य यह है कि योगी सहसा रेतस् का विसर्जन न करे (हानिं न कुर्याज्जीवस्येति.. सहसा रेतो विसर्गं न कुर्यात् इति विवरणे) अर्थात् वीर्यपात न होने दे। क्योंकि अनुद्देश्य वीर्यपात से शुक्र में विद्यमान लाखों जीवों का विनाश होता है। योगी को चाहिये कि वह अपने रेतस् या रजत् को नष्ट न करे, अपितु उसे ऊर्ध्वगामी बनाकर ऊर्जा के रूप में परिवर्तित कर दे। योगी को चाहिये कि वह अपनी प्रिया की योनि के अन्दर नीचे, बीच में तथा ऊपर क्रम से सर्वत्र रमण या घर्षण करे। ऐसा करने से कामबाण से उसकी प्रिया इस जन्म तथा दूसरे जन्मों में भी छाया की तरह उसका अनुगमन करती है।

हानिं न कुर्याज्जीवस्य मन्त्री विशदमानसः।
रतावथोऽधोमध्योर्ध्वक्रमेणैवं समाहितः।।
निजां प्रियां भजेदेवं सा मारशरविह्वला।
छायेवाऽनुगता तस्य भवेदपि भवान्तरे।। (वही, १८/३२-३३)

वशीकरण-प्रयोग

ताम्बूल-पत्र पर एक अष्टदल कमल का निर्माण करके इसकी कर्णिका में साध्य (जिसे वश में करना है) का नाम लिखकर उसे काममन्त्र के 'क् ल् ई म्' इन चार वर्णों से आवृत देना चाहिये, अथवा शक्तिप्रणव बीज 'ईं' से पुटित कर (जैसे—पुष्पा नाम को 'ईं पु ईं ष्पा ईं') देना चाहिये। तदनन्तर पद्मदलों में क्रमशः शक्ति प्रणव (ईं), ऋत्विक् (अः), पक्ष (अं), जाष्टम वर्ण (म), समिद् (ऋ), ऋतु (ऊ) गण्डान्त (ए) तथा गान्त (घ) वर्णों को लिखकर आठों दलों के अग्रभागों में त्रिशूल अंकित कर देना चाहिये। फिर, साध्या के नामाक्षरों से युक्त

(३) काम की अन्तरंग साधना

कामदेव की आन्तरसाधना में साधक समनी अवस्था में भावना से अपने आपको क्रियाशक्त्यात्मक अग्न्यात्मा सूर्य और अपने लिंग को आध्यात्मिक मनोऽवस्था में स्थित विभिन्न प्रकार की विभ्रमावस्था से युक्त परिछिन्न शिवरूप मानता हुआ समनी में ही ज्ञानक्रियात्मक सोमांश रूप बुद्धिशरीर अर्थात् कल्पनामय नारी-शरीर की भावना करता हुआ उस बुद्धिस्थ कल्पनामयी नारी की चित्तरूपी योनि के साथ रमण करता है। इस प्रकार जो साधक आध्यात्मिक चिन्तनपरक रमण क्रिया अपनी पत्नी के साथ करता है वह भोग के साथ मोक्ष का भी भागी बनता है और समस्त नारियों के हृदय को अपने वश में कर लेता है।

विलसदहंकारतनुर्मनःशिवो विभ्रमास्पदीभूतः।
बुद्धिशरीरां नारीं नरः सदा चित्तयोनिमधिगच्छेत्।।
इति मदनयोगक्लृप्त्या यो रमयेन्नित्यशो निजां वनिताम्।
स तु भुक्तिमुक्तिगामी वनिताजनहृदयमोहनो भवति।।

(वही, १८/२७-२८)

आध्यात्मिक कामकेलि की उक्त विधि को और अधिक स्पष्ट करते हुए शंकर कहते हैं कि साधक को चाहिये कि काम-साधना के प्रसंग में वह अपने आपको अग्न्यात्मक सूर्यरूप 'क्लीं' बीजात्मक कामदेव माने और इसके साथ ही वह अपने लिंग को ज्वालामय शरीर के रूप में चिन्तन करे। तात्पर्य यह कि साधक अपने को कामदेव और अपने लिंग को कामबीज अर्थात् स्रष्टा बीज के रूप में भावना करे। इसके अनन्तर वह नारी के शरीर और उसकी योनि को अमृतपूर्ण एवं नवनीत के समान सुकोमल रूप में चिन्तन करता हुआ शिवमय लिंग की ज्वाला से परिव्याप्त नारी के हृदयादि अंगों का आलिंगन करे। आलिंगनादि की इस क्रिया से एवं लिंगरूपी अग्नि के योनि के साथ स्पर्श होने पर उस योनि से जो रजसूरूपी अमृत स्रवित होता है, उसे अपनी जिह्वा के अग्रभाग से अपने अन्दर आकर्षित कर ले, अथवा रसन क्रिया में संलग्न लिंग के अग्रभाग से अपने अन्दर खींच ले। इसके साथ ही उस नारी के दांतों तथा रसना के अमृत रस का भी पान करे। तात्पर्य यह कि दन्तक्षत तथा चुम्बनादि के माध्यम से सोमांशरूप नारी के आन्तर और बाह्य रूप अमृतरस का पान करे। इसके अलावा साधक को चाहिये कि वह नारी के कुचों को कामदेव के अस्त्र (बाण) मानता हुआ उनका अपनी अंगुलियों से स्पर्श तथा मर्दनादि करे।

हीं माधव्यै नमः, हीं मालत्यै नमः,
हीं हरिणाक्ष्यै नमः, हीं मदोत्कटायै नमः।

तदनन्तर चतुरस्र के बाहर के **सातवें आवरण** में पूर्वादि दशों दिशाओं में क्रमश दस दिक्पालों उनके वज्रादि आयुधों सहित निम्नवत्—

हीं इन्द्राय नमः, हीं अग्नये नमः, हीं यमाय नमः,
हीं निर्ऋत्यै नमः, हीं वरुणाय नमः, हीं वायवे नमः,
हीं कुबेराय नमः, हीं ईशानाय नमः, हीं अनन्ताय नमः,
(ऊर्ध्व दिशा में हीं ब्रह्मणे नमः अधोदिशा में) ।

अंकित कर इस सप्तावरणीय कामार्चना यन्त्र पर कामदेव सहित उक्त देवताओं की षोडशोपचार पूजा करनी चाहिये।

अमृतोद्भवो मकरकेतनः संकल्पजन्माह्वयाक्षतरूपौ।।
इक्षुधनुर्धरपुष्पशराख्यावंगानि च वह्निजायान्तानि।।
अंगबाणावृतेरूर्ध्वं पूज्याः षोडशशक्तयः।
युवतिर्विप्रलम्भा च ज्योत्स्ना सुभ्रूर्मदद्रवा।।
सुरता वारुणी लोला कान्तिः सौदामिनी तथा।
कामच्छत्रा चन्द्रलेखा शुकी च मदनाह्वया।।
योनिर्मायावती चेति शक्तयः स्युर्मनोभुवः।
शोको मोहो विलासश्च विभ्रमो मदनातुरः।।
अपत्रपो युवा कामी चूतपुष्पो रतिप्रियः।
ग्रीष्मस्तपान्त ऊर्जश्च हेमन्तः शिशिरो मदः।।
चतुर्थ्यामावृतौ पूज्याः स्युर्मारपरिचारकाः।
परभृत्सारसौ चैव शुकमेघाह्वयौ तथा।।
अपांगभ्रूविलासौ च हावभावौ स्मरप्रियाः।
माधवी मालती चैव हरिणाक्षी मदोत्कटा।
एताश्चामरहस्ताः स्युः पूज्या कोणेषु संस्थिताः।।
हृल्लेखया स्वनाम्ना च शक्त्यादीनां समर्चनम्।
इन्द्राद्यैः सप्तमी पूज्या स्मरार्चाविधिरीदृशः।।
मदनविधानमितीत्थं प्रोक्तं योऽनेन पूजयेद् विधिना।
स तु सकललोकपूज्यो भवेन्मनोज्ञश्च मन्दिरं लक्ष्म्याः।।

(वही, १८/१६-२६)

संकल्पजन्मने स्वाहा, अक्षतरूपाय स्वाहा,
इक्षुधनुर्धराय स्वाहा, पुष्पशराय स्वाहा।

कर्णिका स्थित **द्वितीय आवरण में** काम के पांच बाणों का चतुर्थ्यन्त नाम निम्न रूप से—

शोषणाय नमः, मोहनाय नमः, सन्दीपनाय नमः,
तापनाय नमः, मोदनाय नमः।

सोलह पद्मदलों की सन्धियों वाले **तृतीय आवरण में** काम की सोलह शक्तियों के नाम निम्नांकित रूप से—

ह्रीं युवत्यै नमः, ह्रीं विप्रलम्भायै नमः, ह्रीं ज्योत्स्नायै नमः,
ह्रीं सुभ्रुवे नमः, ह्रीं मदद्रवायै नमः, ह्रीं सुरतायै नमः,
ह्रीं वारुण्यै नमः, ह्रीं लोलायै नमः, ह्रीं कान्त्यै नमः,
ह्रीं सौदामिन्यै नमः, ह्रीं कामछत्रायै नमः,
ह्रीं चन्द्रलेखायै नमः, ह्रीं शुक्यै नमः, ह्रीं मदनायै नमः,
ह्रीं योन्यै नमः, ह्रीं मायावत्यै नमः।

पद्मदलों के मध्य वाले **चतुर्थ आवरण** में कामदेव के सोलह परिचारकों के नाम निम्नांकित रूप—

ह्रीं शोकाय नमः, ह्रीं मोहाय नमः, ह्रीं विलासाय नमः,
ह्रीं विभ्रमाय नमः, ह्रीं मदनातुराय नमः,
ह्रीं अपत्रपाय नमः, ह्रीं यूने नमः, ह्रीं कामिने नमः,
ह्रीं चूतपुष्पाय नमः, ह्रीं रतिप्रियाय नमः,
ह्रीं ग्रीष्माय नमः, ह्रीं तपसे नमः, ह्रीं ऊर्जाय नमः,
ह्रीं हेमन्ताय नमः तथा ह्रीं मदाय नमः।

फिर सोलह दलों के ऊपर **पंचम आवरण** रूपी आठ पद्मदलों का निर्माण करके प्रत्येक दल में कामदेव के प्रिय आठ पार्षदों के नाम—

ह्रीं परभृते नमः, ह्रीं सारसाय नमः, ह्रीं शुकाय नमः,
ह्रीं मेघाय नमः, ह्रीं अपांगाय नमः, ह्रीं भ्रूविलासाय नमः,
ह्रीं हावाय नमः, ह्रीं भावाय नमः।

तदनन्तर चतुरस्राकार भूपुर वाले **छठे आवरण** के चारों कोणों में क्रमशः कामदेव की चामरधारिणियों के नाम निम्नवत्—

वशीकरण काममन्त्र

आचार्य शंकर के अनुसार **'नमः कामदेवाय सर्वजनप्रियाय सर्वजनसम्मोहनाय ज्वल ज्वल प्रज्ज्वल सर्वजनस्य हृदयं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा'** इस अड़तालीस अक्षरों वाले काममन्त्र का उक्त विधि से जपादि सम्पन्न कर आवरण-पूजा के समय कामयन्त्र को कलश पर रखकर षोडशोपचार से इसकी अर्चना करने से नर-नारियों तथा विभिन्न पदों पर आसीन अधिकारियों, सभासदादि सभी को वश में किया जा सकता है।

नत्यन्ते कामदेवाय चोक्त्वा सर्वजनं वदेत्।
प्रियायेति तथा सर्वजनसम्मोहनाय च।।
वीप्सयित्वा ज्वलपदं प्रज्वलं च प्रभाषयेत्।
पुनः सर्वजनस्येति हृदयं मम चेत्यथ।।
वशमुक्त्वा कुरुं वीप्सा कथयेद् वह्निवल्लभाम्।
प्रोक्तो मदनमन्त्रोऽष्टचत्वारिंशद्भिरक्षरैः।। (वही, १८/१२-१४)

(२) जगन्मोहन कामार्चना विधान

आचार्य शंकर ने एक ऐसे सप्तावर्णीय मदन पूजा-विधान का निरूपण किया है, जिसके द्वारा साधक समस्त लोगों द्वारा सम्मानित, लक्ष्मीवान् और मनोज्ञ बन सकता है। इस विधि के अनुसार अरुण वस्त्राभूषणों से सुशोभित, इक्षुनिर्मित धनुष-बाणधारी कामदेव का आत्मरूप से चिन्तन करते हुए जगन्मोहन कामार्चना सम्पन्न करनी चाहिये।

वक्ष्ये विधानमन्यन्मनोवस्याऽथ मोहनं जगतः।
येनार्चितः स देवो वांछितमखिलं करोति मन्त्रविदाम्।।
अरुणतरवसनमाल्यानुलेपनाभरणमिक्षुशरासनधरम्।
न्यस्तशरबीजदेहो ध्यायेदात्मानमंगजं रुचिरम्।। (वही, १८/१६,१८)

कामार्चना यन्त्र

'जगन्मोहन कामार्चना' के लिये सोलह दलों वाले यन्त्र का आलेखन कर उसकी कर्णिका के मध्य वर्तुल के भीतर कामबीज 'क्लीं' लिखना चाहिये। इसके अनन्तर इस वर्तुल के बाहर वाले **प्रथम आवरण** में निम्नांकित रूप से अंगमन्त्र—

अमृतोद्भवाय स्वाहा, मकरकेतनाय स्वाहा,

इस कामयन्त्र के निर्माण की विधि के उल्लेख से पूर्व आचार्य ने एक अन्य कामयन्त्र या आवरण-पूजा यन्त्र के निर्माण की विधि भी बताई है। इसके अनुसार पहले एक अष्टदल कमल का निर्माण करके इसकी कर्णिका के मध्य कामबीज 'क्लीं' लिख कर कर्णिका में ही काम के अंगमन्त्र लिखना चाहिये। पुनः अष्टदल कमल की पंखुड़ियों तथा कर्णिका की सन्धियों में पूर्वादि क्रम में मोहनी, क्षोभणी, त्रासी, स्तम्भनी, आकर्षणी, द्राविणी, आह्लादिनी एवं क्लिन्ना का नाम लिखने के बाद नौवीं शक्ति क्लेदिनी का अंकन क्लीं बीज के नीचे करना चाहिये। पुनः अष्टदलों के मध्य में पूर्वादि क्रम से अनंगरूपा, अनंगमदना, अनंगमन्मथा, अनंगकुसुमा, अनंगकुसुमातुरा, अनंगशिशिरा, अनंगमेखला तथा अनंगदीपिका के नाम अंकित करके षट्कोणों की सन्धियों में 'द्र द्र क्ल् ब्ल् तथा स में क्रमशः 'आ', शान्तिद्वय (ई ई), वामकर्ण (ऊ) तथा विसर्ग के संयोजन से निर्मित बिन्दु- युक्त बीजों (द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं तथा सः) के साथ क्रमशः शोषण, मोहन, सन्दीपन, तापन तथा मोदन नामक काम के पांच बाणों (द्रां शोषणाय नमः, द्रीं मोहनाय नमः, क्लीं सन्दीपनाय नमः, ब्लूं तापनाय नमः, सः मोदनाय नमः) लिखकर अन्त में दिक्पालों के नाम लिखे जाने चाहिये।

इन्द्रादि दिक्पालों के नाम चतुरस्र से आवृत इस यन्त्र के बाहर होने चाहिये। काम के पंच बाणों और अनंगरूपा आदि के नामों का अंकन अंगमन्त्रों और दिक्पालों के मध्य ही किया जाना चाहिये। ज्ञातव्य है कि यन्त्रों और अर्चना में सभी नाम चतुर्थ्यन्त लिखकर उनके आगे 'नमः' लिखा जाना चाहिये, जैसे—तापनाय नमः, अनंगायै नमः आदि।

मोहनी क्षोभणी त्रासी स्तम्भन्याकर्षणी तथा।
द्राविण्याह्लादिनी क्लिन्ना क्लेदिनी स्मरशक्तयः।।
आशान्तिद्वयवामश्रुतिसर्गान् द्रयुगकलबलैश्च ससैः।
शोषणमोहनसन्दीपनतापनमादनान् यजेत् क्रमशः।।
अनंगरूपा सानंगमदनाऽनंगमन्मथा।
अनंगकुसुमाऽनंगकुसुमातुरसंज्ञका।।
अनंगशिशिराऽनंगमेखलाऽनंगदीपिका।
अंगाशापालयोर्मध्ये बाणानंगावृतीर्यजेत्।।
प्रोक्त्वाथ कामदेवाय विद्महे तदनु पुष्पबाणाय ।
तथा धीमह्यन्ते तन्नोऽनंगः प्रचोदयाच्च गायत्री।। (वही, १८/६-६,११)

धनुष धारण किये, मणियों से जटित मुकुट आदि के धारण से अत्यन्त सुन्दर शरीर वाले रक्तकमल पर विराजमान कामदेव का ध्यान करना चाहिये।

अरुणमरुणवासो माल्यदामांगरागं स्वकरकलितपाशं सांकुशास्त्रेषुचापम्।
मणिमयमुकुटाद्यै र्दीप्तमाकल्पजातैररुणनलिनसंस्थं चिन्तयेदंगयोनिम्।।
(वही, १८/४)

जप एवं हवनादि

कामदेव की सिद्धि के लिये काममन्त्र 'क्लीं' का १२ लाख जप पूर्ण करके शर्करा, मधु तथा घृत से सिक्त १ लाख २० हजार पलाश-पुष्पों की आहुतियां देनी चाहिये।

तरणिलक्षममुं मनुमादरात् समभिजप्य हुनेच्च दशांशतः।
तदनु किंशुकजैः प्रसवैः शुभैस्त्रिमधुरार्द्रतरैर्निजसिद्धये। (वही, १८/५)

कामयन्त्र

काम की आवरण-पूजा कामदेव-यन्त्र का निर्माण कर उसमें की जानी चाहिये। कामयन्त्र के निर्माण के लिये पहले अष्टदल कमल का निर्माण कर उसकी कर्णिका के बीच ऊर्ध्व तथा अधोमुखी दो अग्निपुर अर्थात् एक षट्कोण बनाना चाहिये। फिर उस षट्कोण के बीच में साध्य के नाम के सहित कामबीज 'क्लीं' लिखना चाहिये। षट्कोण के छह अन्तरालों में पूर्वोक्त छह अंगमन्त्र लिखे जाने चाहिये। फिर, प्रत्येक कोण के बाहर 'कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि तन्नोऽनंगः प्रचोदयात्' १८ अक्षरों वाली इस कामगायत्री के तीन-तीन वर्ण लिखे जाने चाहिये। तदनन्तर दलाग्रों में से प्रत्येक दल में 'नमः कामदेवाय सर्वजन-प्रियाय सर्वजनसंमोहनाय ज्वल ज्वल प्रज्ज्वल सर्वजनस्य हृदयं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा' इस मालामन्त्र के छह-छह अक्षर लिखने चाहिये। तत्पश्चात् इस कामयन्त्र को चतुष्कोणीय भूपुर से आवृत कर इसके चारों कोणों में अनंग बीज 'क्लीं' लिखना चाहिये। इस प्रकार कामयन्त्र का निर्माण कर उल्लिखित स्थलों पर अनुचरों सहित कामदेव की षोडशोपचार पूजा करने वाला साधक सम्पूर्ण भुवनों को अपने वश में कर लेता है, मानवों का तो कहना ही क्या?

आलिख्यात्कर्णिकायामनलपुरयुगे मारबीजं ससाध्यम्
तद्रन्ध्रेष्वंगषट्कं बहिरपि गुणशो मारगायत्रिवर्णान्।
मालामन्त्रं दलाग्रेष्वपि गुहमुखशः पार्थिवास्त्रिष्वनंगम्
कुर्याद्यन्त्रं तदेतद्भुवनमपि वशे का कथा मानवेषु।। (वही, १८/१०)

नाम 'सृष्टि' है। वर्णमालिका के इक्यावन वर्णों में 'क' का अन्य नाम 'सृष्टि' भी है। तात्पर्य यह कि 'क्' को सृष्टि भी कहा जाता है। काम भी सृष्टि का देवता है। अतः 'क्' वर्ण काम का प्रतीक है। अवनि अर्थात् पृथ्वी का प्रतीक 'ल्' है और शान्ति 'ई' को कहते हैं। 'चन्द्रखण्ड' का तात्पर्य अनुस्वार से है। इस प्रकार क् ल् ई और ं मिलाने से निर्मित बीज 'क्लीं' कामदेव का मन्त्र है।

काममन्त्र के ऋष्यादि एवं न्यास

काममन्त्र के ऋषि सम्मोहन, छन्दस् गायत्री, देवता कामदेव, बीज कं तथा शक्ति ईं हैं। कामबीज क् अथवा क्ल में दीर्घ स्वरों का योग कर अंगन्यास किया जाता है।

ऋष्यादिकाश्च सम्मोहनगायत्रीमनोभुवः प्रोक्ताः।
बीजेन दीर्घभाजा विहितान्यंगान्यमुष्य जातियुजा। (वही, १८/३)

कं बीजम्। ईं शक्तिः। (इति विवरण)

उपर्युक्त निर्देशानुसार काममन्त्र की साधना में न्यासों का रूप निम्नांकित होगा—

ऋष्यादिन्यास

सम्मोहनाय ऋषये नमः (शिरसि), गायत्रीछन्दसे नमः (मुखे),
मनोभुवे देवतायै नमः (हृदये), कं बीजाय नमः (गुह्ये),
ईं शक्तये नमः (पादयोः)।

अंगन्यास

क्लां हृदयाय नमः, क्लीं शिरसे स्वाहा,
क्लूं शिखायै वषट्, क्लें कवचाय हुं,
क्लैं नेत्रत्रयाय वौषट्, क्लौं अस्त्राय फट् ।

अथवा

कां हृदयाय नमः, कीं शिरसे स्वाहा, कूं शिखायै वषट्,
कैं कवचाय हुं, कौं नेत्रत्रयाय वौषट्, कः अस्त्राय फट्।

कामदेव का ध्यान

काममन्त्र की साधना में अरुण वर्ण के वस्त्र, मालाएं, कटिबन्ध तथा अरुण वर्ण के ही अंगरागादि से सुशोभित, हाथों में पाश, अंकुश, बाण तथा इक्षुनिर्मित

(१) काम मन्त्र

भारतीय महर्षियों ने मानव-जीवन के धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष नामक चार लक्ष्यों में मोक्ष को सर्वोपरि मानने के बावजूद मोक्षप्राप्ति के मार्ग में काम को सबसे बड़ी बाधा माना था।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्।। (गीता, ३/३७)

लेकिन तान्त्रिकों ने काम को सीधे मोक्ष का साधन माना है—'श्रीसुन्दरी-साधनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।

परम्परागत मोक्षवादी साधकों के विरोध के बावजूद प्राचीन तान्त्रिकों ने कामोपासना की कई विधियों का आविष्कार किया था। परम्परावादी सनातनी संन्यासी होते हुए भी आचार्य शंकर ने मानव-जीवन में काम की महत्ता को माना है और अपनी सौन्दर्यलहरी एवं प्रपंचसारतन्त्र में कामोपासना का निरूपण किया है। शंकर के अनुसार काम वह शक्ति है, जिसने सृष्टि के आरम्भ से ही सुर, असुर, सिद्ध तथा मानवादि के मानस को मथित करके विश्व के विकास में अपना अनन्य योग दिया है।

कामोपासना के लिये काम के मन्त्र का उद्धार करते हुए उन्होंने बताया कि ओंकार की प्रथम कला अकार से उत्पन्न कलाओं में से प्रथम कला (क्), अवनि (ल्), शान्ति (ई) और चन्द्रखण्ड (अनुस्वार) मिल कर काममन्त्र (क्लीं) बनता है। इस काममन्त्र की साधना से समस्त धर्म, सुख, अर्थ तथा कीर्ति की प्राप्ति होती है।

अजकलाप्रथमावनिशान्तिभिर्युतसुधाकरखण्डविकाशिभिः।
निगदितो मनुरेष मनोभुवः सकलधर्मसुखार्थयशोवहः।।

(प्रपंचसारतन्त्र १८/२)

इस श्लोक में पठित 'अज कला' से तात्पर्य ओंकार की प्रथम मात्रा 'अकार' से उत्पन्न कला 'क्' से है। प्रपंचसारतन्त्र के तृतीय पटल में शंकर ने ओंकार की अकार, उकार, मकार, बिन्दु, नाद, शक्ति और शान्त नामक जिन सात कलाओं का उल्लेख किया है, इनमें से अकार से उत्पन्न प्रथम कला का

अन्वहमह्लामादौ गणपं सन्तर्पयेच्चतुःपूर्वम्।
चत्वारिंशद्वारं सशुद्धजलैरिन्दिराप्तये मन्त्री।।
समहागणपतियुक्तैर्विघ्नाद्यैर्दशभिराह्वयैर्दिनशः।
तर्पणपूजाहुतविधिरपि वांछितसिद्धिदायको भवति।।

(वही, १७/७४-७५)

गणपति का भावपूर्ण तर्पण

सूर्य के बिम्ब से परिस्रुत जल लेकर रजत सोपानों से उतरते मेघ की तरह आकर कमलदल पर विराजमान, लिपटी हुई कमललतायुक्त दांत वाले, पाश एवं अंकुशधारी, साध्य के सिर पर सूंड रखकर उसके छिद्रों से निकलने वाले अमृतमय जल से साध्य को सिंचित करते हुए गणपति का प्रतिदिन स्मरण करके अमृतमय जल से (वं बीज से जल का अमृतीकरण करके) उनका तर्पण करना चाहिये।

बिम्बादम्बुवत् समेत्य सवितुः सोपानकैः राजतैः-
स्तोयं तोयजविष्टरं धृतलतादन्तं सपाशांकुशम्।
नासां साध्यनृके निधाय सुधया तद्रन्ध्रनिर्यातया
सिंचन्तं पुनरन्वहं गणपतिं स्मृत्वाऽमृतैस्तर्पयेत्।। (वही, १७/७६)

जो व्यक्ति भगवान् गणपति के उक्त मन्त्रों का जप, अर्चना तथा हवनादि विधिपूर्वक सम्पन्न करते हैं, उन्हें इस संसार में महान् सिद्धियां प्राप्त होती हैं और पुत्र-मित्र-कलत्र सहित वे निर्विघ्न जीवन व्यतीत करते हैं।

प्राग्भाषितानपि विधीन् विधिवद् विदध्या-
न्मन्त्री विशेषविदथाऽन्वहमादरेण।
एकत्र वा गणपतौ मनुजाः स्वरुच्या
नामानुरूपमनुमेनममी भजन्तु।।
इति जपहुतपूजातर्पणैर्विघ्नराजं,
प्रभजति मनुजो यस्तस्य सिद्धिर्विशाला।
भवति सधनधान्यैः पुत्रमित्रादियुक्ता
विगतसकलविघ्ना विश्वसंवादिनी च।। (वही, ७७-७८)



क्षिप्रगणपति मन्त्र के प्रयोग

लक्ष्मी-वशीकरण

क्षिप्र गणपति मन्त्र द्वारा शर्करा, घृत तथा खीर के हवन से महालक्ष्मी की प्राप्ति होती है। केवल घी के हवन से गणपति इतने प्रसन्न होते हैं कि साधक को संसार को वश में कर लेने की शक्ति प्रदान कर देते हैं। ४० दिनों तक प्रतिदिन छिलके (जटा) सहित केवल एक नारियल का हवन करने से साधक इच्छित सिद्धि प्राप्त करता है।

पूज्याः सितघृतपायसहवनात्संजायते महालक्ष्मीः।
केवलघृतहुतमुदितो विघ्नः सद्यो वशीकरोति जगत्।।
एकमपि नारिकेलं सचर्मलोष्टेन्धनं हुनेन्मन्त्री।
दिनशश्चत्वारिंशद् दिनतः स तु वांछितार्थमभ्येति।।

(वही, १७/७०-७१)

गृहस्थी की सफलता

अभिलाषा की प्राप्ति के लिये चिउड़ा, सत्तू, लाजा तथा तिल का हवन करना चाहिये। मधुरत्रय से युक्त पुआ, नारियल, ईख, केला अथवा इन आठों (चिउड़ा, सतुआ, लावा, तिल, पुए, नारियल, ईख तथा केला) के हवन से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है।

प्रतिदिन घी-सहित अन्न के हवन से सद्गृहस्थों की गृहस्थी सफल रहती है।

सपृथुकशक्तुलाजातिलैरभीष्टार्थसिद्धये जुहुयात्।
सापूपनारिकेलेक्षुकदलीभिस्तथा समधुराभिः।।
अष्टभिरेतैर्विहितो होमः सर्वार्थसाधको भवति।
दिनशः सघृतान्नहुतो गृहयात्राप्रापको गृहस्थानाम्।।

(वही, १७/७२-७३)

लक्ष्मी की प्राप्ति

लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये प्रतिदिन प्रातःकाल ४४ बार शुद्ध जल से गणेश का तर्पण करना चाहिये। इसी प्रकार महागणपति, विघ्न, विनायक, वीर, शूर, वरद, इभवक्त्र, एकरद, लम्बोदर तथा क्षिप्र गणपति के इन दस नामों से तर्पण, पूजन तथा आहुति आदि विधियां सम्पन्न करने से साधक की समस्त मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं।

जप एवं हवनादि

क्षिप्र गणपति का १ लाख जप पूर्ण करके त्रिमधुर से युक्त तिल अथवा पूर्वोक्त अष्टद्रव्यों से १० हजार हवन करना चाहिये।

दीक्षायुक्तः प्रजपेल्लक्षं मनुमेनमथ तिलैरयुतम्।
त्रिमधुरयुक्तैर्जुहुयात्पूर्वोक्तैर्वाऽथवाऽष्टभिर्द्रव्यैः।। (वही, १७/६८)

आवरण-पूजा

शंकर के अनुसार क्षिप्र गणपति-साधना में अष्टदल कमल की कर्णिका में गं बीज लिखकर क्षिप्रगणपति की पूजा के अनन्तर प्रथम आवरण में अंगपूजा, द्वितीय में विघ्न, विनायक, वीर, शूर, वरद, इभवक्त्र, एकरद तथा लम्बोदर नामक आठ गणपतियों, तृतीय में अष्टमातरों के बाद चतुर्थ आवरण में लोकपालों की पूजा की जानी चाहिये।

विघ्नविनायकवीराः सशूरवरदेभवक्त्रैकरदाः।
लम्बोदरश्च मात्रंगावृत्त्योरन्तराथ लोकेशाः।। (वही, १७/६९)

शंकर के मन्तव्य को अधिक स्पष्ट करते हुए पद्मपाद ने बताया है कि उक्त अष्टदल कमल की कर्णिका में षड्गुणित यन्त्र बनाकर उसके मध्य त्रिकोण का आलेखन किया जाय। फिर कर्णिका और छहों कोणों में पहले की तरह ही बीज एवं साध्यादि के नाम और कर्म लिखे जायँ। फिर उन्हीं (षड्बीजों) से त्रिकोण में स्थित गणनायक बीज का वेष्टन किया जाय। तदनन्तर केसरों में १६ स्वर लिखे जायँ और पद्म के आठ दलों में पूर्वादि-आग्नेयादि क्रम से क्षिप्र गणपति मन्त्र के 'क्षिप्र, प्रप्र, प्रसा, साद, दना, नाय, यन, नमः' क्रम में दो-दो अक्षर लिखे जांय। पद्मपत्रों के बाहर 'एकदंष्ट्राय विद्महे वक्रमुण्डाय धीमहि तन्नो विघ्नः प्रचोदयात्' इस गणपति गायत्री के २४ अक्षरों से वेष्टित किया जाय।

"कर्णिकायां षट्कोणे बीजसाध्यादिके लिखेत्। तेनैव वेष्टयेत्। केसरेषु स्वरान् । क्षिप्रेति पूर्वदले प्रप्र इत्याग्नेये, प्रसा इति दक्षिणे इत्यादिक्रमेण लिखित्वा तद्बहिः गायत्रीव्यंजनादिकं पूर्ववल्लिखेत्। एकदंष्ट्राय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो विघ्नः प्रचोदयात् इति गायत्री। अस्मिन् यन्त्रे देवं पूजयेत्"। (वही, विवरण)

नवनीते नवे लिख्यादनुलोमविलोमकम्।
उदरस्थितसाध्याख्यं तद्बीजं तत्प्रवेष्टितम्।
समीरणं प्रतिष्ठाप्य जप्त्वाऽष्टशतसंख्यकम्।
तूष्णीं प्रभक्षयेदेतत् सप्तरात्राद्वशीकरम्।। (वही, १७/६२-६३)

(३) क्षिप्र गणपति मन्त्र

आरम्भ में गणपति बीज 'गं', तदनन्तर अन्त्यवर्ण 'क्ष' पर स्थित सूक्ष्म 'इ' (क्षि), तदनन्तर लोहित 'प' पर स्थित अग्नि 'र' (प्र) क्षिप्र, फिर से वही 'प्र', फिर 'साद' और इसके अन्त में 'नाय' ये दो वर्ण 'प्रसादनाय' फिर 'नति 'नमः' अर्थात् **'गं क्षिप्रप्रसादनाय नमः'** यह क्षिप्र गणपति का मन्त्र है।

अन्त्यासनोऽथ सूक्ष्मो लोहितगोऽग्निः पुनः स एव स्यात्।
सादान्ते नायार्णौ नत्यन्तो मनुरयं स्वबीजाद्यः।।

(वही, १७/६४)

क्षिप्र गणपति मन्त्र के ऋषि तथा देवता तो पहले वाले (गणक और विघ्नराज) ही हैं, लेकिन छन्दस् विराट् है। पद्मपाद के अनुसार इस क्षिप्र मन्त्र का बीज 'गं' तथा शक्ति 'नमः' है। पूर्व की भांति दीर्घ स्वर एवं बिन्दुयुक्त 'गं' बीज से इसमें षडंगन्यास किया जाता है।

ऋषिदेवते तु पूर्वे छन्दस्तु विराडमुष्य सम्प्रोक्तम्।
बीजेन दीर्घभाजा कथितोऽंगविधिः क्रमेण बिन्दुमता।। (वही, १७/६५)

क्षिप्र गणपति का ध्यान

समस्त प्रकार की सम्पदाओं की प्राप्ति के लिये अरुण शरीर वाले, गजवदन, तीन नेत्रों वाले, शिर पर चन्द्र धारण किये, प्रकाशमान आभूषणों से सुसज्जित, बड़े पेट वाले, सुन्दर, छोटे-छोटे कर-कमलों और चरणों वाले, हाथों में पाश, अंकुश, कल्पलता, अपना एक दांत तथा बीजपूर लिये पद्मासन पर विराजमान गणपति का ध्यान करना चाहिये।

धृतपाशांकुशकल्पलतिकास्वरदश्च बीजापूरयुतः।
शशिशकलकलितमौलिस्त्रिलोचनोऽरुणतनुश्च गजवदनः।।
भासुरभूषणदीप्तो बृहदुदरः पद्मविष्टरो ललितः,
ध्येयोऽनायतदोःपत्सरसिरुहः सम्पदे सदा मनुजैः ।।

(वही, १७/६६-६७)

चतुर्थी तिथि को इस गणेशमन्त्र से नारियल का हवन तुरन्त लक्ष्मी की प्राप्ति कराता है, तो घृतयुक्त उक्त हवियों के हवन से सभी कार्यों की सिद्धि होती है।

चतुर्थ्यां नारिकेलैस्तु होमः सद्यः श्रियावहः।
हविषा घृतसिक्तेन सर्वकार्यार्थदो हुतः।। (वही, १७/५८)

संवाद-सिद्धि

दधि से संलिप्त लोण (नमक) का चार दिनों तक रात में चार-चार सौ हवन करने से अभिलाषा की पूर्ति होती है तथा विभिन्न विरोधी पक्षों के साथ तुरन्त संवाद की स्थिति होती है।

दध्यक्तलोणमुद्राभिर्हुनेन्निशि चतुर्दिनम्।
इष्टार्थसिद्ध्यै मतिमान् सद्यः संवादसिद्धये।। (वही, १७/५९)

अभिलषित की प्राप्ति

रक्तवर्णी शरीर, अंगराग, वस्त्र और पुष्प, माथे पर चन्द्रमा, तीन नेत्र, छोट-छोटे हाथ-पैर, सूंड में बीजपूर, हाथों में पाश, अंकुश, दांत तथा वरदमुद्रा, हस्तिमुख, सर्पों के आभूषणों से आभूषित, देवगण से प्रणम्य तथा पद्मासन पर विराजमान दिघ्नराज गणपति के ध्यान के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल जल का अमृतीकरण करके उस सुधामय जल से गणपति की भावित या प्रत्यक्ष मूर्ति के मस्तक पर ४४ बार अथवा चार सौ ४४ बार तर्पण करने से ४० दिनों के भीतर ही अभिलषित प्राप्ति होती है।

ईदृशं गणपं ध्यात्वा मन्त्री तोयैः सुधामयैः।
दिनादौ दिनशस्तस्य तर्पयेन्मस्तके सुधीः।।
चत्वारिंशच्चतुःपूर्वं तत्पूर्वं वा चतुःशतम्।
चत्वारिंशद्दिनात्तस्य कांक्षिता सिद्धिरेष्यति।। (वही, १७/६०-६१)

एक अन्य वशीकरण प्रयोग

षट्कोण यन्त्र के मध्य ताजा निकाला गया मक्खन चुपड़ कर उस पर अनुलोम-विलोम अर्थात् परस्पर विमुख या उलटे रूप में गणपति बीज 'गं' लिख कर दोनों बीजों के बिन्दु के मध्य साध्य का नाम लिखे। फिर प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र से उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करके मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करके उक्त नवनीत को चुपचाप निगल ले। सात दिनों तक लगातार इस प्रयोग से साध्य वश में हो जाता है।

विघ्नराज तथा धूम्रवर्ण, वृत्त के बाहर अष्टमातरों और इनके बाहर इन्द्रादि १० लोकपालों का आवाहन कर गणाधिप के इस पूरे परिवार को यथोक्त स्थान देकर उनकी षोडशोपचार पूजा सम्पन्न करनी चाहिये।

पीठे तीव्रादिभिः पद्मकर्णिकायां विनायकम्।
आवाह्य पूजयेद्दिक्षु चतुर्ष्वापि यजेत् पुनः।।
गणाधिपं गणेशंच गणनायकमेव च।
गणक्रीडं कर्णिकायामंगैः किंजल्कसंस्थितैः।।
वक्रतुण्डैकदन्ष्ट्रौश्च महोदरगजाननौ।
लम्बोदराख्यविकटौ विघ्नराड्धूम्रवर्णकौ।।
समर्चयेन्मातृवर्गं बाह्ये लोकेश्वरानपि।
इति प्रोक्ता संग्रहेण गाणेशीयसमर्चना।। (वही, १७/५०-५४)

गणपतिमन्त्र के विभिन्न प्रयोग

सर्ववश्य गणेश-साधना

गणपति-अर्चना के विभिन्न मन्त्रों और उनकी साधना के निरूपण के अनन्तर विभिन्न उद्देश्यों को लेकर उन मन्त्रों की प्रयोग-विधि का उल्लेख भी आचार्य शंकर ने किया है। उनके अनुसार सभी कामनाओं की पूर्ति एवं वशीकरण के लिये शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से चतुर्थीपर्यन्त चार दिनों तक प्रतिदिन सत्तू, लाजा, तिल तथा नारियल की समन्वित हवि से चार-चार सौ हवन करने से चार दिनों के भीतर ही सर्ववशीकरण की शक्ति और सर्वकामनाओं की प्राप्ति होती है। तिल और चावलों के हवन से लक्ष्मी और कीर्ति की प्राप्ति होती है।

नारिकेलान्वितैर्मन्त्री शक्तुलाजतिलैर्हुनेत्।
आरभ्याच्छां प्रतिपदं चतुर्थ्यन्तं चतुःशतम्।।
दिनशः सर्ववश्यं स्यात्सर्वकामप्रदं नृणाम्।
तिलतण्डुलकैर्लक्ष्मीवश्यकृच्च यशस्करम्।। (वही, १७/५५-५६)

कन्या या वर तथा लक्ष्म्यादि की प्राप्ति के लिये

मधुरत्रय से युक्त लाजा का सात दिनों तक प्रतिदिन चार सौ हवन करने से वर को उपयुक्त कन्या और कन्या को उपयुक्त वर की प्राप्ति होती है।

मधुरत्रयसिक्ताभिर्लाजाभिः सप्तवासरम्।
जुहुयात् कन्यकार्थी वा कन्यका वा वरार्थिनी।। (वही, १७/५७)

षडंगन्यास

गां हृदयाय नमः, गीं शिरसे स्वाहा, गूं शिखायै वषट्,
गैं कवचाय हुम्, गौं नेत्रत्रयाय वौषट्, गः अस्त्राय फट्।

गणपति का ध्यान

जिनका वर्ण लाल है, जो लाल रंग के अंगराग, वस्त्र और पुष्प धारण किये हुए हैं, जिनकी तोंद निकली हुई है, जिनके माथे पर चन्द्रमा सुशोभित हो रहा है, जिनके तीन नेत्र हैं, जिनके हाथ-पैर छोटे-छोटे हैं, जिन्होंने अपनी सूंड में बीजपूर ले रखा है, जिनके हाथों में पाश, अंकुश, दांत तथा वरदमुद्रा है, जिनका मुख हस्ती की तरह है, जिनके आभूषण सर्पों के हैं, जिन्हें देवगण प्रणाम कर रहे हैं, पद्मासन पर विराजमान ऐसे विघ्नराज का ध्यान करते हुए प्रार्थना करनी चाहिये कि वे आप और हम सबके लिये कल्याणकारी हों।

रक्तो रक्तांगरागांशुककुसुमयुतस्तुन्दिलश्चन्द्रमौलि-
नेत्रैर्युक्तस्त्रिभिर्वामनकरचरणो बीजपूरात्तनासः।
हस्ताग्राक्लिप्तपाशांकुशरदवरदो नागवक्त्रोहिभूषो
देवः पद्मासनो वो भवतु सुरनतो भूतये विघ्नराजः।। (वही, १७/४६)

हवन

गणनाथ के ध्यान के पश्चात् दीक्षित साधक को चाहिये कि वह 'ओं गं नमः' मन्त्र का ४ लाख जप करे और जप पूर्ण हो जाने पर पूर्वोक्त अष्टद्रव्यों से जप का दशांश ४० हजार हवन करे।

दीक्षितः प्रजपेल्लक्षचतुष्कं प्राक्समीरितैः।
जुहुयादष्टभिर्द्रव्यैर्यथापूर्वं दशांशतः।। (वही, १७/५०)

आवरण-पूजा

चतुरक्षर गणपति मन्त्र-साधना की हवन-क्रिया समाप्त कर लेने के बाद गणपति की आवरण-पूजा सम्पन्न करनी चाहिये। आवरण-पूजा के लिये अष्टदल कमल की कर्णिका में भगवान् विनायक को आवाहित कर कर्णिका में ही तीव्रा, ज्वालिनी, नन्दा, भोगदा, कामरूपिणी, उग्रा, तेजोवती, नित्या (सत्या) तथा विघ्ननाशिनी (मध्य में) नामक नौ शक्तियों, कर्णिका की चारों दिशाओं में गणाधिप, गणेश, गणनायक तथा गणक्रीड, केशरों में अंगदेवताओं, कमलदलों में पूर्वादि क्रम में ही क्रमशः वक्रतुण्ड, एकदन्त, महोदर, गजानन, लम्बोदर, विकट,

स्तम्भनकर पृथ्वी बीज

गणपति मन्त्र में आये हुए स्तम्भनकर पृथ्वी बीज का उद्धार करते हुए आचार्य शंकर ने बताया है कि पहले 'स्मृति (ग्) फिर उसकी पीठ पर (आगे) पिनाकी (लकार), और बिन्दु (अनुस्वार) सहित अनुग्रह (औ) अर्थात् 'ग्लौं' पृथ्वीं का मन्त्र है और यह मन्त्र सबसे प्रभावशाली स्तम्भन करने वाला है।

स्मृतिपीठः पिनाकी सानुग्रहो बिन्दुसंयुतः।
बीजमेतत् भुवः प्रोक्तं स्तम्भनकरं परम्।। (वही, १७/४६)

(२) गणपति का चतुरक्षर मन्त्र

भगवान् शंकराचार्य ने गणपति के एक अन्य मन्त्र का भी उद्घाटन किया है। उनके अनुसार आरम्भ में तार 'ओं', फिर बिन्दुयुक्त 'अनुस्वार सहित' विपरीत क्रम में च वर्ण से चतुर्थ वर्ण 'ग' अर्थात् 'गं', तदनन्तर हृद् 'नमः' अन्त वाला **'ओं गं नमः'** विघ्नराज गणपति का मन्त्र है। यह मन्त्र गणपति की पूजा-अर्चना में प्रयुक्त होता है। हवन में इस मन्त्र में प्रयुक्त 'नमः' के स्थान पर 'द्विठ' अर्थात् 'स्वाहा' (ओं गं स्वाहा) का प्रयोग किया जाता है।

च-तुरीयो विलोमेन तारादिर्बिन्दुसंयुतः।
वैघ्नो मन्त्रो हृदन्तोऽर्चाविधौ होमे द्विठान्तकः।। (वही, १७/४७)

गणपति मन्त्र के न्यास

'ओं गं नमः' गणपति के इस मन्त्र के ऋषि गणक, छन्दस् निवृद्, देवता विघ्नराज, बीज अं तथा शक्ति गं है।इस मन्त्र की साधना में अंगन्यास मूल बीज 'ग' को दण्ड अनुस्वारयुक्त करके दीर्घ स्वरों में किया जाता है।

गणकः स्यादृषिश्छन्दो निवृद्विघ्नोऽस्य देवता।
बीजेन दीर्घयुक्तेन दण्डिनाऽङ्गक्रियेरिताः।। (वही, १७/४८)

इस निर्देश के अनुसार इस गणपति मन्त्र के न्यास निम्न होंगे—

ऋष्यादिन्यास

गणकर्षये नमः (शिरसि), निवृच्छन्दसे नमः (मुखे),
विघ्नराजदेवतायै नमः (हृदि), अं बीजाय नमः (गुह्ये),
गं बीजाय नमः (पादयोः)।

का चार-चार बार एवं सपत्नीक आमोदादि गणपतियों तथा निधियुगल में से प्रत्येक का चार-चार बाद तर्पण करने का उल्लेख किया है। इस प्रकार तर्पणों का कुल योग (आसनमन्त्र से गणपति के लिये ४, बीजादिक रमा-रमेशादि के ४०, आमोदादि गणपतियों तथा निधिद्वय के लिये ६४बार) १०८ होता है।

मन्त्रेणाऽथ पुराऽमुनैव चतुरावृत्त्या समातर्प्य च
श्रीशक्तिस्मरभूविनायकरतीर्नाम्नैव बीजादिकम्।
आमोदादिनिधिद्वयं च सचतुःपूर्वं चतुर्वारकम्
मन्त्री तर्पणतत्परोऽभिलषितं सम्प्राप्नुयात्मण्डलात्।। (वही १७/३१)

शंकर के अनुसार तर्पण मन्त्रों का स्वरूप निम्न होगा—

सर्वशक्तिकमलासनाय नमः

१. गं गणपतिं तर्पयामि (४ बार)
२. श्रीं रमारमेशौ तर्पयामि (८ बार)
३. ह्रीं उमावृषांकौ तर्पयामि (८ बार)
४. क्लीं रतिपुष्पबाणौ तर्पयामि (८ बार)
५. ग्लौं महीवराहौ तर्पयामि (८ बार)
६. गं पुष्टिविनायकौ तर्पयामि (८ बार)
७. सिद्ध्यामोदौ तर्पयामि (८ बार)
८. समृद्धिप्रमोदौ तर्पयामि (८ बार)
९. कान्तिसुमुखौ तर्पयामि (८ बार)
१०. मदनावतीदुर्मुखौ तर्पयामि (८ बार)
११. मदद्रवाविघ्नकर्तारौ तर्पयामि (८ बार)
१२. द्राविण्यविघ्नकर्तारौ तर्पयामि (८ बार)
१३. वसुधाराशंखौ तर्पयामि (८ बार)
१४. वसुमतीपद्मौ तर्पयामि (८ बार)

कुल १०८ तर्पण

गणपति की तर्पण-विधि के निरूपण के पश्चात् आचार्य शंकर ने गजों की अभिलाषा रखने वाले नृपतियों द्वारा की जाने वाली गणपति-अर्चना का विस्तार (१७/३२-४५) से वर्णन किया है। वर्तमान जीवन-पद्धति में गजलिप्सा के लिये कोई अवकाश नहीं रह गया है, अतः इस प्रसंग में कुछ न लिखना ही उपयुक्त है।

वशीकरणादि के लिये

राजा को वश में करने के लिये कमलपुष्पों से, राजपत्नी के वश के लिये रक्तकमलों से, मन्त्रियों को वश में करने के लिये कैरवों (श्वेतकमल) से, ब्राह्मणादि मुख्य वर्णों को वश में करने के लिये पीपल, वट, उदुम्बर आदि समिधाओं से, वधुओं को वश में करने के लिये पीठी से निर्मित पुतली आदि से, अनावृष्टि (अति वर्षा रोकने के लिये) के लिये नमक से, अच्छी वर्षा के लिये वेतस् लता की समिधा से इस मन्त्र द्वारा हवन करना चाहिये।

पद्मैर्भूपतिमुत्पलैर्नृपवधूं तन्मन्त्रिणः कैरवै-
रश्वत्थादिसमिद्भिरग्रजमुखान् वर्णान् वधूः पिष्टजैः।
पुत्तल्यादिभिरन्यहं च वशयेज्जुहृवन्ननावृष्ट्ये,
लोणैर्वृष्टिसमुद्भये च जुहुयान्मन्त्री पुनर्वेतसैः।। (वही, १७/३०)

गणपति का चतुरावृत्ति तर्पण

जप, हवन एवं आवरण-पूजन के अतिरिक्त गणपति-साधना में प्रयुक्त तर्पण-विधि का निरूपण करते हुए आचार्य शंकर एवं पद्मपाद ने बताया है कि जल में खड़े होकर वहां गणपति पीठ की कल्पना करके उस पर उपर्युक्त आसन मन्त्र से गणपति का आवाहन कर उनकी षोडशोपचार पूजा सम्पन्न करके नैवेद्य देते समय पीठमन्त्र से एक-एक बार तर्पण कर मूलमन्त्र से 'चतुःपूर्वक चतुर्वार' अर्थात् एक साथ ८ बार तर्पण करना चाहिये।

फिर विभूति मन्त्र से देवी का चार बार तर्पण करना चाहिये। इसके बाद श्री, शक्ति, स्मर, भू तथा विनायक बीज (गं) का आदि में प्रयोग करते हुए उनके नामों से ही चार-चार बार तर्पण करना चाहिये। तदनन्तर आमोदादि छह विनायकों एवं शंख तथा पद्मनिधि युगलों में से प्रत्येक का चार-चार बार तर्पण करना चाहिये। अन्त में मूलमन्त्र से गणपति का पुनः चार बार तर्पण करना चाहिये। इस प्रकार इस साधना में कुल १२४ तर्पण किये जा सकते हैं। पद्मपाद ने इस सन्दर्भ में चार सौ चालीस अथवा चार सौ छिहत्तर बार वाली तर्पण-विधि का भी उल्लेख किया है*।

जहां तक आचार्य शंकर का प्रश्न है, उन्होंने स्पष्ट रूप से आसनमन्त्र से गणपति का चार बार, स्वबीजादिक रमा-रमेश एवं पुष्टि-विनायक में से प्रत्येक

* द्रष्टव्य—वही, १७/३१ पर विवरण।

क्षीरद्रुमों (अश्वथ, वट, उदुम्बर तथा प्लक्ष) की त्वचा अर्थात् छाल पकाकर बनाये गये क्वाथ से भरा कलश स्थापित करे। इसके बाद पूर्वादि मुख्य दिशाओं वाले चार दलों में क्रमशः बिल्व, रोहिण, पिप्पल तथा फलिनी (प्रियंगु) की छाल को अलग-अलग उबाल कर बनाये गये क्वाथ से भरे कलश रख कर उनमें आमोदादि गणपति मिथुनों को आवाहित कर उनकी षोडशोपचार पूजा, जप तथा हवनादि की क्रिया सम्पन्न करे। इस प्रकार जप, हवन तथा पूजन से मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर विभिन्न प्रयोजनों की सिद्धि के लिये विशेष जपादि एवं अष्टद्रव्यों से अपेक्षित संख्या में हवन करना चाहिये। दीक्षा सम्पन्न हो जाने के बाद गुरु को चाहिये कि वह इन कलश जलों में भरे जल से शिष्य को अभिसिंचित करे।

मध्ये च दिग्दलानां चतुष्टयाग्रे प्रविन्यसेत्कलशान्।
क्षीरद्रुबिल्वरोहिणपिप्पलफलिनीत्वगुद्भवैः क्वाथैः।
सम्पूरयेद् यथावद् क्रमात् समावाह्य गणपतिमिथुनानि।
अभ्यर्च्य चोपचारैर्हुत्वा विधिवत्पुनः समभिषिंचेत्।।
इति जपहुतार्चनाद्यैः सिद्धो मन्त्रेण कर्म कुर्वीत।
अष्टद्रव्यैर्वाऽन्यैर्हुनेच्च तत्तत्प्रयोजनाऽवाप्त्यै।। (वही, १७/२६-२८)

विभिन्न फलों की प्राप्ति के लिये जपादि की विधियां

स्वर्णादि-प्राप्ति हेतु

गणपति मन्त्र का साधक यदि स्वर्ण प्राप्त करना चाहता है तो मधु से, गोधन के लिये गाय के दुग्ध से, लक्ष्मीप्राप्ति के लिये घृत से, यश की प्राप्ति के लिये शर्करा से, समस्त प्रकार की समृद्धि प्राप्ति के लिये दही से, अन्न के लिये अन्न से, द्रव्यप्राप्ति के लिये तिल और चावलों से, पति की प्राप्ति के लिये लाजा (खील) से, वस्त्र की प्राप्ति के लिये कुसुम्भ और कनेर के पुष्पों से हवन करना चाहिये।

स्वर्णाप्त्यै मधुना च गव्यपयसा गोसिद्धये सर्पिषा,
लक्ष्म्यै शर्करया जुहोतु यशसे दध्ना च सर्वर्द्धये।
अन्नैरन्नसमृद्धये च सतिलैर्द्रव्याप्तये तण्डुलै-
र्लाजाभिः पतये कुसुम्भकुसुमैः साश्वारिभिर्वाससे।। (वही, १७/२९)

चाहिये। इसके बाद त्रिकोण के मध्य ॐ और ओंकार के बीच में गणपति बीज गं लिखकर इसके चारों ओर गणपति की तीव्रा, ज्वालिनी, नन्दा, भोगदा, कामरूपिणी, उग्रा, तेजोवती, नित्या तथा विघ्ननाशिनी नामक नौ शक्तियों का आवाहन और उनके नाम के अन्त में 'सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' लगाकर उन्हें आसन पर आसीन करके षोडशोपचार अर्चना करनी चाहिये। इसके बाद पंचावरण पूजा सम्पन्न करनी चाहिये। इस सन्दर्भ में आठों कमलदलों के बीच वाले प्रथम आवरण में क्रमशः रमा-रमेश, गिरिजा-वृषांक, रति-काम तथा मही-वराह मिथुनों (जोड़ों) की, द्वितीय आवरण में आमोद-सिद्धि आदि छह गणपति-मिथुनों एवं शंखादि दो निधि-युगलों की, तृतीय आवरण में अंगमन्त्र देवताओं की, चतुर्थ आवरण में ब्रह्माणी आदि अष्टमातरों एवं दलों के बाहर अन्तिम पंचम आवरण में इन्द्रादि दिक्पालों की पूजा करनी चाहिये।

प्राक्प्रोक्तपद्मपीठे सशक्तिके सासिकामनौ विधिना।।
तीव्रा ज्वालिनी नन्दा सभोगदा कामरूपिणी चोग्रा।
तेजोवती च स (नि)त्या सम्प्रोक्ता विघ्ननाशिनी नवमी।।
सर्वयुतं शक्तिपदं प्रोक्त्वा कमलासनाय नमः इति च।
आसनमन्त्रः प्रोक्तो नवशक्त्यन्ते समर्चयेदमुना।।
आद्या मिथुनैरावृतिरपरा सनिधिभिरपि च षड्विघ्नैः।
अंगैरन्या मातृभिरपरेन्द्राद्यैश्च पंचमी पूज्या।। (वही, १७/२१-२४)

पद्मपाद के अनुसार षट्कोण के भीतर स्थित त्रिकोण के मध्य में ॐ लिखकर इस ओंकार के भीतर साध्य के नाम के साथ 'गं' बीज लिखकर उसे श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं बीजों से वेष्टित करके षट्कोण के छहों कोणों में पूर्वादि क्रम से 'ओं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं' छह बीज लिखने चाहिये। छहों कोणों के अन्तरालों में छह अंगमन्त्र, आठ कमल दलों में गणपति मन्त्र के आठ पद, षट्कोण के बाहर तीन वृत्त बनाकर प्रथम वृत्त में मातृकाएँ, द्वितीय में पाशबीज 'आं' तथा तृतीय में अंकुश बीज 'क्रों' लिखकर उसके बाहर दो भूपुर बनाकर उनके भीतर-बाहर 'आं ह्रीं' लिखना चाहिये।

दीक्षाविधि

गणपति मन्त्र के साधक की दीक्षा के लिये साधक को चाहिये कि वह गुरु की अनुज्ञा प्राप्त करके गणपति पीठ पर निर्मित अष्टदलकमल यन्त्र के मध्य में

अग्रास्नावामोदः प्रमोदसुमुखौ च तमभितोऽस्त्रियुगे।
पृष्ठे च दुर्मुखाख्यस्त्वमुमभितो विघ्नाविघ्नकर्तारौ।।
सव्यापसव्यभागे तस्य ध्येयौ च शंखपद्मनिधी।
मौक्तिकमाणिक्याभौ वर्षन्तौ धारया धनानि सदा।।
सिद्धिसमृद्धी चान्या कान्तिर्मदनावती मदद्रवया।
द्राविणिवसुधाराख्ये वसुमत्यपि विघ्ननिधिप्रमदाः।। (वही, १७/१२-१७)

"सिद्धि समृद्धि कान्ति मदनावती मदद्रवा द्राविणीभिः सहिता इत्यर्थः। वसुधारावसुमत्यौ निध्योः शक्तिः"। (वही, विवरण)

जप एवं हवन

महागणपति के ध्यान के पश्चात् मन्त्रसिद्धि के लिये साधक को चाहिये कि वह गुरु से विधिपूर्वक दीक्षा लेकर ४ लाख ४४ हजार जप तथा प्रतिदिन ४४ सौ तर्पण करे। जप पूर्ण होने के बाद मोदक, पृथुक (चिउड़ा), लाजा, सत्तू, गन्ना, नारियल, तिल तथा कदली फल से निर्मित अष्टद्रव्य-हवि से मन्त्र का दशांश अर्थात् ४४ हजार हवन करना चाहिये। इस प्रकार साधना पूर्ण होने के बाद भी प्रतिदिन गणपति मन्त्र का जप तथा अर्चना नियमित रूप से करते रहना चाहिये।

ध्यात्वैवं विघ्नपतिं चत्वारिंशत्सहस्रसंयुक्तम्।
प्रजपेल्लक्षचतुष्कं चतुःसहस्रं च दीक्षितो मन्त्री।।
दिनमनु सचत्वारिंशत्संख्यं सन्तर्पयेद्विघ्नम्।
उक्तजपान्ते मन्त्री जुहुयाच्च दशांशतोऽष्टभिर्द्रव्यैः।।
मोदकपृथुकसलाजाः सशक्तवः सेक्षुनारिकेलतिलाः।
कदलीफलसहितानीत्यष्ट द्रव्याणि सम्प्रदिष्टानि।।
अनुदिनमर्चितव्यो जपता मनुमपि च मन्त्रिणा गणपः।
(वही, १७/१८-२१)

आवरण-पूजा

गणपति मन्त्र की सिद्धि के लिये उक्त निर्धारित संख्या में जप तथा हवन पूर्ण कर लेने के पश्चात् आवरण-पूजा सम्पन्न करनी चाहिये। आचार्य शंकर तथा पद्मपाद ने गणपति की आवरण-पूजा के लिये पूजापीठ के निर्माण की विधि का जो उल्लेख किया है, उसके अनुसार पहले अष्टदल कमल का निर्माण करके उसकी कर्णिका में षट्कोण तथा षट्कोण के भीतर त्रिकोण निर्मित करना

करपुष्करधृतकलशस्रुतमणिमुक्ताप्रवालवर्षेण।
अविरतधारां विकिरन् परितः साधकसमग्रसम्पत्त्यै,
मदजललोलुपमधुकरमालां निजकर्णतालताडनया।
निर्वासयन् मुहुर्मुहुरमरैरसुरैश्च सेवितो युगपत्।। (वही, १७/५-११)

गणपति का एक अन्य ध्यान

गणपति की साधना में उनके एक विशिष्ट रूप के ध्यान का वर्णन भी शंकर ने किया है। इसके अनुसार षट्कोण के अन्तर्वर्ती त्रिकोण में स्थित गणपति के सामने एक बिल्ववृक्ष के दोनों ओर कमलपुष्पों को हाथ में लिये लक्ष्मी तथा चक्र एवं गदाधारी विष्णु, दाहिनी ओर वटवृक्ष के नीचे पाश तथा अंकुशधारिणी शिवा तथा परशु एवं त्रिशूलधारी शिव, पीछे की ओर पीपल के वृक्ष के नीचे कमल पुष्पयुग्म धारण किये रति और ईख से निर्मित धनुष-बाण धारण किये कामदेव, बायीं ओर प्रियंगु के वृक्ष के नीचे शुक पक्षी एवं धान की बाली धारण किये पृथ्वी तथा गदा एवं चक्र धारण किये भगवान् वराह से संसेवित गणपति का ध्यान किया जाना चाहिये।

अग्रेऽथबिल्वमभितश्च रमारमेशौ तद्दक्षिणे वटजुषौ गिरिजावृषांकौ ।
पृष्ठेऽथ पिप्पलजुषौ रतिपुष्पबाणौ सव्ये प्रियंगुमभितश्च महीवराहौ।।
ध्येयौ च पद्मयुगचक्रदरैः पुरोक्तौ पाशांकुशाख्यपरशुत्रिशिखैरथाऽन्यौ।।
युग्मोत्पलेक्षुमयचापशरैस्तृतीया वन्त्यौ शुकाह्वकलमाग्रगदारथांगैः।।
(वही, १७/१२-१३)

इसके साथ ही षट्कोण के भीतर त्रिकोणरूपी गणपति यन्त्र के बाहरी छहों कोणों के दोनों ओर पूर्वादि क्रम से रक्तवर्ण वाले, मद से विह्वल आमोद, प्रमोद, सुमुख, दुर्मुख, विघ्नकर्ता तथा अविघ्नकर्ता नामक छह गणपतियों के साथ क्रमशः सिद्धि, समृद्धि, कान्ति, मदनावती, मदद्रवा तथा द्राविणी नामक उनकी प्रमदाओं तथा गणपति के वाम तथा दक्षिण की ओर धन-धान्य की वर्षा कर रहे, मुक्ता एवं माणिक्य के वर्ण वाले शंख तथा पद्म नामक निधियों और उनकी प्रियाओं वसुधारा तथा वसुमती से घिरे हुए महागणपति का ध्यान करना चाहिये। पद्मपाद के अनुसार वसुधारा तथा वसुमती शंख तथा पक्ष नामक निधियों की शक्तियां हैं।

ध्येयाः षट्कोणास्त्रिषु परितः पाशांकुशाभयेष्टकराः।
सप्रमदा गणपतयो रक्ताकाराः प्रभिन्नमदविवशाः।।

मन्दार आदि कल्पवृक्षों की छाया से शीतल हो रही चारों दिशाओं वाले, अन्तःभाग में बालसूर्य की मन्द-मन्द उष्मा से परिपूर्ण सुरम्य स्थान में, इक्षुरस से भरे हुए सागर की लहरों से उठने वाले कणों को वहन करने वाली एवं कल्पवृक्ष के पुष्पों पर मंडराने वाले भ्रमर-समूह के पखनों से संचरित हो रही वायु की लहरियों से संसेवित, पद्मराग एवं प्रवालादि रत्नों के फल, पुष्प तथा पल्लव वाले, छहों ऋतुओं द्वारा एक साथ संसेवित विशाल कल्पवृक्ष के नीचे, सिंह के मुख के आकार के पायों वाले अकारादि लिपमय पादपीठ पर षट्कोण के मध्य निर्मित त्रिकोणाकार आसन पर विराजमान, एकदन्त, विशाल उदर, दश भुजाओं वाले, अरुणवर्णी, हस्तिमुख, दायें हाथों में बीजापूर, गदा, इक्षु-निर्मित धनुष, रुजा (शूल), चक्र तथा बाएं हाथों में चक्र, कमल, पाश, उत्पल, धान्य-वल्लरी धारण किये, अपने एक दांत पर रत्ननिर्मित कलश धारण किये, द्युतिमान आभूषणों से सुशोभित, एक हाथ में कमल धारण की हुई अपनी प्रियतमा से आलिंगित, विश्व की उत्पत्ति, विनाश तथा पालन करने वाले एवं साधकों को अमित धन-धान्य, तथा सुखादि प्रदान करने वाले, अपने करकमल के रत्नकलश से साधकों के चारों ओर पद्मरागादि मणि, मुक्ता तथा प्रवाल आदि की निरन्तर वर्षा कर रहे, गण्डस्थल से प्रवाहित हो रहे मदजल के लोभ से चारों ओर मंडरा रहे भ्रमरसमूह को अपने कानों की ताली से हटा रहे, देवताओं तथा असुरों द्वारा एक साथ ही पूजित हो रहे भगवान् गणपति का ध्यान करना चाहिये।

मन्दाराद्यैः कल्पकवृक्षविशेषैर्विशिष्टतरफलप्रदैः।
शिशिरितचतुराशेऽन्तर्बालातपचन्द्रिकाकुले च तले।।
ऐक्षवजलनिधिलहरीकणजालकवाहिना च गन्धवहेन,
संसेविते च सुरतरुसुमनःश्रितमधुपपक्षचलनपरेण।।
रत्नमये मणिवज्रप्रवालफलपुष्पपल्लवस्य सतः।
महतोऽधःस्तादृतुभिर्युगपत्संसेवितस्य कल्पतरोः।।
सिंहमुखपादपीठगलिपिमयपद्मे त्रिषट्कोणोल्लसिते।
आसीनस्त्वेकरदो वृहदुदरो दशभुजोऽरुणो गजवदनः।।
बीजापूरगदेक्षुकार्मुकरुजाचक्राब्जपाशोत्पल-
व्रीह्यग्रस्वविषाणरत्नकलशप्रोद्यत्कराम्भोरुहः।
ध्येयो वल्लभया च पद्मकरयाश्लिष्टो ज्वलद्भूषया
विश्वोत्पत्तिविनाशसंस्थितिकरो विघ्नो विशिष्टार्थदः।।

क्लीं ग्लौं गं) लगाकर दीर्घस्वरों से युक्त गणपति के मूल बीज (गं) से करना चाहिये।

ऋषिरपि गणकोऽस्य स्याच्छन्दो निवृदन्विता च गायत्री।
सकलसुरासुरवन्दितचरणयुगो देवता गणाधिपतिः।।
प्रणवादिबीजपीठस्थितेन दीर्घस्वरान्वितेन सता।
अंगानि षड्विदध्यान्मन्त्री विघ्नेश्वरस्य बीजेन।। (वही, १७/३-४)

गं बीजं ह्रीं शक्तिरिति विवरणे।

शंकर तथा पद्मपाद के इस उल्लेखानुसार गणपति मन्त्र के विनियोगसहित न्यासादि विधान निम्नवत् होंगे—

विनियोग

ओं अस्य गणपतिमन्त्रस्य गणकः ऋषिः,
निवृद्गायत्रीछन्दः, गणाधिपतिः देवता, गं बीजम्,
ह्रीं शक्तिः अखिलविभूतिप्राप्त्यर्थं जपे विनियोग।

ऋष्यादिन्यासः

ओं गणकाय ऋषये नमः (शिरसि),
ओं निवृद्गायत्रीछन्दसे नमः (मुखे),
ओं गणाधिपतिदेवतायै नमः (हृदि),
ओं गं बीजाय नमः (गुह्ये),
ओं ह्रीं शक्तये नमः (पादयोः) ।

षडंगन्यासः

ओं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गां हृदयाय नमः,
ओं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गीं शिरसे स्वाहा,
ओं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गूं शिखायै वषट्,
ओं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गैं कवचाय हुम्,
ओं श्रीं ह्रीं क्ली ग्लौं गं गौं नेत्रत्रयाय वौषट्,
ओं ओं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गः अस्त्राय फट्।

गणपति का ध्यान

न्यासादि विधि सम्पन्न कर लेने के पश्चात् विशेष फल प्रदान करने वाले

महागणपति मन्त्र-साधना

(१) गणपति मन्त्र

विघ्नेश्वर गणपति देवाधिदेव हैं। इनकी उपासना-अर्चना के बिना कोई भी कार्य सफल नहीं हो सकता। समस्त शुभ कर्मों में गणेश का स्मरण और पूजा सबसे पहले की जाती है। प्रार्थना, अर्चना और उपासना से गणपति अतिशीघ्र प्रसन्न होकर साधक की समस्त मनोकामनाओं की पूर्ति करते हैं। गणनायक के अनेक रूप हैं और विभिन्न अभिलाषाओं की प्राप्ति के लिये उनके निश्चित-निर्धारित रूपों की साधना की जाती है।

आचार्य शंकर ने अपने 'प्रपंचसारतन्त्र' में गणराज के कई रूपों के मन्त्रों के उद्घाटन के साथ ही उनके जप, हवन तथा आवरण-पूजा और इनसे प्राप्त होने वाली विभिन्न सिद्धियों का उल्लेख विस्तार से किया है।

शंकर के अनुसार गणपति मन्त्र में क्रमशः 'तार' (ओम्), दण्डी (अनुस्वार युक्त), श्री बीज (श्रीं), शक्तिबीज (ह्रीं), मारबीज (क्लीं), अवनिबीज (ग्लौं) और गणपति बीज (गं), तत्पश्चात् चतुर्थी विभक्ति में विघ्न अर्थात् 'गणपति' (गण-पतये), फिर 'वरवरद', तदनन्तर 'सर्व' से युक्त 'जनं' (सर्वजनं), तब 'वशं' और 'आनय', फिर 'मे' और अन्त में द्विठ अर्थात् 'स्वाहा' शब्द आते हैं। इस प्रकार 'ओं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा'। विघ्नराज गणपति का मन्त्र समस्त ऐश्वर्यों को प्रदान करने में कल्पवृक्ष के समान है।

तारः श्रीशक्तिमारावनिगणपतिबीजानि दण्डीनि चोक्त्वा
पश्चाद्विघ्नं चतुर्थ्या वरवरदमथो सर्वयुक्तं जनं च।
आभाष्य क्ष्वेळमेन्तं वशमिति च तथैवाऽऽनयेति द्विठान्तः
प्रोक्तोऽयं गाणपत्यो मनुरखिलविभूतिप्रदः कल्पशाखी।।

(प्रपंचसारतन्त्र, १७/२)

ऋष्यादि तथा षडंगन्यास

इस गणपति मन्त्र के ऋषि गणक, छन्दस् निवृद्गायत्री, देवता गणाधिपति है। पद्मपाद के अनुसार इस मन्त्र का बीज गं और शक्ति ह्रीं है। इस गणपति मन्त्र की साधना में षडंगन्यास आरम्भ में 'ओं' तथा मन्त्र के पांच बीज (श्रीं ह्रीं

अकाल मृत्यु से बचाव

छाती तक गहरे जल में खड़े होकर सूर्य को देखते हुए इस अग्निमन्त्र का प्रतिदिन तीन हजार जप करने से वर्षभर के भीतर ही साधक समस्त पापों, अकाल मृत्यु तथा रोगों से मुक्त होकर दीर्घायु तथा सुख प्राप्त करता है।

पयसि हृदयदघ्ने भानुमालोक्य तिष्ठन्
प्रजपतु च सहस्रं नित्यशो मन्त्रमेनम्।
स दुरितमपमृत्युं रोगजातं च हित्वा
व्रजति नियतसौख्यं वत्सराद्दीर्घमायुः।। (वही, १६/६३)

पाचन क्रिया में वृद्धि

अग्निमन्त्र के १०८ बार जप से अभिमन्त्रित जल पीने से उदर की अग्नि उद्दीप्त होती है। इससे उदराग्नि गरिष्ठ भोज्य पदार्थों को भी पचा देती है।

मनुनाऽमुनाऽष्टशतजप्तमथ प्रपिबेज्जलं ज्वलनदीपनकृत्।
गुरुभुक्त्यप्युदरगं त्वमुना परिजापितं पचति कुक्ष्यनलः।।
(वही, १६/६४)

निर्धनता से मुक्ति

प्रतिदिन त्रिमधुर से सिक्त लाल कमलों का छह मास तक प्रतिदिन अग्निमन्त्र से एक हजार हवन करने से असीम लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। इसके अलावा प्रत्येक प्रतिपदा को एक वर्ष तक लाल कमलों से हवन करने वाला नितान्त निर्धन साधक भी लक्ष्मीवान् बन जाता है।

हुनेदरुणपंकजैस्त्रिमधुराप्लुतैर्नित्यशः
सहस्रमृतुमासतः पृथुतरा रमा जायते।
प्रतिप्रतिपदं हुनेदिति बुधोऽथवा संवत्सरं
विनष्टवसुरप्यसौ भवति चेन्दिरामन्दिरम्।। (वही, १६/६५)



महालक्ष्मी की प्राप्ति

प्रत्येक प्रतिपदा को त्रिमधुर से सिक्त सौ लाल कमलों का छह मास तक इस मन्त्र से हवन करने से शीघ्र ही महालक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

अरुणैः पुनरुत्पलैः शतं यो मधुराक्तैः प्रजुहोति वत्सरार्द्धम्।
मनुनाऽप्यमुना शताधिकं स प्रलभेन्मंक्षु महत्तरां च लक्ष्मीम्।।

(वही, १६/५६)

लक्ष्मी की प्राप्ति

प्रत्येक प्रतिपदा को मधुरत्रय से सिक्त जाती, पलाश, कनेर, जवा, विल्व, व्याघात, केसर तथा कुरण्टक के पुष्पों में से प्रत्येक का अलग-अलग सौ-सौ हवन करने से साधक एक वर्ष के अन्दर ही लक्ष्मी की प्राप्ति करता है।

जातीपलाशकरवीरजवाख्यविल्व व्याघातकेसरकुरण्डभवैः प्रसूनैः।
एकैकशः शतमथो मधुरत्रयाक्तैर्जुह्वन् प्रतिप्रतिपदं श्रियमेति वर्षात्।।

(वही, १६/६०)

विषम ज्वर से मुक्ति

अग्नि की विधिवत् पूजा करके अमृता (गिलोय) लता के छोटे-छोटे टुकड़ों को दूध में भिगोकर सात दिनों तक प्रतिदिन तीन हजार हवन करने से चातुर्थिक आदि ज्वर (तीन या चार दिनों के अन्तर से आने वाले ज्वर) समाप्त हो जाते हैं।

खण्डैश्च सप्तदिनमप्यमृतालतोत्थैर्मन्त्री हुनेद्गुणसहस्रमथो पयोक्तैः।
सम्यक् समर्च्य दहनं त्वचिरेण जन्तुश्चातुर्थिकादिविषमज्वरतो वियुंज्यात्।।

(वही, १६/६१)

ज्वर एवं ग्रह बाधा से मुक्ति

दूधवाले वृक्षों की छाल से पकाये गये जल को कलश में भरकर उस कलश में अग्निदेव का विधिवत् आवाहन-पूजनादि सम्पन्न करने के बाद उक्त अग्निमन्त्र का तीन हजार जप करके कलश के जल को अभिमन्त्रित करना चाहिये। इस अभिमन्त्रित जल से अभिसिंचन करने से ज्वरादि रोग तथा ग्रह-बाधा दूर हो जाती है।

क्षीरद्रुमत्वगभिपक्वजलैर्यथावत्सम्पूर्य कुम्भमभिपूज्य कृशानुमत्र।
जप्त्वा मनुं पुनरमुं त्रिसहस्रमात्रं सेकक्रिया ज्वरहरी ग्रहवैकृतघ्नी।।

(वही, १६/६२)

Scanned by CamScanner

नामक धान-विशेष के श्वेत चावलों की खीर बनाकर उससे १०८ हवन करके शेष खीर का एक बड़ा पिण्ड बनाकर उसे आज्य (घृत) से अच्छी प्रकार लिप्त करके अग्निमन्त्र का जप करते हुए उस पिण्ड को हवनकुण्ड में आहुत कर देना चाहिये। नियमपूर्वक ऐसा करते रहने से वर्षभर के भीतर ही साधक को अपार लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

शालीतण्डुलकैः सितैश्च पयसा हुत्वा हविः पावकं
गन्धाद्यैः परिपूज्य तेन हविषा संवर्त्य पिण्डं महत्।
आज्यालोडितमेकमेव जुहुयाज्जप्त्वा मनुं मन्त्रवित्
साष्टोर्ध्वं प्रतिपद्यथो शतमतः स्यादिन्दिरा वत्सरात्।। (वही, १६/५४)

लक्ष्मी-प्राप्ति

प्रत्येक प्रतिपदा को अंगुष्ठ, मध्यमा तथा अनामिका के अग्रभागों को मिला मृगमुद्रा बनाकर अन्न, घी तथा दूधनिर्मित हवि का १०८ हवन करने वाले साधक को एक वर्ष के अन्दर निश्चित रूप से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

अष्टोत्तरं शतमथो मृगमुद्रयैव मन्त्री प्रतिप्रतिपदं जुहुयात्पयोऽन्नैः।
साज्यैर्भवेन्न खलु तत्र विचारणीयं संवत्सरात् स च निकेतनमिन्दिरायाः।।
(वही, १६/५५)

अकूत लक्ष्मी की प्राप्ति

शुद्धीकृत शाली का प्रतिदिन १०८ हवन करने से अथवा किसी प्रतिपदा से आरम्भ करके प्रतिमास घृत से दस हजार हवन करने वाले साधक को छह मास के भीतर ही अकूत लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

अष्टोर्ध्वं शतं हविषा मन्त्रेणाऽनेन नित्यशो जुहुयात्।
षण्मासादाढ्यतमो भवति नरो नाऽत्र सन्देहः।। (वही, १६/५६)

महालक्ष्मी की प्राप्ति

प्रतिपदा से आरम्भ कर प्रति मास की प्रतिपदा को जो व्यक्ति अग्निमन्त्र से घृत का हवन करता है, वह निःसन्देह छह मास के भीतर ही महान् लक्ष्मीवान् बन जाता है।

आज्यैरयुतं जुहुयात्प्रतिमासं प्रतिपदं समारभ्य।
अतिमहती लक्ष्मीः स्यात्तस्य षण्मासतो न सन्देहः।। (वही, १६/५८)

से उत्पन्न, अश्व की आकृति वाले, अपने शरीर के छिद्रों से निरन्तर धन-धान्य और रत्नों की वर्षा करने वाले, ज्वालाओं के समूह से अपने रोम-रोम के छिद्रों को पल्लवित करने वाले, अपने भक्तों की आपदाओं को नष्ट करने वाले तथा धर्म, सुख, अर्थ एवं मोक्षप्रदाता भगवान् अग्नि का ध्यान तथा उनकी सर्वतोभावेन वन्दना करनी चाहिये।

हेमाश्वत्थसुरद्रुमोदरभुवो निर्यान्तमश्वाकृतिं
वर्षन्तं धनधान्यरत्ननिचयान् रंध्रैः स्वकैः सन्ततम्।
ज्वालापल्लवितस्वरोमविवरं भक्तार्तिसम्भेदनं
वन्दे धर्मसुखार्थमोक्षफलदं दिव्याकृतिं पावकम्।। (वही, १६/५०)

जप-हवन एवं आवरण-पूजा

अग्निदेव के इस मन्त्र की सिद्धि के लिये मन्त्र का १ लाख जप पूर्ण करके घृतमिश्रित खीर से दस हजार हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् अग्निपीठ का निर्माण करके इसके मध्य अग्निदेव का आवाहन करके पहले आवरण में अंगपूजा, द्वितीय में अग्नि की आठ मूर्तियों तथा तृतीय आवरण में इन्द्रादि दिक्पालों की पुष्पगन्धादि से षोडशोपचार पूजा प्रतिदिन करनी चाहिये।

जप्याच्च लक्षमानं मन्त्री संदीक्षितोऽथ मनुमेनम्।
जुहुयाच्च तदवसाने घृतसिक्तैः पायसैर्दशांशेन।।
अंगैर्हुतवहमूर्तिभिराशेशैः संयजेत्तदस्त्रैश्च।
पावकमिति मन्त्रितमो गन्धाद्यैरनुदिनं तमुपहारैः।। (वही, १६/५१-५२)

अग्निमन्त्र के प्रयोग एवं फल

प्रचण्ड तेजस् के लिये नृसिंह बीज 'क्ष्रौं' यश के लिये अजपा 'हंसः', लक्ष्मी के लिये 'श्रीं' और रोग से मुक्ति तथा आयुष्य के लिये दुर्गा बीज 'दुं' से युक्त अग्निमन्त्र का सूर्योदय के समय प्रतिदिन १ हजार जप करना चाहिये।

दिनावतारे मनुमेनमन्वहं जपेत्सहस्रं नियमेन मन्त्रवित्।
अधृष्यतायै यशसे श्रिये रुजां विमुक्तये युक्तमतिस्तथाऽऽयुषे।।
(वही, १६/५३)

इन्दिरा लक्ष्मी-प्राप्ति

प्रत्येक प्रतिपदा तिथि को सूर्योदय के समय गन्ध-पुष्पादि से अग्निदेव की अर्चना करके उक्त अग्निमन्त्र का १ हजार जप करना चाहिये। फिर शाली

(४) अग्निदेव का तृतीय मन्त्र

आचार्य शंकर ने अग्नि के तृतीय मन्त्र का उद्घाटन करते हुए बताया है कि 'उत् पूर्वक तिष्ठ (उत्तिष्ठ) शब्द के पश्चात् 'पुरुषहरि' पद, तत्पश्चात् 'पिंगल' पद बोलकर 'लोहिताक्ष', फिर क्रम से 'देहि मे दान्', पुनः 'दापय' तथा चन्द्रयुग (स्वाहा) अर्थात् 'उत्तिष्ठ पुरुष हरि पिंगल लोहिताक्ष देहि मे दान् दापय स्वाहा' यह चौबीस अक्षरों वाला तृतीय अग्निमन्त्र है। यह मन्त्र साधकों की इच्छाएं पूर्ण करने में कल्पवृक्ष के समान है।

उत्पूर्वात्तिष्ठशब्दात् पुरुषहरिपदे पिंगलान्ते निगद्य
प्रोच्याऽथो लोहिताक्षं पुनरपि च वदेत् देहिमेदान् क्रमेण।
भूयो ब्रूयात्तथा दापयशशियुगलार्णांश्चतुर्विंशदर्णः
प्रोक्तो मन्त्रोऽखिलेष्टप्रतरणसुरसद्माङ्घ्रिपः स्यात्कृशानोः।।

(वही, १६/४८)

इस अग्निमन्त्र के ऋषि भृगु, छन्दस् गायत्री, देवता अग्नि, बीज ओं तथा शक्ति स्वाहा हैं। मन्त्र के चौबीस अक्षरों को ऋतु (छह), भूत (पांच), दिशा (चार), त्रि (तीन), करण (चार) तथा युगल (दो) अक्षरों से अंगविधि सम्पन्न की जाती है।

ऋष्याद्याः स्युः पूर्ववदृतुभूतदिशात्रिकरणयुगलार्णैः।
मूलमनुनाऽथ कुर्यादंगानि क्रमश एव मन्त्रितमः।। (वही,१६/४६)

इस अग्निमन्त्र के न्यास निम्न रूप से किये जाते हैं—

ऋष्यादिन्यास

शिरसि–भृगवे ऋषये नमः, मुखे–गायत्री छन्दसे नमः,
हृदि–अग्निदेवतायै नमः, गुह्ये—ओं बीजाय नमः,
पादयोः–स्वाहा शक्तये नमः।

षडंगन्यास

उत्तिष्ठ पुरुष हृदयाय नमः, हरिपिंगल शिरसे स्वाहा,
लोहिताक्ष शिखायै वषट्, देहि मे कवचाय हुं,
दान् दापय नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्।

अग्निदेव का ध्यान

न्यासादि सम्पन्न कर लेने के पश्चात् स्वर्ण, अश्वत्थ, कल्पवृक्ष और उदर

प्रतिदिन हवन करना चाहिये। फिर एकादशी तिथि को ब्राह्मणों को यथाशक्ति भोजन, वस्त्र, दक्षिणादि से प्रसन्न करके गुरु-दक्षिणा देनी चाहिये। गुरुदक्षिणा में स्वर्ण, वस्त्राभूषणादि, सतर्णक ('सद्योजातस्तु तर्णकः'—अमरकोश) अर्थात् नवजात बछड़ीसहित लाल रंग की गाय दी जानी चाहिये।

इस प्रकार साधना परिपूर्ण करने के बाद भी साधक को चाहिये कि वह उक्त विधि के अनुसार १०८ आहुतियां प्रतिदिन अग्निदेव को समर्पित करे। इस प्रकार अग्नि की उपासना करने वाले साधक को धन-धान्य, स्वर्ण से परिपूर्ण धरती सहित पुत्र-पौत्र-मित्रादि सहित समस्त समृद्धि शीघ्र ही प्राप्त होती है।

परेऽह्नि प्रतिपद्यैतैर्जुहुयादर्चितेऽनले।।
विधिनेति विधातुरग्निपूजामचिरेणैव भवेन्महासमृद्धिः।
धनधान्यसुवर्णरत्नपूर्णा धरणी गोवृषपुत्रमित्रकीर्णा।। (वही, १६/४५)

अग्निमन्त्र के प्रयोग

महासमृद्धि की प्राप्ति

महासमृद्धि की प्राप्ति के लिये चाहिये कि साधक अग्निमन्त्र का एक वर्ष तक प्रतिदिन एक हजार जप करके १०० हवन करे। इस विधि से अग्नि की उपासना करने वाला साधक एक वर्ष के भीतर महासमृद्धि प्राप्त कर लेता है।

प्रजपेदथवा सहस्रसंख्यं दिनशो वत्सरतो भवेन्महाश्रीः।।
जुहुयात्प्रतिवासरं शताख्यं हविषाऽब्देन भवेन्महासमृद्धिः।।
(वही, १६/४६)

यश और लक्ष्मी की प्राप्ति

अग्निदेव की प्रसन्नता और समृद्धि-प्राप्ति के लिये अग्निदेव के मण्डप पर निर्मित हवनकुण्ड में दही, घी तथा मधु से सिक्त पलाश के पुष्पों का प्रतिदिन १०८ हवन करना चाहिये। इसी प्रकार करवीर (कनेर) के पुष्पों का भी हवन किया जा सकता है। छह मास तक कपिला गाय के घृत का प्रतिदिन आठ हजार हवन करने वाला साधक राज्यलक्ष्मी-तुल्य लक्ष्मी तथा महान् कीर्ति प्राप्त करता है।

पालाशैः कुसुमैर्हुनेद्दधिघृतक्षौद्राप्लुतैर्मण्डलम्।
नित्यं साष्टशतै स्तथैव करवीरोत्थैः समृद्ध्यै हुनेत्।
षण्मासं कपिलाघृतेन दिनशोऽप्यष्टौ सहस्रं तथा।
होतव्यं लभते स राज्यसदृशीं लक्ष्मीं यशो वा महत्।। (वही, १६/४७)

अक्षस्रक् (अक्षमाला), स्रुवा एवं स्रुक् (यज्ञाग्नि में घृत डालने के लिये काष्ठनिर्मित चमचाकार पात्रविशेष), अभय तथा वरदमुद्रा धारण करने वाले स्वर्णमाला से अलंकृत अग्निदेव का ध्यान करना चाहिये।

अथवा शक्तिस्वस्तिकदर्भाक्षस्रक्स्रुवस्रुगभयवरान्।
दधदमिताकल्पो वो वसुरवतात् कनकमालिकालसितः।। (वही, १६/३८)

अग्निदेव की विशेष साधना-विधि

अग्निदेव के पच्चीस अक्षरों वाले इस मन्त्र से अग्नि की साधना करने वाले साधक को चाहिये कि वह वर्ष के आरम्भ अर्थात् चैत्रमास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि को गुरु से दीक्षा लेकर, उपवास धारण कर उक्त मन्त्र का बारह हजार जप करे। इसके बाद अग्निपीठ पर अग्निदेव का आवाहन करके प्रथम आवरण में अंगपूजा, द्वितीय में मूर्तिपूजा, तृतीय में लोकपालों और उनके अस्त्रों की षोडशोपचार अर्चना करे। आवरण-पूजा सम्पन्न करके अगले दिन अमावस्या को हवन के लिये प्रयुक्त की जाने वाली पूर्वोक्त समिधाओं एवं घृत का परि-शोधन करना चाहिये। इसके बाद ब्राह्मणों को भोजन कराके स्वयं भोजन कर स्वस्थ होकर उस रात विश्राम करके अगले दिन शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को यथाविधि अग्नि प्रज्वलित कर विधिवत् उनकी अर्चना करे।

वत्सरादेश्चतुर्दश्यां दिनादावेव दीक्षितः।
मन्त्रं द्वादशसाहस्रं जपेत्सम्यगुपोषितः।।
अर्चयेदंगमूर्तीश्च लोकेशकुलिशादिभिः।
समिदाज्यममायां हि परिशोध्य यथाविधिः।।
ब्राह्मणान् भोजयित्वाऽथ स्वयं भुक्त्वा समाहितः।।
परेऽह्नि प्रतिपद्यैतैर्जुहुयादर्चितेऽनले।।
मन्त्री वटसमिद्व्रीहितिलराजीहविर्घृतैः।
अष्टोत्तरशतावृत्या हुनेदेकैकशः क्रमात्।।
दशाहमेवं हुत्वा तु पुनरेकादशीतिथौ।
शक्त्या प्रतर्प्य विप्रांश्च प्रदद्याद् गुरुदक्षिणाम् ।।
सुवर्णवासोधान्यानि शोणा गांच सतर्णकाम्।
पुनरष्टोत्तरं मन्त्री सहस्रं दिनशो जपेत्।। (वही, १६/३९-४४)

अग्नि की अर्चना सम्पन्न करने के बाद वट की समिधा, व्रीहि, तिल, राई, हवि और घी का क्रमशः एक-एक करके १०८ बार प्रतिपदा से दशमी तिथि तक

महासिद्धि की प्राप्ति

पलाश, सरसिज, विल्व, रक्त कमल, दूधवाले बड़ आदि वृक्षों, खैर, व्याधातवृक्ष, दूर्वा, शमी, विकंकत, आदि की समिधाओं का अग्निमन्त्र से प्रतिदिन अथवा प्रत्येक प्रतिपदा को हवन करने से साधक को महासिद्धि प्राप्त होती है ।

पालाशैः पुनरिध्मकैः सरसिजैर्वैल्वैश्च रक्तोत्पलै-
र्दुग्धैर्वीरुहसम्भवैः खदिरजैर्व्याघातवृक्षोद्भवैः।।
दूर्वाख्यैश्च शमीविकंकतभवैरष्टोर्ध्वयुक्तं शतं,
नित्यं वा जुहुयात् प्रतिप्रतिपदं मन्त्री महासिद्धये।। (वही, १६/३५)

अग्नि का द्वितीय मन्त्र

पहले तार (ओं), फिर व्याहृतियां (भूर्भुवःस्वः), तब क्रमशः 'अग्ने जातवेद इहावह सर्वकर्माणि साधय' फिर अग्निवधू (स्वाहा) अर्थात् 'ओं भू र्भुवः स्वः अग्ने जातवेद इहावह सर्वकर्माणि साधय स्वाहा' यह अग्निदेव का दूसरा मन्त्र है।

तारव्याहृतयश्चाऽग्ने जातवेद इहावह।
सर्वकर्माणि चेत्युक्त्वा साधयाऽग्निवधूर्मनुः।। (वही, १६/३६)

इस अग्निमन्त्र के ऋष्यादि पूर्वोक्त ही हैं, लेकिन जहां तक अंगों का प्रश्न है, इस मन्त्र के पच्चीस अक्षरों को क्रमशः भूत (पांच), ऋतु (छह), करण (चार), इन्द्रिय (पांच), गुण (तीन) तथा युग्म (दो) में विभाजित कर अंगपूजा सम्पन्न करनी चाहिये।

ऋष्याद्याः पूर्वोक्ता मन्त्रेणांऽगानि वर्णभिन्नेन।
भूतर्तुकरणसेन्द्रियगुणयुग्मैर्मन्त्रवर्णकैस्तदपि।। (वही, १६/३७)

इस उल्लेख के अनुसार षडंगन्यास निम्नवत् होंगे—

ओं भूः भुवः स्वः हृदयाय नमः,
अग्ने जातवेद शिरसे स्वाहा,
इहावह शिखायै वषट्,
सर्वकर्माणि कवचाय हुम्,
साधय नेत्रत्रयाय वौषट्,
स्वाहा अस्त्राय फट्।

अग्निदेव का ध्यान

अग्निदेव के उपर्युक्त मन्त्र की साधना में हाथों में शक्ति, स्वस्तिक, दर्भ,

पीठे तनूनपातः प्रागंगैरष्टमूर्तिभिस्तदनु।
भूयश्च शतमखाद्यैर्विधिनाऽथ हिरण्यरेतसं प्रयजेत्।।
(वही, १६/२६-३०)

अग्निमन्त्र के विविध प्रयोग

लक्ष्मी की प्राप्ति

जो साधक प्रतिपदा तिथि से आरम्भ कर प्रतिदिन अग्नि के इस मन्त्र को बोलता हुआ घृत से १०८ हवन करता है, उसे ४ मास के भीतर ही अत्यधिक लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

आज्यैरष्टोर्ध्वशतं प्रतिपदमारम्य मन्त्रविद्दिनशः।
चतुरो मासान् जुहुयात् लक्ष्मीरत्यायता भवेत्तस्य।। (वही, १६/३१)

पशुधन एवं धान्यादि की प्राप्ति

जो व्यक्ति प्रतिदिन शुद्ध शाली का अग्निमन्त्र से १०८ हवन करता है, १ वर्ष के भीतर ही उसका घर गो-महिष तथा धन-धान्यादि से परिपूर्ण बन जाता है।

शुद्धाभिः शालीभिर्दिनमनुजुहुयादथाऽब्दमात्रेण।
शालीशालि गृहं स्याद्गोमहिष्याद्यैश्च संकुलं तस्य।। (वही, १६/३२)

अन्न-समृद्धि

घृतसिक्त शुद्ध अन्न से प्रज्वलित अग्नि में हवन करने वाले साधक का घर एक वर्ष के भीतर ही अन्नादि समृद्धि से परिपूर्ण हो जाता है।

शुद्धान्नैघृतसिक्तैः प्रतिदिनमग्नौ समेधिते जुहुयात्।
अन्नसमृद्धिर्महती स्यादस्य निकेतनेऽब्दमात्रेण।। (वही, १६/३३)

महालक्ष्मी की प्राप्ति

शुद्ध तिल से छह मास तक हवन करने वाला साधक महालक्ष्मी प्राप्त करता है तथा कह्लार, कुमुद तथा जातीपुष्प का उक्त संख्या में हवन करने से केवल छह महीने में सिद्धि प्राप्त होती है।

जुहुयात्तिलैः सुशुद्धैः षण्मासाज्जायते महालक्ष्मीः।
कुमुदैः सकह्लारैरपि जातीकुसुमैश्च जायते सिद्धिः।। (वही, १६/३४)

धारण करने वाले, तीन मुखों वाले, मुकुट आदि विभिन्न आभूषणधारी भगवान् अग्नि का ध्यान करना चाहिये।

शक्तिस्वस्तिकपाशान् सांकुशवरदाभयान् दधत्रिमुखः।
मुकुटादिविविधभूषोऽवताच्चिरं पावकः प्रसन्नो वः।। (वही, १६/२७)

जप एवं हवन

'ओं भूर्भुवः स्वः स्वाहा' इस अग्निमन्त्र की सिद्धि के लिये इसका छह लाख जप किया जाना चाहिये। जप के पूर्ण हो जाने पर कुण्ड का निर्माण कर घृत, दूध, घी, काली साठी के चावलों से निर्मित खीर का इस मन्त्र से साठ हजार हवन करना चाहिये।

जपेदिमं मनुमृतुलक्षमादराद्दशांशतः प्रतिजुहुयात् पयोऽन्धसा।
ससर्पिषाऽप्यसिततरैश्च षाष्टिकैः समर्चयेदथ विधिवद् विभावसुम्।।
(वही, १६/२८)

आवरण-पूजा

आवरण-पूजा के लिये पहले एक षट्कोण बना कर उसके भीतर एक त्रिकोण बनाना चाहिये। फिर षट्कोण के बाहर आठ दलों का कमल चक्र बनाकर उसके बाहर चतुष्कोणात्मक भूपुर बनाना चाहिये। इसे अग्निपीठ कहा जाता है।

वह्निकोणषडस्राष्टदलभूमन्दिरात्मकम्।
मध्ये तारपुटां मायां लिखित्वा पीठमर्चयेत्।।
(मन्त्रमहोदधि, १/११३-११४)

इस अग्निपीठ पर त्रिकोण के मध्य अग्निदेव, कर्णिका के भीतर ही अग्नि की पीता, श्वेता, अरुणा, कृष्णा, धूम्रा, तीव्रा, विस्फुलिंगिनी, रुचिरा तथा ज्वालिनी नामक नौ शक्तियों की पूजा की जानी चाहिये। फिर कर्णिका के बाहर प्रथम आवरण में अंगमन्त्र, द्वितीय आवरण में जातवेदस्, सप्तजिह्व, हव्यवाहन, अश्वोदरज, वैश्वानर, कौमारतेजस्, विश्वमुख तथा देवमुख नामक अग्नि की अष्टमूर्तियों और इसके बाहर तृतीय आवरण में इन्द्रादि दिक्पालों की अर्चना करनी चाहिये।

पीता श्वेताऽरुणा कृष्णा धूम्रा तीव्रा स्फुलिंगिनी।
रुचिरा ज्वालिनी चेति कृशानोर्नवशक्तयः।।

इस अग्निमन्त्र के ऋषि भृगु, छन्दस् गायत्री, देवता अग्नि, बीज ओं और शक्ति स्वाहा हैं। अग्निमन्त्र में षडंगन्यास प्रपंचसारतन्त्र के सामान्य पटल (६/८१-८२) में उल्लिखित विधि के अनुसार अथवा इस अग्निमन्त्र के वर्णों को दो-दो बार बोलकर किया जाता है।

वियतो दशमोऽर्धिसर्गयुक्तो भुवसर्गौ भृगुलान्तषोडशाचः।
हुतभुग्दयिता ध्रुवादिकोऽयं मनुरुक्तः सुसमृद्धिदः कृशानोः।।
भृगुरपि तदृषिश्छन्दो गायत्री देवताऽग्निरुद्दिष्टः।
प्राक्प्रोक्तान्यंगानि द्विशः समुक्तैश्च मन्त्रवाक्यैर्वा।।

(प्रपंचसारतन्त्र, १६/२५-२६)

उपर्युक्त उल्लेख के अनुसार अग्निमन्त्र की साधना में न्यासों का रूप निम्नांकित होगा—

भृगवे ऋषये नमः (शिरसि), गायत्रीछन्दसे नमः (मुखे),
अग्निदेवतायै नमः (हृदये), ओं बीजाय नमः (गुह्ये),
स्वाहा शक्तये नमः (पादयोः)

षडंगन्यास

(६/८१ के अनुसार)

सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः, स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा,
उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्, धूम्रव्यापिने कवचाय हुम्,
सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्, धनुर्धराय अस्त्राय फट्।

अथवा

ओं भू र्भुवः स्वः स्वाहा हृदयाय नमः,
ओं भू र्भुवः स्वः स्वाहा शिरसे स्वाहा,
ओं भू र्भुवः स्वः स्वाहा शिखायै वषट्,
ओं भू र्भुवः स्वः स्वाहा कवचाय हुं,
ओं भू र्भुवः स्वः स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्,
ओं भू र्भुवः स्वः स्वाहा अस्त्राय फट्।

अग्निदेव का ध्यान

अग्निमन्त्र की साधना में शक्ति, स्वस्तिक, पाश, वर तथा अभय मुद्रा

संस्थाप्य राजतं तत्र चषकं परिपूरयेत् ।
गव्येन शुद्धपयसा स्पृष्टपात्रो जपेन्मनुम् ।।
अष्टोत्तरशतावृत्या दद्यादर्घ्यमथेन्दवे।
विद्यामन्त्रेण मन्त्रज्ञो यथावत्तद्गतात्मना।।
विद्येविद्यापदे प्रोक्त्वा मालिनीति च चन्द्रिणि।
चन्द्रमुख्यग्निजायां च निगदेत्प्रणवादिकम्।। (वही, १६/१६-२०)

अभिलषित वर-कन्या एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति

जो व्यक्ति प्रत्येक पूर्णिमा की रात में अपने अभिलषित लक्ष्य का चिन्तन करके चन्द्रमन्त्र से अभिमन्त्रित उक्त अर्घ्य विद्यामन्त्र से चन्द्रमा को छह मास तक निरन्तर अर्पित करता है, उसे अपने लक्ष्य में सिद्धि मिलती है। सोम को अर्घ्य प्रदान करने वाला साधक प्रभूत ऐश्वर्य तथा दीर्घायु प्राप्त करता है। कोई भी कन्या सोमार्घ्य प्रदान करने से अपने अनुरूप पति प्राप्त करती है और किसी विशेष कन्या को चाहने वाला व्यक्ति उस कन्या को प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त कन्या के अभिभावक अभिलषित व्यक्ति को कन्या प्रदान करने में सफल होते हैं। चन्द्रमन्त्र की यह साधना साधक को मेधा तथा समृद्धि भी प्रदान करती है।

प्रतिमासं च षण्मासात् सिद्धिमेष्यति कांक्षिताम्।
इष्टाय दीयते कन्या कन्यां विन्देन्निजेप्सिताम्।।
अमितां श्रियमाप्नोति कान्तिं पुत्रान् यशः पशून्।
सोमार्घ्यदाता लभते दीर्घमायुष्य विन्दति।।
इति सोममन्त्रविधिः प्रणिगदितः संग्रहेण मन्त्रविदाम्।
उपकृतयेऽमितलक्ष्म्यै मेधायै प्रेत्य चेह सम्पत्त्यै।। (वही, १८/२१-२३)

(२) अग्निमन्त्र-साधना

सत्त्वगुणप्रधान सूर्य एवं रजोगुणप्रधान चन्द्रमन्त्रों के स्वरूप एवं साधना-विधि के निरूपण के अनन्तर आचार्य शंकर ने तमोगुणप्रधान अग्नि के मन्त्रों के स्वरूप एवं साधना-विधि का भी विवेचन किया है। उनके अनुसार 'ध्रुव (ओं), वियत् (ह्) से दशम वर्ण (भ्), सर्ग (:) युक्त अर्घि (ऊः) अर्थात् भूः, फिर भुव और विसर्ग (भुवः) तदनन्तर भृगु (स्), लान्त (व्), और सोलहवां स्वर (:) अर्थात् (स्वः), फिर अग्निपत्नी (स्वाहा) मिलकर 'ओं भूर्भुवः स्वः स्वाहा' सर्व-समृद्धि प्रदायक अग्निमन्त्र बनता है।

जो साधक अपने आहार-विहार सम्बन्धी आचरण को पवित्र रखता हुआ चन्द्रमन्त्र का चार लाख जप करता है, वह समस्त प्रकार के ऐश्वर्यों को प्राप्त कर लेता है।

हृदयाम्भोजसंस्थं तं भावयन् प्रजपेन्मनुम्।
राजैश्वर्यं वत्सरेण प्राप्नुयादप्यकिंचनः।।
आहाराचारनियतो जपेल्लक्षचतुष्टयम्।
असंशयतरं तेन निधानादि च लभ्यते।। (वही, १६/१२-१३)

रोगादि-शान्ति एवं लक्ष्मी-प्राप्ति

चन्द्रमन्त्र के दस हजार जप से भयानक ज्वर, गरल, शिरोरोग, कृत्याभय तथा कामला आदि रोग दूर हो जाते हैं। सौभाग्य-लक्ष्मी प्राप्ति के लिये प्रत्येक पूर्णिमा को चन्द्रमन्त्र का दस हजार जप करना चाहिये।

घोरज्वरगराः शीर्षरोगाः कृत्याश्च कामलाः।
तन्मन्त्रायुतजापेन नश्यन्ति सकलापदः।।
नित्यशः प्रजपेन्मन्त्रं पूर्णासु विजितेन्द्रियः।
जपेन्मनुं यथाशक्ति लक्ष्मीसौभाग्यसिद्धये।। (वही, १६/१४-१५)

साधना की विशेष विधि

चन्द्रमन्त्र की साधना के लिये पहले पश्चिम से पूर्व की ओर तीन मण्डलों का निर्माण करना चाहिये। पश्चिम वाले मण्डल में साधक को बैठना चाहिये और मध्य वाले मण्डल में पूजन की सामग्री रखी जानी चाहिये। फिर अष्टदल कमल के रूप में निर्मित पूर्व दिशा वाले मण्डल में सोम देवता की स्थापना करके उनको अर्घ्यादि देकर षोडशोपचार पूजा करनी चाहिये। चन्द्रमा को अर्घ्य देने के लिये पूजा-मण्डल में गाय के दूध और शुद्ध जल से भरा हुआ कटोरा रख कर उसका स्पर्श करते हुए चन्द्रमन्त्र के १०८ बार जप से उस दुग्धमिश्रित जल को अभिमन्त्रित करना चाहिये। फिर प्रणवादिक विद्यामन्त्र 'ओं विद्ये विद्यामालिनि चन्द्रिणि चन्द्रमुखि स्वाहा' मन्त्र से उक्त जल का अर्घ्य चन्द्रमा को देना चाहिये।

त्रितयं मण्डलानान्तु कृत्वा पाश्चात्यपौर्विकम्।
आसीनः पश्चिमे मध्यसंस्थे द्रव्याणि विन्यसेत्।।
पूर्वस्मिन्पंकजोपेते पूर्ववत्सोममर्चयेत्।
राकायामुदये राज्ञो निजकार्यं विचिन्तयेत्।।

रोहिणीं कृत्तिकाख्यां च रेवतीं भरणी तथा।
रात्रिमार्द्राह्वयां ज्योत्स्नां कलां च क्रमतोऽर्चयेत्।।
दलाग्रेषु ग्रहानष्टौ दिशानाथाननन्तरम्।
सुसितैर्गन्धकुसुमैः पात्रैः रूप्यमयैस्तथा।।
शक्तयः फुल्लकुन्दाभास्तारहारविभूषणाः।
सितमाल्याम्बरालेपा रचितांजलयो मताः।। (वही, १६/७-१०)

आचार्य पद्मपाद के अनुसार चन्द्रमा की नौ शक्तियों के नाम राका, कुमुद्वती, नन्दा, सुधा, संजीवनी, क्षमा आप्यायनी, चन्द्रिका तथा ह्लादिनी हैं। आवरण-पूजा में इनके नाम को चतुर्थ्यन्त कर ओं 'नमः' का प्रयोग कर पूर्वादि क्रम से इनकी अर्चना करनी चाहिये।

"राका कुमुद्वती नन्दा सुधा संजीवनी क्षमा।
आप्यायिनी चन्द्रिका च ह्लादिनी नव शक्तयः ।।
पूर्वादिक्रमतो मन्त्री नत्यन्ताः पूजयेदिमाः"।। (वही, १६/७-८ पर विवरण)

सोममन्त्र के प्रयोग

'सों सोमाय नमः' मन्त्र का छह लाख जप और ६ हजार हवन करने के बाद शुक्ल पक्ष की पंचमी, दशमी तथा पूर्णिमा तिथियों में दस हजार जप करने के बाद घृतयुक्त खीर का एक हजार हवन करने से चन्द्रमन्त्र सिद्ध हो जाता है। मन्त्र सिद्ध होने के बाद ही साधक विभिन्न प्रयोजनों के लिये इसके प्रयोग का अधिकारी होता है।

अकालमृत्यु से मुक्ति के लिये

उपर्युक्त विधिपूर्वक की गई साधना से चन्द्रमन्त्र के सिद्ध हो जाने पर यदि साधक रात्रि में अपने सहस्रार में चन्द्रमा का चिन्तन करता हुआ एक मास तक प्रतिदिन (ओं सौं से पुटित) इस मन्त्र का तीन हजार जप करे, तो वह अकाल मृत्यु को जीत लेता है।

इति सिद्धमनुर्मन्त्री शशिनं मूर्ध्नि चिन्तयन्।
त्रिसहस्रं जपेद्रात्रौ मासान्मृत्युंजयो भवेत्।। (वही, १५/११)

ऐश्वर्यप्राप्ति के लिये

जो साधक अपने हृदय में चन्द्रमा का चिन्तन करता हुआ इस मन्त्र का जप करता है, वह भले ही दरिद्र हो, एक वर्ष के अन्दर राजैश्वर्य प्राप्त करता है।

एवं पूर्णिमा तिथियों में सायंकाल चन्द्रमा की पूजा के बाद इस मन्त्र का दस हजार जप करके घृतसहित दुग्धान्न (खीर) से एक हजार हवन अतिरिक्त रूप से किया जाना चाहिये।

दीक्षितः प्रजपेन्मन्त्री रसलक्षं मनुं वशी।
पंचमी दशमी पंचदशीषु तु विशेषतः।।
अयुतं प्रजपेन्मन्त्री सायाऽह्नेऽभ्यर्च्य भाधिपम्।
पयोऽन्नेन हुनेद्भूयः सघृतेन सहस्रकम्।।
ससर्पिषा पायसेन षट्सहस्रं हुनेत् पुनः। (वही, १६/५-७)

आवरण-पूजा

चन्द्रमन्त्र के छह लाख जप और इसके दशांश की हवन-विधि परिपूर्ण करने के अनन्तर चन्द्र की आवरण-पूजा सम्पन्न करनी चाहिये। आवरण-पूजा के लिये अष्टदल कमलपीठ का निर्माण करके क्रमशः 'गुं गुरुभ्यो नमः' से आरम्भ करके सोमान्त (अं सूर्यमण्डलाय नमः, मं वह्निमण्डलाय नमः, उं सोममण्डलाय नमः मन्त्रों से) मण्डलपूजा करनी चाहिये।

"सोमान्तमिति। अं सूर्यमण्डलाय नमः। मं वह्निमण्डलाय नमः। उं सोममण्डलाय नमः। इति पीठपूजायां मण्डलं पूजयेदित्यर्थः"।।
(वही, १६/७ पर विवरण)

मण्डल-पूजन के अनन्तर उक्त आठ दलों वाले कमल की कर्णिका के मध्य में सोम की पूजा करके केसरों में अंगमन्त्रों से अंगपूजा, केसरों के बाहर (दलों में) पूर्वादि क्रम से रोहिणी, कृत्तिका, रेवती, भरणी, रात्रि, आर्द्रा, ज्योत्स्ना तथा कला नामक चन्द्रमा की आठ शक्तियों की, दलों के अग्रभाग में पूर्वादि क्रम से सूर्य, बुध, बृहस्पति, शुक्र, मंगल, शनि, राहु तथा केतु नामक आठ ग्रहों की, इसके बाद दस दिक्पालों की रजत पात्र में रखे गये सुन्दर श्वेत पुष्पों तथा गन्ध-धूपादि पदार्थों से षोडशोपचार पूजा करनी चाहिये।

चन्द्रमा की शक्तियां खिले हुए कुन्द-पुष्प की आभा वाली तथा सुन्दर हार एवं अन्य आभूषणों, श्वेत रंग की मालाओं, श्वेत आलेपनों एवं श्वेत वस्त्रों से सुसज्जित एवं बंधी हुई अंजलियों वाली हैं। आवरण-पूजा में इनका ध्यान इसी रूप में किया जाना चाहिये।

पीठक्लृप्तौ तु सोमान्तं परिपूज्याऽर्चयेद्विधुम्।।
केसरेष्वंगपूजा स्याच्छक्तीस्तद्बहिरर्चयेत्।

पद्मपाद के अनुसार सोममन्त्र के ऋषि अत्रि, छन्दस् पंक्ति, देवता सोम, बीज सों तथा शक्ति आय हैं।

"अत्रिः ऋषिः। पंक्तिश्छन्दः। सोमो देवता। सों बीजम्। आय शक्तिः इति"। (वही,१६/२ पर विवरण)

शंकर के अनुसार चन्द्रमन्त्र की साधना में अंगन्यास चन्द्रमा के स्वकीय बीज के अक्षर 'सं' में दीर्घ स्वरों का संयोजन करके करना चाहिये।

दीर्घभाजा स्वबीजेन कुर्यादंगानि वै क्रमात् ।। (वही, १६/३)

तदनुसार चन्द्रमन्त्र में न्यासादि निम्न प्रकार से होंगे—

ऋष्यादिन्यास

अत्रये ऋषये नमः (शिरसि), पंक्तिछन्दसे नमः (मुखे),
सोमदेवतायै नमः (हृदये), सों बीजाय नमः (गुह्ये),
आय शक्तये नमः (पादयोः)

षडंगन्यास

सां हृदयाय नमः, सीं शिरसे स्वाहा, सूं शिखायै वषट्,
सैं कवचाय हुं, सौं नेत्रत्रयाय वौषट्, सः अस्त्राय फट्।

चन्द्रमा का ध्यान

चन्द्रमन्त्र की साधना में न्यास पूर्ण कर लेने के पश्चात् समस्त अभिलाषाओं की पूर्ति के लिये निर्मल कमलासन पर विराजमान, प्रसन्नवदन, हाथों में कुमुद-पुष्प तथा वरदमुद्रा धारण किये, सुन्दर आभूषणों से सुशोभित स्फटिक एवं रजत वर्णवाले चन्द्रमा का ध्यान करना चाहिये।

विमलकमलसंस्थः सुप्रसन्नाननेन्दुर्वरदकुमुदहस्तश्चारुहारादिभूषः।
स्फटिकरजतवर्णो वांछितप्राप्तये वो भवतु भवदभीष्टद्योतितांकः शशांकः।।
(वही, १६/४)

जप तथा हवन

चन्द्र-साधना में मन्त्र की सिद्धि प्राप्त करने के लिये गुरु से दीक्षा ग्रहण करके उक्त मन्त्र 'सों सोमाय नमः' का छह लाख जप करना चाहिये। छह लाख जप पूर्ण होने के पश्चात् घी, दुग्ध और अन्न (खीर) से छह हजार आहुतियां चन्द्र देवता को दी जानी चाहिये। इसके अतिरिक्त शुक्ल पक्ष की पंचमी, दशमी

सोम एवं अग्निमन्त्र-साधना

चन्द्रमा विराट् पुरुष के मनस् से उत्पन्न हुआ है। इसका मानव-मन के साथ गहरा सम्बन्ध है। यह औषधियों का पोषण करने वाला अमृत है। मानव-शरीर में चन्द्र की स्थिति सहस्रार चक्र के निचले भाग तथा तालु के ऊपर स्थित चन्द्रमण्डल में है। मानव के शरीर में स्थित चन्द्र-मण्डल से प्रस्रवित होने वाले अमृतमय स्राव का पान कर योगीजन अपनी काया को अजर बनाये रखने में समर्थ होते हैं। गगन में विहार करने वाला चन्द्रमा और सहस्रारान्तर्गत चन्द्रमा दोनों एक ही तत्त्व हैं। योगियों के अनुसार समस्त सृष्टि का आविर्भाव ध्वनि या स्फोट से हुआ है। चन्द्र का आविर्भाव भी ध्वनि से ही हुआ है। ध्वनियों का व्यावहारिक रूप अकारादि वर्णों के उच्चारण से अभिव्यक्त होता है। सृष्टि की मूल होने के कारण वर्णमयी समस्त ध्वनियां सृष्टि के पदार्थों की बीज मानी गई हैं। इन वर्णबीजों या वर्णबीज समूहों को मन्त्र कहा जाता है। ये मन्त्र उन तत्त्वों के उद्‌बोधक होते हैं जिनका आविर्भाव उनसे हुआ है। सृष्टि के विभिन्न पदार्थ, दैवी, आसुरी तथा मानवी आदि समस्त शक्तियां भी इन वर्णबीजों या मन्त्रों से नियन्त्रित होती हैं। इसी बात को 'मन्त्राधीना हि देवताः' आदि सूक्तियों द्वारा स्पष्ट किया गया है।

आचार्य शंकर ने पराशक्ति के प्रत्यक्षरूप सूर्य के स्वरूप, मन्त्र और साधना-विधान के निरूपण के अनन्तर साधकों के हितार्थ चन्द्रमन्त्र के स्वरूप और चन्द्र को अर्घ्य प्रदान की विशेष विधि का भी निरूपण किया है।

अथ चन्द्रमनुं वक्ष्ये सजपार्चाहुतादिकम्।
हिताय मन्त्रिणां सार्घ्यविधानं च समासतः।। (प्रपंचसारतन्त्र, १६/१)

(१) सोममन्त्र

शंकर के अनुसार 'पहले सद्य (ओ) तथा बिन्दु (अनुस्वार) युक्त भृगु (स) 'सों', पुनः बिन्दु रहित ये ही वर्ण अर्थात् 'सो', फिर विष (म्) सहित अनन्त (आ) अर्थात् 'मा' तदनन्तर मकार के अन्त वाला वर्ण यानी (य) और अन्त में नति (नमः) मिलने से 'सों सोमाय नमः' सोममन्त्र बनता है।

भृगुः ससद्यः सार्द्धेन्दुर्बिन्दुहीनः पुनश्च सः।
विषानन्तौ मान्तनती मन्त्रोऽयं सोमदैवतः।। (वही, १६/२)

माताओं, दलाग्रों के चतुर्थ आवरण में पूर्वादि मुख्य दिशाओं में—चन्द्र, बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा आग्नेयादि उपदिशाओं में क्रमशः अंगारक, शनि, राहु तथा केतु नामक आठ ग्रहों, दलों के बहिर्भाग के पंचम आवरण में दिग्पालों तथा उसके आयुधों तथा अन्त में छठे आवरण में भगवान् सूर्य के पार्षदों का आवाहन करके उनकी षोडशोपचार पूजा की जानी चाहिये।

पूर्वोक्त एव पीठे कुम्भं प्रणिधाय साधु सम्पूर्य।।
शुद्धादि्भररुणवासोयुगेन संवेष्ट्य सम्पूजयेत् क्रमशः।
अंगावृतेः परस्तादादित्याद्यैरुषादिशक्तियुतैः।।
मातृभिररुणान्ताभिः सग्रहैः सुरैश्चाऽन्ते सूर्यपार्षद्भिः।
सोषा सप्रज्ञा सप्रभा सन्ध्या च शक्तयः प्रोक्ताः।। (वही, १५/६१-६३)

जप, हवन एवं दक्षिणा

अष्टाक्षर सूर्यमन्त्र के साधक को चाहिये कि वह भगवान् सूर्य के मन्त्र का आठ लाख जप करके उक्त द्रव्यों से आठ हजार हवन तथा यथावत् सूर्य की आवरणसहित अर्चना सम्पन्न करके अपने गुरु को १२ की संख्या में द्रव्य-वस्त्राभूषणादि दक्षिणा के रूप में दे और १२ ब्राह्मणों को यथोचित वस्त्राभूषणादि देकर भोजन भी कराये। ग्रहों की प्रसन्नता के लिये विशेषतया रविवार के दिन सूर्य को अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। जो साधक उपर्युक्त प्रकार से सूर्यमन्त्र की भावपूर्वक साधना करता है, वह लक्ष्मीवान् और नीरोग रहता है तथा पाप, शत्रु, भूतबाधा आदि से मुक्त होकर सुखपूर्ण दीर्घ जीवन व्यतीत करता है।

विप्रानादित्यसंख्यानिति विहितमनुर्नित्यशोऽर्घ्यं च दद्यात्।
वारे वा भास्करीये शुभतरचरितो वल्लभाय ग्रहाणाम्।।
इतीह दिनकृन्मनुं भजति नित्यशो भक्तिमान्।
य एष निचितेन्दिरो भवति नीरुजो वत्सरात्।
समस्तदुरितापमृत्युरिपुभूतपीडादिका-
नपास्य स सुखी स जीवति परं च भूयात्पदम्।। (वही, १५/६४-६५)



सशिरोमुखगलहृदयोदरनाभिशिश्नांऽघ्रिषु प्रविन्यस्येत्।
प्रणवाद्यैरष्टार्णैः क्रमेण सोऽयं तदक्षरन्यासः।। (वही, १५/५७-५८)

भगवान् सूर्य का ध्यान

अष्टाक्षर सूर्यमन्त्र की साधना में उपर्युक्त न्यासों के पश्चात् रक्तकमल पर विराजमान अरुणवर्णी, चार हाथों में से दो में कमल, तीसरे में अभयमुद्रा तथा चतुर्थ में वरमुद्रा धारण करने वाले, अपने आभा-मण्डल से सुशोभित, तीन नेत्रों वाले भगवान् सूर्य का ध्यान करना चाहिये।

अरुणोऽरुणपंकजे निषण्णः कमलेऽभीतिवरौ करैर्दधानः।
स्वरुचाहितमण्डलस्त्रिनेत्रो रविराकल्पशताकुलोऽवतान्नः।।
(वही, १५/५६)

जप, हवन तथा आवरण-पूजा

'ओं घृणिः सूर्य आदित्यः' सूर्य के इस अष्टाक्षर मन्त्र की सिद्धि के लिये साधक को चाहिये कि वह गुरु से दीक्षा प्राप्त करके मन्त्र का आठ लाख जप करे। जप पूर्ण हो जाने पर त्रिमधुरयुक्त बड़ तथा पीपल आदि दूधवाले वृक्षों की समिधाओं अथवा घृतसहित अन्न, खीर आदि का उक्त मन्त्र के उच्चारण के साथ आठ हजार हवन करे तथा प्रतिदिन सूर्य को अर्घ्य भी दे।

संदीक्षितोऽथ मन्त्री मन्त्रं प्रजपेच्च वर्णलक्षान्तम्।
जुहुयात् त्रिमधुरसिक्तैर्दुग्धतरुसमिद्भिरैर्वसुसहस्रम्।।
अथवा सघृतैरन्नैः समर्चयेन्नित्यशोऽर्घ्यमपि दद्यात्। (वही, १५/६०-६१)

आवरण-पूजा

पूर्वोक्त अष्टदलकमल के आकार वाली सूर्यपीठ का निर्माण करके उसकी कर्णिका के मध्य में शुद्ध जल से आपूरित और लाल रंग के दो वस्त्रों से आवेष्टित कलश की स्थापना करके उसमें भगवान् सूर्य का आवाहन कर उनकी षोडशोपचार पूजा के बाद कर्णिका के भीतर ही प्रथम आवरण में अंगपूजा करनी चाहिये। इसके पश्चात् द्वितीय आवरण में चारों मुख्य दिशाओं वाले दलों के मूल में पूर्वादि क्रम से आदित्य, रवि, भानु तथा भास्कर, आग्नेयादि उपदिशाओं में क्रमशः उषा, प्रज्ञा, प्रभा तथा सन्ध्या, दलों के मध्य तृतीय आवरण में ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा तथा अरुणा नामक अष्ट

ओं गायत्रीछन्दसे नमः (मुखे),
ओं आदित्यदेवतायै नमः (हृदये),
ओं ओं बीजाय नमः (लिंगे),
ओं ह्रीं शक्तये नमः (चरणयोः)

षडंगन्यास

इस सूर्यमन्त्र में सत्य, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, अग्नि तथा सर्व शब्दों में प्रत्येक के साथ 'तेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा' जोड़ कर षडंगन्यास किया जाता है।

सत्यब्रह्मविष्णुरुद्रैः साग्निभिः सर्वसंयुतैः।
तेजोज्वालामणिहुंफट्स्वाहान्तैरंगमाचरेत्।। (वही, १५/५६)

अतः षडंगन्यास का रूप निम्न होगा-

ओं सत्यतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा हृदयाय नमः,
ओं ब्रह्मतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा शिरसे स्वाहा,
ओं विष्णुतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा शिखायै वषट्,
ओं रुद्र तेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा कवचाय हुम्,
ओं अग्नितेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्,
ओं सर्वतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा अस्त्राय फट् ।

पंचांगन्यास

लघु स्वरों के साथ आदित्य, रवि, भानु, भास्कर तथा सूर्य नामक सूर्य की पंचमूर्तियों का न्यास क्रम से सिर, मुख, हृदय, लिंग तथा चरणों में निम्नांकित रूप से करना चाहिये—

अं आदित्याय नमः, इं रवये नमः, उं भानवे नमः,
ऋं भास्कराय नमः, लृं सूर्याय नमः ।

अक्षरन्यास

पंचांगन्यास के साथ ही ओंकार और लघुस्वरों सहित मन्त्र के आठ अक्षरों को एक-एक करके क्रमशः सिर, मुख, गला, हृदय, उदर, नाभि, लिंग तथा चरणों में न्यस्त करके अक्षरन्यास का सम्पादन करना चाहिये।

आदित्यं रविभानू भास्करसूर्यौ न्यसेत् स्वरैर्लघुभिः।
सशिरोमुखगलहृद्गुह्यकचरणेषु क्रमश एव मन्त्रितमः।।

युद्धे सम्यग्जयमपि रुजः शान्तिमायुश्च दीर्घं
कृत्याशान्तिं व्रजति पुनरेकत्र वा सर्वहोमः।। (वही, १५/५२)

"एकत्र होमपक्षेऽपि प्रथमं सूर्यहोमं कृत्वा तं कुम्भे विसृज्य सोममावाह्य तद्धोमं विधाय तद्विसृज्य बुधादि होममप्येवमेव कुर्यात्"
(इति विवरणे)

सर्पिष् घृत का पर्याय ही है, तथापि हवन के सन्दर्भ में यदि इनका एक साथ उल्लेख किया गया हो, तो सर्पिस् का अर्थ नवनीत (मक्खन) हो सकता है। इसी प्रकार घृत के अन्य पर्याय आज्य और हैयंगवीन के भी विशिष्ट अर्थ माने जाने चाहिये।

(६) अष्टाक्षर सूर्यमन्त्र

आचार्य शंकर ने सूर्य-साधना के प्रसंग में आठ अक्षरों वाले सूर्यमन्त्र के स्वरूप और इसकी साधना-विधि का निरूपण किया है। उनके अनुसार 'विपरीत क्रम में पठित त्य, दि अन्तवाले, आ, र्य, सू णि अक्षर, मेधा (घ्) सहित रेचिका (ऋ) अर्थात् ' घृ' एवं गुण (ओं) से निर्मित अष्टाक्षर 'ओं घृणि सूर्य आदित्य' सूर्यमन्त्र साधक के लिये सर्वार्थ साधक हैं। इस उल्लेख के अनुसार पहले गुण (ओं), फिर, क्रमशः रेचिका (ऋ) के साथ मेधा (घ्), अर्थात् 'घृ', णि, सू, र्य, आ, दि तथा त्य को मिला देने पर 'ओं घृणिः सूर्य आदित्यः ' यह अष्टाक्षर सूर्यमन्त्र बनता है।

त्यद्यन्त आर्यसूण्यर्णा मेधा रेचिकया गुणः।।
व्यत्ययोऽष्टाक्षरः प्रोक्तः सौरः सर्वार्थसाधकः।। (वही, १५/५४)

अष्टाक्षर सूर्यमन्त्र के ऋष्यादि तथा न्यास

अष्टाक्षर सूर्यमन्त्र के ऋषि देवभाग, छन्दस् गायत्री, देवता आदित्य, बीज ओं तथा शक्ति ह्रीं है।

देवभाग ऋक्षिस्तस्य गायत्री छन्द उच्यते।
आदित्यो देवता चास्य कथ्यन्तेऽंगान्यतो मनोः।। (वही, १५/५५)

तदनुसार ऋष्यादिन्यास निम्नवत् होगा—

ऋष्यादिन्यास

ओं देवभागर्षये नमः (शिरसि),

ग्रहपरिवृतमिष्ट्वा पूर्वक्लृप्त्या दिनेशं,
प्रतिजुहुत निजर्क्षे वैकृते वै ग्रहाणाम्।
शुभमतिरुपरागे चन्द्रभान्वोः स्वभे वा
रिपुनृपजभये वा घोररूपे गदे वा।।
अर्कद्विजांघ्रिपमयूरकपिप्पलाहृवाः
सोदुम्बराः खदिरशम्यभिधाः सदूर्वाः।
दर्भाहृवयाश्च समिधोऽष्टशतं क्रमेण
सर्पिर्हविघृतयुताः पृथगेव च स्युः।। (वही, १५/५०-५१)

विवरणकार का कथन है कि आचार्य शंकर द्वारा उल्लिखित "सर्पिर्हविर्घृतयुताः पृथगेव च स्युः" का तात्पर्य है कि पहले सर्पिस्, फिर समिधा, फिर हवि, फिर घृत और तब घृत के क्रम से केवल १०८ हवन करना चाहिये। इसके अतिरिक्त आज्य (घृत) के हवन के आदि तथा अन्त में व्याहृतियों से भी हवन किया जाना चाहिये।

"होमे समिन्नियममाह—अर्केति। सर्पिर्हविर्घृतयुता इति। प्रथमं सर्पिः। ततः समित्। ततो घृतम्। ततो हविः। ततो घृतमिति क्रमः। अष्टशतमेव होमसंख्या। आज्याहुत्या त्वादावन्ते व्याहृतिभिरपि जुहुयात्"। (इति विवरणे)

ग्रहों की प्रसन्नता के लिये हवन-विधि यह है कि पूर्वोक्त सौरपीठ पर निर्मित अष्टदलकमल की कर्णिका और दलों में जिस ग्रह की स्थिति जिस दिशा और उपदिशा में बतायी गयी है, पीठ की उसी-उसी दिशा में, नवग्रहों के कुण्ड निर्मित कर उनमें हवन किया जाना चाहिये। यदि एक ही कुण्ड में सभी ग्रहों के लिये हवन करना हो, तो भी क्रमशः पहले सूर्य का आवाहन-पूजन-हवनादि सम्पन्न करके उन्हें कलश में स्थापित कर, फिर चन्द्रादि ग्रहों का आवाहन-पूजन-हवन कर उनके लिये निर्धारित कलशों में क्रम से पुनः स्थापित किया जाना चाहिये। इस प्रकार नवग्रहों की अर्चनादि से सभी ग्रह प्रसन्न होते हैं, भयंकर कृत्या शान्त होती है, युद्ध में विजय प्राप्त होती है, रोगों से मुक्ति एवं दीर्घायु प्राप्त होती है और साधक धन-धान्य से चिरकाल तक परिपूर्ण रहता है।

सोमादीनां दिशि दिशि समाधाय वह्निं यथाव-
द्धोमे सम्यक् कृतवति मुदं यान्ति सर्वे ग्रहाश्च।

प्रागादिदिशासंस्थाः शशिबुधगुरुभार्गवाः क्रमेण स्युः।
आग्नेयादिष्वस्त्रिषु धरणिजमन्दाहिकेतवः पूज्याः।।
शुभ्रसितपीतशुक्ला रक्तासितधूम्रकृष्णकाः क्रमशः।
चन्द्राद्याः केत्वन्ता वामोरुन्यस्मवामकरलसिताः।।
अपरकराभयमुद्रा विकृतमुखोऽहिः कराहितांजलियुक्।
दंष्ट्रोग्रास्यो मन्दः सवर्णसहितांशुकादिभूषश्च।।
संपूज्यैवं विधिना विधिवद् गोरोचनादिकैर्द्रव्यैः।
दद्यादर्घ्यं रवये मन्त्री निजवांछितार्थसिद्धये मुक्त्यै।
गोरोचनासतिलवैणवराजिरक्तशीताख्यशालिकरवीरजवाकुशाग्रान्।
श्यामाकतण्डुलयुतांश्च यथाप्रलाभं संयोज्य भक्तिभरतोऽर्घ्यविधिर्विधेयः।।
(वही, १५/४२-४८)

प्रयोजनानुसार प्रयोग

विपरीत बने ग्रहों की प्रसन्नता के लिये एक मण्डल बनाकर उसके मध्य में अष्टदलकमल की रचना करनी चाहिये। फिर उस कमल की कर्णिका तथा दलों के अग्रभागों में जल से भरे एक-एक कलश की स्थापना करनी चाहिये। फिर मध्य वाले कलश में सूर्य और पूर्वादि दिशाओं वाले दलाग्रों में पूर्वोक्त क्रम से चन्द्रमादि ग्रहों का आवाहन तथा पूजन किया जाना चाहिये। फिर उक्त कलशों के जल से ग्रह-पीड़ित व्यक्ति का अभिषेक कराने से ग्रहपीड़ा की समाप्ति और लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

कृत्वा मण्डलमष्टपत्रलसितं तत्कर्णिकायां तथा
पत्राग्रेषु विधाय कुम्भनवकं तत्पूरयित्वा जलैः।
आवाह्य क्रमशो ग्रहानभिसमाराध्याऽभिषेकक्रियां
कुर्याद् यो ग्रहवैकृतानि विलयं यान्त्यस्य लक्ष्मीर्भवेत्।। (वही, १५/४९)

साधक को चाहिये कि वह राजभय, शत्रुभय, भयंकर रोग अथवा किसी भी ग्रह की प्रतिकूलता की स्थिति में अपने जन्म-नक्षत्र, चन्द्र या सूर्यग्रहण, अपनी राशि में सूर्यादि ग्रहों के परिभ्रमण के अवसर पर चन्द्रादि आठ ग्रहों से परिवेष्टित भगवान् सूर्य की सावरण अर्चना करे। इसके बाद उसे सूर्यादि सभी ग्रहों के लिये पूर्वोक्त क्रम से प्रत्येक के लिये पहले सर्पिस्, तब घृतयुक्त हवि का हवन करके अन्त में दूर्वासहित आक, पलाश, अपामार्ग, पीपल, उदुम्बर, खदिर, शमी तथा दर्भ की समिधाओं का १०८-१०८ बार हवन करना चाहिये।

अरुणसरोरुहसंस्थस्त्रिदृगरुणोऽरुणसरोजयुगलधरः।
करकलिताभयवरदो द्युतिबिम्बोऽमितभूषणस्त्विनोऽवतु।।
(वही, १५/४०)

जप, हवन एवं आवरण-पूजा

अंगन्यासादि क्रिया सम्पन्न कर लेने के पश्चात् भगवान् सूर्य के प्रयोजन तिलकमन्त्र का १२ लाख जप करके घृतयुक्त अन्न अथवा त्रिमधुरयुक्त तिलों से मन्त्र-उच्चारण के साथ १२ हजार आहुतियां देनी चाहिये।

कृतसन्दीक्षो मन्त्री दिनकरलक्षं मनुं जपेज्जुहुयात्।
तावत्सहस्रमन्नैः सघृतैर्वा त्रिमधुराप्लुतैश्च तिलैः।। (वही, १५/४१)

आवरण-पूजा

सूर्य की आवरण-पूजा के लिये अष्टदल कमलाकार सौरपीठ का निर्माण करके कर्णिका के बीच तथा आठों दलों में जल से भरे हुए नौ कलशों की स्थापना करके कर्णिका स्थित कलश में ध्यान में बताये गये स्वर्णाभ सूर्य, पूर्व वाले दल में स्थापित कलश में शुभ्रवर्णी चन्द्र, दक्षिण में श्वेतवर्ण वाले बुध, पश्चिम में पीताभ गुरु, उत्तर में शुक्लवर्ण वाले शुक्र, आग्नेय में रक्त वर्ण के मंगल, नैर्ऋत्य में कृष्णवर्ण वाले शनि, वायव्य में धुएं के रंग वाले राहु तथा ईशान में काले रंग के केतु का आवाहन करना चाहिये। इसके पश्चात् मध्य वाले कलश में गोरोचन, काले तिल, वंशयव, राई, लाल तथा श्वेत चन्दन, शाली, कनेर, जवा कुसुम, कुशाग्रभाग तथा अक्षत में से जितने भी पदार्थ मिल जायँ उन्हें मिलाकर सूर्य को अर्घ्य देकर उक्त ग्रहों की क्रमशः षोडशोपचार पूजा करनी चाहिये। चन्द्रमा से लेकर केतु तक वर्णित आठ ग्रहों की अर्चना के समय उनका ध्यान करते समय भावना करनी चाहिये कि इन सबने अपना बांया हाथ बाईं जंघा पर तथा दांया हाथ अभय मुद्रा में रखा हुआ है, लेकिन विकृत मुखवाले राहु ने अपने हाथ अंजलि के आकार में रखा हुआ है तथा शनि के दांत बड़े-बड़े हैं। उक्त सभी ग्रहों के वस्त्राभूषण इनके वर्ण के अनुरूप ही काले, लाल या श्वेत हैं।

प्रागभिहितेन विधिना पीठार्ब्ं प्रतिविधाय तत्र पुनः।
विन्यस्य कलशमस्मिन् प्रपूजयेत्तरणिमपि सावरणम्।।
अंगैः प्रथमावरणं ग्रहैर्द्वितीयं तृतीयमाशेशैः।
मुख्यतरगन्धसुमनोधूपाद्यैः कृतभक्तिनम्रमनाः।।

अरुणा शिखिदीर्घयुता हृल्लेखा श्वेतया युताऽनन्ता।
प्रोक्तः प्रयोजनानां तिलकस्तु यथार्थवाचको मन्त्रः।। (वही, १५/३७)

मण्डलन्यास

मन्त्र के इन तीन अक्षरों में से प्रथम अक्षर 'ह्रां' से गुह्य अंग से लेकर चरण तक, द्वितीय अक्षर ह्रीं से कण्ठ से लेकर गुह्यांग तक तथा तृतीय अक्षर सः से सिर से लेकर कण्ठ तक मण्डल न्यास किया जाता है। इसके बाद प्रयोजन-तिलक मन्त्र के मध्य के मन्त्र (ह्रीं) के मूलरूप 'ह' में दीर्घ स्वरों को मिलाकर षडंगन्यास किया जाता है।

गुह्यादाचरणतलं कण्ठादागुह्यमागलं कान्तात्।
विन्यस्य मन्त्रवर्णान् क्रमेण मन्त्री करोतु चाऽङ्गानि।।
मन्त्रस्य मध्य मनुना दीर्घयुजाऽङ्गानि चेह कथितानि।। (वही, ३८-३९)

प्रयोजनतिलकमन्त्र के न्यास निम्नवत् होंगे—

ऋष्यादिन्यास

ओं ब्रह्मर्षये नमः शिरसि, गायत्री छन्दसे नमः मुखे,
तीक्ष्णदीधितिदेवतायै नमः हृदये, ह्रां बीजाय नमः गुह्ये,
ह्रीं शक्तये नमः पादयोः ।

मण्डलन्यास

ओं ह्रां सोममण्डलाय नमः गुह्यात् चरणपर्यन्तम् ।
आ ह्रीं सूर्यमण्डलाय नमः कण्ठात् गुह्यपर्यन्तम् ।
ओं सः अग्निमण्डलाय नमः शीर्षतः कण्ठपर्यन्तम् ।

षडंगन्यास

ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रूं शिखायै वषट्,
ह्रैं कवचाय हुं, ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रः अस्त्राय फट्।

सूर्य का ध्यान

प्रयोजन-तिलकमन्त्र की साधना में अंगन्यास के पश्चात् रक्तकमल पर विराजमान, तीन नेत्रों वाले, चार भुजाओं में से दो में लाल कमल लिये, शेष दो हाथों से वर और अभयमुद्रा प्रदर्शित करने वाले, तेजस्वी बिम्ब और असंख्य आभूषणों से युक्त भगवान् सूर्य का ध्यान करना चाहिये।

से पीड़ित व्यक्ति के सिर पर रखकर इस मन्त्र का जप करने से पीड़ित व्यक्ति, चाहे उसे तक्षक ने ही क्यों न काटा हो, विष से मुक्त हो जाता है।

विधाय लिपिपंकजं मनुयुतोल्लसत्कर्णिकं
निधाय घटमत्र पूरयतु वारिणा तन्मुखम्।
पिधाय शशिनात्ममन्त्रयुतवामदोष्णा पुनः।
सुधायितरसैः स्वसाध्यमभिषेचयेत्तज्जलैः।।
नारी नरो वा विधिनाऽभिषिक्तो मन्त्रेण तेनेति विषद्वयोत्थैः।
रोगैस्तथाधिप्रभवैर्विमुक्त श्चिराय जीवेत्करणैर्विशुद्धैः।।
करेण तेनैव जलाभिपूर्णं प्रजप्य मन्त्री करकं पिधाय।
सुधायितैस्तैर्विषिणं निषिंचेद् विषं निहन्यादपि कालकूटम्।
गदितं निजपाणितलं विषिणः शिरसि प्रविधाय जपेज्जलैः शितधीः।
अचिरात्प्रतिमोचयते विषतो मतिमानथ तक्षकदष्टमपि।।

(वही, १५/३२-३५)

(५) प्रयोजन तिलक मन्त्र की साधना

आचार्य शंकर ने सूर्य-साधना के प्रसंग में ही समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले 'प्रयोजन-तिलक' नामक मन्त्र का उल्लेख किया है। प्रयोजन तिलक मन्त्र के निर्वचन के प्रसंग में आचार्य शंकर ने ओंकार की बिन्दु से उत्पन्न कला, श्वेता तथा अरुणा एवं नादज कला अनन्ता की ओर इंगित करते हुए सम्बन्धित बीजाक्षरों का उल्लेख किया है। ज्ञातव्य है कि अरुणा हकार को, शिखी अग्निवर्ण र् को, दीर्घा आ को, श्वेता सकार को तथा अनन्ता विसर्ग को कहा जाता है।

शंकर के अनुसार शिखी, अनुस्वार तथा दीर्घायुक्त अरुणा (ह्रां), इसके बाद हृल्लेखा (ह्रीं) और अन्त में श्वेतायुक्त अनन्त (सः) मिलकर समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाला प्रयोजन-तिलक मन्त्र 'ह्रां ह्रीं सः' बनता है। आचार्य शंकर ने प्रयोजन तिलकमन्त्र के ऋष्यादि का उल्लेख नहीं किया है। लेकिन, शारदातिलक के उल्लेखानुसार इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा अथवा भृगु, छन्दस् गायत्री, देवता तीक्ष्णदीधिति, बीज ह्रां तथा शक्ति ह्रीं हैं*।

---

* मनोरस्य भवेद् ब्रह्मा मुनिरुक्तोऽथवाभृगुः।
छन्दोऽपि खलु गायत्री देवतातीक्ष्णदीधितीः।।
'आद्यं बीजं द्वितीयं शक्ति' इति, राघवभट्टकृत पदार्थादर्शव्याख्या।

(४) सोऽहम् साधना

'हंसः' का प्रतिलोम 'सोऽहम्' है। 'सोऽहम्' को परमात्म मन्त्र कहा जाता है। इसकी आन्तर साधना के लिये इस मन्त्र के वर्णों का विपरीत (स : हं) क्रम से चिन्तन करते हुए, सूर्यात्मक बिन्दु (·) को सहस्रार में, आदि बीज हकार को भ्रूमध्य में, सकार को हृदय तथा चन्द्रात्मक विसर्ग को मूलाधार में स्थित मानकर 'सोऽहम्' की उपासना की जाती है। इस उपासना से रोग, अपमृत्यु, विष-बाधा आदि रोग समाप्त हो जाते हैं।

व्योमानुगेन वसुधाम्बुमुचा सदाऽमा प्रद्योतमानसविनिःसृतशीतरुग्भ्याम्।
आराधिता दहनचन्द्रलसन्महोभ्यां रोगापमृत्युविषदाहरुजः प्रयान्ति।।
(वही, १५/३०)

इन विधियों से 'हंसः' और 'सोऽहम्' मन्त्रों की आभ्यन्तर उपासना करते हुए सहस्रार स्थित चन्द्र (बिन्दु-विसर्ग) से निकलने वाले सुधारस को सुषुम्ना के मार्ग से नीचे लाकर देह के समस्त अंगों को उससे व्याप्त करने की भावना करनी चाहिये। इस उपासना से वृद्धावस्था, विष, सिर की पीड़ा, पागलपन, भूत-प्रेत की बाधा, मिरगी, पाप-ताप, दुर्भाग्य तथा दरिद्रता जैसे रोग समाप्त हो जाते हैं।

हंसाण्डाकाररूपं स्रुतपरमसुधं मूर्धचन्द्राद् गलन्तम्
नीत्वा सौषुम्नमार्गं निशितमतिरथ व्याप्तदेहोपगात्रम्।
स्मृत्वा संजप्य मन्त्रं पलितविषशिरोरुग्ज्वरोन्मादभूता-
पस्मारादींश्च मन्त्री हरति दुरितदौर्भाग्यदारिद्र्यदोषैः।। (वही, १५/३१)

अजपा का विशेष प्रयोग

विषादि बाधाओं को दूर करने वाले अजपामन्त्र के एक विशेष प्रयोग का उल्लेख करते हुए आचार्य शंकर ने बताया है कि वर्णकमल की रचना करके उसकी कर्णिका में अजपामन्त्र को लिखना चाहिये। फिर उस वर्णकमल पर घट की स्थापना करके उसके मुख तक पानी भर देना चाहिये। फिर अपने बांए हाथ से उस कलश का मुख बन्द कर आत्ममन्त्र 'हंसः' से युक्त चन्द्र मन्त्र 'वं ' (वं हंसः) का जप करना चाहिये। साधक को चाहिये कि वह इस अभिमन्त्रित अमृतमय जल से अपने साध्य का अभिषेक करे। इस अभिमन्त्रित जल से रोग तथा विष-बाधाओं से पीड़ित व्यक्ति को अभिसिंचित करने से वह इन बाधाओं से मुक्त हो जाता है। इस अभिमन्त्रित जल को अपने हाथ में लेकर विष-बाधा

ऋतवसुवरनरसंज्ञास्तथर्तगोऽब्रिपूर्विका जान्ताः।
आशोपाशास्थेयास्ततो दिशापास्ततश्च वज्राद्याः।।
इति परिपूज्य च कलशं पुनरभिषिच्याऽथ नियमतोर्घ्यमपि।
दद्यादिनाय चैहिकपारत्रिकसिद्धये चिरं मन्त्री।। (वही, १५/२५-२८)

(३) 'हंसः' मन्त्र की प्रतिलोम साधना

आत्ममन्त्र 'हंसः' की प्रतिलोम साधना के लिये साधक को चाहिये कि वह अपने सहस्रार में 'हंसः' मन्त्र के अन्त में विसर्ग रूप में स्थित दो बिन्दुओं (:) की, भ्रूमध्य में (स), हृदय में बिन्दु (ं) तथा मूलाधार में आदि बीज (ह) की भावना करे। फिर, भावना करे कि सहस्रार-स्थित उन दोनों बिन्दुओं से अमृत रस निःसृत हो रहा है और उन बिन्दुओं से बह रहे अमृतमय रस से भ्रूमध्य में स्थित 'स' आप्लावित हो रहा है। फिर उस सुधारस से परिपूर्ण यह 'सः' हृदय में स्थित बिन्दु (अनुस्वार) से युक्त होता हुआ मूलाधार स्थित आदि बीज हकार (हं) होता हुआ 'हंसः' हो गया है।

इस प्रकार के चिन्तन से सहस्रार से लेकर मूलाधारपर्यन्त सभी चक्र और चक्रों के द्वारा उनके सम्बद्ध शरीर के सभी अंग-प्रत्यंग सहस्रार से प्रस्रवित सुधारस से परिपूर्ण हो जाते हैं। सहस्रारस्थ विसर्ग रूप दो बिन्दुओं और मूलाधारस्थ आदि बीज हकार को परस्पर सम्बद्ध मानते हुए इसके साथ अद्वैत भावना के साथ इस मन्त्र को जपने वाला साधक आवागमन रूप पापों से मुक्त हो जाता है।

इन्दुद्वयोत्थितसुधारसपूर्णसार्ण-
सम्बद्धबिन्दुसुसमेधितमादिबीजम्।
संचिन्त्य यो मनुमिमं भजते मनस्वी
स्वात्मैक्यतोऽथ दुरितैः प्रतिमुच्यतेऽसौ।। (वही, १५/२९)

आचार्य शंकर ने अपने तान्त्रिकग्रन्थ 'सौन्दर्यलहरी' में भी इस साधना का उल्लेख प्रकारान्तर से किया है।

सुधाधरासारै श्चरणयुगलान्तरविगलितैः,
प्रपंचं सिंचन्ती पुनरपि रसाम्नाय महसा।
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं,
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणी। (सौन्दर्यलहरी १०)

षडंगन्यास

हसां हृदयाय नमः, हसीं शिरसे स्वाहा, हसूं शिखायै वषट्,
हसैं कवचाय हुं, हसौं नेत्रत्रयाय वौषट्, हसः अस्त्राय फट्।

ध्यान

अजपामन्त्र की साधना में रक्तकमल पर विराजमान, गौरी-हर रूप अर्धनारीश्वर के चिह्नों से विभूषित, स्वर्णाभ अरुण वर्ण, सौम्य, पाश, टंक, अभय तथा वरद मुद्राधारी सूर्य का ध्यान करना चाहिये।

अरुणकनकवर्णं पद्मसंस्थं च गौरीहरनियमितचिह्नं सौम्यतानूनपातम्।
भवतु भवदभीष्टप्राप्तये पाशटंकाभयवरदविचित्रं रूपमर्द्धाम्बिकेशम्।।
(वही, १५/२४)

जप, हवन एवं आवरण-पूजा

सूर्योपासक को चाहिये कि वह ऐहिक तथा पारलौकिक सिद्धि के लिये 'ओं ह्रीं हंसः' मन्त्र का बारह लाख जप करे और जप पूर्ण होने पर खीर और घी की बारह हजार आहुतियां दे। इसके बाद सौरपीठ पर पीपल, पलाश, बिल्व, तर्कारि, प्लक्ष, सेव्यक, प्रसारणीक, अश्मरिका, रोहिणी, उदुम्बर तथा पाटलि में से किसी भी एक की छाल को पकाकर बनाये गये क्वाथ से भरा हुआ कलश पीठ पर स्थापित कर उसमें सूर्यदेव का आवाहन करके उसके **प्रथम आवरण** में अंगमन्त्रों, **द्वितीय आवरण** की पूर्वादि चार दिशाओं में क्रमशः

ओं ऋतात्मने नमः, ओं वस्वात्मने नमः,
ओं परात्मने नमः ओं नरात्मने नमः

एवं आग्नेयादि चार कोणों वाली उपदिशाओं में

ऋतजायै नमः, गोजायै नमः,
अब्जायै नमः, अद्रिजायै नमः

तृतीय आवरण की दशों दिशाओं में इन्द्रादि दिक्पालों तथा **चतुर्थ आवरण** में उनके वज्रादि अस्त्रों का विधिवत् पूजन करना चाहिये।

प्रजपेद् द्वादशलक्षं मनुमिममाज्यान्वितैश्च दोग्धान्नैः।
तावत्सहस्रमानं जुहुयात् सौरे समर्चनापीठे।।
निक्षिप्य कलशमस्मिन् पूर्वोक्तानामपामथैकेन।
आपूर्य चोपचर्य च विद्वानंगैः प्रपूजयेत्पूर्वम्।।

अथकृतपुष्पांजलिरपि पुनरष्टशतं जपेन्मनुमिमं मन्त्री।
यावद्रश्मिषु भानोर्व्याप्नोत्यम्भः सुधामयं तदपि।।
अमृतमयजलाविसिक्तगात्रो दिनपतिरप्यमृतत्वमातनोति।
धनविभवसुदारपुत्रमित्रपशुगणजुष्टमनन्तभोगयोगि।।
तस्मादिनाय दिनशो ददताद् दिनादौ दैन्यापनोदितनवे दिनवल्लभाय।
अर्घ्यं समग्रविभवस्त्वथ वाऽर्कवारे पारं स गच्छति भयाह्वययवारिराशेः।।
अनुदिनमर्चयितव्यं पुंसां विधिनाऽमुनाऽथवा रवये।
दद्यादर्घ्यद्वयमपि कुर्याद् वांछितार्थसमवाप्त्यैः।। (वही, १५/१२-१६)

(२) अजपा मन्त्र-साधना

आचार्य शंकर ने सूर्यस्वरूपा भगवती भुवनेश्वरी की साधना के निरूपण के अनन्तर संसार में आवागमन की समाप्ति, पाप, रोग तथा विष आदि बाधओं को नष्ट करने वाले अजपा मन्त्र की साधना का भी निरूपण किया है।

अजपा मन्त्र के स्वरूप का उद्घाटन करते हुए शंकर ने कहा है कि सुधाकर खण्ड (चन्द्रबिन्दु अर्थात् अनुस्वार) से युक्त विष्णुपद (आकाश) अर्थात् 'ह' (हं) तथा 'व' से चतुर्थ वर्ण 'स' चन्द्रयुग्म (विसर्ग) सहित (सः) के मिलने से बना 'हंसः' पद क्षेत्रज्ञ अर्थात् आत्ममन्त्र या अजपामन्त्र कहा जाता है। इस मन्त्र को जीवात्मा प्रत्येक श्वास-प्रश्वास के साथ जपता रहता है।

विष्णुपदं ससुधाकरखण्डं चन्द्रयुगावधिकं वतुरीयम्।
क्षेत्रविदो मनुरेष समुक्तो यं प्रजपत्यपि सन्ततमात्मा।। (वही, १५/२२)

अजपा के ऋष्यादि तथा न्यास

शंकर के अनुसार 'हंसः' रूप अजपामन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्दस् आदिगायत्री तथा देवता परमात्मा हैं। इस मन्त्र का षडंगन्यास क्लीबरहित दीर्घ कलावर्णों (अर्थात् ऋ ॠ लृ ॡ एवं अ इ उ ए ओ तथा अनुस्वाररहित केवल दीर्घ स्वरों) से युक्त 'हस्' से करना चाहिये।

ऋष्याद्या ब्रह्मदेव्यादिगायत्रीपरमात्मकाः।
हसाऽक्लीबकलादीर्घयुजांऽगानि समाचरेत्।। (वही, १५/२३)

ऋष्यादिन्यास

ब्रह्मर्षये नमः (शिरसि), आदिगायत्री छन्दसे नमः (मुखे),
परमात्मने देवतायै नमः (हृदि), हं बीजाय नमः (लिंगे),
सः शक्तये नमः (पादौ)।

"सोमबुधबृहस्पतिशुक्रांगारकशनैश्चरराहुकेतुक्रमं ग्रहमन्त्राणां स्वाक्षरबीजाद्यत्वं" इति विवरणे।

इस प्रकार भगवती भुवनेश्वरी के सूर्यस्वरूप की आवरण-पूजा के पश्चात् भुवनेश्वरी के उक्त चार अक्षरों वाले मन्त्र का विपरीत क्रम से (सः हं ह्रीं ओं) जप करते हुए पूजापीठ के सामने एक ऐसा ताम्रपात्र रखना चाहिये जिसमें ६४ तोला (लगभग सवा सेर या सवा लीटर) जल समा सके। फिर उस कटोरे को अक्षत, यव, कुश, दूर्वा, तिल, सरसों, पुष्प तथा चन्दन से युक्त पवित्र जल से भर देना चाहिये। उस जल में आकाश में स्थित सूर्यबिम्ब का अवलोकन कर पात्र को अपनी हथेली से ढक कर १०८ बार उक्त मन्त्र का जप करना चाहिये। तदनन्तर उस पात्र को पूजापीठ पर स्थापित करके उसमें प्रतिबिम्बित भगवती भुवनेश्वरी के सूर्यस्वरूप की षोडशोपचार अर्चना के बाद घुटनों के बल बैठकर उस जलपात्र को मस्तक तक उठाकर सूर्य को अर्घ्य देना चाहिये।

सूर्य को अर्पित यह अर्घ्य साधक को ओजस् (मानसिक बल), ज्योति (शारीरिक कान्ति), दीप्ति, यश, धृति, स्मृति एवं लक्ष्मी प्रदान करता है। सूर्य को अर्घ्य प्रदान करने के बाद उन्हें पुष्पांजलि समर्पित कर इस अर्घ्यजल को सूर्य की रश्मियों में व्याप्त होने अर्थात् सूर्य की रश्मियों द्वारा आकर्षित किये जाने की भावना करते हुए उक्त सूर्यमन्त्र को पुनः १०८ बार जपना चाहिये। इस अमृतमय जल से अभिषिक्त सूर्य साधक को अमृतत्व, धन-सम्पत्ति, सुशील पत्नी-पुत्र तथा मित्रादि प्रदान करते हैं।

प्रतिपूज्य शक्तिमपि तत्र पुरः प्रणिधाय ताम्ररचितं चषकम्।
प्रजपन्मनुं प्रतिगतक्रमतः प्रतिपूरयेत्सुविमलैः सलिलैः।।
अक्षतयवकुशदूर्वातिलसर्षपकुसुमचन्दनोपेतैः।
प्रस्थग्राह्यच्छिद्रं स्वैक्यं सम्भावयन् समाहितधीः।।
इष्ट्वा दिनेशमथ पीठगतं तथैव व्योमस्थितं परिवृतावरणं विलोक्य।
अष्टोत्तरशतमथ प्रजपेन्मनुं तं पूर्णोदकं निजकरेण पिधाय पात्रम्।।
भूयोऽभ्यर्च्य सुधामये जलमयो तद्गन्धपुष्पादिभि-
र्जानुभ्यामवनिं गतश्चषकमप्यामस्तकं प्रोद्धरन्।
दद्यान्मण्डलबद्धदृष्टिहृदयो भक्त्याऽर्घ्यमोजोबल-
ज्योतिर्दीप्तियशोधृतिस्मृतिकरं लक्ष्मीप्रदं भास्वते।।

की मण्डल के मध्य में (रां दीप्तायै नमः, रीं सूक्ष्मायै नमः ....आदि) पूजा की जानी चाहिये।

> **प्रयजेदथ प्रभूतां विमलां साराह्वयां समाराध्याम्।**
> **परमसुखामग्न्यादिष्वस्रिषु मध्ये च पीठक्लृप्तेः प्राक्।।**
> **ह्रस्वत्रयक्लीबवियोजिताभिः क्रमात् कृशानुबिन्दुयुजाभिरभ्भिः।**
> **सहाऽभिपूज्या नव शक्तयः स्युः प्रद्योतनाः प्राज्यतरप्रभावाः।।**
> **दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमला तथा।**
> **अमोघा विद्युता चैव नवमी सर्वतोमुखी।।** (वही, १५/६-८)

इसके बाद आवरण-पूजा के लिये सौरपीठ का निर्माण करना चाहिये। फिर, 'ब्रह्मविष्णुशिवात्मकसौराय योगपीठाय नमः' मन्त्र से योगपीठ और 'हृल्लेखार्कासनाय नमः' मन्त्र से आसन की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर पीठ पर हृल्लेखात्मिका (ह्रीं) आर्कवपुष् पराशक्ति और उसकी उक्त नौ शक्तियों सहित अन्य आवरण देवताओं का आवाहनादि मन्त्रों से षोडशोपचार पूजन करना चाहिये।

आवरण-पूजा के लिये यन्त्र-निर्माण के विषय में शंकर ने संकेत दिया है कि इसके लिये प्रथम अष्टदल कमलचक्र का निर्माण करके उसकी कर्णिका के बीच हृल्लेखा (ह्रीं), इसके चारों ओर हृल्लेखा, गगना, रक्ता, करालिका तथा महोच्छुमा नामक शक्तियों से अंगपूजा करनी चाहिये। फिर अष्टदल कमल की पंखुड़ियों में पूर्वादि क्रम से ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, ऐन्द्री तथा चामुण्डा नामक अष्टमाताओं, कमल-पत्राग्रों में क्रमशः सोम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, मंगल, शनैश्चर, राहु तथा केतु आठ ग्रहों की उनके नाम के चतुर्थ्यन्त तथा नाम के आदि अक्षर में अनुस्वार लगाकर निर्मित मन्त्रों (जैसे सों सोमाय नमः, मं मंगलाय नमः,) से पूजन करना चाहिये। इसके साथ ही कमलदल के बाहर इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, शिव, ब्रह्मा तथा अनन्त की (पूर्वादि क्रम से) मधुपर्क सहित आवाहन, अर्घ्य, पाद्य, आचमनादि से पूजा की जानी चाहिये।

> **आवाह्य हाल्लेखिकमर्कमर्घ्यपाद्याचमाद्यैर्मधुपर्कयुक्तैः।**
> **प्रपूजयेदावरणैः समस्तसम्पत्त्यवाप्त्यै तदधीनचेताः।।**
> **हृल्लेखाद्याः पंच यष्टव्यास्त्वंगैस्तदनु मातृभिः पश्चात्।**
> **अंगाराद्यैराशापालैरभ्यर्चयेत् क्रमान्मन्त्री ।।** (वही, १५/१०-११)

ध्यान

सूर्यमन्त्र की साधना के लिये सबसे पहले गुरु से दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये। सूर्यमन्त्र के जप आरम्भ करने से पूर्व ध्यान और प्रार्थना करनी चाहिये कि 'रत्नसमूह से जटित मुकुटवाला, मस्तक पर सुशोभित दूज के अमृतमय चन्द्रमा की वक्र रेखा को अपनी कान्ति से प्रदीप्त करनेवाला, तपाये हुए स्वर्ण, रक्तकमल एवं जवाकुसुम की आभा वाला, अपनी प्रभा से ब्रह्माण्ड-विवर को प्रकाशित करने वाला, प्रतप्त, हाथों में पाश, अंकुश, इष्ट तथा अभय (मुद्रा) धारण करने वाला, सुगठित एवं कठोर कुच युगों से सुशोभित जगन्माता भुवनेशी का सूर्यरूप वपुष् (प्रत्यक्ष शरीर) हम सब की रक्षा करे'।

भास्वद्रत्नौघमौलिस्फुरदमृतरुचो रंजयच्चारुरेखाम्
सद्यः सन्तप्तकार्त्तस्वरकमलजवाभासुराभिः प्रभाभिः।
विश्वाकाशावकाशं ज्वलयदशिशिरं धर्तृपाशांकुशेष्टा-
भीतीनां भंगितुंगस्तनमवतु जगन्मातुरार्कं वपुर्वः।। (वही, १५/३)

जप-हवन एवं आवरण-पूजा

सूर्योपासना में दीक्षा के उपरान्त 'ओं ह्रीं हंसः' इस सूर्यमन्त्र का ४ लाख जप करना चाहिये। जप पूर्ण करके त्रिमधुर से संसिक्त द्विजवृक्ष (पलाश) या रक्तकमल के पुष्पों की ४० हजार आहुतियां इस मन्त्र से देनी चाहिये।

संदीक्षितोऽथ प्रजपेच्च मन्त्रं मन्त्री पुनर्लक्षचतुष्कमेनम्।
पुष्पै स्तदन्ते द्विजवृक्षजातैः स्वादुप्लुतैर्वा जुहुयात्सरोजैः।।
(वही, १५/४)

आवरण-पूजा

जप एवं हवन आदि की समाप्ति के पश्चात् सौरपीठ के निर्माण से पहले एकान्त, पवित्र एवं समतल आंगन में मण्डप और मण्डल का निर्माण कर आग्नेयादि क्रम से मण्डल के चारों कोणों और मध्य में प्रभूता, विमला, सारा, समाराध्या और परमसुखा की पूजा करनी चाहिये। इनके साथ ही ह्रस्वत्रय (अ, इ, उ) तथा क्लीब (ऋ ॠ ऌ, ॡ)रहित एवं अग्निबीज 'रकार' तथा बिन्दुयुक्त नौ दीर्घ स्वरों (रां रीं रूं रें रैं रों रौं रं रः) को क्रमशः प्रत्येक के नाम के पहले जोड़कर दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा तथा विद्युता नामक आठ शक्तियों की क्रम से पूर्वादि दिशाओं तथा सर्वतोमुखी नामक नौवीं शक्ति

अथ कथयिष्ये मन्त्रं चतुरक्षरसंज्ञकं समासेन।
प्रणवो भुवनाधीशादण्डिखमस्यादिको विसर्गान्तः।। (प्रपंचसारतन्त्र, १५/१)

इस मन्त्र के ऋषि अज अर्थात् ब्रह्मा, छन्दस् गायत्री तथा देवता स्वयं भुवनेश्वरी हैं। पद्मपाद के अनुसार इस मन्त्र का बीज ओं तथा शक्ति ह्रीं अथवा बीज हं एवं शक्ति सः है। इस मन्त्र की साधना में षडंगन्यास प्रणव तथा शक्ति बीज से किया जाता है। पद्मपाद के स्पष्टीकरण के अनुसार इस मन्त्र की साधना में षडंगन्यास प्रणव और दीर्घ स्वरों सहित शक्तिबीज से करना चाहिये।

ऋषिरस्याऽजश्छन्दो गायत्रं च देवता भुवनेशी।
अंगानि षट् क्रमेण प्रोक्तानि प्रणवशक्तिबीजाभ्याम्।। (वही, १५/२)

"ओं बीजम्, ह्रीं शक्तिः। हंसौ वा बीजशक्ती। शक्तिदीर्घाणा-मंगेषु क्रमेण शक्तियोगः सूचितः। अत्रापि शक्तिबीजेन सह सामान्य-न्यासाः कर्तव्याः। आदित्यादीनां पंचानां धात्रादीनां द्वादशानां नव-सप्तग्रहाणां च न्यासाः कर्तव्याः"। (वही, विवरण)

इन उल्लेखों के अनुसार चतुरक्षर मन्त्र के न्यास निम्न प्रकार से होंगे—

ऋष्यादि न्यास

अजाय ऋषये नमः (शिरसि), गायत्रीछन्दसे नमः (मुखे),
भुवनेश्यै देवतायै नमः (हृदये), ओं बीजाय नमः (गुह्ये),
ह्रीं शक्तये नमः (पादयोः)

अथवा

हं बीजाय नमः (गुह्ये), सः शक्तये नमः (पादयोः)

षडंग न्यास

ओं ह्रीं हृदयाय नमः, ओं ह्रीं शिरसे स्वाहा,
ओं ह्रीं शिखायै वषट्, ओं ह्रीं कवचाय हुं,
ओं ह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्, ओं ह्रीं अस्त्राय फट्।

अथवा

ओं ह्रां हृदयाय नमः, ओं ह्रीं शिरसे स्वाहा,
ओं ह्रूं शिखायै वषट्, ओं ह्रैं कवचाय हुं,
ओं ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ओं ह्रः अस्त्राय फट्।

25

भुवनेश्वरी-साधना

(१) सूर्य-साधना

संसार त्रिगुणात्मिका पराशक्ति का संकल्पात्मक परिणाम है, अतः संसार भी त्रिगुणात्मक है। इस परिदृश्यमान संसार में पराशक्ति के तीन प्रत्यक्ष एवं प्रकाशमय रूप हैं—सूर्य, चन्द्र और अग्नि। इनमें सूर्य पराशक्ति का सत्त्वात्मक, चन्द्र रजोमय और अग्नि तामस रूप है। पराशक्ति के इन तीनों रूपों की साधना के मन्त्र हैं। सभी मन्त्र वर्णमय हैं और ये किसी भी देवता के वर्णमय रूप होते हैं। भगवती के उक्त तीन गुणों के परिणाम सूर्यादि के वाचक मन्त्र भी त्रिगुणात्मक हैं। सूर्य से सम्बन्धित समस्त मन्त्र सत्त्वप्रधान, चन्द्र से सम्बन्धित रजस् प्रधान और अग्नि से सम्बन्धित मन्त्र तमःप्रधान हैं। ये मन्त्र अपने स्वरूप के अनुरूप ही सात्त्विक, राजस तथा तामस फल प्रदान करते हैं।

आचार्य शंकर ने सरस्वती, लक्ष्मी, भुवनेश्वरी तथा दुर्गा आदि शक्तियों के अप्रत्यक्ष किन्तु अनुभूतिगम्य स्वरूपों से सम्बन्धित इच्छा, ज्ञान और क्रियाप्रधान मन्त्रों के निर्वचन के पश्चात् पराशक्ति के प्रत्यक्ष एवं गुणात्मक स्वरूपों से सम्बन्धित मन्त्रों के उद्घाटन के प्रसंग में सर्वप्रथम उसके सत्त्वात्मक प्रत्यक्ष रूप सूर्य के मन्त्र का उद्धार एवं इस मन्त्र की साधना-विधि का निरूपण किया है। शंकर के अनुसार जगन्माता भगवती भुवनेश्वरी का 'आर्क तनु' सूर्य है। तात्पर्य यह कि सूर्य भुवनेश्वरी का प्रत्यक्ष शरीर है। अतः सूर्योपासना भुवनेशी की उपासना ही है। इनकी साधना से अनेक सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

आर्कतनु भुवनेश्वरी मन्त्र

शंकर ने प्रपंचसारतन्त्र में सूर्यरूपा भुवनेश्वरी की तान्त्रिक उपासना विधि के निरूपण के प्रसंग में सबसे पहले 'चतुरक्षर' (चार अक्षरों वाले) सूर्यमन्त्र का उद्धार किया है। उनके अनुसार 'आरम्भ में प्रणव ओं, फिर भुवनेश्वरी बीज 'ह्रीं', फिर दण्डी (अनुस्वार युक्त) 'खं' (आकाशवाची वर्ण हं), फिर इस (ह) वर्ण के पहले वाला वर्ण 'स' विसर्ग सहित (सः) मिलाने से पराशक्ति भुवनेश्वरी के आर्कतनु 'सूर्य' का चतुरक्षर मन्त्र 'ओं ह्रीं हंसः' बनता है।

॥ श्रीः ॥

व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला

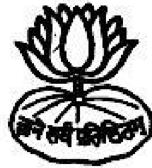
141

प्रपञ्चसारतन्त्रे

शंकराचार्य : तान्त्रिकसाधना

(द्वितीय खण्ड)

डॉ० रामचन्द्र पुरी

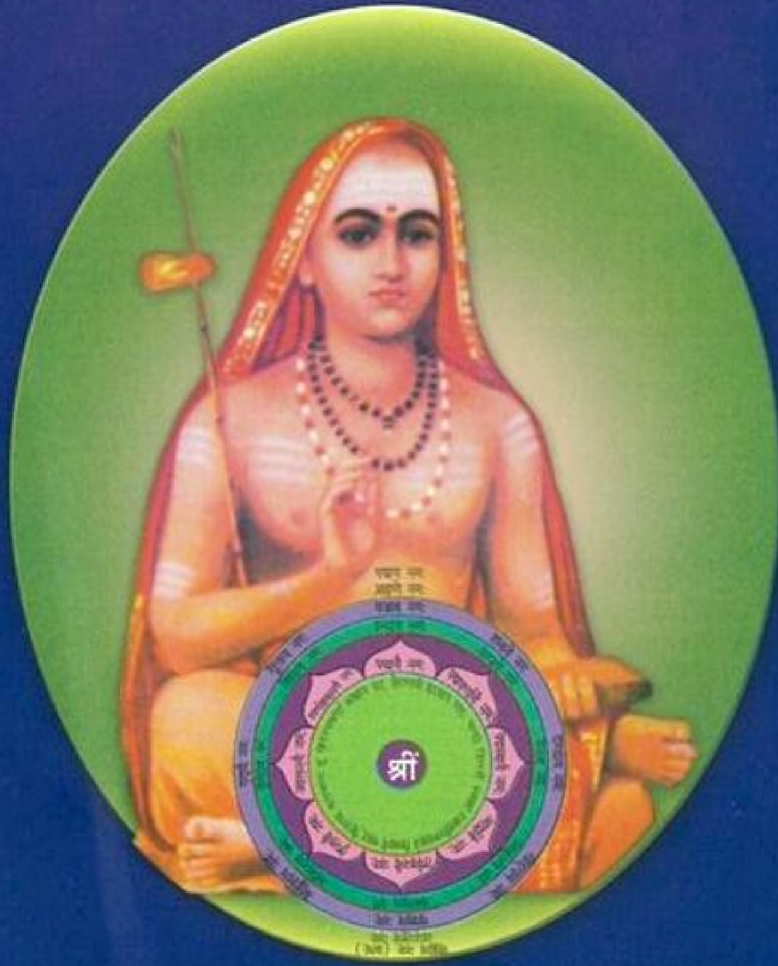


चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

दिल्ली

प्रपञ्चसारतन्त्रे

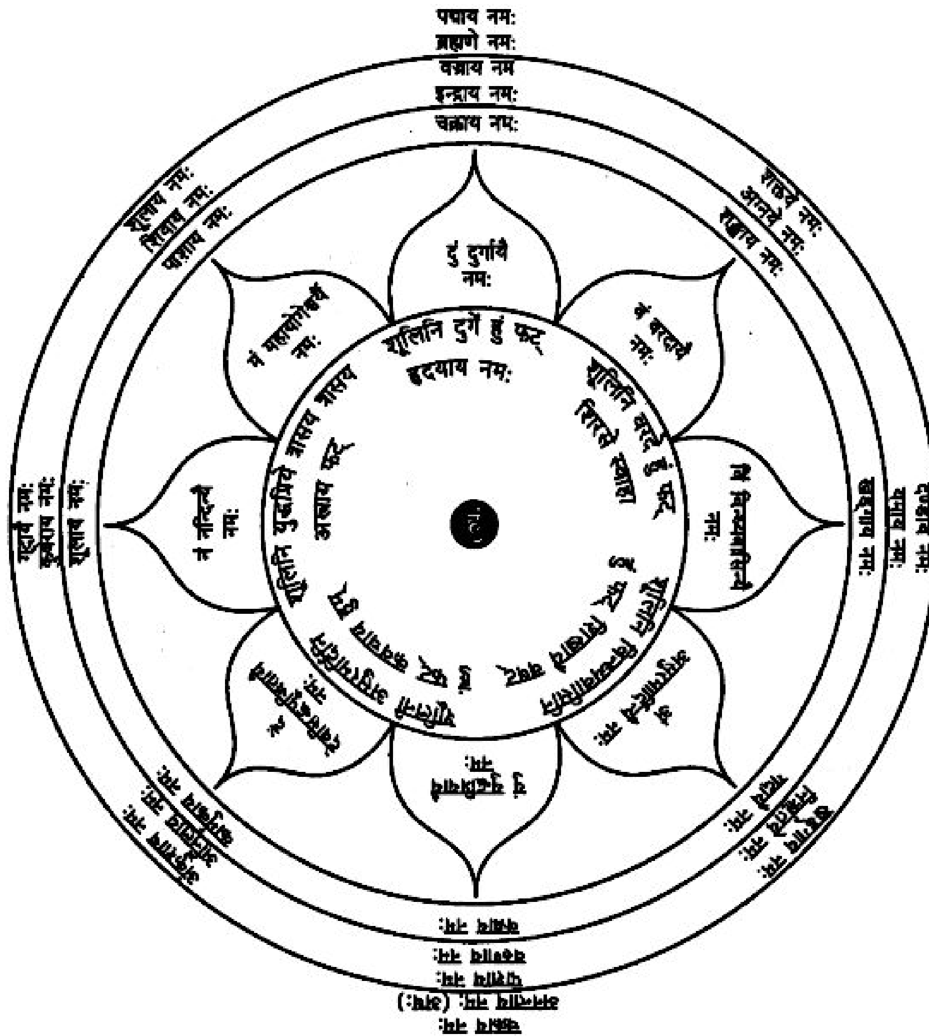
शङ्कराचार्य : तान्त्रिक साधना



डॉ॰ रामचन्द्र पुरी

दुर्गा च वरदा विन्ध्यवासिन्यसुरमर्दिनी।
युद्धप्रिया देवसिद्धपूजिता नन्दिनी तथा।।
महायोगेश्वरी चाष्ट शक्तयः समुदीरिताः।
रथांगशंखासिगदाबाणकार्मुसंज्ञकाः।।
सशूलपाशा यष्टव्या दिक्क्रमादष्ट हेतयः।। (वही, १४/७१-७३)

सावरण शूलिनीदुर्गा यन्त्र



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १४/६६-७३)

[मन्त्र - 'ज्वल ज्वल दुष्टग्रहशूलिनि हुं फट् स्वाहा' • जपसंख्या - १५ लाख (अथवा कार्य की गुरुता के अनुसार) • आहुति-संख्या - १५ हजार (जप का दशांश) आहुतिद्रव्य - घृत, तिल, त्रिमधुर, दूर्वा, गोमय की गुलिकाएं, त्रिमधुरयुक्त आक के पुष्पादि और पीपल के फल तथा समिधाएं आदि (प्रयोग—साधना के अनुसार)]

सावरण वनदुर्गायन्त्र

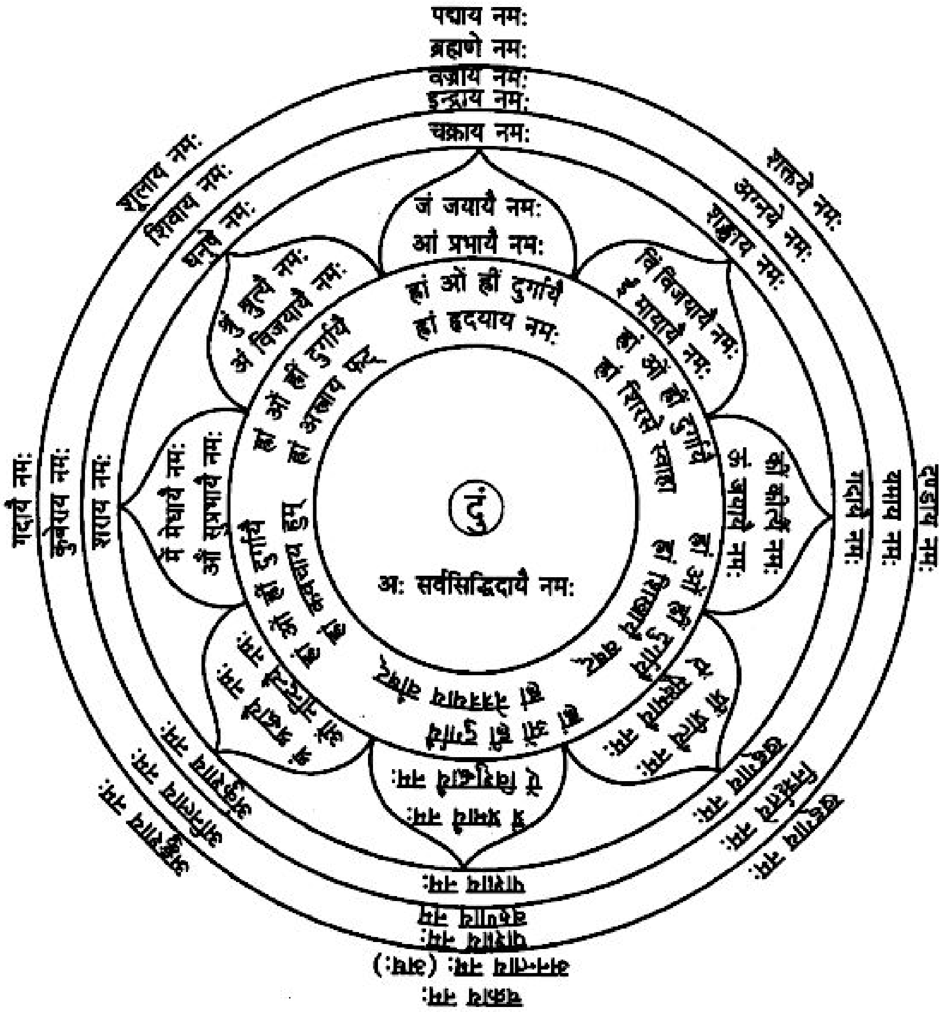
(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १४/३०-३२)

[मन्त्र - 'उत्तिष्ठ पुरुषि किं स्वपिषि भयं मे समुपस्थितम्। यदि शक्यमशक्यं वा तन्मे भगवति शमयस्वाहा' ।। • जपसंख्या - ४ लाख • आहुति-संख्या - ४ हजार आहुतिद्रव्य - व्रीहि, तिल तथा घृत]

वनदुर्गा मन्त्र की साधना साधक की कामना के अनुसार विभिन्न विधियों से की जा सकती है। सामान्यतया प्रातः स्नान करके सूर्य की ओर मुख करके नाभि तक गहरे जल में खड़े होकर प्रतिदिन एक सौ आठ बार इस मन्त्र का जप करने से मनोरथ की सिद्धि तथा लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। त्रिशूलधारिणी भगवती वनदुर्गा का ध्यान कर ज्वर, सर्प, ग्रहादि से पीड़ित के सिर का स्पर्श करते हुए इस मन्त्र का जप करने से ये उपद्रव शान्त हो जाते हैं।

किया है। उनके अनुसार पहले तार (ओम्) उसके बाद वज्र पद तत्पश्चात् क्रम से नखदंष्ट्रायुधाय, महासिंहाय पद, तत्पश्चात् वर्म (हुं) , अस्त्र (फट्) और नति (नमः) अर्थात् 'ओं वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नमः' सिंह का मन्त्र है।

सावरण दुर्गापूजन यन्त्र



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १४/६-१३)

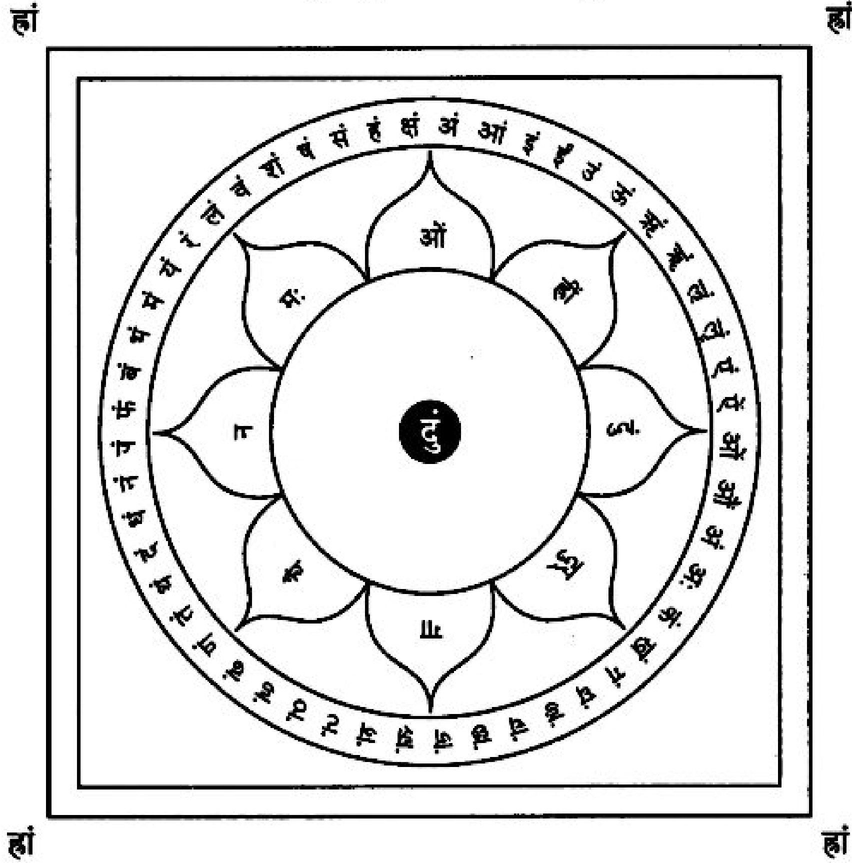
[**मन्त्र - 'ओं ह्रीं दुं दुर्गायै नमः' • जपसंख्या - ८ लाख • आहुति-संख्या - ८ हजार हवनद्रव्य - घृतयुक्त खीर अथवा मधुरत्रय से युक्त तिल**]

नोट—पद्मपाद के अनुसार यन्त्र को मातृका से वेष्टित कर देना चाहिए।

तारान्ते वज्रमाभाष्य नखदंष्ट्रायुधाय च।।
महासिंहाय चेत्युक्त्वा वर्मास्त्रनतयः क्रमात्।
सिंहमन्त्रोऽयमित्येवं सम्प्रोक्ताः पीठकल्पना।। (वही, १४/८-९)

में से प्रत्येक में आठ वर्ण-वर्गों में से क्रमशः एक-एक वर्ग के अक्षरों का आलेखन, मातृकाओं से अष्टदल पीठ का आवेष्टन तथा भूपुर के कोणों में नृसिंह बीज 'ह्रां' का आलेखन करके दुर्गा यन्त्र का निर्माण करके इसमें भगवती दुर्गा की अर्चना करनी चाहिये।

सावरण दुर्गापूजन यन्त्र (पद्मपादानुसार)



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १४/१-१३ पर विवरण)

[मन्त्र - 'ओं ह्रीं दुं दुर्गायै नमः' • जपसंख्या - ८ लाख • आहुति-संख्या - ८ हजार हवनद्रव्य - घृतयुक्त खीर अथवा मधुरत्रय से युक्त तिल]

नोट—पद्मपाद के अनुसार यन्त्र को मातृका से वेष्टित कर देना चाहिए।

"मूलेन मूर्तिकल्पना, ह्रींकारसहिता न्यासाः, कर्णिकायां बीजम्, दलेषु वर्णाष्टकम्, मातृकया च बहिर्वेष्टनम्, भूबिम्बकोणेषु नृसिंह बीजमित्यस्मिन् यन्त्रे पूजयेत्"। (वही, १४/१-१३ पर विवरण)

सिंहमन्त्र

आचार्य शंकर ने भगवती के वाहन 'सिंह' के मन्त्र का उल्लेख अलग से

हल्लेखा क्लेदिनी नन्दा क्षोभणी मदनातुरा।
निरंजना रागवती क्लिन्ना च मदनावती।।
मेखला द्राविणी चैव तथाऽन्या वेगवत्यपि।
सस्मरा द्वादश प्रोक्ता शक्तयः पत्रसंस्थिताः।।
अंगै शक्तिभिराभिर्मातृभिराशाधिपैः क्रमात्पूज्याः। (वही, १३/७३-७६)

सावरण नित्या यन्त्र

ब्रह्मणे नमः (ऊर्ध्वे)
इन्द्राय नमः
ब्रह्माण्यै नमः
अग्नये नमः
माहेश्वर्यै नमः
यमाय नमः
कौमार्यै नमः
ईशानाय नमः
चण्डिकायै नमः
कुबेराय नमः
चामुण्डाय नमः
क्लीं हल्लेखायै नमः
क्लीं क्लेदिन्यै नमः
क्लीं नन्दायै नमः
क्लीं क्षोभिण्यै नमः
क्लीं वेगवत्यै नमः
क्लीं द्राविण्यै नमः
क्लीं मेखलायै नमः
ह्रीं
वाराह्यै नमः
वरुणाय नमः
अनन्ताय नमः (अधः)

(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १३/७३-७६)

[मन्त्र - 'ह्रीं क्लीन्ने ऐं क्रों नित्यमदद्रवे ह्रीं' • जपसंख्या - १ लाख
आहुति-संख्या - १० हजार • आहुतिद्रव्य - राजवृक्ष (अमलतास)
अमलता की समिधा एवं घृत]

आचार्य शंकर के अनुसार साधक को चाहिये कि वह जनन-मरण से मुक्ति के लिये भक्तिपूर्वक प्रतिदिन भगवती नित्या की उपासना करे। जो व्यक्ति

द्वितीय अनुग्रह यन्त्र की विधि

नौ रेखाओं वाले एक अन्य अनुग्रह यन्त्र बनाने की विधि का निरूपण भी शंकर ने किया है। इसके अनुसार किसी सुन्दर स्वर्ण पट्ट पर नौ सीधी तथा उन्हें काटने वाली नौ आड़ी रेखाएं खींच कर ६४ कोष्ठकों का निर्माण करना चाहिये। फिर ईशान कोण से आरम्भ करके इन ६४ कोष्ठकों में प्रदक्षिणा क्रम में लक्ष्मी मन्त्र 'श्री सा माया यामा' आदि लिखना चाहिये। फिर इस यन्त्र के बाहर ईशानादि चारों कोणों में अमृत बीज (ठं तथा वं) से पुटित तूर्णा अर्थात् त्वरिता (ठं त्वरिते वं) लिखा जाना चाहिये। इस विधि से निर्मित अनुग्रह-चक्र नामक यन्त्र की स्थापना जिस स्थान या देश में की जाती है, वहां सभी प्रकार की सम्पन्नता रहती है।

नौ रेखात्मक अनुग्रह यन्त्र

पूर्व

ठं त्वरिते वं   ठं त्वरिते वं

श्री	सा	मा	या	या	मा	सा	श्री
ली	ली	ला	ज्ञे	या	श्री	सा	सा
ला	सा	मा	या	ली	ला	मा	नो
ज्ञे	नो	ली	ली	ला	ला	या	या
या	या	ला	या	ज्ञे	ली	या	ज्ञे
मा	ज्ञे	ज्ञे	या	मा	या	मा	ज्ञे
या	ज्ञे	या	नो	सा	श्री	सा	या
ली	ला	ला	ली	या	मा	सा	नो

ठं त्वरिते वं   ठं त्वरिते वं

(सन्दर्भ-प्रपञ्चसारतन्त्र - १३/६४-६५ तथा वहीं विवरण)

[मन्त्र - 'श्रीसामाया यामासाश्री सानोयाज्ञे ज्ञेयानोसा।
मायालीला लालीयामा याज्ञेलाली लीलाज्ञेया' ॥
(सभी ६४ कोष्ठकों में मन्त्र का एक-एक अक्षर)]

चतुःषष्ट्यंशे वा क्रमविदथ लक्ष्मीमनुममुं
शिवाद्यं नैर्ऋत्यादिकमपि च तूर्णामृतवृतम्।
बहिः स्वच्छे पट्टे कनकविहिते पूर्वविधिना

त्वरिता का दशरेखात्मक अनुग्रह यन्त्र

त्वरिते वषट्

	वं	वं	वं	वं	वं	वं	वं	वं	वं	
[illegible]	श्री	सा	मा	या	या	मा	सा	श्री	सा	[illegible]
[illegible]	या	श्री	सा	मा	या	या	मा	सा	नो	[illegible]
[illegible]	ज्ञे	मा	या	ज्ञे	ला	ली	ली	श्री	या	[illegible]
[illegible]	ला	या	षट्	जूं	सः	वं	ला	सा	ज्ञे	[illegible]
त्वरिते वषट् [illegible]	ली	ली	वं	षट्	त्वरिते	षट्	ज्ञे	नो	ज्ञे	[illegible] त्वरिते वषट्
[illegible]	ली	ला	सः	वं	सः	जूं	या	या	या	[illegible]
[illegible]	ला	ला	जूं	षट्	वं	सः	जूं	ज्ञे	नो	[illegible]
[illegible]	ज्ञे	ली	या	मा	सा	नो	या	ज्ञे	सा	[illegible]
[illegible]	या	मा	या	ली	ला	ला	ली	या	मा	[illegible]
	वं	वं	वं	वं	वं	वं	वं	वं	वं	

त्वरिते वषट्

(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १३/६०-६२ तथा वहीं विवरण)

[मन्त्र - 'श्रीसामाया यामासाश्री सानोयाज्ञे ज्ञेयानोसा ।
मायालीला लालीयामा याज्ञेलाली लीलाज्ञेया' ॥
(लक्ष्मी मन्त्र के ३२ अक्षर दो आवृत्तियों में एवं शेष १६ कोष्ठकों में
'जूं सः वं षट्' बीजों की चार आवृत्तियाँ)]

यन्त्र-लेखन के द्रव्यादि

आचार्य शंकर के अनुसार इस अनुग्रह चक्र का आलेखन श्वेत रेशमी वस्त्र अथवा स्वर्ण के फलक पर सोने की कलम से लाक्षा अथवा कुंकुम (केसर) की स्याही से लिखे गये इस यन्त्र को ताबीज आदि में रख जो व्यक्ति धारण करता है, वह कृत्या, मृत्यु, ग्रह, विष तथा पापादि से मुक्त तथा पुत्र-पौत्र, धन-धान्य से युक्त होकर दीर्घकाल तक जीवित रहता है।

लाक्षाभिः कुंकुमैर्वा विलिखतु धवले चांऽशुके स्वर्णपट्टे
लेखन्या स्वर्णमय्या दृढमपि गुलिकीकृत्य सन्धारयेद् यः।
कृत्यातो मृत्युतो वा ग्रहविषदुरितेभ्योऽपि मुक्तः स धन्यो
जीवेत्स्वैः पुत्रपौत्रैरपरिमितमहासम्पदा दीर्घकालम्॥ (वही, १३/६३)

तत्कर्णरन्ध्रजापात्सद्यो नश्युर्विषग्रहादिकरुजः।
तद्यन्त्रस्थापनमपि विषभूतादिप्रशान्तिकृत्प्रोक्तम्।। (वही, १३/५१-५२)

त्वरिता-यन्त्र

त्वरिता के निग्रह एवं अनुग्रह नामक यन्त्र अत्यन्त प्रभावशाली हैं। इसका यथोचित विधि से निर्माण करके घर आदि में स्थापना करने अथवा शरीर पर धारण करने से चमत्कारिक परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। शंकर ने त्वरिता के यन्त्रों की आलेखन-विधि तथा आलेखन में प्रयुक्त द्रव्यों का उल्लेख प्रपंचसारतन्त्र में विस्तार से किया है।

द्वादश रेखात्मक निग्रहचक्र

त्वरिता के निग्रह चक्र के निर्माण की विधि का उल्लेख करते हुए आचार्य शंकर ने बताया है कि पहले बारह खड़ी और बारह ही पड़ी रेखाएं खींचकर

द्वादश रेखात्मक त्वरिता का विजयप्रद निग्रह यन्त्र

ईशान अग्नि

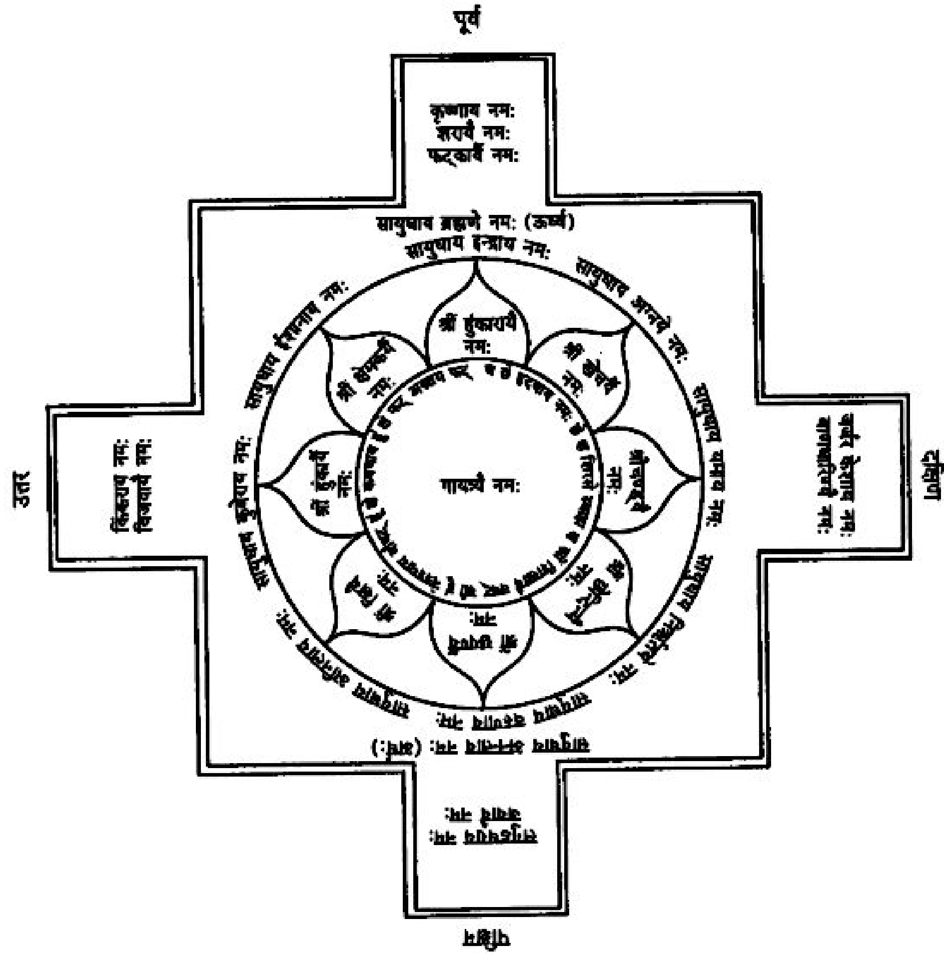
ह्रीं	हुं	खे	च	छे	क्ष	स्त्रीं	हूं	क्षे	फट्	ह्रीं
फट्	ह्रीं	हूं	खे	च	छे	क्ष	स्त्रीं	हूं	क्षे	हूं
क्षे	हुं	खे	च	छे	क्ष	स्त्रीं	हूं	क्षे	फट्	खे
हूं	ह्रीं	क्ष	स्त्रीं	हूं	क्षे	फट्	ह्रीं	फट्	ह्रीं	च
स्त्रीं	फट्	छे	हुं	खे	घ	छे	हुं	ह्रीं	हुं	छे
क्ष	क्षे	च	ह्रीं	फट्	ह्रीं त्वरिते ह्रीं	क्ष	खे	हुं	खे	क्षे
छे	हूं	खे	फट्	क्षे	हूं	स्त्रीं	च	खे	च	स्त्रीं
च	स्त्रीं	हुं	क्षे	हूं	स्त्रीं	क्ष	छे	च	छे	हूं
खे	क्ष	ह्रीं	फट्	क्षे	हूं	स्त्री	क्ष	छे	क्ष	क्षे
हुं	छे	च	खे	हुं	ह्री	फट्	क्षे	हूं	स्त्रीं	फट्
ह्रीं	फट्	क्षे	हूं	स्त्रीं	क्ष	छे	च	खे	हुं	ह्रीं

वायव्य नैर्ऋत्य

(सन्दर्भ-प्रपञ्चसारतन्त्र - १३/५३)

[मन्त्र - 'ह्रीं हूं खे च छे क्ष स्त्री हूं क्षे फट्' • जपसंख्या - १ लाख
आहुति-संख्या - त्वरितावत् (३ हजार या १० हजार)]

सावरण त्वरिता यन्त्र



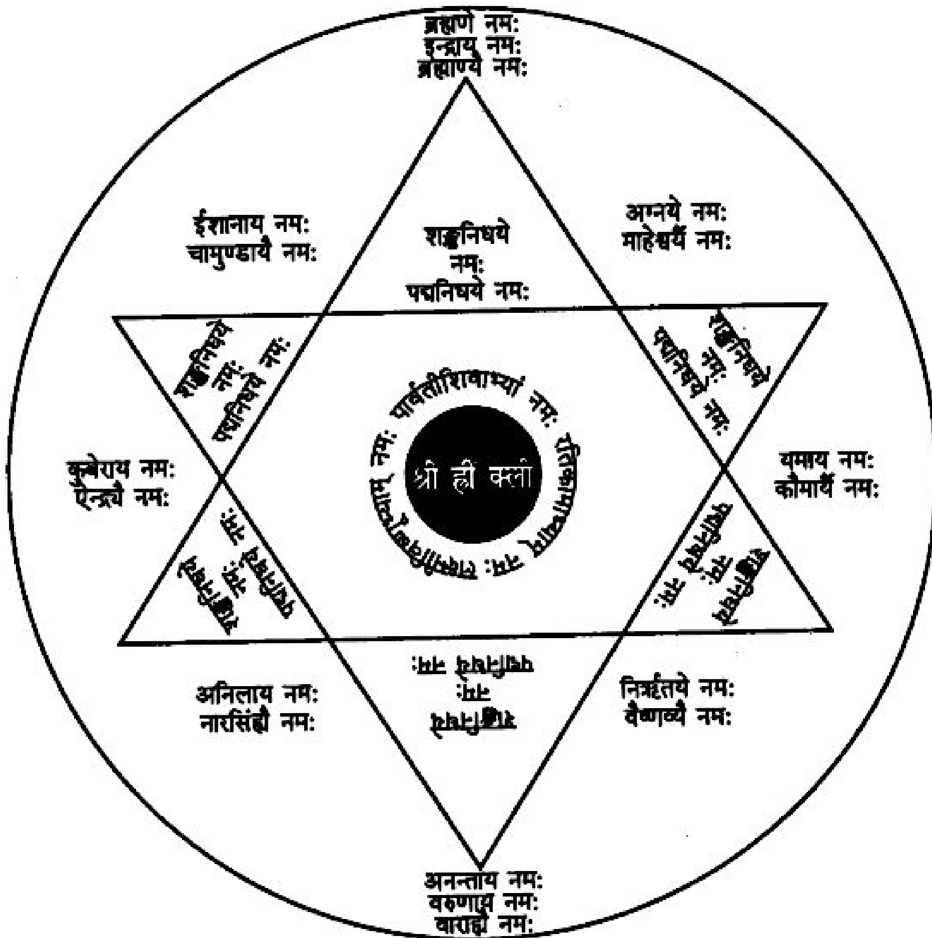
(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १३/३३-३६)

[मन्त्र - 'ह्रीं हुं खे च छे क्ष स्त्री हुं क्षे फट्' • जपसंख्या - १ लाख • आहुति-संख्या - १० हजार • हवनद्रव्य - त्रिमधुरयुक्त बिल्व की समिधाएँ]

अष्टहरिविधृतसिंहासने समावाह्य सरसिजे देवीम्।
अंगैः सह प्रणीतां गायत्रीं पूजयेद् दिशां क्रमतः॥
हुंकाराख्या खेचरिचण्डे सच्छेदनी तथा क्षपणी।
भूयः स्त्रियाह्वयाहूंकारीसक्षेमकारिकाः पूज्याः॥
सश्रीबीजा लोकेशायुधभूषितान्विता दलाग्रेषु।
फट्कारी चाप्यग्रे शरा सशरधारिणी च तद्बाह्ये॥
सस्यर्णवित्रयष्ट्यौ द्वाःस्थे पूज्ये पुनर्जयाविजये।
कृष्णो वर्वरकेशो लगुडधरः किंकरश्च तत्पुरतः॥

त्रिपुटा मन्त्र के लक्ष्मी, गौरी तथा काम (श्रीं ह्रीं क्लीं) तीनों बीजों में समान रूप से 'कला' अर्थात् 'ई' एवं बिन्दु (अनुस्वार) विद्यमान है। साधक को चाहिये कि वह भावना द्वारा इन बीजों के अक्षरों का विलयन इनमें समान रूप से निहित कला अर्थात् 'ई' में करे। फिर, 'ई' रूपी कला को बिन्दु में, बिन्दु को नाद (ह) रूपी सिन्दूर वर्ण के आकाश में लीन कर दे। सिन्दूर की आभा वाला यह आकाश तत्त्व परम तेजस् है और समस्त संसार इसी तेजस् से व्याप्त है। इस प्रकार समस्त विश्व को सिन्दूराभ तेजस् से व्याप्त मानने वाला साधक देवताओं को भी अपने वश में कर लेता है, मनुजों की तो बात क्या?

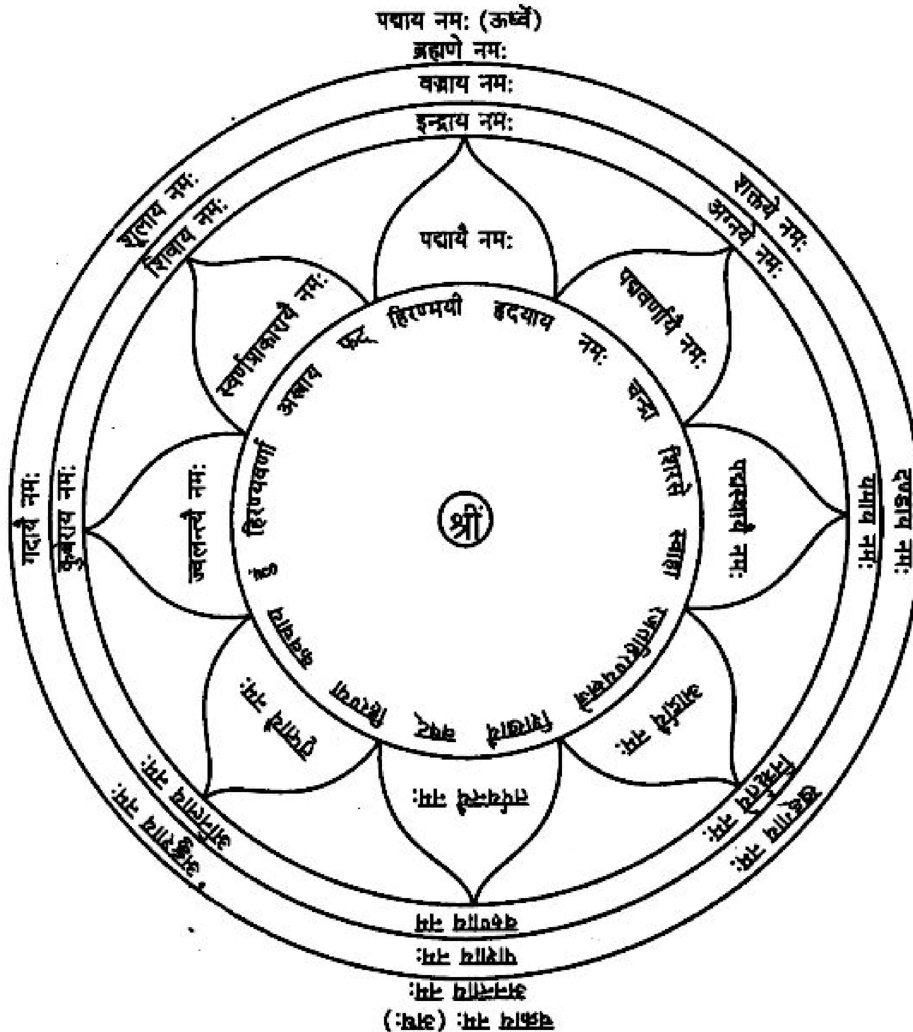
सावरण त्रिपुटा यन्त्र



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १३/७)

[मन्त्र - 'श्रीं ह्रीं क्लीं' • जपसंख्या - १२ लाख • आहुति-संख्या - १२ हजार
हवनद्रव्य - त्रिमधुरयुक्त जवापुष्प]

चतुरावरण श्रीपूजा यन्त्र (श्रीसूक्तविधाने)



(सन्दर्भ-प्रपञ्चसारतन्त्र - १२/४१ एवं ४४-४५)

[जप-हवनादि श्रीं मन्त्रवत्]

आवाहन एवं हवनादि-विधि

श्रीसूक्तों द्वारा महालक्ष्मी की साधना में साधक को चाहिये कि वह प्रतिदिन श्रीसूक्त के क्रमशः एक-एक मन्त्र से भगवती श्री सहित उक्त देवताओं का आवाहन, आसन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, मधुपर्क, अभिषेक, वसन, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य समर्पित करे। फिर श्री बीज सहित चौदहवीं ऋचा से गण्डूषादि कराके एक साथ श्रीं बीज सहित समस्त ऋचाओं से प्रदक्षिणा, स्तुति तथा नमस्कारादि सम्पन्न करके अन्त्य ऋचा से विसर्जन कराना चाहिये।

भारती पार्वतीचान्द्रीशचीभिरपि संयुता।
दमकादिभिस्तृतीयाऽनुरागाद्यैश्चतुर्थ्यपि।।
अनुरागो विसंवादो विजयो वल्लभो मदः।
हर्षो बलश्च तेजश्चेत्यष्टौ बाणा महाश्रियः।।
अनन्तब्रह्मपर्यन्तैः पंचमीन्द्रादिभिर्मता।
चक्रपद्मान्तिकैः षष्ठी वज्राद्यैरावृतिः श्रियः।। (वही, १२/३१-३४)

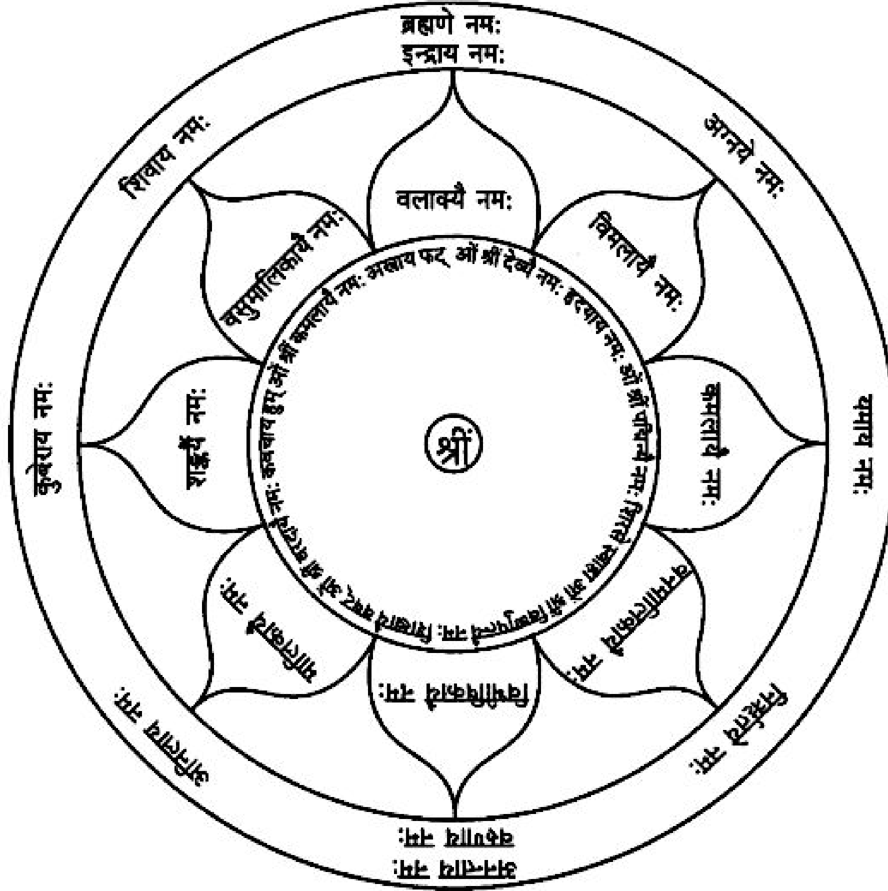
इन्दिरालक्ष्मी यन्त्र

पद्माय नमः
ब्रह्मणे नमः
वज्राय नमः
इन्द्राय नमः
अनुरागाय नमः
भारत्यै नमः
वासुदेवाय नमः
श्रीं

(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १२/२७-२८, ३१-३४)

[मन्त्र - 'ओं श्रीं ह्रीं श्रीः कमलाकमलालये प्रसीद प्रसीद ओं श्रीं ह्रीं महालक्ष्म्यै नमः'
जपसंख्या - १ लाख • आहुति-संख्या - १० हजार
हवनद्रव्य - मधुरत्रय से सिक्त बिल्व फल]

त्र्यावरण कमलवासिनी यन्त्र



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १२/२२)

[मन्त्र - 'नमः कमलवासिन्यै स्वाहा' • जपसंख्या - १० लाख • आहुति-संख्या - १० हजार • हवनद्रव्य - त्रिमधुर युक्त कमल पुष्प]

कमलवासिनी रमा मन्त्र के प्रयोग

मेधा की प्राप्ति

आचार्य शंकर का कहना है कि दीक्षित साधक यदि नियम से 'नमः कमलवासिन्यै स्वाहा' इस मन्त्र का दस लाख जप करता है, तो वह धनधान्य से परिपूर्ण होकर एक वर्ष के भीतर मेधावी हो जाता है।

दीक्षातो जपतु रमारमेशभक्तो लक्षाणां दशकममुं मनुं नियत्या।
स श्रीमान् बहुधनधान्यसंकुलः सन्मेधावी भवति च वत्सरेण मन्त्री।।

(वही, १२/२३)

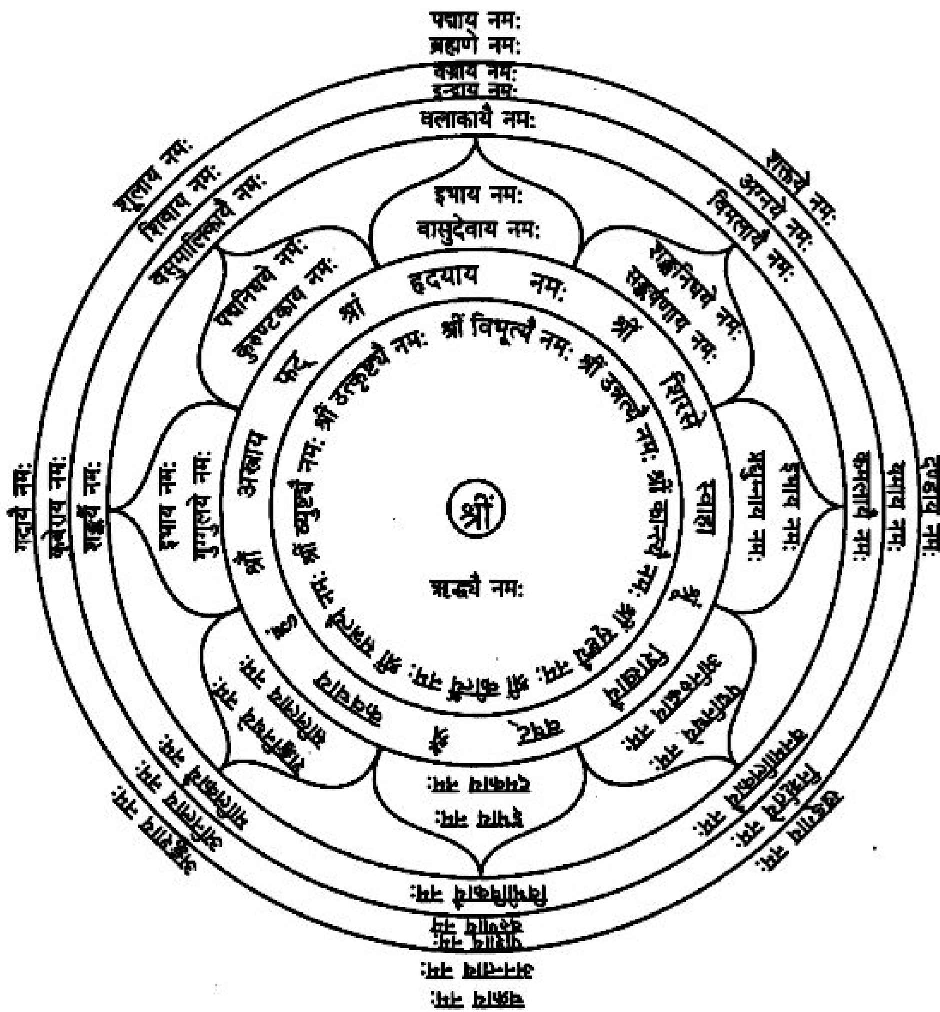
दस दिक्पालों के साथ—

"वज्राय नमः, शक्तये नमः, दण्डाय नमः, खड्गाय नमः,
पाशाय नमः, अंकुशाय नमः, गदायै नमः, शूलाय नमः,
चक्राय नमः, पद्माय नमः"

मन्त्रों से इनके अस्त्रों के साथ ही आवरण-पूजा सम्पन्न की जानी चाहिये।

"कर्णिकामध्ये श्रीबीजयोगो रुचिरत्वम्"। (वही, १२/७ पर विवरण)

श्रीं बीजात्मक चतुर्व्यूह रमा यन्त्र



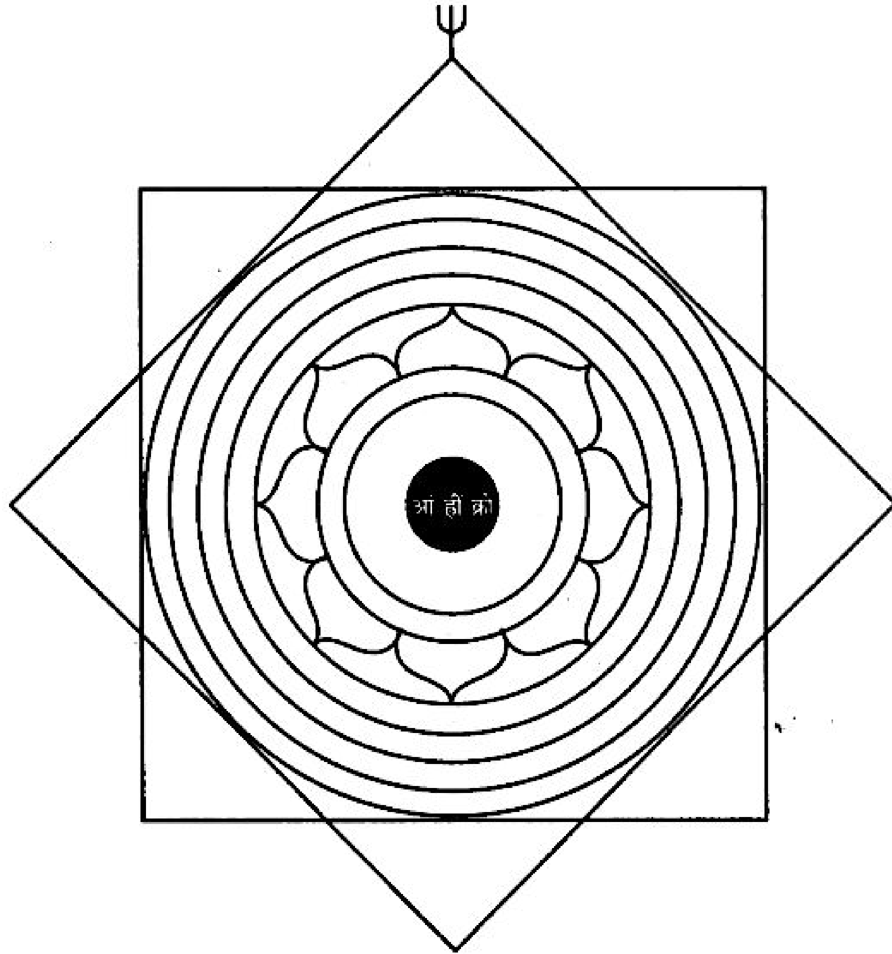
(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १२/७-८, ७-१२)

**[मन्त्र - 'श्रीं' • जपसंख्या - १२ लाख • आहुति-संख्या - १२ हजार
हवनद्रव्य - त्रिमधुर त्रिमधुरसिक्त कमलपुष्प,
तिल अथवा तीनों का मिश्रण]**

दहन (र्) तथा शशधरखण्ड (अनुस्वार) युक्त आप्यायिनी (ओ) 'क्रों' को अंकुश बीज कहा जाता है। इन्हीं दोनों बीजों के अन्य बीजों के साथ संयोजन से भगवती भुवनेश्वरी का अष्टार्ण मन्त्र निर्मित होता है।

बिन्द्वन्तिका प्रतिष्ठा सन्दिष्टा पाशबीजमिति मुनिभिः।
निजभूर्दहनाप्यायिनीशशधरखण्डान्वितोऽङ्कुशो भवति।। (वही, ११/३५)

भुवनेश्वरी का सावरण घटार्गल यन्त्र



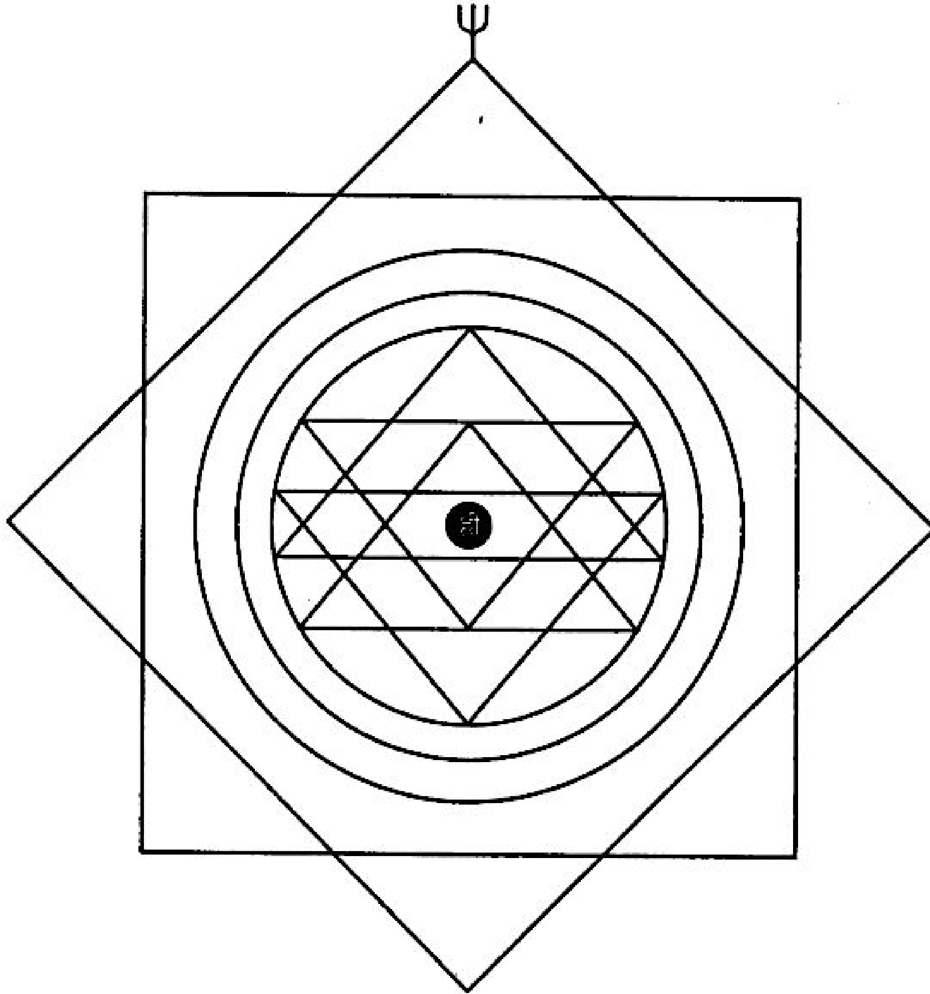
(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - ११/२८-३४)

[त्र्यक्षर मन्त्र - आं ह्रीं क्रौं • अष्टाक्षर मन्त्र - आं श्रीं ह्रीं क्लीं क्लीं ह्रीं श्रीं आं • द्वितीय अष्टाक्षर मन्त्र - 'कामिनी रंजिनि स्वाहा' • षोडशाक्षर मन्त्र - 'ह्रीं गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि हुं फट् स्वाहा' • जपसंख्या - अष्टार्ण या षोडशार्ण मन्त्र २४ लाख आहुति-संख्या - ६ हजार • हवनद्रव्य - दही, शहद एवं घी से सिक्त दूध वाले वृक्षों की ६ हजार समिधाएँ]

नोट—आवरण-पूजा में इस यन्त्र को कमल युक्त कलश पर रखना चाहिए।

नहीं होना चाहिये। फिर अन्दर वाले वृत्त के बीच में विलोम क्रम से लिखित सप्त व्याहृतियों से वेष्टित शक्तिबीज 'ह्रीं' लिखना चाहिये। इसके बाद पूर्व दिशा वाले (तीन) कोणों में दुर्गा बीजान्त बिन्दु युक्त मायाबीज ''ह्रीं दुः' लिखा जाना चाहिये। इस प्रकार ये शक्तिबीज परस्पर एक-एक के अन्तर से सम्बद्ध होंगे। इसके बाद मध्यवर्ती शक्तिबीज 'ह्रीं' के बाहर के बारह कपोलों में गायत्री मन्त्र के दो-दो अक्षर प्रतिलोम क्रम से लिखे जाने चाहिये। इसके बाद प्रतिलोम क्रम से ही क्षकार से लेकर अकार तक के वर्णों का आवेष्टन करना चाहिये।

भुवनेश्वरी का सावरण द्वादशगुणित यन्त्र

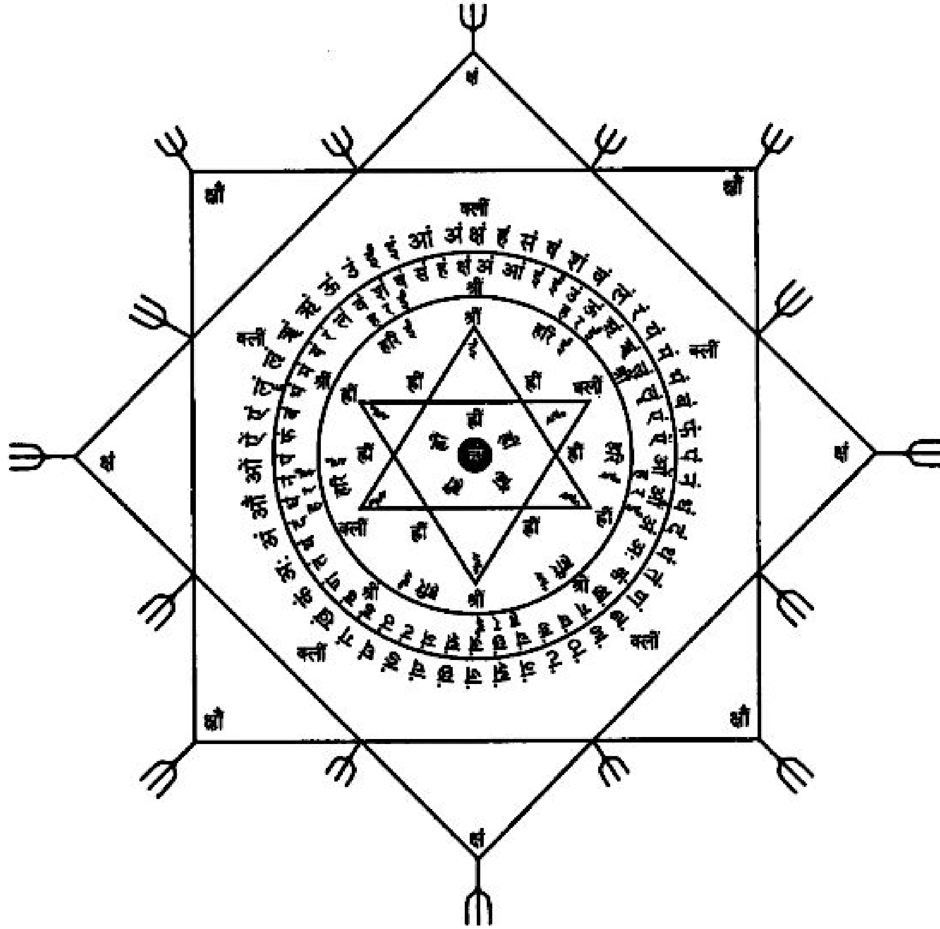


(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - ११/२-९)

[मन्त्र - ह्रीं • जपसंख्या - ३२ लाख • आहुति-संख्या - ३२ हजार हवनद्रव्य - गुड़, शहद तथा घृत सहित चन्दन, अगरु, कपूर, पुष्प, अक्षत, यव, कुशाग्र, तिल, सर्षप, दूर्वा]

क्षकार पर्यन्त तथा वर्तुल से बाहर प्रतिलोम क्रम में क्षकार से अकार पर्यन्त वर्ण लिखने चाहिये। तदनन्तर परस्पर सम्बद्ध दो भू-कोणों (चतुष्कोणों) का आलेखन कर उसकी चारों मुख्य दिशाओं में नृसिंह बीज 'क्षं' तथा उप दिशाओं वाले कोणों में चिन्तामणि बीज(क्ष्रौं) लिखना चाहिये। इसके बाद भूपुर के बाहर सोलह 'शूलांक' अंकित करके भूपुर के बाहर १२ दलों और ३६ केसरों वाले कमल का निर्माण करना चाहिये।

भुवनेश्वरी का सावरण षड्गुणित यन्त्र



(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १०/४९-६२)

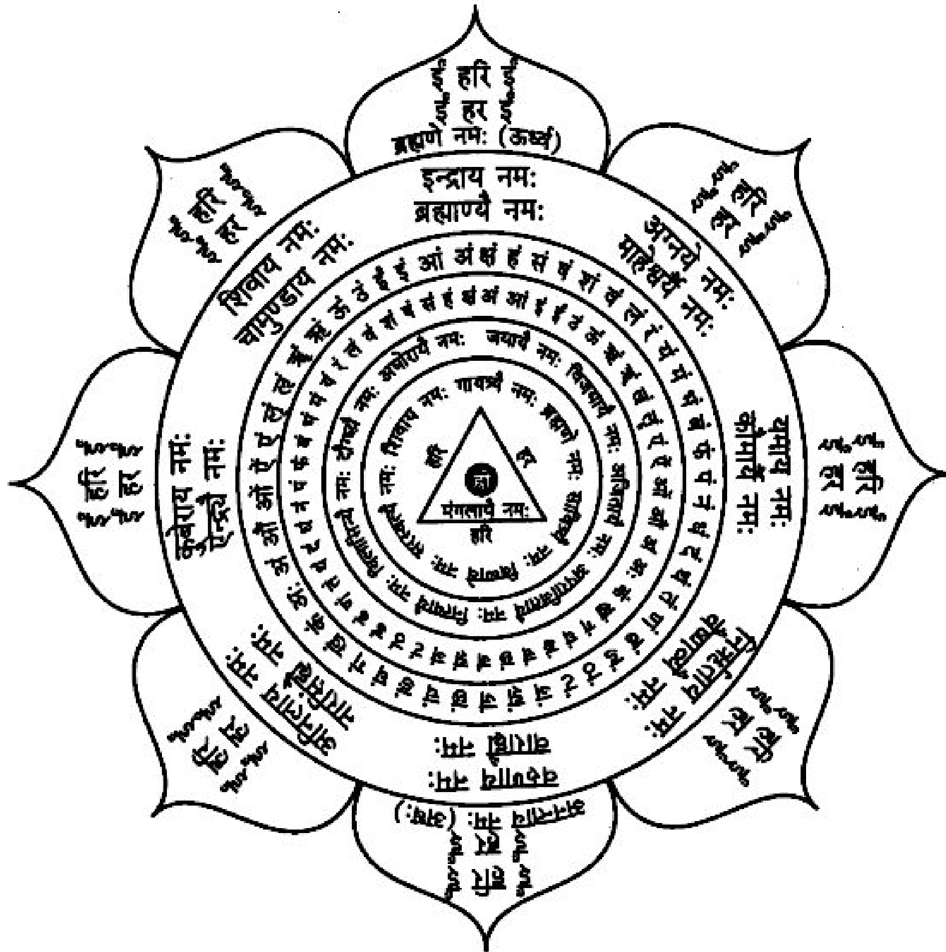
[मन्त्र - ह्रीं • जपसंख्या - ३२ लाख • आहुति-संख्या - ३२ हजार
हवनद्रव्य - गुड़, शहद तथा घृत सहित चन्दन, अगरु, कपूर,
पुष्प, अक्षत, यव, कुशाग्र, तिल, सर्षप, दूर्वा]

नोट—मण्डप में आवरण-पूजा में षड्गुणित यन्त्र के भूपुर के बाहर बारह दलों और छत्तीस केसरों वाला कमल निर्मित करना चाहिए।

पद्मपाद के अनुसार आयु को बढ़ाने के लिये इस त्रिगुणित यन्त्र के बीच में मध्यम बीज (क्लीं) लिखकर इसे मृत्युंजय बीज (जूं सः) से आवेष्टित करना चाहिये। वशीकरण के लिये शक्ति बीज (ह्रीं), धनलक्ष्मी के लिये श्री बीज (श्रीं) तथा यश-प्राप्ति के लिये अजपा बीज (सोऽहं) से इस शक्ति (ईं) को वेष्टित करना चाहिये।

"आयुष्ये मध्यमबीजं मृत्युंजयेन वेष्टयेत्। वश्ये शक्त्या।
धनश्रियोः श्रिया। कीर्तावजपया"। (वही, विवरण)

भुवनेश्वरी का सावरण त्रिगुणित यन्त्र



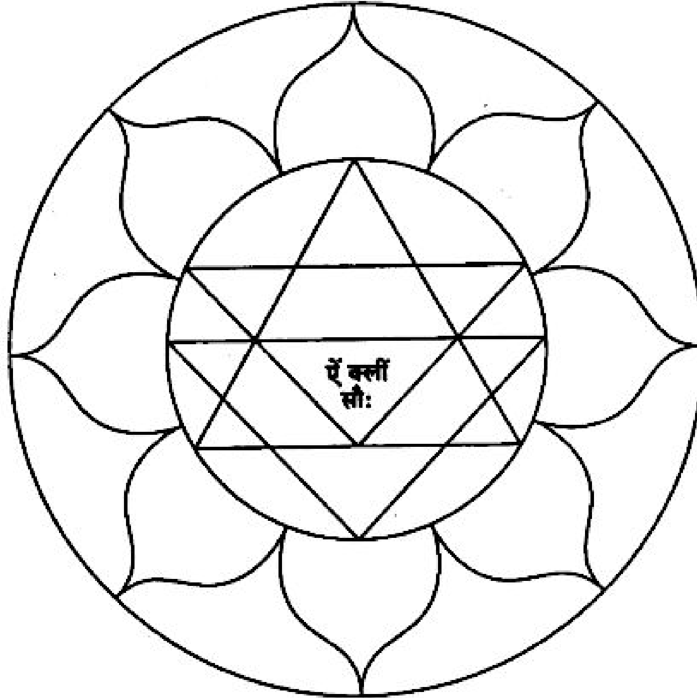
(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - १०/१५-१६, ३०-३६)

[मन्त्र - ह्रीं • जपसंख्या - ३२ लाख • आहुति-संख्या - ३२ हजार
हवनद्रव्य - गुड़, शहद तथा घृत सहित चन्दन, अगरु, कपूर,
पुष्प, अक्षत, यव, कुशाग्र, तिल, सर्षप, दूर्वा]

प्राङ्मध्ययोन्योः पुनरन्तराले सम्पूजयेत् पाग्गुरुपादपंक्तिम्।
पराभिधानाममराह्वयां च परापराख्यामपि वाग्भवादिम्।
तेनैव चांऽगानि विदिगदिशासु मन्त्री यथोक्तक्रमतः प्रपूज्य।
तन्मध्ययोनेरभितः शरांश्च सम्पूजयेत्पंचममग्रभागे।।
सुभगां भगां भगान्ते सर्पिणीं भगमालिनीमनंगाह्वाम्।
तत्पूर्वकुसुमसंज्ञां तदादिके चाथ मेखलामदने।।
ब्राह्मीमाहेश्वर्यौ कौमारी वैष्णवी च वाराही।
इन्द्राणी चामुण्डा सचण्डिका चेति मातरः प्रोक्ताः।।
सम्पूज्य योनिषु च मातृगणं सचण्डिकान्तं दलेष्वभिजयेदसितांगकाद्यैः।
तैर्भैरवैः सह सुगन्धकपुष्पधूपदीपादिकैर्भगवतीं प्रवरैर्निवेद्यैः।।
असितांगाख्यो रुरुरपि चण्डक्रोधाह्वयौ तथोन्मत्तः।
सकपालिभीषणाख्यौ संहारश्चाष्ट भैरवाः कथिताः।।
इति क्रमाप्त्या विहिताभिषेकः सम्पूजयित्वा प्रविणैर्गुरुश्च।
जप्त्वाऽर्चयित्वोक्ततयाऽथ हुत्वा युंजीत योगांश्च गुरूपदिष्टान्।।

(वही, ६/१३-२०)

त्रिपुरा का सावरण नवयोनि यन्त्र

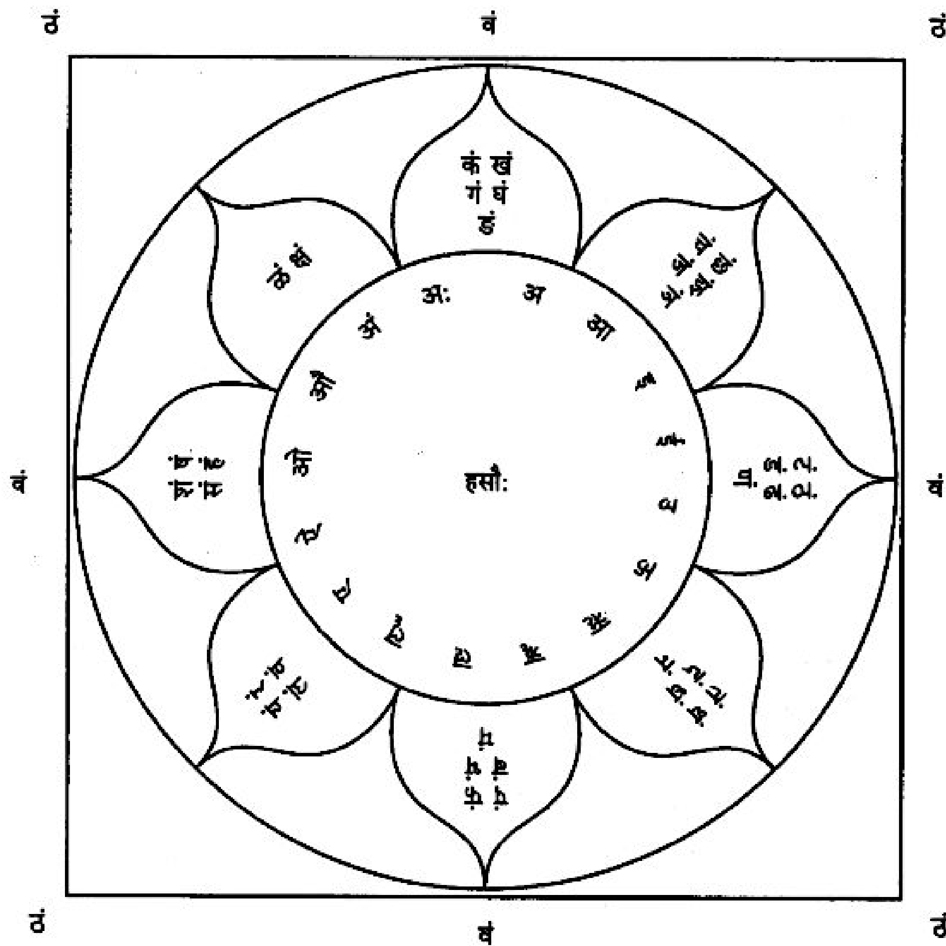


(सन्दर्भ—प्रपञ्चसारतन्त्र ९/१२-१९ - विवरण एवं दीपिका)

[मन्त्र - 'ऐं क्लीं सौः' • जपसंख्या - १२ लाख • हवन संख्या - १२ हजार
हवनद्रव्य - त्रिमधुरयुक्त नवपुष्पित पलाश और हयमार (कनेर) के पुष्प]

कि वह मण्डप में (आन्तरिक साधना में भावना द्वारा मस्तक में) 'वर्ण-कमल'रूपी पूजापीठ की रचना करे। शंकर के अनुसार वर्णकमल की रचना के लिये पहले आठ दलों वाले कमल की रचना करके उसकी कर्णिका में विसर्ग युक्त हसौ (हसौः) (व्योमाविः...विसर्गान्तःस्फुरत्) बीज, केसरों में क्रमशः कला (स्वर) युग्म अर्थात् दो-दो स्वर, आठ पंखुडियों में क्रमशः कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग, शवर्ग तथा ळवर्ग के वर्ण लिखकर वर्णकमल की चारों उप दिशाओं में सप्तम वर्ण 'ठ', और मुख्य दिशाओं में 'वः' सहित 'भूपुर' बनाया जाना चाहिये।

वर्णाब्ज यन्त्र



(सन्दर्भ-प्रपञ्चसारतन्त्र - ७/६-७)
[मन्त्र - हसौः • जपसंख्या - १ लाख • हवनसंख्या - १० हजार
हवनद्रव्य - मधुरत्रयसिक्त तिल]

व्योमाविःसचतुर्दशस्वरविसर्गान्तस्फुरत्कर्णिकम्,
किंजल्कालिखितंस्वरं प्रतिदलं प्रारब्धवर्गाष्टकम्।

वायुर्नागश्च मुख्यश्च सोमो भल्लाट एव च ।
अर्गलाख्यो दितिस्तद्वददितिः सौम्यदिग्गताः ।।
इतीरितानामपि देवतानां चित्राणि कृत्वा रजसा पदानि।
पयोऽम्भसा साधु बलिः प्रदेयो द्रव्यैश्च या तन्त्रविशेषसिद्धैः ।।
(वही,५/७-१६)

वास्तुपूजन यन्त्र

पूर्व

ईशानकोण — आग्नेयकोण

पिलिपिच्छ	चरकी	ईशान	सर्पजन्य	जयन्त	शक्र	सावित्र	सविता
विदारी	पूतना	भास्कर	सत्य	वृष	अन्तरिक्ष	शक्र	इन्द्रजय
सोम	अदिति		आर्यक			गृहरक्षक	अग्नि
मुख्य	दिति	महीधर	ब्रह्मा		विवस्वान्	गन्धर्व	पूषा
नाग	अर्गला					भृङ्गराज	वितथ
वायु	भल्लाट		मित्र			मृग	यम
जम्भक	अर्यमा	उरग	शेष	असुर	पुष्पदन्त	आप	रुद्र
रोग	शोष	वरुण	सुग्रीव	दौवारिक	निर्ऋति	वत्सक	रुद्रजय

उत्तर — दक्षिण

वायव्यकोण — नैर्ऋत्यकोण

पश्चिम

(सन्दर्भ–प्रपञ्चसारतन्त्र - ५/७-१५ एवं ५/८-९ पर दीपिका)

मण्डप-निर्माण

वास्तुपूजा के उपरान्त सुन्दर, समतल, रोम तथा अस्थि आदि दूषित वस्तुओं को हटाकर साफ-सुथरी भूमि पर चार द्वारों वाला पुष्पमालाओं से युक्त, तोरणादि से सुसज्जित तथा वस्त्रावरणादि से चारों ओर से घिरा सुरक्षित नौ, सात अथवा पांच हाथ लम्बा मण्डप बनाया जाना चाहिये।